'प्रसाद' और 'निराला' के काव्य-शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फ़िल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत]

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री

ऊषा श्रीवास्तव एम०ए०

निर्देशक

डा० प्रेम कांत टन्डन प्राध्यापक

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

१९७९

भू मि का

प्रस्तुत प्रबंध में आधुनिक हिन्दी के सर्वोत्तम युग के दो शीर्ष कवि जयशंकर "प्रसाद" तथा सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" के काव्य-शिल्प का तुलनात्मक विवेचन किया गया है । कथन की सैद्धांतिक पुष्टि के हेतु भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य में निरूपित काव्य-शिल्प सम्बन्धी विचारधाराओं को भी आधार रूप में यथास्थान प्रस्तुत किया गया है । आलोच्य कवियों के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के आलोक में उनके कृतित्व- निर्माण के उन समस्त उपकरणों की समता-विषमता को प्रस्तुत करना ही हमारा अभीष्ट रहा है जो उनकी स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के प्रमुख स्रोत हैं । प्रसाद और निराला का काव्य शिल्प की दृष्टि से बहुविध प्रयोगों का ऐसा संपुंजन है जो युग-युग तक परवर्ती कवियों के प्रशस्त काव्य मार्ग को आलोकित करता रहेगा ।

आलोच्य कवियों ने भावानुभूति तथा चिंतन प्रणाली को जीवंत रूप प्रदान करने के लिए भाषा, प्रतीकात्मकता, शब्द शक्तियां, गुण, रीतिवृत्ति, अप्रस्तुत-योजना, बिम्ब, वक्रताएं तथा छंद आदि को युग परिवेश के क्रमिक परिवर्तन में प्रस्तुत किया है । इसके प्रतिफलनस्वरूप दोनों कवियों का शिल्प-विधान स्वस्थ, सबैध, अर्थव्यंजक, जीवंत तथा प्रभविष्णु बन पड़ा है । दोनों कवियों की युग-स्थितियां तो प्राय: समान ही थीं ; फिर भी वैयक्तिक अनुभूति तथा अभिव्यक्ति के निराले ढंग से अनुप्राणित रचनातंत्र में कुछ भिन्नता आ गई है जो नितान्त सहज एवं स्वाभाविक है । प्रस्तुत शोध-ग्रंथ में अभिव्यक्ति को अपने ढंग से रूपाकार प्रदान करनेवाले दो पुरोधा कवियों के शिल्प-विन्यास की तुलना में कहीं-कहीं पर काव्य-विषय का भी संस्पर्श हो गया है, यद्यपि ऐसा उन्हीं स्थलों पर हुआ है जहां शोध कार्य के प्रस्तुतीकरण में उसकी अवहेलना कर सकना नितांत असंभव हो गया ।

प्रस्तुत प्रबंध की प्रतिपाद्य सामग्री एवं तत्संबंधी शोध प्रक्रिया का यहां संक्षिप्त परिचय दे देना अप्रासंगिक न होगा ।

प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प के तुलनात्मक अध्ययन को प्रब सात अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है । प्रथम अध्याय में काव्य तथा शिल्प शिल्प के स्वरूप एवं अर्थ विश्लेषण के लिए पौरस्त्य तथा पाश्चात्य आलोचकों के युक्ति युक्त विचार को प्रस्तुत किया गया है । काव्य और शिल्प के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध की पुष्टि के साथ ही शिल्प विधायक प्रमुख तत्वों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। द्वितीय अध्याय में प्रसाद और निराला की युग-स्थितियों (राजनीतिक , सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा साहित्यिक) के वैशिष्ट्य का उद्घाटन किया गया है । तृतीय अध्याय में वस्तु के उपादान को आकार प्रदान करनेवाले काव्यरूप का तात्त्विक विवेचन तथा भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों द्वारा निरूपित काव्य भेदों को प्रस्तुत किया गया है । साथ ही, यथासंभव प्रसाद और निराला की काव्य-रूप सम्बन्धी मान्यताओं को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । चतुर्थ अध्याय में प्रसाद और निराला के काव्यरूप प्रस्तुत हैं । हिन्दी काव्य की समुन्नत परंपरा में प्रगीत, मुक्तक तथा प्रबंध के स्वरूप एवं परिभाषा के परिप्रेक्ष्य में दोनों कवियों के पारम्परिक रचनातंत्र तथा नूतन उपलब्धियों को तुलनात्मक रूप में विवेचित किया गया है । प्रगीत के अनेक भेदों में से शिल्प पर आधारित प्रभेदों की ही चर्चा की गई है । प्रबन्ध के विविध रूपों में से केवल वही प्रभेद विवेचित किये गए हैं जो आलोच्य कवियों द्वारा प्रणीत है । पंचम अध्याय में शिल्प-विधान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व-भाषा के स्वरूप एवं परिभाषा के विषय में सर्वमान्य तथ्यों को प्रस्तुत करने के साथ ही प्रसाद और निराला की काव्यभाषा में प्रयुक्त शब्द भण्डार, सौष्ठव, अर्थव्यंजना, प्रतीकात्मकता , शब्द शक्तियाँ, गुण, रीति और वृत्ति तथा मुहावरे एवं लोकोक्तियों का तुलनात्मक अनुशीलन है । दोनों कवियों की भाषागत उपलब्धियों तथा महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर भी संकेत किया गया है । षष्ठ अध्याय में प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प को कालजयी बनानेवाले शिल्प के अन्य महत्वपूर्ण उपकरणों- अप्रस्तुत-योजना, बिम्ब तथा वक्रता आदि का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत है । सृजन- प्रक्रिया के इन आयामों के विवेचन में ही दोनों कवियों का योगदान वर्णित है । सप्तम अध्याय में आलोच्य कवियों के लयानुमोदित भावों को

कर्णश्रुत तथा सविध बनाने वाले प्रमुख शिल्प उपकरण छन्द का तुलनात्मक अनुशीलन है। छंद के सैद्धांतिक विवेचन के परिपार्श्व में प्रसाद और निराला के नूतन प्रदेय को प्रस्तुत करना ही मूल उद्देश्य रहा है। साहित्य में मुक्त छंद की अवतारणा की ओर भी संकेत किया गया है। अन्त में उपसंहार में दोनों कवियों के काव्य-शिल्प के अध्ययन एवं मनन के पश्चात् मनोमस्तिष्क में उत्पन्न विचारों तथा भावों को शब्द बद्ध करने का यथा सामर्थ्य प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक अध्याय में विवेच्य विषय के विश्लेषण से पूर्व दोनों कवियों के विषय सम्बन्धी उपलब्धि या योगदान के स्तर को आंकने के लिए आवश्यक सरणि के निर्धारण हेतु पौरस्त्य तथा पाश्चात्य आचार्यों के तथाकथित विचारों को आधार रूप में प्रस्तुत किया गया है। विषय-वैविध्य एवं विस्तृति तथा शिल्प-विधान में कल्पना एवं अनुभूति के योग से अनेकानेक आकर्षक प्रयोगों के कारण दोनों कवियों का काव्य हिन्दी साहित्य में अजर- अमर हो गया। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में प्रसाद और निराला का प्रयोग तथा प्रदेय आलोचना का नहीं वरन् आदर्श का विषय है।

प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प का तुलनात्मक विवेचन करना अत्यंत गुरु गंभीर कार्य है, जिसके मूल में प्रसाद और निराला के काव्य के प्रति मेरी रुचि ही प्रमुख है। प्रसाद की " बीती विभावरी जागरी " तथा निराला की " जुही की कली " का भावात्मक तथा कलात्मक रूप ही मेरे अन्तस को इस जटिल कार्य की ओर खींच लाया। समय और परिस्थितियों की विषमताओं के मध्य अनवरत प्रयत्नशील रहने के फलस्वरूप यह कार्य अब संपूर्ण हो सका है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में दोनों कवियों के शिल्प-विन्यास पर निर्भ्रान्त निर्णय व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि काव्य के निकष की वैयक्तिकता से संकुल अनेक विचार सरणियां होती हैं किन्तु मैंने समस्त शिल्प उपकरणों का मूल्यांकन अपनी चिंतनशक्ति को विस्तार देते हुए सर्वसम्मत से स्वीकृत साहित्यिक मानदण्ड की तात्विक भूमि पर किया है। फलस्वरूप, यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध-ग्रंथ में केवल दो महाकवियों की सर्जनात्मक शैली की तुलना ही नहीं, शीर्षयुग की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यंजना प्रणाली का समाकलन भी है। मूलत: यह शोध कार्य आलोच्य कवियों के काव्य में उपलब्ध शिल्प विषयक तथ्यों के अन्वेषण, मौलिक सर्वेक्षण तथा

कलापक्ष में उनके प्रदेय को लेकर ही संपन्न हुआ है ।

वक्तव्य को समाप्त करने से पूर्व उन समस्त सुहृदों एवं इष्टजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन अनिवार्य है जिनकी कृपा एवं सहयोग के अभाव में यह विशद कार्य संपूर्ण होना असंभव प्राय था ।

सर्वप्रथम वीत राग तपोनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ भगवान गुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु के चरणाम्बुजों में मेरा शतश: प्रणाम, जिनकी कृपा से यह शोध ग्रंथ पूर्ण हो सका । तत्पश्चात् तद्रूप श्री निर्मल महाराज जी के चरणों में कोटिश: प्रणाम । इस कार्य को प्रारंभ करने में पूज्य अम्मा ने जो सहयोग तथा प्रेरणा मुझे प्रदान की उसके प्रत्युत्तर में उस दिवंगत आत्मा के प्रति कुछ कहना उनके ममत्व एवं वात्सल्य को नगण्य सिद्ध करना होगा ।

शोध-विषय के प्रस्तुतीकरण में पथ प्रदर्शन तथा निरीक्षण के लिए मैं पूज्य डा० प्रेमकांत टण्डन की आभारी हूं । डा० साहब ने मेरी उन समस्त कठिनाइयों को जिसे मैं उनके सम्मुख लेकर उपस्थित होती थी सदैव सधैर्य दूर करने का प्रयत्न किया । शोध ग्रंथ को सुनियोजित रूप प्रदान करने में डा० साहब का विशेष सहयोग रहा है जिसके लिए उनके प्रति आभार प्रदर्शन करना गुरुत्व के प्रति अपमान होगा । उन्हें मेरा सादर प्रणाम ।

शोध कार्य को संपूर्ण करने में विभागीय सहायता के लिए हिंदी विभाग के वर्तमान अध्यक्ष डा० रघुवंश जी की आभारी हूं । शोध कार्य में पुस्तकादि की उपलब्धि तथा अन्य प्राप्त सहयोग के लिए डा० जगदीश प्रकाश, रीडर, वाणिज्य विभाग को सधन्यवाद सादर अभिवादन । अध्ययन एवं विवेचन की कठिनाइयों में मेरी बड़ी भाभी डा० प्रेम मोहिनी सिन्हा से मुझे जो सहयोग मिला उसके लिए मैं उनकी हृदय से अनुगृहीत हूं ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय, भारती भवन पुस्तकालय तथा पब्लिक लाइब्रेरी से प्राप्त उदारतापूर्ण सुविधा के लिए वहां के सहायकों की आभारी हूं ।

पूज्य श्री राजेश्वर प्रसाद जी श्रीवास्तव के प्रति आभार प्रदर्शन कर सकना मेरी क्षमता से परे है। उन्होंने अपने परिष्कृत विचारों द्वारा घर-गृहस्थी के विविध झंझटों के मध्य मुझे इस शोध कार्य को सुन्दर ढंग से शीघ्र समाप्त करने की हर संभव सुविधा प्रदान की तथा शोध कार्य के मध्य्य उपस्थित व्यवधान में मुझे विचलित होते देख आश्वस्त तथा संयत करने का जो कर्तव्य भार वहन किया, उसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूं। शोध ग्रंथ के पूर्णत्व में निहित उनकी प्रेरणा तथा सहयोग के लिए उन्हें मेरा प्रणाम।

शोध-प्रबन्ध का टंकण सुरुचिपूर्ण तथा कलात्मक ढंग से हो सका इसका श्रेय श्री ईश्वर शरण जी को है। उन्होंने शोध-सामग्री को ग्रंथ रूप प्रदान किया इसके लिए उन्हें धन्यवाद। श्री राजकुमार, श्रीमती प्रेम तथा श्रीमती कुसुम जी को सादर अभिवादन जिनके सहयोग से शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

१८अप्रैल १९७९

ऊषा श्रीवास्तव

विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

(३) खण्डकाव्य :

(क) स्वरूप एवं परिभाषा

(ख) शिल्पगत विवेचन

(४) महाकाव्य :

(क) स्वरूप एवं परिभाषा

(ख) शिल्पगत विवेचन

(५) तुलनात्मक निष्कर्ष

काव्य-भाषा

(क) स्वरूप और प्रकृति

(ख) प्रसाद और निराला की काव्य-भाषा :

१- स्वरूप : (क) शब्द भण्डार

(ख) व्याकरण

२- सौष्ठव : (क) नाद-संगीत

(ख) अनुप्रासगत आवृत्तियाँ

(ग) ध्वनि, चित्र

(घ) लय-संगीत

(ङ) चित्रमयता

३- अर्थव्यंजना : (क) शब्द शक्तियाँ

(ख) प्रतीकात्मकता

(ग) गुण, रीति और वृत्ति

(घ) मुहावरे और लोकोक्तियाँ

४- तुलनात्मक निष्कर्ष

० ० ०

अध्याय - १

(क) काव्य-शिल्प : अर्थ और स्वरूप विश्लेषण

(ख) काव्य-शिल्प के स्वरूप विधायक तत्व

काव्य - शिल्प

अर्थ और स्वरूप विश्लेषण :

हिन्दी में काव्य-शिल्प जैसे अनेक शब्दों का प्रचलन है, यथा - काव्य-विधान, काव्य -शैली, काव्य-रीति, काव्य-कला आदि । ये सभी शब्द सामान्यरूप में भले ही पर्यायवाची प्रतीत हों किन्तु अपने विशिष्ट अर्थ में ये एक दूसरे से कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रखते हैं । जहाँ तक मुख्य शब्द काव्य के अर्थ का प्रश्न है वह सभी सर्वस्पर्शी शब्दों के साथ कवि कृत शब्दों का लयपूर्ण प्रवाह " ही है ।

पूर्व और पश्चिम के वाङ्मय में काव्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के दृष्टिकोण मिलते हैं जिन्हें कोई एक सर्वमान्य रूप नहीं दिया जा सकता । काव्य-चिन्तकों और साहित्यकारों ने अपनी-अपनी विशिष्ट दृष्टि से काव्य को देखा है । उनके दृष्टि भेद के कारण काव्य की परिभाषा भी भिन्न भिन्न रूपों में सामने आती है ।

अग्निपुराण में कवि को स्रष्टा एवं प्रजापति तथा कवि-कर्म को एक संश्लिष्ट, समग्र-अखण्ड कवि व्यापार घोषित किया गया है[1] । अतएव कवि के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो, वही काव्य है[2]। अभिनवगुप्ताचार्य ने भी कवि-कर्म को काव्य व्यापार कहकर इसी आशय की पुष्टि की है ।[3] वस्तुतः कवि का यह कर्म उसके द्रवीभूत हृदय के मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति का प्रतिफलन कहा जा सकता है जैसा कि आनन्दवर्धन ने लिखा है कि क्रौंच-युगल के वियोग से द्रवित आदि कवि वाल्मीकि के हृदय में आविर्भूत शोक श्लोक रूपांत

१- "अपारे काव्य संसारे कविरेक प्रजापतिः" - अग्निपुराण ।

२- "कवेरिदं कार्यं भावो वा" - मेदिनीकोश ।

३- "कवनीयं काव्यं" ध्वन्यालोक लोचन ।

काव्य के रूप में प्रकट हुआ।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कविता कवि के मार्मिक क्षणों की भाव-सबल अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि संस्कृत काव्य की अनेक आचार्यों द्वारा विविध परिभाषाएं निश्चित की गई।

आचार्य मम्मट ने निर्दोष, सगुण तथा कभी-कभी अनलंकृत शब्द और अर्थपूर्ण रचना को काव्य माना है।[2]

आचार्य विश्वनाथ ने रसयुक्त वाक्य को ही काव्य कहा है।[3]

पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है,[4] ऐसा कहकर आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा को और व्यापक बना दिया।

अतः संस्कृत आचार्यों ने काव्य की जो परिभाषा निश्चित की है उसकी भूमिका में यह कहा जा सकता है कि मर्मस्पर्शी, रसयुक्त, निर्दोष, सगुण, रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्दार्थ ही काव्य है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी काव्य के स्वरूप की विवेचना करते हुए उसके चार प्रमुख तत्वों - (१) कल्पना, (२) शैली, (३) भाव तथा (४) बुद्धि का निर्देश किया है। कुछ विद्वानों ने इन तत्वों में से किसी एक ही तत्व को महत्व दिया है और कुछ ने समन्वयात्मक पद्धति अपनायी।

शेक्सपियर के अनुसार कवि की कल्पना अज्ञात वस्तुओं को रूप प्रदान करती है, कवि की लेखनी उनको आकार देती है तथा वायवीय एवं अस्तित्व-शून्य पदार्थों को नाम तथा ग्राम प्रदान करती है।[5] इस प्रकार

१- क्रौंचद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः। हिन्दी ध्वन्यालोक १।५।।

२- "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि"। काव्य प्रकाश ।।१।१।।

३- "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"। साहित्यदर्पण ।१।३।

४- "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"। रस गंगाधर ।१।१।

५- As imagination bodies forth the form of things unknown the poet's pen turns them to shapes and gives to airy nothing a local habitation and a name.

शेक्सपियर ने अपने कथन में कल्पना-तत्व को प्रधानता दी है। उनका विश्वास है कि प्रतिभा सम्पन्न कवि अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा ऐसे सुन्दर अनुभूति जात का निर्माण करता है जो कल्पनात्मक होकर भी सत्य प्रतीत होता है। कल्पना शब्द अंग्रेजी के "इमैज" से सम्बद्ध है जिसका अर्थ है मूर्ति-विधान करना।[1] अतएव कल्पना द्वारा कलाकार या कवि अप्रत्यक्ष एवं अमूर्त वस्तुओं को मानस-चक्षुओं के समक्ष प्रत्यक्ष या मूर्त करता है।

वर्ड्सवर्थ के विचार से काव्य में भावतत्व की प्रधानता होनी चाहिए। भावतत्व को संस्कृत के रसवादी आचार्य अभिनव गुप्त आदि ने भी काव्य का मूल तत्व स्वीकार किया है। रस का सम्बन्ध भाव से है। वर्ड्सवर्थ के विचार में कविता प्रबल भावनाओं का सहज उच्छलन है, इसका उदय शान्ति के समय स्मरण किये हुए भावों से होता है।[2]

कॉलरिज ने भाव के साथ बुद्धि पक्ष के समन्वय पर बल दिया है। उनका कथन है कि कविता सौन्दर्य के माध्यम से तात्कालिक आनन्दोद्रेक के लिये भावों को उद्वेलित करती है।[3] वह काव्य को एक विशिष्ट रचना मानता है जो "उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम विधान है।[4]

मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य के शैली तत्व पर विशेष बल देते हुए कहा कि कविता जीवन की आलोचना है।[5]

डॉ० जान्सन ने काव्य की परिभाषा समन्वयात्मक ढंग से प्रस्तुत की है। इन्होंने काव्य में भाव, कल्पना, शैली तथा बुद्धि तत्व के महत्व

---

1. The Poetic Image, C.Day Lewis, Vol.VIII p. 19 .

2. Poetry is the spontaneous overflow of powerful the feelings. It takes its origin from emotions recollected in tranquillity.
   Preface to the Lyrical Ballads. William Wordsworth.

3. It is the excitement of emotion for the purpose of immediate pleasure, through the medium of beauty.
   Biographia Literaria(1817) S.T. Coleridge.

4. Poetry is the best words in their best order. - Ibid.

को समान रूप से स्वीकार किया है और इन चारों तत्वों को काव्य विधान के लिए अनिवार्य माना है। जानसन के अनुसार काव्य सत्य तथा आनन्द के मिश्रण की वह कला है जिसमें कल्पना को बुद्धि की सहायता के लिए प्रयुक्त किया जाता है।[1]

कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को सुमधुर शब्दों में व्यक्त करने की कला ही काव्य है।[2] काव्य की यह परिभाषा सर्वांगीण है इसमें काव्य के प्रमुख तत्वों को महत्त्व दिया गया है।

आधुनिक हिन्दी कवियों ने परम्परा-प्राप्त काव्य सिद्धान्तों को यथावत्-ग्रहण करके ही सन्तोष नहीं किया अपितु अपने युग और समकालीन काव्य की नवीन प्रवृत्तियों के अनुरूप नवीन काव्य-सिद्धान्तों की रचना करते हुए काव्य की नयी परिभाषाएं भी प्रस्तुत की। उन्होंने काव्य को सर्वथा अभिनव रूप में व्याख्यायित किया। काव्य के लक्षण पर विचार करते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता का रूप निर्धारित करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द- विधान करती आई है उसे कविता कहते है।[4]

जयशंकर प्रसाद के अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक

---

1. Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason.

   Lives of English Poets. Dr. Johnson.

2. Poetry is the art of expressing in melodious words thoughts which are the creations of imagination and feelings.

   Chamber's Dictionary.

३. रसज्ञ रंजन, पृ० ६२।

४. चिन्तामणि, भाग १, पृ० १६२-६३।

श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है ।[१] वह संकल्पात्मक अनुभूति आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था है जो श्रेय सत्य को उसके मूलचारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है । काव्य में संकल्पात्मक-मूल अनुभूति कही जा सकती है ।[२] इस प्रकार प्रसाद जी ने स्पष्ट रूप से उद्घोषित कर दिया कि "काव्य आत्मानुभूति की मौलिक अभिव्यक्ति है ।"

कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने "भावना, ज्ञान और कर्म का एक सम पर मिलना"[३] ही काव्य का स्वरूप माना है ।

काव्य सम्बन्धी उपर्युक्त समस्त मान्यताओं के आधार पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वास्तव में कविता वही है जो कवि की भावनाओं को उसी रूप में दूसरे के हृदय में चित्रित कर दे जिस रूप में वह कवि के हृदय में उद्बुद्ध हुई है । इन समस्त भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य चिन्तकों एवं समीक्षकों ने काव्य के दो रूपों की परिकल्पना की है। एक, उसका आन्तरिक रूप (अनुभूति) और दूसरा, बाह्य रूप (अभिव्यक्ति) । यद्यपि इन आचार्यों ने काव्य के स्वरूप और उसकी प्रक्रिया पर अपने विचार व्यक्त करते समय अनुभूति और अभिव्यक्ति की अभिन्नता को ही महत्व दिया है ।

कालिदास ने वागर्थ-सम्पृक्ति का जो उदात्त रूप प्रस्तुत किया है वह काव्य में शब्द (रूप) और अर्थ (भाव) की अनन्यता को समझने के लिए पर्याप्त है । वास्तव में साहित्य का वह रूप जिसमें शब्द और भाव अनन्य रूप से सम्पृक्त रहते हैं, काव्य कहलाता है । इस प्रकार काव्य के बाह्य एवं आन्तरिक रूप अलग-अलग प्रतिभासित होते हुए भी एक ही हैं । इन दो रूपों की स्थिति अद्वैत भाव की स्थिति कही जा सकती है । तुलसीदास ने भी "गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न"[५] कहकर वाणी (अभिव्यक्ति) और उसके अर्थ (भाव) की अभिन्नता का समर्थन किया है जो जल और जल की

१- काव्य, कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १७ ।
२- वही, पृ० १८ ।
३- श्रीमती महादेवी वर्मा, "पथ के साथी", पृ० ८ ।
४- वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये । जगत: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।

लहर के समान देखने में भिन्न प्रतीत होते हुए भी वास्तव में एक है ।

पाश्चात्य विद्वान क्रोचे की यह परिभाषा कि अनुभूति की अभिव्यक्ति है । अनुभूति और अभिव्यक्ति की अभिन्नता को सिद्ध करती है । अभिव्यक्ति एक अखंड प्रक्रिया है, वह भाव तथा अभिव्यक्ति की दो तत्वों में विभाजित न होकर भावाभिव्यंजना का समन्वित रूप है । यह बात और है कि विवेचन की सुविधा के लिए शिल्प-पक्ष को अलग कर लिया जाता है किन्तु रचना प्रक्रिया के ये दोनों अंग केवल व्यावहारिक विवेचन की दृष्टि से ही पृथक माने या कहे जा सकते हैं - तत्वत: इनकी स्थिति पृथक नहीं है । वास्तव में काव्यवस्तु के रमणीय तत्वों का उद्घाटन शब्द-अर्थ के रमणीय सम्बन्धों के उद्घाटन द्वारा ही संभव होता है और शब्द-अर्थ में रमणीय संदर्भों का समावेश वस्तु के रमणीय तत्वों के सम्पर्क से ही होता है । तत्व दृष्टि से वस्तु की रमणीयता और कथन की रमणीयता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, किन्तु व्याख्यान विवेचन के लिए उन्हें पृथक मान लिया जाता है । कुंतक का कथन प्रमाण है -

अलंकृति रलंकार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते
तदुपायतया, तत्वं सालंकारस्य काव्यता ।[1]

कविता अनुभूति और अभिव्यक्ति का समन्वित रूप है । कवि अपनी अनुभूति के लिए जिन मूर्त उपकरणों का प्रयोग करता है वह काव्य के शिल्प-पक्ष से सम्बद्ध है । इन उपकरणों के विशिष्ट संयोजन या अनुभूति के मूर्तीकरण को शिल्प-विधान कहते हैं । शिल्प का सम्बन्ध सामान्यत: काव्य के रूप-पक्ष या बहिरंग से है जो कवि की अनुभूति को आकार प्रदान करने का सहज माध्यम कहा जाता है ।

युग-युगान्तर से कवि अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए किसी न किसी प्रकाशन प्रणाली का आश्रय लेता रहा है । यह प्रकाशन जिस सुरुचिपूर्ण ढंग से किया जाता रहा है उसे ही शिल्प कहा गया । अत: शिल्प शब्द उतना ही पुरातन है जितना कि काव्य । कृति के निर्माण में जिन उपादानों

का आश्रय और सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए लिया जाता है उन्हें ही शिल्प-कला के अंतर्गत रखते हैं ।

अधुनातन शब्दावली में शिल्प-विधि का बोध अंग्रेजी के "टैकनीक" शब्द से किया जाता है "टैकनीक" का सामान्य अर्थ है विधि, तरीका, ढंग या माध्यम किंतु काव्य के संदर्भ में शिल्प का अर्थ है भावाभिव्यक्ति का ढंग, माध्यम एवं प्रयास , जो हृदयगत अमूर्त भावों को मूर्त बनाने में सहायक होता है ।

भारतीय भाषाओं में कला और शिल्प शब्द पहले एक ही अर्थ के लिए व्यवहृत होते थे किन्तु आज शिल्प का क्षेत्र सीमित हो गया है और कला का व्यापक, क्योंकि कला अपने अन्दर कवि के सम्पूर्ण कृतित्व को समेट लेती है और शिल्प उस कृतित्व को साकार करने का एक कौशल मात्र रह गया है ।

काव्य के शिल्प से साधारणतया जो अर्थ ग्रहण किया जाता है वह काव्य को आकार देनेवाले विशिष्ट तत्वों का विशेष ढंग से संगुम्फन मात्र है । ये विशिष्ट तत्व कवि की अनुभूति को मूर्त रूप देकर उन्हें काव्य-रूप प्रदान करने में विशेष सहायक होते हैं । इनके अभाव में काव्य रूप का अस्तित्व संदिग्ध है ।

काव्य में अनुभूति की प्रधानता होती है। उस अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए कवि के आन्तरिक सौन्दर्य-बोध को मूर्त रूप देने के प्रयत्न को ही शिल्प कहते हैं । काव्य-शिल्प कवि के द्वारा किये गये प्रयत्नों का वह साकार रूप है जिसमें कवि अपनी सम्पूर्ण अन्तर - साधना को समेट कर बाह्य रूप देने के लिए काव्य के सौन्दर्य प्रसाधनों में केन्द्रीभूत कर देता है ।

प्रत्येक युग की शिल्प-विधि आवश्यकतानुसार बदलती रहती है । युग-चेतना के अनुरूप ही शिल्प का विधान होता है, यदि द्विवेदीयुग में गीति-काव्य का प्रचलन रहा तो छायावाद युग में कथा काव्य का और उसके बाद अनेक युग अपने नाम रूप और गुण को लेकर चल रहे हैं । किंतु शिल्प की सत्ता प्रत्येक परिस्थिति में बनी रही, उसका रूप भले ही बदलता रहा । शिल्प दृश्य और अदृश्य, अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच की वह शृंखला है जिसके बिना

किसी भावना को स्थापित नहीं किया जा सकता ।

काव्य-शिल्प व्यक्तित्व निरपेक्ष नहीं हुआ करता बल्कि कवि व्यक्तित्व का सजग प्रयत्न होता है । काव्य-शिल्प की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि वह कवि के उत्कर्ष एवं अपकर्ष-विधायक तत्वों को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित कर देता है । यदि कृति के सौन्दर्य में कहीं कुछ दोष आता है तो वह तत्काल यह संकेत कर देता है, कवि के प्रयत्न में ही कहीं त्रुटि है । शिल्प वह तत्व है जो काव्य के गुण एवं दोष को नीर-क्षीर के सदृश सामने ला देता है और तब कवि अपने कृतित्व को दोषमुक्त कर आकर्षक एवं शक्ति-संवर्द्धक बनाने का पूर्ण एवं सफल प्रयत्न करता है, क्योंकि काव्य कवि-कर्म का मूर्तरूप है ।

काव्य-शिल्प के स्वरूप विधायक तत्व

(१) काव्य-रूप

काव्य-रूप अंग्रेजी शब्द फॉर्म (Form) का हिन्दी पर्याय है । सामान्य अर्थ में रूप से किसी वस्तु के दृष्टिगत आकार का ही बोध होता है । रूप के विषय में अरस्तू की यह धारणा मान्य है कि रूप किसी वस्तु के अस्तित्व का वह आभ्यन्तर कारण है जिसके द्वारा उस वस्तु के उपादान (मैटेरियल) को आकार प्राप्त होता है (मैटाफिजिक्स) । इस सिद्धान्त के अनुसार कलाकृति में भी रूप का तात्पर्य उन समस्त तत्वों से समन्वित, संघटित आकार से है, जिससे उस कृति के विशिष्ट गुणों का निश्चय होता है ।[१] इस धारणा के आधार पर यह कहा जा सकता है काव्य-रूप कवि के भावाभिव्यक्ति का मूर्तरूप है जिसमें उसकी सर्जनात्मक प्रक्रिया का आभास होता है । कवि जब अपने विशिष्ट सौन्दर्यानुभूतिजन्य मानस बिम्बों को रंग रेखा शब्दादि के द्वारा मूर्तरूप देने का प्रयास करता है तभी उसका आविर्भाव होता है । इस बाह्य प्रक्रिया

१- हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ६२१ ।

में कवि का सम्पूर्ण अभिव्यंजना -शिल्प अन्तर्मुक्त रहता है ।[1] काव्यरूप, काव्य-शिल्प का सर्वाधिक व्यापक एवं महत्वपूर्ण अंग है । इसके अन्तर्गत समस्त काव्य-विषय तथा रचयिता का व्यक्तित्व भी समाहित हो जाता है । आज काव्य रूप या काव्य विधा का प्रयोग अधिकतर काव्य के बाह्य उपकरणों के लिए ही होता है किन्तु व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गंभीर व्याख्या इस विशिष्ट अंग के अन्तर्गत आती है । काव्य-शिल्प के सभी अन्य उपकरण काव्य रूप के अनुकूल साहित्य में समाविष्ट होते हैं ।

(२) भाषा :

भाषा काव्य-शिल्प का सर्वप्रमुख तत्व है । मानव के अभिव्यक्ति प्रकाशन का एक मात्र साधन भाषा है । भाषा के माध्यम से मानव अपने विचारों, भावावेगों तथा इच्छाओं को सम्प्रेषित करता है । काव्य-भाषा का अपना अलग वैशिष्ट्य है, क्योंकि सामान्यत: भावों की अभिव्यक्ति कण्ठोच्चारित साधारण शब्दों से भी हो जाया करती है, जिसे बोलचाल की भाषा या साहित्य में गद्यभाषा की संज्ञा दी जाती है किन्तु काव्य-भाषा भावपूर्ण शब्दों की रागात्मक अभिव्यक्ति है जो कविकण्ठ से स्वत: स्फुरित होकर लयात्मक रूप में सम्मुख आती है । काव्य-भाषा का स्वरूप शब्द कोश एवं व्याकरण पर निर्भर करता है और उसके स्वरूप की साज-सज्जा शब्द मैत्री तथा अर्थ-व्यंजना से होती है ।

काव्य भाषा के लिए कुन्तक ने अन्यूनानतिरिक्त शोभा-शाली शब्दार्थ की मनोहारिणी अवस्थिति[2] का होना आवश्यक माना है ।

पंत के काव्य-भाषा सम्बन्धी विचार भी अपना महत्व रखते हैं । पंत के अनुसार " भाषा का, और मुख्यत: कविता की भाषा का, प्राण राग है । राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता

१- डा० प्रतिभा कृष्णबल : छायावाद का काव्य-शिल्प , पृ० १८ ।

२- साहित्यमनयो: शोभाशालितां प्रति काव्यसौ ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्य वस्थिति ।।
हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् ।। १।१७ ।।

कोमलता, प्रचंडता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता आदि की भावना जगाते हैं।[1] अप्रस्तुत योजना रूपसाम्य, धर्मसाम्य प्रभाव साम्य पर निर्भर करती है। प्राय: अप्रस्तुत योजना साम्य के विपरीत वैषम्यमूलक भी हुआ करती है।

रूप साम्य : यह अप्रस्तुत योजना प्रस्तुत के स्वरूपोद्घाटन एवं श्रीवृद्धि के निमित्त की जाती है। इसका मुख्य आधार साम्य एवं सादृश्य है। धर्मसाम्य : यह अप्रस्तुत योजना प्रस्तुत के गुण अथवा धर्म को प्रकाश में लाती है इसका उद्देश्य धर्म का साम्य होना है। काव्य में यह नितान्त आवश्यक नहीं कि रूप साम्य के लिए आकार-प्रकार में सम्पूर्ण समानता हो अथवा धर्मसाम्य के लिए गुण की पूरी समानता दोनों पदार्थों में समान रूप से ही विद्यमान रहें। सादृश्य बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप और साधर्म्य वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म दोनों ही काव्य में भाव के प्रसार के लिए सूत्र का काम करते हैं। यदि भाव का प्रसार सादृश्य या साधर्म्य के संकेत मात्र से हो जाय तो फिर उसके पूरे आरोप की आवश्यकता नहीं।[2] प्रभाव साम्य: आधुनिक काव्य में प्रभाव साम्य पर विशेष बल दिया गया है। यहाँ पर रूप साम्य और धर्मसाम्य को गौण स्थान दिया गया है क्योंकि हृदय पर पड़े तज्जन्य प्रभाव को काव्य में निरूपित करके रस प्रतीति को सरल बनाया गया है। प्रभाव साम्य में प्रस्तुत अप्रस्तुत मिलकर एक रूप हो जाते हैं। वैषम्यमूलक अप्रस्तुत योजना का कार्य काव्य में रूप, रंग, जाति, गुण, द्रव्य, क्रिया, शक्ति एवं स्वभाव के विरोध द्वारा प्रभाव को तीव्र बनाना है। हिन्दी साहित्य के काव्य जगत में कवि अपने भावाभिव्यक्ति को प्रस्तुत रूप में न स्पष्ट करके अप्रस्तुत रूप में ही करते हैं। इससे काव्य के अभिव्यंजनाशिल्प में सौन्दर्य वृद्धि होती है और इस कारण यह काव्य का अनिवार्य तत्व सिद्ध होता है।

(ख) बिम्ब-विधान - भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब शब्द का चमत्कार अनेक स्थलों पर मिलता है किन्तु आधुनिक हिन्दी काव्य में बिम्ब शब्द अंग्रेजी के इमेज (*Image*) शब्द के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। इमेज का अर्थ प्राय:

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० सं० ११वाँ पृ० ६१७।

२- लक्ष्मीनारायण सुधांशु : काव्य में अभिव्यंजनावाद, पृ० ६७।

चित्रकल्प, प्रतिच्छायित रूप, प्रतिबिम्बित रूप, मूर्त रूप आदि लिया जाता है। इन अर्थों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिम्ब हृदय में स्थित अरूप भावों को वस्तु जगत में मूर्त रूप प्रदान करते हैं। बिम्ब एक प्रकार का चित्र है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध हो जाता है।[१] भारतीय एवं पाश्चात्य वाङ्मय में बिम्ब को अभिव्यंजना शिल्प का प्रमुख प्रसाधन मानते हैं। बिम्ब व्याख्यार्थ को स्पष्ट करने के साथ-साथ उसके सौन्दर्य वृद्धि में सहायक होते हैं। इस प्रकार समस्त काव्य मानव तथा प्रकृति का बिम्ब है।[२]

(ग) **वक्रताएँ** - उक्ति की वक्रता अभिव्यंजना शक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न करके काव्य में सौन्दर्य की सृष्टि करती है। काव्य में वक्रता को प्रधानता देते हुए आचार्य कुन्तक ने कहा कि प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। यह कैसी है? वैदग्ध्यपूर्ण शैली द्वारा उक्ति की वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य का अर्थ है विदग्धता, कविकर्म कौशल, उसकी भंगिमा या शोभा उसके द्वारा उस पर आश्रित उक्ति। विचित्र अभिधा का नाम ही वक्रोक्ति है।[३] अर्थात् शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता -विच्छित्ति छाया और कान्ति का सृजन करती है।[४] कुन्तक के वक्तव्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधारण कथन से भिन्न एक विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। डा० नगेन्द्र ने भी कुन्तक की उक्ति की वक्रता को कवि कौशल और काव्य सौन्दर्य के लिए आवश्यक बताया है। अतएव अभिधात्मक वक्तव्य से भिन्न वक्रतापूर्ण कथन काव्य सृष्टि का उपादान तत्व है।

(घ) **छन्द** - मात्रा, वर्ण, यति-गति तथा लयतापूर्ण बन्ध से नियोजित

१- डा० नगेन्द्र : काव्य बिम्ब, पृ० ५।

२- Poetry is the image of man and nature : Wordsworth : English Critical Essay , p. 14.

३- वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। की दृशी, वैदग्ध्य भंगीभणितिः। वैदग्ध्यं विदग्ध भावः कविकर्मकौशलं, तस्य भंगी विच्छित्तिः तथा भणितिः। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते।
कुन्तक: वक्रोक्तिजीवितम् , प्रथमोन्मेष, कारिका १०, भाष्य

पद्य रचना को छन्द कहते हैं। इससे कविता का छन्द के साथ बंधे होने की बात स्पष्ट हो जाती है। कविता में शब्द योजना स्वतंत्र रूप से नहीं होती क्योंकि छन्द-बन्धन का पद लगा रहता है। कविता तथा छन्द एक दूसरे से गुंथे रहते हैं इस तथ्य को पंत जी की इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है - "कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।"[1] इसी कारण छन्द काव्य शिल्प का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। कविता में उत्कृष्ट मानवीय भावों को रागात्मक रूप में छन्दोबद्ध भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। काव्य 'रागात्मक अनुभूति' है और इस रागात्मक अनुभूति का समावेश काव्य में लयात्मक छन्द के माध्यम से संभव होता है।

काव्य-शिल्प का खराद पर चढ़ाए हुए निखरे-हीरे के सदृश है जो अपनी जगमगाहट से करोड़ों नेत्रों को चकाचौंध कर देता है। कवि अपने मानसिक चित्रों और हृदयगत भावनाओं को उक्ति की वक्रता के साथ अप्रस्तुत योजना का सहारा लेकर किसी बिम्ब के माध्यम से शब्दों और छन्दों में बांधकर हृदयस्पर्शी लयात्मक भाषा में उपस्थित कर उसे काव्य का रूप देता है। यहीं पर काव्य शिल्पी कवि के चातुर्य-पूर्ण कौशल का परिचय भी प्राप्त होता है।

१- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव की भूमिका

अध्याय - २

प्रसाद का और निराला का युग

(अ) राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ .

(आ) काव्यगत प्रवृत्तियाँ

प्रसाद और निराला का युग

(क) राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ -

महाकवि काव्य के सृजन में युगीन भावों विचारों एवं संवेदनाओं से प्रभावित होता हुआ शाश्वत तत्वों को ऐसे कलात्मक ढंग से चित्रित करता है जिसमें हृदयस्पर्शी शक्ति आ जाती है। ऐसा साहित्य मात्र मनोरंजन का साधन नहीं होता वरन् वह जीवन के लिए आदर्श भी प्रस्तुत करता है। साहित्य की रचना किसी एक युग विशेष में ही होती है, किन्तु उसकी सर्जनात्मक शक्ति उसे युग युगान्तर का बना देती है। काव्यानुशीलन के समय कवि व्यक्तित्व एवं तद्युगीन परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जा सकता है। कवि की रचना को युग जीवन के परिपार्श्व में देखना साहित्यिक मूल्यों को संबल प्रदान करना है। यह निश्चित है कि जीवन्त साहित्य अपने युग की प्रबुद्ध चेतना के परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का निर्माण करता है। युग की सांस्कृतिक चेतना ही कवि को नवीन मूल्यों के सृजन के लिए प्रेरित करती है। काव्य का प्रशान्त सृजन क्षण जीवन के स्थूल व्यापारों या घटनाओं के स्थूल आयामों की अपेक्षा उनकी मूल सत्ता में व्याप्त सूक्ष्म चेतना से अधिक प्रभावित होता है, क्योंकि काव्य घटनाओं या व्यापारों का प्रभाव मात्र नहीं है। कवि सामाजिक जीवन से प्रभावित होता है, प्रभाव के साथ ही वह उन तत्वों को अपने समग्र व्यक्तित्व का अंग बनाता है, अपनी उद्भावना शक्ति के माध्यम से अपनी अनुभूति को रूप प्रदान करता है। तात्पर्य यह है कि वह विभिन्न व्यापारों एवं विभिन्न प्रभावों को एक सम्पूर्ण इकाई में ग्रहण कर उन्हें कलात्मक सौष्ठव की भूमि पर प्रतिष्ठित करता है।[१]

युग चेता कवि जहाँ अपने काव्य में समसामयिक परिस्थिति तथा राष्ट्र की प्रबुद्ध चिंतनधारा को स्थान देते हैं वहाँ युग के सामाजिक जीवन को भी बड़ी तन्मयता के साथ व्यक्त करते हैं। साहित्य जीवन की विविध

१- डा० राजेन्द्र मिश्र : आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ० ७५-७६।

प्रकार की प्रवृत्तियों का सुनियोजित और भावावेष्ठित प्रतिफलन है । साहित्यिक सर्जना की मूल प्रवृत्ति युग परिस्थिति, ऐतिहासिक परम्परा, कर्ता के दृष्टिकोण तथा दायित्व आदि से प्रभावित होती है और इन प्रभावों में देशकाल, सभ्यता एवं संस्कृति के समस्त उपादानों का योग रहता है । वस्तुत: जीवन पर व्यापक प्रभाव डालनेवाले अनेक तत्त्व साहित्य-सर्जना का भी नियमन करते हैं जीवन और साहित्य की यह घनिष्ठ परम्परा युगों से चली आ रही है । -------- संवेदनशील साहित्य स्रष्टा अपने युग की महत्वपूर्ण स्थितियों का आकलन करता है तथा वह उसकी विशेष सनातनताओं की ओर भी संकेत करता है ।[१] इस दृष्टि से यदि हिन्दी के दो पुरोधा कवि जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी " निराला " के कलात्मक सौन्दर्य पर दृष्टिपात करते हैं तो विदित होता है कि दोनों कवियों का मन एवं मस्तिष्क ऐसे काव्य का निर्माण करने को आकुल हो उठा था जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक बेड़ियों से मुक्त हो स्वच्छंद भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो सके । नव जाग्रत राष्ट्र में व्याप्त नवचेतना को जन-मानस में प्रसारित करने के लिए इन दोनों मेधावी कवियों ने रूढ़-काव्य प्रणाली को उखाड़कर स्वतंत्र अभिव्यक्ति प्रणाली का निर्माण किया । अत: कवियों का कला युक्त रूढ़िवादिता एवं मृतप्राय संकीर्ण विचारों की गली से निकलकर स्वनिर्मित स्वच्छंद पथों पर विचरण करने लगा । इन क्रांत-दृष्टा कवियों ने समाज की विद्रूपताओं, कटुताओं और कुत्सित भावनाओं को पास से देखा- परखा और वर्तमान को अतीत के माध्यम से चित्रित कर जनमानस को वर्तमान के सत्य से अवगत कराया । निराला ने तो कहीं-कहीं समाज की कटुता एवं निष्ठुरता को व्यंग्यात्मक ढंग से उभारा भी है । वास्तव में " निराला " का जीवन " प्रसाद " की तुलना में अधिक संघर्षपूर्ण रहा इसीलिए उनके काव्य में समाज की विषमता अधिक मुखर हो उठी है । किन्तु जीवन सम्बन्धी विकृत दृष्टिकोण के स्थान पर वैयक्तिक स्वातंत्र्यवादी दृष्टिकोण, परम्परागत जड़ काव्य-तत्वों के स्थान पर नवीन सौन्दर्य बोध, स्थिर मान्यताओं के स्थान पर गतिशील मान्यताओं तथा युग-परिवर्तन के तत्कालिक

१- डा० प्रेमशंकर : काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ , आलोचना २५ काव्यालोचना विशेषांक , पृ० २६६ ।

उच्छृंखल प्रतिमानों के स्थान पर हृदयस्पर्शी भावों की प्रशस्त भूमिका की स्थापना के लिए दोनों कवि समान रूप से सचेष्ट रहे हैं । ये दोनों ही युग द्रष्टा कवि थे । दोनों ही समाजवादी राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न थे । इसी से दोनों में जीवनानुभव की वास्तविकता, व्यापकता एवं गहराई है । सूक्ष्म आभ्यंतर भावों को व्यक्त करने में जो पदयोजना असफल हो रही थी उसके लिए नवीन शैली तथा वाक्य विन्यास की प्रतिष्ठापना में दोनों अपनी-अपनी दृष्टि से योगदान दे रहे थे तथापि अनेक स्थलों पर इनमें चिंतन की ही नहीं शिल्प विषयक भिन्नता भी लक्षित होती है, जिसका निरूपण प्रकरण विशेष में किया जायगा । दोनों कवियों के काव्य शिल्प में तारतम्य देखने से पूर्व उनके कृतित्व को संचालित करनेवाली तद्युगीन परिस्थितियों का विवेचन आवश्यक है । ये सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियाँ कवि के संपूर्ण कृतित्व को समझने में सहायक होती है । कवि की मान्यताओं, आदर्शों और जीवन मूल्यों में किसी न किसी रूप से युग चेतना का स्वर अवश्य रहता है चाहे कवि परंपरावादी हो, चाहे पुरातनता का विद्रोही । अतः उनको प्रभावित करनेवाली युग दशाओं पर एक दृष्टि डालना अनिवार्य है ।

"प्रसाद" और निराला का आविर्भाव जिस युग में हुआ वह राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का युग था । उस समय की प्रगति एवं नवीन चेतना के परिणामस्वरूप समीक्षकों ने उस युग को नव जागरण, सुधारवादी तथा पुनरुत्थान युग की संज्ञा दी । भारत में नवजागरण की भावना तभी से दिखाई पड़ती है जब से भारतीयों ने अंग्रेजों के शोषण और तत्कालीन रूढ़िवादिता के विरुद्ध आवाज उठाई । रीतिकालीन मुगल-दरबारों की विलासिता और ऐसी सामन्तशाही वातावरण का लाभ उठाकर अंग्रेज भारत के शासनाधिकारी बन बैठे थे और धीरे-धीरे देश ईस्ट इंडिया कम्पनी के आधीन हो गया था । कम्पनी ने देश में राजनीतिक शान्ति तो बड़ी कुशलता से स्थापित की किन्तु देशवासियों को आर्थिक संकट में डाल दिया । पहले तो भारतीयों ने अंग्रेजों को अपना हितैषी समझ कर उनका स्वागत किया किन्तु बाद में वस्तुस्थिति का भान होने पर उन्होंने विदेशी अत्याचारियों का जम कर विरोध किया । तात्या टोपे, महारानी लक्ष्मीबाई, अजीमुल्ला खां, राजा कुंवर सिंह, सरदार

भगत सिंह, चन्द्र शेखर आजाद आदि अमर शहीदों ने इस मोर्चे पर जान गवाँई। १८५७ का यह युद्ध राष्ट्रीय चेतना की जागृति का प्रथम चरण कहा जा सकता है। यद्यपि अंग्रेजों के क्रूर दमन-चक्र और कुछ विश्वासघाती भारतीय सामन्तों के उस ओर मिल जाने से स्वतन्त्रता प्राप्ति का यह प्रयास असफल रहा तथापि इस स्वतन्त्रता संग्राम से मदान्ध अंग्रेज अत्याचारी सजग अवश्य हो गए और इस बात को अच्छी तरह समझ गए कि भारतीयों पर शासन करना एक दुस्तर कार्य है। इसके लिए अब उन्होंने कूटनीति अपनाई। भारतीयों के समक्ष अंग्रेजी सभ्यता -संस्कृति, साहित्य और भाषा आदि को श्रेष्ठ तथा भारतीय भाषा-साहित्य और संस्कृति को हेय रूप देकर भारतीयों का मनोबल तोड़ने का उपक्रम किया। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीयों में यूरोपीय शिक्षा का प्रचार प्रारंभ कर दिया। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को सरकारी कार्यों में प्राथमिकता दी जाने लगी। यह अंग्रेजी भाषा अब व्यावहारिक रूप धारण करने लगी। इससे एक लाभ भी हुआ और वह यह कि ब्रिटिश सरकार द्वारा जिस नवीन शिक्षा का सूत्रपात किया गया था, उसमें ज्ञान-विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, उद्योग आदि की शिक्षा को भी स्थान दिया गया था जिससे भारत में बड़ी संख्या में ऐसे सुशिक्षित व्यक्ति क्रमशः तैयार हो गये थे, जो देश की भौतिक, वैज्ञानिक उन्नति व लोक-जागृति सम्बन्धी कार्यों के लिए समर्थ थे।[१] इसका परिणाम यह हुआ कि प्रबुद्ध एवं देश भक्त भारतीय स्वदेश के लुप्त गौरव की ओर आकृष्ट हुए। अंग्रेजी शिक्षा का जो अस्त्र अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए चलाया था, वह उलटकर उन्हीं के मर्म स्थान पर जा लगा। अंग्रेजों की दासता एवं पराधीनता में रहने के कारण भारतीय संस्कृति तथा धर्म का बहुत कुछ ह्रास भी हो चुका था किन्तु अंग्रेजी जीवन पद्धति के नग्न रूप को देखकर विश्व के स्वतन्त्र राष्ट्रों में सम्माननीय स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्षशील भारत जागरूक हो उठा और शिक्षित समाज ने यह निश्चय किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम सांस्कृतिक सुधार करना ही उचित रहेगा।

उपर्युक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिए अनेक ठोस कदम उठाए

१- सत्यकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ७४१-४२।

गए । सर्वप्रथम राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में सन् १८२८ ई० में ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई । "यूरोप के सम्पर्क से जैसे-जैसे भारत में नयी मानवता का जन्म हो रहा था वैसे ही हिन्दू धर्म भी नया रूप ले रहा था । ब्रह्म-समाज उसी अभिनव हिन्दुत्व का एक नया रूप था । इसने मूर्तिपूजा का बहिष्कार किया, अवतारों का खण्डन किया और लोगों का ध्यान उस निराकार, निर्विकार, एक ब्रह्म की ओर आकृष्ट किया जिसका निरूपण वेदान्त में हुआ है । किन्तु ब्रह्म-समाज की इससे भी बड़ी विशेषता यह थी कि वह सभी धर्मों के प्रति सहानुभूति-परक और उदार था ।"[१] इस संस्था के द्वारा किये गए सुधारों ने तत्कालीन समाज की विकृतियों के प्रति जनता में विद्रोह की भावना उत्पन्न की । ब्रह्म समाज ने अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भी उत्पन्न की । इसने धर्म और समाज के परिष्कार की भावना से शिक्षा पर विशेष बल देते हुए समाज में फैली अज्ञान एवं संकीर्णता को दूर करने का अटूट प्रयत्न किया । बाल-विवाह तथा सती-प्रथा का विरोध ~~का~~ इसके सामाजिक सुधार का प्रमुख स्वर था । सामाजिक दृष्टि से ही नहीं धार्मिक दृष्टि से भी ब्रह्म-समाज के कार्य महत्वपूर्ण रहे हैं । सब से महत्त्व की बात यह है कि राजा राममोहन राय ने जिस हिन्दू धर्म की स्थापना समाज में करनी चाही उसे विविध धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निर्मित किया था ।[२] ब्रह्म-समाज की स्थापना के पश्चात् कुछ समय के लिए अंग्रेजों के ईसाई धर्म का स्वर मंद पड़ गया था । "राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज आध्यात्मिक क्षेत्र में पश्चिम के सामने भारतीय महत्ता का उद्घोषक था।"[३] १८५७ में केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म-समाज में सम्मिलित होकर इसका नेतृत्व ग्रहण किया और तब इस सामाजिक संस्था में एक बार पुन: नवीन स्फूर्ति और उत्साह का संचार हुआ । केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म-समाज ने बहुत उन्नति की, किन्तु

१- दिनकर : भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४५१ ।

२- He was perhaps the first earnest minded investigator of the science of comparative religion that the world has produced, ...
Jawahar Lal Nehru - The Discovery of India, p.315.

३- डा० केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० ३७ ।

कुछ समय बाद देवेन्द्र नाथ टैगोर से मतभेद हो जाने के कारण इस संगठित संस्था के दो दल हो गए।एक आदि-ब्रह्म-समाज,दूसरा प्रगतिशील-ब्रह्म-समाज ।

धर्म और समाज सुधार का जो आन्दोलन राजा राममोहन राय ने शुरू किया और केशव चन्द्र सेन के नेतृत्व में पल्लवित हुआ उसी से प्रभावित होकर महाराष्ट्र में १८६७ ई० में एक नई संस्था " प्रार्थना समाज " की स्थापना हुई,जिसके प्रधान नेता जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे थे। भारतीय-संस्कृति के उत्थान की दिशा में यह दूसरा ठोस कदम था । महाराष्ट्र के लोग हिन्दू धर्म में अटूट विश्वास रखते थे और इस कारण से ब्रह्म-समाज की नवीन सुधारवादी नीति को देखते हुए वे उसके अनुयायी नहीं हो सके । समाज में सुधार करने के लिए इन लोगों ने " दलितोद्धार- मिशन " भी स्थापित किया । प्रार्थना-समाज" ने अछूतोद्धार, जाति-भेद-निवारण , अन्तर्जातीय-विवाह, विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा आदि पर विशेष बल दिया और अनेक अनाथालयों,विधवाश्रमों तथा स्त्रियों के लिए पाठशालाओं की स्थापना की । ये लोग हिन्दू-समाज में सुधार करना चाहते थे , हिंदू धर्म में नहीं । " हिंदू-धर्म के सिद्धांतों के विषय में किसी प्रकार का परिवर्तन करने व उनमें संशोधन करने की आवश्यकता "प्रार्थना-समाज " के सदस्यों को अनुभव नहीं होती थी । उनका ध्यान हिन्दुओं की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने पर ही केन्द्रित था ।"[१]

उन्नीसवीं शताब्दी में जिन विविध आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ उनमें १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित " आर्य समाज " का स्थान सब से अधिक महत्त्व का है । जागरूक भारतीय नागरिकों के द्वारा अपने पूर्वोक्त लक्ष्य की सिद्धि के लिए उठाया गया यह तीसरा ठोस कदम था और निःसंदेह अत्यन्त-शक्तिशाली था । उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द ने भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दृष्टि से समाज सुधार का गुरुतर कार्य उसी भाँति आरम्भ किया जिस भाँति बंगाल में राजा राममोहन राय ने

१- सत्यकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ७४५ ।

किया था । इस संस्था ने एक जाति, एक धर्म, एक संस्कृति की स्थापना पर विशेष बल दिया । आर्य समाज ने मूलवैदिक धर्म को महत्त्व देते हुए मूर्तिपूजा, विविध कर्मकाण्ड और विकारग्रस्त धर्म-विधानों का खण्डन किया । उसने जाति-भेद को समाज का एक विकृत रूप घोषित करते हुए ऊँच-नीच, छुआ-छूत के भेद-भाव को मिटाने का पूर्ण प्रयत्न किया । इस संस्था द्वारा यह भी घोषित किया गया कि हिन्दू-धर्म में वह पतित-पावनी शक्ति प्राचीन समय से ही विद्यमान रही है जिसने विदेशी या विधर्मी जाति को अपना कर उदारता का उदाहरण रखा है । अतः आर्य-समाज ने विविध मतावलम्बियों एवं धर्मानुयायियों को आर्य समाज धर्म का अनुयायी बनाया । जन्म के स्थान पर कर्म का सिद्धान्त मानकर उन्होंने वर्ण भेद का विरोध किया । मूर्ति पूजा का विरोध उनके "समाज" की खास विशेषता थी ।"[1] आर्य-समाज की प्रमुख मान्यता यह थी कि ईश्वर एक है और सब को निराकार ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए । उसकी प्रतिमा बनाकर उस पर अर्घ्य चढ़ाना आडम्बर है । आर्य-समाज ने एक ईश्वर की प्रतिष्ठा द्वारा अनेक मतमतान्तरों के झगड़ों को मिटाने का प्रयास और एकता के बीज का वपन किया । विधवा-विवाह का समर्थन, बाल-विवाह का विरोध, अछूतोद्धार आदि उनके समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलन की मुख्य विशेषताएं थीं ।[2] इस प्रकार भारतीय एवं सांस्कृतिक आधार पर मौलिकता का पुट देते हुए स्वामी दयानन्द ने अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक सुधार किये । देश की दुर्दशा से द्रवित होकर भारत को स्वराज्य प्राप्त करने के लिए प्रथम स्वर दयानन्द ने ही निःसृत किया था । सदियों तक विदेशी और विधर्मी लोगों के शासन में रहने के कारण हिन्दू जनता में हीन भावना आ गई थी । दयानन्द ने उसका ध्यान हिन्दू जाति और आर्य-धर्म के प्राचीन गौरव की ओर आकृष्ट करके उसमें नई स्फूर्ति का संचार किया और उसमें एक बार फिर अपने लुप्त गौरव को प्राप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न की । इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने वेदों के माध्यम से देश-भक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना को पुनः

१- डा० केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० ४८ ।
२- वही, पृ० ४६ ।

जाग्रत करने के लिए अंग्रेजी भाषा के स्थान पर हिन्दी भाषा को महत्व दिया । उन्होंने वेद का भी अनुवाद किया उससे वह भाव निःसृत हुए जिनमें उच्चता, प्रेरणा, एकता सात्त्विकता और उत्साह आदि की प्रमुखता थी । 'सत्यार्थ-प्रकाश' की रचना कर स्वामी जी ने अपने विचारों को प्रकट किया । वास्तव में, स्वामी दयानन्द के आर्य समाज का उद्देश्य समूचे राष्ट्र में एक सामान्य धर्म और संस्कृति की प्रतिष्ठापना करना था ।[1]

इसी समय भारत की सोई हुई चेतना को पुनः जाग्रत करने के लिए बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस (१८३४-१८८६) का प्रादुर्भाव हुआ । रामकृष्ण ने उन धार्मिक तथ्यों को जो अब तक बौद्धिक एवं तार्किक अनुमान पर आधारित थे, अनुभूति के बल पर सब के सामने उपस्थित किया । निवृत्ति मार्ग द्वारा प्राप्त वैयक्तिक मोक्ष की उपेक्षा कर उन्होंने प्रवृत्ति मार्ग के माध्यम से सामान्य-जन की सेवा को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया । स्वामी रामकृष्ण के त्याग, पवित्र आदर्शों एवं अध्यात्म चिंतन से प्रभावित होकर स्वामी विवेकानन्द (सन् १८६३-१९०२) ने उनकी अनुभूतियों एवं उपदेशों को देश-विदेश में प्रसारित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया । इस प्रकार विवेकानन्द ने स्वामी जी के अनुभूतिपूरक आध्यात्मिक विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया । आपने हिन्दू धर्म को नवजीवन से अनुप्राणित किया, पाश्चात्य देशों को वेदान्त के सत्य से अवगत किया तथा विश्व-विख्यात " रामकृष्ण मिशन " की स्थापना कर " आत्मनो-मोक्षाय जगद्धिताय च " के उच्च आदर्श के अनुसार सेवा के महत्व को प्रचारित किया ।[2] विवेकानन्द ने भारत की अशिक्षित एवं पददलित जनता की सेवा करना तथा उसकी वर्तमान स्थिति को समुन्नत बनाना अपना प्रमुख कर्तव्य समझा । तत्कालीन भारत को ऐसे दर्शन और दिशा-निर्देश की आवश्यकता थी जो जीवन के प्रति प्रवृत्ति, कर्मठता और लोक सेवा का संदेश देकर देश और समाज

---

1. "....... his Arya Samaj aimed at the creation of an Indian Nation by establishing a common religion and culture all over India ".
   Dr.R.C.Majumdar, Three Phases of India's Struggle for freedom. p. 22.

का हित कर सके । यह कार्य स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक और कर्मठ वेदान्त ने किया ।[1] वेद को उन्होंने समस्त आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत मानकर अद्वैतवाद को कर्म-जीवन में परिणित किया ।[2] ईश्वर एक है, पर एक होते हुए भी वह अपने को नानात्मक रूपों में अभिव्यक्त करता है, उसकी उपासना सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों से की जा सकती है । शिकागो की विश्व धर्म परिषद् (पार्लियामेण्ट आफ रिलिजन्स, १८९३) में पहुंचकर स्वामी जी ने भारतीय अध्यात्म ज्ञान पर जो अभूतपूर्व व्याख्यान दिया उससे विश्व के सभी धर्मावलम्बी चकित हो उठे और इस सन्यासी बालक की अद्भुत ज्ञान प्रसारण-क्षमता को देखकर दंग रह गए । विवेकानन्द ने अमेरिका में रहकर वहां के लोगों में भी भारतीय धर्म के प्रति श्रद्धा एवं आदर उत्पन्न किया । स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरु भाई स्वामी अभेदानन्द आदि के प्रचार द्वारा सारे भारत में, विशेषकर दक्षिण भारत में महान् राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक चेतना का पुनर्जागरण हो सका । वास्तव में निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर जानेवाला दार्शनिक संक्रमण और निर्भयतापूर्वक राष्ट्रीय चेतना का जन-मानस में जागरण स्वामी विवेकानन्द का अद्भुत और युगानुरूप सफल प्रयास था । अत: यह कहना नितांत समीचीन है कि" विवेकानंद के उपदेशों से ही भारतवासी अपने पतन की गहराई माप सके ; अपने शारीरिक ह्रास और आधिभौतिक विनाश, अपनी क्रिया-विमुखता और आलस्य तथा अपने पौरुष के भयानक ह्रास को पहचान सके । विवेकानन्द की वाणी में ही सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ एवं लोगों में अपने भविष्य के प्रति उज्ज्वल आशा संचारित हुई ।[3] उन्होंने मनुष्य की स्वतंत्रता और समानता पर बल देते हुए विचार और कर्म की स्वतंत्रता को मानव-विकास और उसके उचित जीवन-यापन के लिए आवश्यक बताया । उन्होंने आत्मानुभूति के साथ प्रजातंत्रीय आदर्श, विश्व बंधुत्व की भावना तथा पश्चिमीय वैज्ञानिक"

१- धनंजय वर्मा : निराला, काव्य और व्यक्तित्व, पृ० १८

२- (अनु०) निराला : भारत में विवेकानन्द, पृ० ४५८

३- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५०६

देन को भारतीय अध्यात्मवाद के साथ सम्मिलित कर (अर्थात् पूर्व और पश्चिम के सम्मिश्रण से) मानव के सर्वोत्कृष्ट रूप को व्याख्यायित किया । उन्होंने मानव हृदय में व्याप्त संकीर्ण प्रवृत्तियों का खण्डन कर विश्वबंधुत्व की स्थापना पर विशेष बल दिया ।[1] तत्कालीन विकृत परिस्थितियों में राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं वरन् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्वमानव तथा विश्वधर्म की स्थापना का प्रयास कर विवेकानन्द ने नवजागरण में अपना विशिष्ट योगदान दिया।

लंदन में स्वामी जी के उपदेशों से प्रभावित हो सिस्टर निवेदिता सन् १८९८ ई० में भारतवर्ष आयी । विवेकानन्द के बताए हुए मार्ग पर चलकर उन्होंने मानव सेवा के लिए अपना सर्वस्व जीवन अर्पण कर दिया । स्वामी जी के उपदेश को ग्रहण कर निष्ठा तथा सेवा परायणता की भावना के साथ सिस्टर निवेदिता ने भारत के उत्थान में अपना योगदान दिया । जनमानस पर विजय पाने की इनमें अद्भुत क्षमता भी थी । अपने कर्मठ व्यक्तित्व से सिस्टर निवेदिता ने सब को प्रभावित कर लिया था । "श्री गुरुदेव के चरणों में संपूर्ण रूप से आत्म-समर्पण कर उन्होंने स्त्री शिक्षा के विस्तार के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी ।"[2]

भारत की शिक्षित जनता के बीच राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में श्रीमती एनी बेसेन्ट का नाम भी आता है । मदाम ब्लावत्सकी और कर्नल आलकोट द्वारा सन् १८७५ में अमेरिका में स्थापित की गई थियोसॉफिकल सोसाइटी के प्रचारकों ने भारत के अनेक धर्मों से सम्पर्क स्थापित करना चाहा और एक दो बार भारत आए भी किन्तु उन्हें यहां अधिक सफलता नहीं मिल सकी थी । १८९३ में जब श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीय उत्थान की भावना से भारत में

---

1. Liberty of thought and action is the only condition of life, of growth and well being ... He wanted to combine western progress with India's spiritual background...... Progressively, Vivekanandha grew more international in out look .... the solution of any problem can never be attained on racial or national or narrow grounds.
   Jawahar Lal Nehru - The Discovery of India.p. 340.

रखकर थियोसोफिकल आन्दोलन का संचालन शुरू किया, तो इसकी ओर बहुत लोग आकर्षित हुए । इस संस्था के द्वारा श्रीमती एनी बेसेन्ट ने स्वराज्य आंदोलन में भी सहायता की । भारत के प्रति उनकी अटूट निष्ठा तथा सहानुभूति देखकर ही राष्ट्रीय महासभा (इंडियन नेशनल कांग्रेस) के अध्यक्ष पद से सुशोभित किया गया । श्रीमती बेसेन्ट का राष्ट्रीय क्षेत्र के साथ ही धार्मिक क्षेत्र में भी योगदान रहा है । उनके प्रचार का प्रभाव भारत की शिक्षित जनता पर अपेक्षाकृत अधिक पड़ा । जिसके परिणाम स्वरूप पढ़े लिखे समाज में अपने देश की प्राचीन संस्कृति के प्रति सम्मान, देश प्रेम तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना जाग्रत हुई ।[1] अपने सिद्धांतों के साथ भारत के प्राचीन धर्म की महिमा का समन्वय कर उन्होंने अपने मत को लोकप्रिय बनाने में सफलता प्राप्त की । भारतीयों में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने का श्रेय उनकी इसी थियोसोफी को है ।[2]

इस प्रकार इन सांस्कृतिक संस्थाओं ने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में हिन्दुओं को जाग्रत किया । इन सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रतिफल स्वरूप भारतीयों में आत्म विश्वास, कर्तव्य परायणता, मानवता, विश्वबन्धुत्व की भावना, विदेशी सत्ता के प्रति आक्रोश, पाश्चात्य साहित्य तथा वैज्ञानिक शिक्षा के अध्ययन के पश्चात भी अपने देश के आदर्श और नैतिक विचारों के प्रति आस्था आदि दृढ़ भावों की उत्पत्ति हुई । इन संस्थाओं के सम्पर्क में आकर भारतीयों ने अपनी सुप्त भावना को पुन: जाग्रत किया । वास्तव में ये समस्त आन्दोलन पुनरुत्थानवादी है । इन आन्दोलनों से देश में सामाजिक उत्थान तो होता ही रहा, साथ में राष्ट्रीय चेतना की प्रबुद्ध लहर भी दौड़ती रही । परिणामत: भारतीयों को राजनीतिक पराधीनता खटकने लगी । अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप पाश्चात्य उदाहरण भी सम्मुख थे । अत: रूसो, काम्टे, मार्क्स तथा टॉलस्टाय के सामाजिक विचारों की छाप भी सुशिक्षित भारतीयों पर पड़ रही थी ।

---

1. Mrs.Annie Besant was a powerful influence in adding to the confidence of the Hindu middle classes their spiritual and national heritage.

   Jawahar Lal Nehru - The Discovery of India. p. 343.

2. [illegible]

राष्ट्रीय भावना तथा राजनीतिक आन्दोलन का नियमित कार्यक्रम १८८५ ई० में कांग्रेस के जन्म से आरंभ होता है । आरंभ में कांग्रेस की रूपरेखा इतनी उदार तथा सुस्पष्ट थी कि अंग्रेजों को यह आभास नहीं हो पाया कि आगे चलकर यही दल उन्हें परास्त करेगा । आरंभ में कांग्रेस को तत्कालीन वायसराय तथा अन्य अंग्रेजों का सहयोग भी मिला । किंतु इसी बीच कांग्रेस के दो दल हो गए, एक जो क्रांतिकारी आन्दोलनों द्वारा स्वराज्य चाहता था, जिसके समर्थक बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, अरविंद आदि थे । दूसरा-वैधानिक ढंग से अपना कार्य चलाने की बात सोच रहा था । इस दल के नेता गोपालकृष्ण गोखले, रानाडे, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी आदि थे । उदारवादी विचारों के पोषक गोखले का लक्ष्य स्वायत्त शासन की प्राप्ति था । गोखले विदेशियों पर शान्ति, तर्क और प्रेम से विजय प्राप्त करने के पक्ष में थे । किंतु उग्रवादी नेता तिलक आदि स्वराज्य को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र को जगाना चाहते थे । अरविन्द ने भी " वन्दे मातरम् " के प्रथम अंक में ब्रिटिश शासन के सम्मुख स्पष्ट रूप में स्वतंत्र और स्वायत्त-शासन प्राप्त करने के लिए अपील की थी ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारत में चेतना की एक लहर दौड़ चुकी थी । जन जागरण की भावना विकास के स्तर पर थी । देश के ये नेता सामाजिक, सांस्कृतिक , राजनीतिक उत्थान के लिए सतत् प्रयत्नशील थे । इनकी राष्ट्रीय भावना ने ही बीसवीं शताब्दी के शक्तिशाली भारत का निर्माण किया । आगे चलकर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीयों में विद्रोह की प्रबल भावना फैल गई, एक ओर लोग वन्दे मातरम का नारा लगाते थे तो दूसरी ओर विदेशियों के प्रति घृणास्पद विचारों को जनता के मध्य आक्रोशपूर्ण वचनों में व्यक्त करते थे । इस प्रकार भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम समय-समय पर विभिन्न नेताओं के नेतृत्व में उग्रतर होता गया । सन् १९०५ में बंग-विभाजन के कारण स्वदेशी आन्दोलन और भी तीव्र हो गया । महात्मा गांधी के नेतृत्व में १९२१ में जो असहयोग

आन्दोलन आरंभ हुआ उसने ब्रिटिश सरकार के राज्य पर मौत की मोहर लगा दी ।[1]

देश को तिलक और गोखले के स्थान पर गांधी जी को दृढ़ व्यक्तित्व तथा अहिंसात्मक विचारधारा के व्यक्ति का साथ मिल गया । गांधी जी ने अपनी संपूर्ण शक्ति से देश का नेतृत्व किया" जब से गांधी जी हिन्दुस्तान के राजनीतिक मैदान में आये तब से उनकी लोकप्रियता बराबर बढ़ती चली गई"[2] और जनता के वे अत्यधिक प्रिय हो गए । गांधी जी ने केवल राजनीतिक पक्ष पर ही ध्यान न देकर सामाजिक और आर्थिक पक्ष पर भी ध्यान दिया । इसके लिए सर्वप्रथम उन्होंने भारतीयों को यह सुझाव दिया कि ब्रिटिश शासक हम पर किसी प्रकार का दबाव न डाल सके, इसके लिए सरकारी पदों से त्याग-पत्र देकर अलग हो जाना चाहिए । विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुएं व्यवहार में लाई जानी चाहिए । विद्यार्थियों को सरकारी स्कूलों में शिक्षा न प्राप्त करके स्वदेशी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए ताकि उनके मन-मस्तिष्क में राष्ट्रीय प्रेम जागृत हो सके । गांधी जी ने इन सुझावों के आधार पर ही सन् १९२०-२१ में "असहयोग- आन्दोलन" शुरू हुआ । गांधी जी का दूसरा प्रसिद्ध सत्याग्रह आन्दोलन १९३०-३१ में "नमक कर" की मुक्ति को लेकर हुआ । इन दोनों आन्दोलनों के परिणामस्वरूप जनता में अन्याय और अत्याचार के प्रति जागरूकता तथा स्वराज्य की आकांक्षा और अधिक तीव्र हुई और भारतीय जन-शक्ति तन-मन से ब्रिटिश शासन के विरोध में उठ खड़ी हुई । १९३९-४५ के महायुद्ध से स्वतंत्रता संग्राम में काफी तटस्थता आ गई । सन् १९४२ का विद्रोह तो भारत के इतिहास में स्मरणीय है । गांधी जी को भारत की समस्त जनता ने अपना राजा घोषित किया और उनकी प्रेरणा से उस समय देश भक्तों ने ब्रिटिश शासन द्वारा किये गये अत्याचारों का डटकर विरोध किया ।[3] जिसके परिणामस्वरूप रेल, डाक तथा तार में अनियमितता

१- डा० सावित्री सिन्हा : आधुनिक साहित्य का इतिहास, पृ० ८ ।
२- जवाहर लाल नेहरू : मेरी कहानी, पृ० ६४ ।

३- वही, पृ० १३६ ।

आ गई । ब्रिटिश शासक अपने दमन चक्र से इस क्रांति को दबाने में सफल अवश्य हुए किन्तु इसके लिए उन्हें बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ा । सन् १९४५ में सुभाष चन्द्र बोस के प्रयत्न से ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी । इस सरकार को भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों से पूरी सहानुभूति थी । मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में पल्लवित साम्प्रदायिक दंगा इस समय अपनी पूरी शक्ति से भड़क उठा । अतएव 'भारत छोड़ो' नारे के कारण निरीह और निर्दोष भारतीयों को कुचलने वाले तानाशाही ब्रिटिश शासकों को सन् १९४७ में भारत छोड़कर भागना पड़ा । गांधी जी तथा भारतीय जनता के अथक प्रयास से सन् १९४७ में भारत पूर्ण स्वतन्त्र हुआ और नया स्वायत्त शासन की स्थापना हुई । गांधी जी के अहिंसा ,सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, धार्मिक-समन्वय, हिन्दू मुस्लिम एकता, ग्रामोद्धार , नारी-समाज में सुधार, जमींदारी-उन्मूलन आदि प्रमुख सिद्धांतों के आधार पर भारतीयों ने स्वतंत्र राष्ट्र की नींव रखी । रामायण, गीता, बुद्ध, टालस्टाय और ईसा के विचारों से प्रभावित समन्वयवादी गांधी जी की विशाल आत्मा और उनके कर्मठ व्यक्तित्व ने राजनीतिक,सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में पददलित, पराधीन एवं जर्जर भारतीय जनता को स्वतंत्र करवाने में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया । गांधी जी ने अपने विचारों और सिद्धांतों को जनता के बीच बड़ी ही सहजता और उदारता से फैलाया । उनकी सहज एवं सर्वमान्य विचारधारा के प्रतिफलस्वरूप हम आज की फूलती-फलती स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे हैं ।

राष्ट्रीय चेतना के जागरण में महाकवि टैगोर और अरविंद का भी महत्वपूर्ण योगदान है । राष्ट्रीय अभ्युत्थान में टैगोर की साहित्यिक कृतियों ने वही काम किया जो दयानन्द, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि के सामाजिक आन्दोलनों ने किया ।" उनकी सूक्ष्म भाव-कल्पना ने अपनी संस्कृति के चारों पुरुषार्थों को युग की मान्यताओं के समकक्ष प्रस्तुत करके एक ओर भारतीय संस्कृति का आधुनिक युग में पौरोहित्य किया तो दूसरी ओर राष्ट्रीय भावना को जन-जन के हृदय-प्रदेश में प्रतिष्ठित करके जन-गण-मन के अधिनायकत्व में समत्व का योग दिया । ----- टैगोर की सांस्कृतिक चेतना भरपूर प्रकाश के

साथ राष्ट्रीय भावना को विश्वजनीन शान्ति एवं सार्वजनीन मैत्री से समकक्षता पहुंचा देती है । ------- उनकी राष्ट्रीय भावना विश्व बन्धुत्व का मार्ग प्रदर्शित करती है । उन्होंने जिस महती भाव साधना (राष्ट्रीयता के प्रति मैं मानवता के लिए आदर्श) की प्रतिष्ठा की थी वह विश्वजनीन, जाति वर्णहीन भारतीय संस्कृति का मापदण्ड सिद्ध हुई । उनकी विश्वजनीन मैत्री भारतीय अध्यात्मवाद एवं राष्ट्रीय भावना से महिमान्वित रही है ।[1] महाकवि टैगोर ने राष्ट्रीयता , दर्शन तथा भक्ति को अपने साहित्य का विषय बनाकर सुदृढ़ मानवतावाद की पुष्टि की है । उन्होंने राष्ट्रीय उत्थान तथा साहित्यिक क्रान्ति को दिशा दिखाने का अद्भुत कार्य किया । जवाहर लाल ने रवीन्द्र और गांधी के व्यक्तित्व की तुलना करते हुए उन्हें अपने युग की सर्वश्रेष्ठ विभूति घोषित किया है यदि गांधी जनता का प्रतिनिधित्व करते थे तो टैगोर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतिपादन देते थे ।[2] राष्ट्रोन्नति के साधक अरविन्द ने भी भारतीयों के सुप्तप्राय स्वाभिमान को जगाने के लिए अपना समस्त जीवन लगा दिया । अरविन्द ने मानवतावाद को विश्व के लिए कल्याणकारी घोषित कर सामान्य-जन पर तो नहीं किन्तु विशिष्ट बुद्धिशील जनों पर अपने प्रभाव की अमिट छाप अवश्य लगा दी । अरविन्द की अतिमानव और अतिमानस की धारणा एक ऐसी भव्य कल्पना का परिणाम है जिसमें साहित्य तथा दर्शन का योग और मनोविज्ञान का समन्वय किया गया है । अरविन्द ने मानव को सर्वोत्तम इसलिए माना कि उसमें अतिमानस का उद्भव हो सकता है । अरविन्द ने इसी धरातल पर मानव की भौतिक और आध्यात्मिक सत्ता के पूर्ण विकास का आख्यान प्रस्तुत किया । उनके अनुसार मानस या बुद्धि के स्तर से ऊपर उठकर अतिमानस के स्तर तक पहुंचकर मानव यह समझने लग जायगा कि प्रत्येक दूसरा मानव उसका अपना ही अंश है । अरविन्द कर्म, ज्ञान और भक्ति के संश्लेषण द्वारा द्रव्य, जीवन एवं मस्तिष्क को दिव्य बनाकर इसी जीवन में दिव्य जीवन की स्थापना करना चाहते थे ।[3]

१- श्री अवध प्रसाद वाजपेयी : रवीन्द्र और निराला की जातीय एवं राष्ट्रीय भावना, जनभारती, " निराला अंक ", भाग -२, संवत् २०२० ।
२- जवाहर लाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इंडिया, पृ० ४०५ ।
३- दिनकर : भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५२८ ।

राष्ट्रीय जन-जागरण की कर्मशीलता से प्राप्त स्वतंत्रता के पश्चात् देश की आर्थिक दशा में भी समुचित सुधार हो गया । देश की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं शुरू की गईं । इसके पहले, अंग्रेजों के शासनकाल में तो देश की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी । ब्रिटिश सरकार ने भारतीय अर्थशक्ति का उपयोग तो अवश्य किया किन्तु उसकी सुधार या वृद्धि पर ध्यान नहीं दिया।अंग्रेज़ केवल भारत से धन ले जाना जानते थे । यहां तक कि भारत के कच्चे माल को अपने यहां ले जाकर पक्के माल में तैयार कर उसे भारत में ही लाकर बेच देते थे । अंग्रेज शासक व्यापारी होने के कारण धन के अत्यधिक लोभी थे । इनके आर्थिक शोषण ने ही कांग्रेसी आन्दोलन को जन्म दिया । इसीलिए गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन (सन् १९२०-२१) में विदेशी वस्त्रों, विदेशी शिक्षालयों तथा सरकारी नौकरियों के त्याग तथा स्वदेशी वस्तुओं को ग्रहण करने पर विशेष बल दिया । जमींदारी प्रथा भी इस समय की प्रमुख समस्या थी । जमींदारों के शोषण से गरीब किसान बुरी तरह सताए जा रहे थे, उनसे बेगार या माल गुजारी आदि जबरदस्ती ली जाती थी चाहे वे उसमें समर्थ हों या न हों । इसके पीछे अंग्रेजों का हाथ था । केवल अंग्रेजों द्वारा संरक्षित राजा, जमींदार, साहूकार एवं चापलूस सरकारी कर्मचारी खुश थे क्योंकि वे निर्भय होकर जनता का शोषण कर सकते थे । सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों ने विदेशियों के दमन एवं शोषण से दलित तथा आर्थिक पराधीनता से व्यथित भारत में स्वात्मक शासन की स्थापना करके उसे उन्मुक्त वातावरण में श्वास लेने का सुअवसर प्रदान किया ।

उपरिविवेचित संक्रांति-जन्य परिवर्तनशील युग पर दृष्टि-पात करने से यह ज्ञात होता है कि प्रसाद और निराला ने जिस समय पदार्पण किया उस समय प्राचीन रूढ़ियों का अन्त हो रहा था तथा सामाजिक,धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप स्वस्थ समाज के निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी । इन कवियों ने इस प्रक्रिया को अग्रसर करने की चेष्टा की ।

(आ) काव्यगत प्रवृत्तियाँ

(१) विषयगत -

१८वीं- १९वीं शताब्दी के वातावरण की अनेकतियों के बीच चतुर्दिक् विकास एवं उन्नति की अनवरत प्रक्रिया में जो साहित्यिक प्रगति हुई वह महत्त्वपूर्ण रही। पिछले पृष्ठों में उल्लिखित सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा अन्यान्य आन्दोलनों के फलस्वरूप देश की साहित्यिक गतिविधियाँ भी उनसे प्रभावित हुईं। युग की परिवर्तित संवेदना का साहित्य पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और पूर्ववर्ती साहित्य से विषय तथा शिल्प में भिन्नता आने लगी। यह निश्चित है कि "काव्य के निर्माण में परम्परा और पृष्ठभूमि का विशेष योग रहता है। कवि एक ओर यदि अपनी परम्परा से प्रभावित हो सकता है, तो साथ ही देशकाल की परिस्थितियाँ पृष्ठभूमि का कार्य करती हैं। काव्य में उनका स्वरूप किसी न किसी प्रकार आभासित होता रहता है और कभी कभी तो कवियों की कृतियाँ युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं।"[१] आधुनिक युग के हिन्दी साहित्य में आरंभ से ही उत्तरदायित्व की गहन भावना परिलक्षित होती रही है। यह साहित्य उद्देश्य पूर्ण था। इसके सामने देश-काल के ज्वलंत प्रश्न थे और उन्हीं के अनुरूप इस युग के प्रणेता कवियों ने विषय चयन किया, उन्हें जो कुछ भी अपने उद्देश्य की प्राप्ति में बाधक एवं अनावश्यक लगा उसे निस्संकोच छोड़कर आगे बढ़ गए।

आधुनिक काल के सूत्रपात के साथ ही साहित्य राजाओं तथा साधन सम्पन्न धनी-मानी प्रतिष्ठित लोगों के विशिष्ट वर्ग से निकलकर सार्वजनिक रूप धारण कर सामान्य जनता की सम्पत्ति बन रहा था। विविध क्षेत्रों में नवजागरण की जो लहर दौड़ रही थी उसका स्पष्ट प्रभाव भारतेन्दु युगीन साहित्य पर पड़ा। भारतेन्दु बाबू साहित्य के ऐसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर अवतरित हुए जहाँ रीतिकाल की परम्परा अवरुद्ध हो रही थी और नवीन काव्य

१- डा० प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य, पृ० १।

परम्परा का प्रादुर्भाव हो रहा था, ऐसे समय में भारतेन्दु बाबू ने साहित्य चिंतकों को नवीन परिस्थितियों से अवगत करा, उन्हें नयी दिशा की ओर मुड़ने के लिए प्रेरित किया। वास्तव में विद्रोह के बाद हिन्दी कवियों की नवचेतना जिन विविध रूपों में प्रस्फुटित हुई उनमें भी नवशिक्षा के फल-स्वरूप उत्पन्न विचार-स्वातंत्र्य और ऐतिहासिक अध्ययन के कारण भारत के प्राचीन गौरव और फिर विदेशी आक्रमणकारियों के घातक प्रभाव पराधीनता और अधोगति की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक और अनिवार्य था। ------ उस समय उनका वाङ्मय भावोच्छ्वास और राष्ट्रीय गान का उठता था।[1]

तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार एक ओर तो भारतेन्दु तथा उनके समकालीन कविगण अंग्रेजी शासन से प्राप्त अद्भुत वैज्ञानिक उपादानों की प्रशंसा करते तो दूसरी ओर भारत की पराधीनता पर आंसू भी बहाते। उस समय की परिस्थिति के अनुसार काव्य में भी देश भक्ति का स्वर गुंजित हो रहा था। नवीन काव्यधारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सब से ऊंचा स्वर देशभक्ति का था, 'नीलदेवी' 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में उपलब्ध काव्य पंक्तियों में देश-दशा की जो मार्मिक व्यंजना है वह तो है ही, बहुत सी स्वतंत्र कविताएं भी उन्होंने लिखी जिनमें कहीं देश के अतीत का गर्व, कहीं वर्तमान अधोगति का क्षोभ, कहीं राष्ट्रीय भावना से भरी हुई चिन्ता आदि अनेक भावों का विधान पाया जाता है।[2] भारतेन्दु बाबू बहुमुखी व्यक्तित्व लेकर साहित्य संसार में आए थे। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय परम्परा को विकसित करने में भी उनका विशेष योगदान रहा। वह स्वयं देश के प्रति निष्ठावान थे। जहां वह एक ओर अंग्रेजों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते वहीं दूसरी ओर भारत की दीन-हीन आर्थिक दशा पर हार्दिक खेद भी प्रकट करते थे।-

अंगरेजराज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अतिख्वारी[3]

\+ + +

१- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० २८६-६० ।
२- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५४२ ।
३- भारत दुर्दशा, भारतेन्दु नाटकावली, पृ० ५६८ ।

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
भारत दुर्दशा न देखी जाई ।[1]

इस प्रकार भारतेन्दु तथा अन्य कवि अपने युग की स्थिति से भलीभाँति परिचित थे । उनका जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था । समाज का घृणित रूप भी उनसे अछूता न रहा । भारतेन्दु तथा उनके समकालीन कवि अम्बिका दत्त व्यास, प्रेमघन, राधाकृष्णदास, प्रताप नारायण मिश्र आदि ने काव्य में अतीत भारत के महत्ता चित्रांकन द्वारा वर्तमान दयनीय दशा पर क्षोभ प्रकट कर भारतीयों में नवोत्तेजना भरने का अथक प्रयास किया । श्री अम्बिका दत्त व्यास की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है -

कहाँ बाहु इक्ष्वाकु ककुत्स्थहु कहँ मांधाता
कहँ दिलीप रघु अजहुँ कहाँ दशरथ जगत्राता[2]

ऐसी उत्तेजक कविताओं के अतिरिक्त ये कवि देश प्रेम, समाज सेवा, धार्मिक सहिष्णुता तथा कुत्सित भावों पर कटु आक्षेप से युक्त कविताएं भी लिखते थे । कहीं कहीं इन कवियों ने ईश्वर -सम्मुख नत मस्तक होकर आर्त्त विनय भी किया है " हम भारत वासिन पै अब दीन दयाल दया करिये "[3] जैसी पंक्तियों से इन कवियों की भक्ति - भावना का बोध भी होता है ।

भारतेन्दु बाबू के पश्चात् हिन्दी कविता के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन महत्वपूर्ण रहा । श्रेष्ठ काव्य की रचना के लिए उन्होंने जो मार्ग प्रशस्त किया वह हिन्दी साहित्य को उनकी अद्वितीय देन कही जा सकती है । "यदि आधुनिक हिन्दी साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों के अभ्युत्थान का श्रेय भारतेन्दु बाबू को दिया जाता है तो उन प्रवृत्तियों के परिष्करण का श्रेय द्विवेदी जी को है ।" कविता के क्षेत्र में नयी और बहुमुखी सामग्री एकत्र करने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है । जिन्होंने

१- भारत दुर्दशा, भारतेन्दु नाटकावली, पृ० ५६७ ।
२- अम्बिका दत्त व्यास : मन की उमंग- देव पुरुष दृश्य ।
३- प्रताप नारायण मिश्र : मन की लहर, सन् १८८५ ।

हिन्दी के लिए भाषा सम्बन्धी एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत किया है । नये विचार और नयी भाषा , नया शरीर और नयी पोशाक दोनों ही नयी हिन्दी को द्विवेदी जी की देन है ।[१] सन् १८८५ में भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् खड़ीबोली आन्दोलन ने निश्चित रूप से जोर पकड़ा । सन् १८८६ में श्रीधर पाठक ने एकान्तवासी योगी की रचना खड़ीबोली में की । सन् १८८८ में अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ीबोली आन्दोलन " नाम की एक पुस्तिका छपवा दी । और फिर सन् १९०० में 'सरस्वती' नामक पत्रिका के आगमन से हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा को विशेष बल मिला । सरस्वती के संपादक द्विवेदी जी ने गद्य और पद्य को एक बोली में बांधकर एक रूप करना चाहा, उस समय तो उन्हें आगे विशेष सफलता नहीं मिल सकी किन्तु आगे चलकर यह कार्य सम्पन्न हुआ ।

द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों ने नाना विषय के चयन में विशेष पटुता दिखाई । इस युग के प्रमुख लेखक बालमुकुन्द गुप्त, पद्मसिंह शर्मा, गोविन्द नारायण मिश्र, सरदार पूर्णसिंह , श्याम सुन्दर दास, आचार्य शुक्ल आदि हैं । इन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के अनुरूप नाना-रूपात्मक शैलियों को भी जन्म दिया । ये लेखक तत्कालीन गतिशील स्थितियों के कारण अब निराशावादी न होकर आशावादी तथा दृढ़ संकल्पक धारी हो गए थे । भारतेन्दु युग की तुलना में इस युग के कवि श्रीधर पाठक, हरिऔध, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, मैथिली शरण गुप्त, रूप नारायण पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी तथा गया प्रसाद शुक्ल " सनेही " आदि विषय-चयन तथा भावाभिव्यंजना के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ चुके थे , फिर भी इनमें वैसी गम्भीरता एवं भाव प्रवणता नहीं आ पाई थी जैसी आगे चलकर छायावादी कवियों में मिलती है । भारतेन्दुयुगीन कवियों की तुलना में इन कवियों की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इनकी साहित्यिक सहानुभूति उपदेशात्मक न होकर क्रियात्मक थी ।

द्विवेदीयुग में विषय की दृष्टि से गद्य और पद्य के क्षेत्र अलग-अलग हो गए । शिक्षा और राजनीति की चर्चा गद्य का विषय बना और

१- नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य की (भूमिका), पृ० १३ ।

लोक रुचि तथा आदर्शपरक विचारों एवं भावों को कविता के लिए उपयुक्त समझा गया किन्तु ज्यों - ज्यों जनसाधारण में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक विचारों के प्रति जागरूकता बढ़ी, काव्य का विषय क्षेत्र बढ़ता गया ।

द्विवेदी युग के कवियों ने त्रस्त और पीड़ित समाज को नजदीक से देखा और काव्य के माध्यम से उसे सर्वसाधारण के मध्य फैलाने का गुरुतर कार्य भी किया । ये कवि मानवतावादी थे । उन्होंने भारतीय नारी की दारुण दशा पर अपना क्षोभ भी प्रकट किया । "प्रसाद" जी के" नारी तुम केवल श्रद्धा हो" का बीजारोपण द्विवेदीयुगीन कवियों द्वारा ही हुआ है । उदाहरणार्थ गोपाल शरण सिंह की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

आज अविद्या -मूर्ति हो रही हैं सब श्रीमतियां यहां,
दृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतियां यहां ।[1]

गौरवशाली अतीत और पतन के गर्त में विलीनप्राय वर्तमान के प्रति ये कवि बड़े चिंताकुल थे । प्राचीन भारत के गौरव के प्रति सहानुभूति और वर्तमान स्थिति के प्रति असंतोष तथा क्षोभ प्रकट करते हुए गुप्त जी लिखते हैं -

हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी ।[2]

गुप्त जी की इन पंक्तियों से यह निश्चित हो जाता है कि उनकी दृष्टि बड़ी ही दूरदर्शी और विस्तारमय थी । गुप्त जी के काव्य में उनके मानवतावाद की भावना प्रबल रूप से परिलक्षित होती है । उन्होंने नारियों को अपने काव्य में विशेष रूप से महत्व दिया, द्विवेदी जी के उर्मिला विषयक उदासीनता नामक निबंध से प्रेरित हो गुप्त जी ने साकेत में उर्मिला को प्रमुख स्थान दिया । गुप्त जी ने प्राचीन कथानकों में नवीन संदेश भर अपनी काव्य-रचनाओं के

१- सरस्वती, खण्ड २६, संख्या ६, १६२५ ।

२- मैथिली शरण गुप्त , भारत भारती (अतीत-खण्ड) पृ० ४ ।

द्वारा उन्हें जनसामान्य के निकट पहुंचाया । पौराणिक राम और कृष्ण जब लोकनायक रूप में चित्रित हुए तथा सीता और राधा आधुनिक लोक सेविका रूप में सम्मुख आयीं । गुप्त जी के काव्य में प्रस्तुत राम और सीता इस भूतल पर स्वर्ग का संदेश लेकर नहीं आए अपितु इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने के लिए आए । इस प्रकार गुप्त जी के राम ईश्वर नहीं मानव बनकर काव्य में आए ।

" हरिऔध " जी के "प्रिय प्रवास" में नायक श्री कृष्ण का स्वरूप "महाभारत" और "सूरसागर" से भिन्न एक लोकनेता का सा प्रतीत होता है और राधा अपना पौराणिक रूप त्याग कर मर्यादामयी लोक हितैषिणी नारी के रूप में प्रस्तुत हुई । इस प्रकार " हरिऔध " ने राधा-कृष्ण का देवत्व भुलाकर उन्हें मानवत्व प्रदान किया । उनकी राधा जन सेवा में तत्पर होकर लोकाविका बन जाती है और कृष्ण मंगल करने की प्रबल कामना से राजनीति के कार्य में संलग्न होकर लोक नायक बन जाते हैं । इस काव्य ग्रंथ में कवि ने लोक सेवा, विश्वप्रेम, कर्तव्य परायणता एवं त्याग आदि भावों की स्पष्ट झलक मिलती है जो तद्युगीन रचनाओं के विस्तृत भावभूमि की परिचायक है ।

द्विवेदीयुगीन समस्त कवियों ने " व्यष्टि " की सीमित परिधि से बाहर निकलकर " समष्टि " की विस्तृत भावभूमि पर काव्य संरचना का गुरुतर कार्य सम्पन्न किया । इन कवियों ने प्रकृति के रमणीक चित्र भी प्रस्तुत किये जिसने आगे चलकर छायावादी कवियों के लिए प्रकृति चित्रण का सुगम तथा सौन्दर्य विधायक मार्ग प्रशस्त किया । " प्रकृति यहां एकांत बैठि निज रूप सवांरति "[1] में पाठक जी ने काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा का बड़ा ही मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है । लोचन प्रसाद पाण्डेय ने भी प्रकृति और मानव के तादात्म्य पर प्रकाश डाला है । " सनेही " जी का काव्य भी राष्ट्रीय गौरव तथा देश की जटिल समस्या को व्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ रहा है । द्विवेदीयुगीन कवि काव्य विषय को नया मोड़ देकर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील थे

१- श्रीधर पाठक : काश्मीर सुषमा , पृ० ५ ।

फिर भी नवे युग का काव्य साहित्य यद्यपि नए निर्माण में लगा पर वह पुरानी व्यवस्था को पूरी तरह नहीं बदल पाया । छायावाद ने इस अभाव की पूर्ति की ।"[1]

द्विवेदीयुग के अन्त में ही द्विवेदीयुगीन बौद्धिकता के विरुद्ध स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ पनपने लगी थी जिनमें तत्कालीन छायावाद रहस्यवाद जैसी प्रवृत्तियों की परिगणना की जाती है । छायावाद के आगमन के मूल प्रेरणास्रोत-द्विवेदीयुगीन साहित्य में व्यंजित चिन्तन-पद्धति, स्वस्थ समाजिकता का विकास, ज्ञान-विज्ञान का समग्र प्रसार, अतीत के प्रति गौरव एवं आस्था, धार्मिक चेतना, मानवतावादी आदर्शों के प्रति प्रेम, विदेशी सत्ता के प्रति आक्रोश आदि है । हिन्दी साहित्य में छायावाद के आविर्भाव का मुख्य कारण द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता तथा शुष्क नीरस कविताओं के प्रति नवीन कवियों का विद्रोह माना जाता है । छायावाद के उदय का श्रेय रवीन्द्र नाथ के बंगला साहित्य को भी दिया जाता है, जो पाश्चात्य साहित्य के छायाभास (Phantasmata) तथा प्रतीकवाद (Symbolism) के विधान पर रचित गीतात्मकता, कवि तन्मयता, रहस्यभावना आदि की सौन्दर्यपूर्ण भावमयी अभिव्यक्ति मात्र है । छायावाद के मूल में तत्कालीन नूतन कवियों की निराशा तथा वैयक्तिकता प्रधान सामाजिक अभिरुचि भी व्याप्त है । हिन्दी साहित्य में जो युग छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है उस युग की काव्य-साधना का प्रारंभ द्विवेदीयुग के कवि श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त आदि की रचनाओं द्वारा हो चुका था यह बात और है कि छायावाद का वास्तविक स्वरूप इन कवियों की रचनाओं में नहीं उभर पाया था । प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की भावना तथा काव्य में व्यावहारिकता को स्थापित करने की प्रबल उत्कंठा से ओत-प्रोत स्वच्छंदतावाद का सर्वप्रथम समर्थन कवित्रय प्रसाद निराला तथा पंत ने किया है ।

आचार्य शुक्ल ने इस काव्यधारा के दो रूपों को स्वीकार किया है । उनके शब्दों में" छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में

१- आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य (भूमिका), पृ० १७ ।

समझना चाहिए । एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है ।----- छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है ।"[1] शुक्ल जी ने छायावाद के दूसरे अर्थ को अधिक महत्त्व प्रदान किया है और यही अर्थ-व्यंजक-छायावाद तद्युगीन कवियों द्वारा स्वीकृत भी हुआ । वस्तुतः विशिष्ट काव्य शैली के माध्यम से विशिष्ट भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति छायावाद है ।

स्वानुभूति की कोमल वृत्ति प्रतीक एवं बिम्ब के माध्यम से जिन सूक्ष्म तत्त्वों को व्यक्त करने में समर्थ हुई उसे ही काव्य में रहस्यवाद माना गया । प्रसाद जी के शब्दों में रहस्यवाद का स्वरूप "वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी । वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है । इसमें अपरोक्ष की अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदं से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"[2] इस युग की रहस्यवादी प्रवृत्ति के मूल में सांख्य, वेदान्त,शैवागम, बौद्धदर्शन, सूफी दर्शन आदि विद्यमान है । प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी आदि के काव्य में अपरोक्ष की अनुभूति तथा अहं का इदं से समन्वय स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद के सन्दर्भ में बताया कि कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य-वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया ।[3] प्रसाद जी ने वेदना से उद्भूत स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को छायावाद बताया । प्रायः

१- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६१५ ।

२- प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ५६ ।

३- वही, पृ० १५३ ।

कुछ विद्वान छायावाद को पलायनवाद कहकर संतोष कर लेते हैं पर छायावाद अथवा विशद अभिधा में स्वच्छंदतावाद पलायनवाद नहीं है वरन् विदेशी पराधीनता तथा पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहनेवाले राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है।[१]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रसाद, निराला और पंत का युग हिन्दी के वैभव एवं विकास का युग माना जाता है। जीवन की व्यक्तिरोधी संकुलता तथा परम्पराबद्ध सामाजिकता से ऊबकर प्रायः नए कवियों ने बड़ी निर्भीकता के साथ व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यंजना की। एक और प्रसाद ने स्वानुभूति की अभिव्यक्ति को काव्य में महत्त्व दिया तो दूसरी ओर निराला जी ने भी स्पष्ट रूप में उद्घोषित किया कि मैंने 'मैं' शैली अपनायी। छायावादी मूर्धन्य कवियों ने काव्य में वैयक्तिकता, सौन्दर्य-भावना, वेदना, करुणा चिंतन-तत्त्व, प्रकृति तथा आत्माभिव्यंजना आदि को निरूपित कर तद्युगीन काव्य साहित्य को एक स्वस्थ तथा नया मोड़ प्रदान किया।

छायावादी कवियों ने वैयक्तिकता पर विशेष बल दिया। इन कवियों ने काव्य में स्वानुभूति की जो मुक्त अभिव्यक्ति की है उसमें उनका व्यक्ति-तत्त्व प्रधान है किन्तु इस सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि उनकी वैयक्तिक भावना "स्व" के संकुचित क्षेत्र में सीमाबद्ध न होकर व्यष्टि के विस्तृत प्रांगण में अभिव्यंजित हुई है। इन कवियों की अनुभूति, भाव तथा कल्पना को सर्वसाधारण की अनुभूति, भाव तथा कल्पना कहा जा सकता है, कारण इनमें संकीर्णता का अभाव और सहज औदात्त्य का समावेश है। जहाँ कहीं भी इन कवियों ने वैयक्तिक सुख-दुख का चित्रण किया है वहीं उसे उनके अंतरंग का प्रकाशन होने के कारण सर्वसाधारण के अनुभव का विषय मान लिया गया है। बाह्य-जगत के वर्णन की अपेक्षा अन्तःकरण की प्रवृत्ति इन कवियों में अधिकांशतः मिलती है जिसे आत्माभिव्यक्ति का सहज प्रच्छलन भी कहा जा सकता है। धीरे-धीरे इन कवियों की वैयक्तिक भावना सामान्य विषयों से हटकर जीवन और जगत के सूक्ष्म तत्त्वान्वेषण के परिप्रेक्ष्य में व्यंजित होने लगी और उनकी इस व्यंजना

१- नामवर सिंह : छायावाद, पृ० १५

प्रणाली को कवि का जीवन-दर्शन कहा गया । अपनी वैयक्तिक भावना को इन कवियों ने अपने-अपने ढंग से व्यंजित किया जैसे अपनी मन: स्थिति के अनुसार वस्तु-विशेष को प्रस्तुत करना, वस्तु विशेष की व्यंजना सामान्य ढंग से न कर भावात्मक या कल्पनात्मक रूप से करना या फिर अपनी स्वानुभूति को सामान्य लोक से हटाकर अंतर्मन की उच्च भावभूमि पर ले जाकर जीवन और जगत के सूक्ष्म तत्वों के मध्य दार्शनिक रूप से व्यक्त करना आदि ।

समग्र छायावादी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का सुन्दर प्रकटीकरण हुआ है । उनका यह प्रेम लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार के भावों से सम्बद्ध है साथ ही प्रेम के सुखमय एवं दु:खमय दोनों पक्षों की व्यंजना में समर्थ है । यद्यपि प्रधानता अलौकिक भावों से सम्बद्ध दु:खमय पक्षों की है । इन कवियों ने प्रेम का परिष्करण तथा उदात्तीकरण भी किया है और ऐसे स्थलों पर उनकी दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । छायावादी काव्य में सौन्दर्य-भावना का कलात्मक विधान भी अवलोकनीय है। इन कवियों ने जगत और प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में सौन्दर्य की अपूर्व झलक देखी है । स्थूल रूप रेखाओं का अंकन न कर सूक्ष्म सौन्दर्य विधायक तत्वों का चित्रांकन करना ही इन कवियों को अभीष्ट रहा है । इस प्रकार छायावादी कवियों ने जगत और प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों को ग्रहण कर उन्हें अपनी अनुभूति एवं कल्पना से सजीव रंगों में रंगकर साकार रूप प्रदान किया है ।

छायावाद में वेदना, करुणा, अवसाद की तीव्र व्यंजना हुई है जिसके मूल में इस युग की अतिशय वैयक्तिकता है । व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करनेवाले ये कवि दु:ख और अवसाद के वर्णन करना भी नहीं भूले । कहीं ये कवि अपने प्रति दु:खी दिखाई पड़ते हैं और कहीं जगत की असारता तथा क्षणिकता के प्रति व्यथित दिखाई पड़ते हैं । अतएव उनकी वेदना, पीड़ा और व्यथा में लौकिक और अलौकिक भावों की सहज व्यंजना निहित है । इन कवियों ने व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा के साथ ही जगत की क्षणिकता से सम्बद्ध पीड़ा का भी अत्यधिक हृदयस्पर्शी तथा मार्मिक वर्णन किया है ।

छायावादी काव्य में प्रकृति का जो रूप प्रस्तुत किया गया, साहित्य में वह अपने प्रकार का सर्वप्रथम वर्णन कहा जा सकता है। इस युग के कवियों ने प्रकृति को अपने ढंग से देखा और उसे भावानुकूल काव्य में व्यंजित किया। छायावाद में प्रकृति को नूतन बाना पहनाया गया और उसे जड़ से चेतन बनाकर उस पर मानवीय भावों का आरोपण कर एक नया रूप प्रदान किया गया। अब प्रकृति उनके सुख-दुख की सहचरी तो बनी ही साथ ही इस लोक से थोड़ा आगे बढ़कर परोक्ष सत्ता की अभिव्यक्ति में भी सहायक हुई। छायावादी कवियों ने प्रकृति के सान्निध्य में अतीव सुख और शान्ति की अनुभूति की जिसके प्रतिफलन स्वरूप उनके कृतित्व को प्रकृति ने पूर्णतः आच्छादित कर लिया। उनकी कविताओं में प्रकृति का विस्तृत वर्णन मिलता है प्रमुखतः वह आलम्बन बनकर आई है, कहीं-कहीं उद्दीपन रूप में भी प्रस्तुत हुई है और कहीं इन दोनों रूपों से भिन्न स्वतंत्र रूप में भी व्यक्त हुई है। प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप भी इस युग के काव्य की विशेषता है जो दार्शनिक भावाभिव्यक्ति में सहायक हुआ है।

छायावादी काव्य चिंतन-प्रधान है। चिंतन की गहनता में ये कवि दार्शनिक तथा रहस्यवादी भी बन बैठे हैं। वास्तव में छायावादी कवियों में भारतीय दर्शन के प्रति आस्था थी जिसके मूल में इनके चिंतन-प्रवृत्ति का विकसित होना स्वाभाविक था। अपनी चिंतन-शक्ति के प्रतिफलन स्वरूप ही इन कवियों ने सर्वप्रथम काव्य में अंतर्जगत जीवन के वर्णन को प्रधानता दी। इस चिंतन प्रवृत्ति ने ही अदृश्य के प्रति कौतूहल को जन्म दिया जो रहस्यवाद का प्रथम सोपान है। इन कवियों में कण-कण में छिपी अज्ञात सत्ता के प्रति कौतूहल का जो भाव मिलता है वह उनकी रहस्यात्मक भावना का द्योतक है, किन्तु इन कवियों के चिंतन का जो रूप उभरा है उसके परिप्रेक्ष्य में रहस्यवाद की संज्ञा देना भी उचित नहीं लगता क्योंकि रहस्यवाद की अपनी अलग सत्ता है।

छायावादी काव्य की एक और विशेषता उसकी पलायनवादी भावना भी है। कतिपय आलोचक छायावादी कवियों को पलायनवादी कहते हैं।

उनके अनुसार इनकी वैयक्तिक भावना, दार्शनिक अभिव्यक्ति तथा प्रकृति प्रेम आदि समाज और यथार्थ जगत से पलायन मात्र है । किंतु इस पलायनवादी भावना को सत्य मानना उचित नहीं क्योंकि "तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है" में महादेवी जी का कौतूहल व्यंजित है न कि पलायन । प्रायः लोग प्रसाद जी के " ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे " पंक्ति को लेकर भी पलायनवाद की पुष्टि करते हैं पर वे यह भूल जाते हैं कि प्रसाद ने जीवन के अन्य क्षेत्रों को भी पास से देखा है, परखा है और काव्य में अभिव्यंजित किया है । इस प्रकार जहाँ भी कहीं ये कवि सांसारिक प्रपंच से हटकर थोड़ा विश्राम करना चाहते हैं वहाँ उनकी चिंतनशक्ति आध्यात्मिक तत्वों का बोध कराती है जिसके लिए पलायन अनिवार्य हो जाता है ।

छायावाद की प्रमुख विशेषता नया अभिव्यंजना शिल्प है । इस युग में नयी अभिव्यंजना प्रणाली का समुचित विकास हुआ जिसका वर्णन आगे यथा प्रसंग होगा ।

इस युग के प्रमुख कवित्रय प्रसाद, निराला और पंत में जो स्वानुभूति, भावुकता, चिंतन शक्ति एवं कल्पना तत्व की प्रधानता मिलती है वह इस युग के गौरव और समृद्धि के लिए पर्याप्त ही नहीं उचित है इन कवियों ने साम्प्रदायिकता के गौण भावनाओं से परे होकर यथार्थ स्थिति से प्रभावित हो अपनी अन्तर्दृष्टि विधायिनी कल्पना शक्ति के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को जातीयता, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के बंधनों से मुक्त कर काव्य में अभिव्यंजित किया है । केवल प्रेम और प्रकृति ही इन कवियों को ग्राह्य न थे,प्रत्युत आध्यात्मिकता और मानवीय जीवन के प्रति सहज भावांकन भी इन्हें अभीष्ट था । प्रसाद और निराला के काव्य में एक ही शाश्वत चेतना का स्वर विद्यमान मिलता है जो तद्युगीन परिस्थितियों में पल्लवित हुआ और अपने आसपास के चतुर्दिक वातावरण में विकसित होकर शाश्वत साहित्य के रूप में अमर हो गया । वास्तव में "छायावाद" हिन्दी साहित्य में एक प्रतिक्रिया और क्रांति के रूप में सामने आया था । द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता का स्थान कोमल कांत पदावली और सूक्ष्म अंकन को मिला----

लौकिकता के स्थान पर इसने अपने सरस रूप में प्रस्तुत हुआ अभी तक देवत्व में मानवीय भावनाओं को भरने का प्रयास किया जाता था । छायावादी कलाकार ने मानव को उसकी मानवीयता में ईश्वर से महान् मान लिया । जातीयता और राष्ट्रीयता के बंधनों में द्विवेदीयुग का काव्य अभी तक शाश्वत चेतना को न ग्रहण कर सका । अब कवि ने दार्शनिक भूमि पर खड़े होकर चिरन्तन सत्य का अंकन आरम्भ किया । इसके अतिरिक्त प्रकृति, जीवन, मानव का साहित्य के साथ तादात्म्य स्थापित करने का यह एक सफल प्रयत्न था ।"[1] जिससे हिन्दी कविता में एक नयी करवट बदली और काव्य साहित्य अब व्यष्टि की सीमित परिधि से निकलकर समष्टि के विस्तृत प्रांगण में आ गया । इस युग का साहित्य विशेष प्रकार की उदारता, व्यापकता, विविधता एवं चिंतन शक्ति से युक्त हो ऐसे मार्मिक ढंग से व्यंजित हुआ कि सब ने उसे एक स्वर से उत्कृष्ट साहित्य की संज्ञा प्रदान की । इस युग के कवियों ने जहाँ एक ओर राष्ट्र की व्यापक चिंतनधारा को काव्य में स्थान दिया वहीं दूसरी ओर युग की गंभीर जीवन व्यवस्था तथा स्वानुभूतिपरक आध्यात्मिक तत्वों को भी बड़ी तन्मयता के साथ काव्य में व्यक्त किया ।

(२) शिल्पगत

आधुनिक युग हिन्दी साहित्य का गौरवशाली तथा प्रतिभा सम्पन्न युग माना जाता है, इस युग में काव्य-साहित्य का भाव तथा अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त विकास हुआ । तद्युगीन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप काव्य के विषय-परिवर्तन में जो प्रतिक्रिया हुई उसका प्रभाव अभिव्यंजना प्रणाली पर पड़ना नितान्त स्वाभाविक था । इस युग के काव्य का शिल्प-पक्ष उतना ही सशक्त एवं समृद्ध परिलक्षित होता है जितना कि भाव-पक्ष ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के अभ्युत्थान काल (भारतेन्दु-युग) में ही कवियों ने अपने पूर्ववर्ती रीतिकालीन कवियों से भिन्न काव्य के शिल्प

१- प्रसाद का काव्य : डॉ० प्रेमशंकर, पृ० १७-१८

विधायक तत्वों का विधान प्रारंभ कर दिया था । भारतेन्दु-युग में काव्य-निरूपण में जो परिवर्तन हुए उसके परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि काव्य-शिल्प के नवीन तत्व अपनी शैशवावस्था में आ गए थे । इस प्रकार भाषा-शैली तथा अलंकरण में परिवर्तन होने लगे थे, फिर भी इनकी अभिव्यंजना प्रणाली पूर्णतः रीतिकालीन शिल्प-प्रतिमानों से भिन्न नहीं हो सकी थी । इसी युग में ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ीबोली का रूप भी सामने आया, इस उर्दू मिश्रित खड़ीबोली में गम्भीर भावाभिव्यक्ति की क्षमता अवश्य नहीं थी, पर भाषा के क्षेत्र में एक परिवर्तन तो हुआ ही । भारतेन्दु युग में फारसी की बहरों तथा गजलों के अतिरिक्त बंगला के पयार छन्द का समावेश भी काव्य-साहित्य में हुआ । परम्परागत छन्दों के साथ इन नूतन छन्दों का प्रचलन भी इस युग में मिलता है । अलंकारों के बोझ से कविता को हल्का करने का प्रयास भी किया गया और अन्योक्ति तथा व्यंग्य आदि का सहारा लेकर कथन को भावाभिव्यंजक बनाया गया ।

भारतेन्दु युग में जो परिवर्तन प्रारंभ हुए थे उनको परिमार्जित रूप देकर आगे विकसित करने का श्रेय द्विवेदी युग को है । द्विवेदी युग में आकर भाषा का स्वरूप निश्चित हो गया, समस्त त्रुटियों का परिहार कर खड़ीबोली को शुद्ध, परिमार्जित ,सशक्त, संतुलित, व्यवस्थित एवं भावाभि-व्यंजकी बनाकर प्रतिभाशाली पद पर आसीन किया गया । शुद्ध व्याकरणयुक्त काव्य रचना की ओर कवियों का ध्यान आकर्षित किया गया ; समुचित पद योजना तथा सार्थक विषयानुकूल शब्द चयन पर विशेष बल दिया गया ।

भाषा-परिमार्जन के साथ-साथ नवीन छन्दों के प्रयोग पर भी विशेष बल दिया गया । द्विवेदी जी के शब्दों में " दोहा , चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका, कवियों को चाहिए कि ------------ और छन्द भी वे लिखा करें। हम ये नहीं चाहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिये जाएं । हमारा अभिप्राय यह है कि इनके साथ-साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किए गए वृत्तों में से

दो चार उपयोगी वृत्तों का भी हिन्दी में प्रचार किया जाए । इन वृत्तों में द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि कुछ ऐसे हैं जिनका प्रचार भाषा में होने से काव्य की शोभा बढ़ेगी ।[1] द्विवेदी जी ने इसके अतिरिक्त यह भी सुझाव दिया कि " पदान्त में अनुप्रास हीन छन्द भी भाषा में लिखे जाने चाहिए।[2] द्विवेदी जी के इस सुझाव के परिणामस्वरूप उनके युग में ही कविता के अन्त्यानुप्रास के निर्वाह की पद्धति टूटने लगी और पदान्त की अनुप्रासहीनता कवियों द्वारा प्रारंभ हो गई । द्विवेदी जी का यह कहना था कि " जैसे समय-विशेष में राग-विशेष के गाए जाने से चित्त अधिक चमत्कृत होता है वैसे ही वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करनेवाले को अधिक आनन्द मिलता है ।[3]

काव्य में भाषा , छन्द के साथ-साथ व्यापक स्तर पर अप्रस्तुत-विधान का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ । इस युग में अप्रस्तुत -योजना को काव्य-संरचना के लिए अनिवार्य तो माना गया किन्तु उसे काव्य में सर्वोपरि स्थान नहीं दिया गया । काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए पाश्चात्य-ढंग के नूतन अलंकारों-मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, शब्द-ध्वनन, विरोधाभास आदि का विधान भी काव्य में किया गया ।

द्विवेदी युग में ही शिल्प विधि के उन तत्वों के प्रति जागरूकता दिखाई पड़नेलगी थी जो आज की काव्यालोचना में अत्यधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं । प्रतीक और बिम्ब विधान भी इस युग के काव्य में मिलता है । प्रतीकों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति में गुप्त जी को विशेष सफलता मिली है । प्रतीक की तुलना में बिम्ब-विधान को अधिक महत्ता दी गई । अधिकांश कवियों की रचना में बिम्ब प्रयोग ही मिलता है । हरिऔध के प्रिय प्रवास का प्रारंभ ही बिम्ब विधान से हुआ है । इसके अतिरिक्त काव्य-शिल्प के अन्य प्रति का

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी : सरस्वती, जुलाई, १९०१ ।

२- महावीर प्रसाद द्विवेदी : (कवि कर्तव्य) रसज्ञ रंजन, पृ० १६ ।

३- वही, पृ० १४ ।

विधान भी इस युग के काव्य में द्रष्टव्य है ।

द्विवेदी युग में ही हुए काव्य के बहुमुखी विकास से साहित्य को एक नई दिशा मिली । विषय तथा शिल्प परिवर्तन के साथ ही काव्यालोचन की दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ । इन सब के अतिरिक्त नये काव्य-रूप भी इस समय विकसित हुए । द्विवेदी युग ने पूर्ववर्ती काव्यधारा के परिमार्जन एवं परिष्करण के साथ ही परवर्ती कवियों के लिए प्रशस्त भूमिका का निर्माण भी किया ।

द्विवेदी युग की काव्य-विशिष्टताओं को ग्रहण ग्राह्य एवं समृद्ध बनाने का कार्य आगे चलकर प्रसाद और निराला से सम्पन्न हुआ । महाकवि प्रसाद और निराला प्रमुखत: छायावाद युग के कवि हैं और यह युग आधुनिक हिंदी साहित्य का सब से समृद्ध युग है । इन कवियों ने काव्य को विषय की दृष्टि से गंभीर और व्यापक तो बनाया ही, साथ ही अभिव्यंजना पक्ष को भी परिष्कृत बनाया। इनके अभिव्यंजना पक्ष के सौन्दर्य सौष्ठव को महत्त्व देते हुए शुक्ल जी ने छायावाद के दोनों अर्थों में से शिल्पगत अर्थ (शैली प्रधान अर्थ) पर अधिक जोर दिया है ।उनके अनुसार[1] छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नहीं । इसमें भावावेश की आकुल-व्यंजना, लाक्षणिक-वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध-चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी । अन्तत: यह कहा जा सकता है कि इस युग के प्रमुख कवि प्रसाद,पंत,निराला,रामकुमार वर्मा, महादेवी आदि ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्त निरूपण-प्रणाली का विरोध करते हुए भाषा-शैली को सरल तथा सहज बनाने और अभिव्यंजना-सौष्ठव को सुपुष्ट करने का गुरुतर कार्य सम्पन्न किया । इन कवियों ने काव्य में भावानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए अर्थ गाम्भीर्य,नाद,शब्द-संगति,अलंकृति,उक्ति-वैचित्र्य, प्रतीकात्मकता तथा बिम्ब आदि का आश्रय लिया । अगले अध्यायों में शिल्प संबंधी इन सभी उपकरणों का यथास्थान विस्तृत विवेचन किया जाएगा जिसके आधार पर प्रसाद और निराला की कृतियों के शिल्प-विधान का तुलनात्मक अध्ययन हमारा अभीष्ट है ।

१- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृ० ६०३ ।

अ ध्या य - ३

(क) काव्य-रूप

(ख) प्रसाद और निराला की काव्य-रूप संबंधी मान्यताएँ

(क) काव्य-रूप

(१) तात्त्विक विवेचन

स्वरूप और परिभाषा : तात्त्विक दृष्टि से मानसी सृष्टि या हृदयगत आंतरिक -सृष्टि काव्य है, किंतु व्यावहारिक दृष्टि से शब्दार्थ की मूर्त-गोचर अभिव्यक्ति काव्य-रूप है। "रूप" तत्व पर विचार करते समय पाश्चात्य विचारक अरस्तू की यह धारणा महत्वपूर्ण प्रतीत होती है कि "रूप" किसी वस्तु के अस्तित्व का वह आभ्यंतर कारण है जिसके द्वारा उस वस्तु के उपादान को आकार प्रदत्त होता है।[१] अत: वह उपादान तत्व जिसमें कवि की अनुभूति की अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण कौशल अन्तर्मुक्त होकर आकार प्राप्त करता है,काव्य-रूप है।[२] हिंदी में अंग्रेजी शब्द फॉर्म के पर्याय के रूप में व्यवहृत शब्द "रूप" से तात्पर्य उन समस्त तत्वों से पूरित आकार-प्रकार तथा रचना तत्व से है जिससे उस रचना विधान के सूक्ष्म एवं स्थूल गुणों का निश्चयात्मक बोध होता है। विशिष्ट अर्थ में रूप भले ही आकृति मात्र हो, परन्तु काव्य के सन्दर्भ में व्यापक स्तर पर "आकृति" से आशय उन समस्त तत्वों के एक ऐसे विशिष्ट संघटन से है जो कवि की सर्जनात्मक प्रक्रिया में सहायक होकर कृति के इन्द्रियगोचर होने में अपना योग देते हैं। इस प्रकार "रूप" कृति के बाह्य और आंतरिक तत्वों को अखंडता में संघटित करता है। अत: काव्य प्रसंग में रूप का सीधा अर्थ है कवि की अनुभूति की मूर्त छंदोबद्ध अभिव्यक्ति।[३] काव्य रूप कवि के मानसिक एवं भावनात्मक बिम्बों का वह संघटित आकार है जो भाषा शैली और छन्द में आबद्ध होकर मूर्तरूप में सहृदय के मानसिक चक्षु में रूपायित हो सके। अतएव संकुचित अर्थ में काव्य-रूप जहां काव्य-शिल्प की

१- साहित्य कोश, भाग १, पृ० ६२१।

2- These thoughts and experiences which are put in different ways in different poems of the poet we call that particular way their 'Form' or Poetical Form.

Form and Style in poetry - W.P.Ker, p.97.

3- The commonest meaning of 'Form' in poetry is perhaps that of metrical pattern or frame.

Ibid. p. 95.

शैलीगत अथवा आकारगत विशिष्टताओं तक ही सीमित है वहाँ ही व्यापक अर्थ में काव्य रूप सम्पूर्ण कृति के वैशिष्ट्य का पर्याय है ।

हिंदी में काव्य-रूप जैसे अनेक शब्दों का प्रचलन है यथा-काव्य विधा, काव्य कोटि, रूप विधा तथा रचना विधा आदि किंतु काव्य-विधा तथा काव्यरूप शब्दों का अपेक्षाकृत अधिक प्रचलन है । इनमें अर्थ की दृष्टि से न्यूनाधिक वैषम्य भी है । काव्य रूप से आशय जहाँ रचना प्रणाली से लिया जाता है वहाँ काव्य-विधा से प्रकार अथवा भेद का अर्थ लिया जाता है फिर भी ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के व्यंजक प्रतीत होते हैं, क्योंकि कवि अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए जिस रचना प्रणाली को स्वीकार करेगा उसी के अनुरूप उसकी कृति भी अपना रूप ग्रहण करेगी और इस प्रकार काव्य-रूप तथा काव्य-विधा में कोई वैषम्य नहीं रह जाता । अत: काव्य रूप के समानधर्मी सभी शब्द अपने विशिष्ट अर्थ में भले ही पूर्णता को प्राप्त करने के लिए विभिन्न पक्षों का आश्रय लेकर उन्हें महत्ता प्रदान करते हों, किंतु सामान्य अर्थ में ये सब एक ही तथ्य को व्यंजित करते हैं ।

इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि वस्तु और रूप का पारस्परिक तारतम्य क्या है ? रवीन्द्र नाथ ने वस्तु और रूप के एकत्व में ही कलात्मक साहित्य की पूर्णता को स्वीकार किया है रूप और वस्तु अभिन्न हैं, एक दूसरे से पृथक हो जाने पर उनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता ।[1] विषय एवं वस्तु की भित्ति पर ही काव्य रूप के सुदृढ़ स्तम्भों का निर्माण संभव हो सकता है । काव्य रूप को वस्तु के अनुकूल ही अपना रूप सौष्ठव या कलात्मक परिधान ग्रहण करना पड़ता है । वस्तु के अनुकूल ही कवि की अभिव्यक्ति रूप ग्रहण करती है ।[2] वस्तु और आकार एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकते।कोई वस्तु

---

1. But when they are indissolubly one, then they find their harmonies in our personality, which is an organic complex of matter and manner ".
   Tagore , Personality, p. 20.

2. Form is organic and the needs of a subject create their own special means of construction and expression.
   Robin Skelton : The poetic pattern, ;. 54.

आकारहीन नहीं हो सकती और न आकार को वस्तु से अलग किया जा सकता है।[१] भावनात्मक या मानसिक वस्तु की मूर्त अभिव्यक्ति से जो विशिष्ट प्रकार की रूपरेखा निर्मित होती है उसे ही काव्य-रूप की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

काव्य को रूपाकार प्रदान करने में युग परिवेश तथा कवि-व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ता है जो विषय तथा शिल्प से अलग काव्य-रूप के सूक्ष्म अन्तर को व्यंजित करने में सहायक होता है। प्राय: अशान्त एवं अव्यवस्थित युग-परिवेश में कवि की मूर्त अभिव्यक्ति विशृंखल एवं वैविध्यपूर्ण होती है, जबकि शांत एवं स्थिर क्षणों की काव्याभिव्यक्ति सुमधुर, भावपूर्ण, सरस हृदयस्पर्शी, गंभीर कोमल तथा सहज ग्राह्य होती है। काव्य सरल या जटिल जैसा भी हो उसमें यदि अधिक नहीं तो आंशिक रूप से ही कवि व्यक्तित्व की धूमिल छाया अवश्य पड़ती है। कवि के स्वभाव, जन्मजात संस्कार, दिनचर्या तथा उसके परिस्थिति-जन्य व्यक्तित्व का प्रभाव काव्य की सृजन-प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पड़ता है। प्रत्येक कविता के सौन्दर्य बोध का स्वरूप भी विशिष्ट होता है। वह कविता के रचनातंत्र एवं रागात्मक संचेतना की अनिवार्य प्रतिक्रिया होता है जिसमें ऐतिक अनुबंध एवं जीवन मूल्य किसी न किसी स्तर पर अवश्य गुंथे रहते हैं।[२]

काव्य रूप को साकार करने का एक मात्र माध्यम भाषा है। भावोद्भवकारिणी शक्ति से परिपूर्ण काव्य भाषा काव्य रूप से उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार चित्र से रंग, रेखा आदि। काव्यरूप को आकार प्रदान करने वाली कलात्मक काव्य भाषा प्राय: छन्दोबद्ध होती है। कवि को अपनी अनुभूति को काव्यात्मक रूप प्रदान करने के लिए छन्दों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है और इन छन्दों को वह अपने भाव तथा विषय के अनुकूल एक सुनिश्चित आकार प्रदान करता है। कवि द्वारा निर्मित इसी आकार को काव्यरूप की संज्ञा दी जाती है।

3774-10
2202

१- डा० गुलाब राय : सिद्धांत और अध्ययन, पृ० ८६।

२- सुरेश शर्मा : काव्य शिल्प के आयाम, पृ० १५६।

छन्द तुक, रस सिक्त, भाववाहिनी भाषा से परिपूर्ण काव्य-रूप के सौन्दर्य का प्रमुख प्रसाधन अप्रस्तुत योजना है । इसके माध्यम से कवि की अनुभूति सहृदय के मन-मस्तिष्क को सहज ढंग से आकर्षित कर लेती है किंतु काव्य रूप को प्रस्तुत करनेवाले ये सभी प्रतिमान काव्य के अंगमात्र हैं पूर्णत: काव्यरूप नहीं ।

कविता न केवल भाषा है, न केवल भाव है, न केवल लय है, न केवल प्रस्तुत - अप्रस्तुत का संयोजन है अपितु इन समग्र तत्वों का समन्वीकरण ही उसका स्वरूप है जिसे व्यावहारिक शब्दावली में काव्य रूप की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । इस प्रकार काव्यरूप कवि की एकांगी रचना न होकर समग्र आवश्यक तत्वों की समन्विति है । ये समग्र तत्व काव्य को एक ही युग की अन्य कृतियों से भिन्नता प्रदान कर उन्हें निश्चित रूप देने में सहायक होते हैं, साथ ही ये काव्यरूप के मापदण्ड भी होते हैं । साकेत, कामायनी, प्रियप्रवास आदि एक ही युग के महाकाव्य होते हुए भी इसी कारण एक दूसरे से रूपाकृति में भिन्न हैं । यही बात नायक कृष्ण की मधुर लीला का गुणगान करनेवाले विभिन्न कवि सूरदास, नन्ददास, मीरा, रसखान, रत्नाकर आदि की मुक्तक रचनाओं में भी दृष्टव्य है । अत: यह निश्चित है कि प्रत्येक कवि की रचना का अपना एक निश्चित रूपाकार होता है, चाहे वह शास्त्रानुमोदित-विधान में आबद्ध कृति हो, चाहे महाकाव्य, प्रबन्धकाव्य, मुक्तक, प्रगीत आदि कोई भी रचना-विधान हो । अतएव एक काव्य कृति का आकार सदैव दूसरी काव्य कृति से भिन्न हुआ करता है लेकिन प्रत्येक कृति का एक रूप होता अवश्य है ।[१]

भाव, भाषा, लय, अप्रस्तुत-विधान का सन्तुलित एवं सामंजस्यपूर्ण मधुर विन्यास काव्य रूप के सौन्दर्य का विधायक कहा जा सकता है । संतुलन सामंजस्य, वैविध्य, वैचित्र्य के अनुकूल ही काव्यरूप को आकार प्राप्त होता है और काव्य में ये उपकरण एक ऐसी अखण्ड अन्विति में संघटित हो जाते हैं कि

---

1. While no one pattern is common to all poetry ; all poetry possesses a pattern.

Robin Skelten : The Poetic Pattern, p. 55 .

उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता । काव्य के समस्त उपकरण समात्म-भाव की स्थिति में काव्य के सौन्दर्य को उसी प्रकार रूपायित करते हैं जिस प्रकार रूप, शील, लावण्य, माधुर्य आदि गुणों से युक्त पंचतत्व रचित पार्थिव शरीर आत्मा को आकृति प्रदान कर सजीव बनाते हैं । इस प्रकार काव्य रूप अभिव्यंजना शिल्प का पर्याय न होकर अपने में सार्थक एवं महत्वपूर्ण एक व्यापक उपकरण है । अभिव्यंजना के विभिन्न तत्वों की अपेक्षा साहित्यशास्त्र में रूप का विवेचन कम हुआ है जबकि यही तत्व इन विभिन्न उपकरणों को एक सूत्र में संयोजित कर उन्हें आकार प्रदान करता है । कवि जब भी अपने मानसी बिम्ब को भाव जगत से तादात्म्य स्थापित कर आकर्षक रूप में व्यक्त करता है तब वह अपनी काव्यकला की सार्थकता इसी में मानता है कि उसकी स्वानुभूति का आनन्द सहभागिता सहृदय प्राणी मात्र को, और यह तभी संभव हो सकता है जब कवि की आत्मानुभूति को समर्थ रूपाकृति प्राप्त हो । काव्य-रूप कवि द्वारा निर्योजित विभिन्न काव्यात्मक तत्वों को समन्वित कर कवि के संयमित प्रतिभा को संगठित करनेवाला वह व्यापक तत्व है जिसकी उपेक्षा काव्य में कदापि नहीं की जा सकती । अतएव काव्य के विभिन्न तत्वों का समन्वित प्रयोग ही काव्य-रूप है ।

(२) व्यावहारिक विवेचन

(क) भारतीय काव्य-शास्त्र में निरूपित काव्य भेद : काव्य-रूप के उक्त तात्त्विक विवेचन के उपरान्त उसके व्यावहारिक पक्ष पर दृष्टिपात करना आवश्यक है । व्यावहारिक दृष्टि से "रूप" शब्द प्रकार अथवा प्रभेद के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस दृष्टि से भारतीय आचार्यों ने काव्य के अनेक भेद किये हैं ।

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य भामह ने छठवीं शती में सर्वप्रथम काव्य के दो भेद किये - गद्य और पद्य । फिर भाषा और विषय के आधार पर काव्य-भेदों की चर्चा करते हुए उन्होंने काव्य के सर्गबन्ध (महाकाव्य)

अभिनेयार्थ (नाटकादि), आख्यायिका और कथा ये चार प्रबन्ध काव्य तथा अनिबद्ध (मुक्तक) को मिलाकर कुल पाँच भेद किये ।[१]

दण्डी ने सर्वप्रथम गद्य, पद्य और मिश्र अर्थात् चम्पू त्रिविध भेद किये । फिर पद्य काव्य के मुक्तक कुलक, कोष, संघात तथा सर्गबन्ध (महाकाव्य) भेद किये ।[२] गद्य काव्य के कथा तथा आख्यायिका नामक दो भेद किये और मिश्र के नाटकादि भेद किये ।

वामन ने काव्य को अनिबद्ध (मुक्तकादि) और बद्ध (खण्डकाव्य, महाकाव्य) दो रूपों में विभक्त किया[३] और फिर निबद्ध

१- (क) शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा ।।१।१६ ।।

(ख) सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे
अनिबद्धं च काव्यादि तत्पुनः पंचधोच्यते ।।१।१८ ।।

(ग) अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोक मात्रादि तत्पुनः ।
युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या ।।१।३० ।।
काव्यालंकार

२- (क) गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्
पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा ।।१।११ ।।

(ख) गद्य पद्य मयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ।।१।३१।।

(ग) मुक्तकं कुलकं कोशः संघात इति तादृशः
सर्गबन्धांगरूपत्वादनुक्तः पद्य विस्तारः ।।१।१३ ।।
काव्यादर्श

३- तदिदं गद्यपद्यरूपं काव्यमनिबद्धं निबद्धं च ।
क्रमयोः प्रसिद्धत्वाल्लक्षणं नोक्तम् ।। १।३।२७ ।।
काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

(प्रबन्ध) काव्य है, जिसे उन्होंने सन्दर्भ काव्य कहा है, अन्तर भेदों का भी वर्णन किया है । आगे चलकर १०वीं शती में राजशेखर ने मुक्तक और प्रबन्ध दोनों काव्यों के पांच-पांच भेद किये जिनमें शुद्ध चित्र, कथोत्थ आदि का उल्लेख किया है ।[१] आनन्दवर्द्धनाचार्य ने भी मुक्तक और प्रबन्ध दो प्रधान भेदों की चर्चा की और मुक्तक के अन्तर्गत सन्दानितक, विशेषक, कलापक और कुलक आदि की चर्चा कर प्रबन्ध के कुछ रूपों यथा-परिकथा, खण्ड कथा, सकलकथा, सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, आख्यायिका तथा कथा आदि की चर्चा की ।[२]

पूर्ववर्ती आचार्यों के आधार पर आगे चलकर तेरहवीं शती में साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने काव्य के दृश्य एवं श्रव्य - ये दो भेद किये । उन्होंने दृश्य काव्य को " रूपक " कहकर सम्बोधित किया और उसके दस प्रमुख भेद किये । उपरूपक की चर्चा भी उन्होंने इसी प्रसंग में की और उसके १८ भेद किये । आचार्य विश्वनाथ ने श्रव्य काव्य के तीन भेद किये - गद्य, पद्य तथा गद्य-पद्य (चम्पू) । पद्य के पुन: दो भेद किये मुक्तक और प्रबन्ध । मुक्तक में सन्दानितक आदि का उल्लेख किया और प्रबन्ध के तीन भेदों की चर्चा की - प्रथम- सर्गबद्ध, पंचसन्धियुक्त, विशिष्ट गुण से पूर्ण विस्तारमय एक कथात्मक महाकाव्य, द्वितीय-काव्य के एक अंश का वर्णन होनेवाली कथा " एकदेशानुसारी " खण्ड काव्य और तृतीय कथा तथा आख्यायिका जिसमें गद्यात्मक कथा के बीच कहीं कहीं छन्दों का प्रयोग तथा पद्यमय नमस्कार आदि

१- मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन । तावपि प्रत्येकं पञ्चधा । शुद्ध:, चित्र: , कथोत्थ: , संविधानकभू:, आख्यानकवांश्च । तत्र मुक्तेतिवृत्त: शुद्ध: । स एव सप्रपञ्चश्चित्र: । वृत्तेतिवृत्त: कथोत्थ: । सम्भावितेतिवृत्त: संविधानकभू । परिकल्पितेतिवृत्त: आख्यानकवान् ।

काव्य मीमांसा (कविरहस्यम्) नवम अध्याय, पृ० १२३ ।

२- यत: काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं संस्कृत प्राकृतापभ्रंशनिबद्धं, सन्दानितक-विशेषक, कलापक-कुलकानि , पर्यायबन्ध:, परिकथा, खण्डकथासकलकथे , सर्गबन्धो, अभिनेयार्थं, आख्यायिकाकथे इत्येवमादय: ।

ध्वन्यालोक: ।। ३।७ ।।

का वर्णन होता है । गद्य-पद्य (चम्पू) काव्य के प्रसंग में उसके विशिष्ट रूप विरुद की चर्चा करते हुए अन्त में करम्भक का उल्लेख किया ।[1]

संस्कृत आचार्यों द्वारा निरूपित उपर्युक्त काव्य- प्रभेदों में दृश्य-काव्य एवं श्रव्य-काव्य भेद सर्वमान्य हैं और दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटकादि अभिनेय काव्य-रूपों का वर्णन भी युक्ति संगत है । श्रव्य काव्य के रचना एवं शैली के आधार पर तीन भेद हुए, जिनमें गद्य, पद्य एवं मिश्र की परिगणना की जाती है । पद्य शैली में प्राप्त काव्य रूपों के दो प्रमुख भेद किये गए : निबद्ध तथा अनिबद्ध । तदुपरान्त अनेक उपभेदों की भी चर्चा की गई है - निबद्ध (प्रबन्ध) काव्य में महाकाव्य , एकार्थ काव्य , खण्डकाव्य, कथानिबन्ध । चम्पू तथा मुक्तक का छन्दों की संख्या के आधार पर नामकरण उनके अनेक प्रभेदों की चर्चा की गई ।

मुक्तक के गेय या प्रगीतात्मक रूप का उल्लेख तथा उसके स्वरूप आदि का स्पष्ट विवेचन तो भारतीय आचार्यों ने नहीं किया, फिर भी भामह ने रीति-विवेचन के प्रसंग में इस प्रभेद की ओर संकेत अवश्य किया है ।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि काव्य में गेयतत्व को भी महत्व दिया गया था । संस्कृत आचार्यों

१- (क) छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते ।।६।३१४।।

(ख) कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् ।
सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।।६।३१५।।

(ग) खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च ।
कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः ।।६।३२९।।

(घ) भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम् ।
एकार्थ प्रवणैः पद्यैः सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ।। ६।३२८।। साहित्यदर्पण ।

(ङ) गद्य पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते ।।
साहित्यदर्पण ; पृ० ३२४-३२७ ।
मोतीलाल बनारसीदास, १९५६ ।

२- अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजु कोमलम्
भिन्नं गेयमिवेदं तु केवलं श्रुतिपेशलम् ।। १।३४।।
काव्यालंकार

ने जो काव्य-विवेचन किया है उससे निश्चित हो जाता है कि मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध को अधिक महत्व दिया है और प्रबन्ध में भी महाकाव्य को विशेष महत्व प्रदान किया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्री अरस्तू ने भी दुखान्त को सर्वोपरि मानकर प्रबन्धात्मकता को विशेष महत्व दिया। आधुनिक हिन्दी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी प्रबन्ध काव्य पर विशेष बल दिया है। इस प्रकार आरंभ से अब तक के साहित्य में प्रबन्ध काव्य को विशिष्ट रूप से उत्कृष्ट घोषित किया जाता रहा है। भारतीय आचार्यों का काव्य-विवेचन सूक्ष्म एवं तर्कयुक्त होते हुए भी वस्तुपरक ही रहा है जिसका एक कारण कृतिकार के व्यक्तित्व की उपेक्षा भी है।

<u>(ख) आधुनिक हिन्दी आचार्यों द्वारा निरूपित काव्य-भेद :</u> आधुनिक साहित्य में ऐसे काव्य-ग्रन्थों का प्राय: अभाव है जिनमें संस्कृत ग्रंथों की तरह काव्य-भेद निरूपण किया गया हो। आधुनिक हिन्दी मनीषियों ने संस्कृत तथा पाश्चात्य साहित्य का आधार लेकर काव्य-रूपों की विवेचना अवश्य की है किंतु स्वतंत्र रूप से नहीं। अधिकांश प्राप्त सामग्री काव्य के अन्य विषयों के विवेचन के प्रसंग से मिलती है।

बाबू श्याम सुन्दर दास ने काव्य विभाजन दो रूपों में किया। उनका कथन है कि " कविता को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं - एक तो वह जिसमें कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करके अपने अनुभवों तथा भावनाओं से प्रेरित होता तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूंढ निकालता है; दूसरा वह जिसमें वह अपनी अन्तरात्मा से बाहर जाकर सांसारिक कृत्यों और रागों में पैठता है और जो कुछ ढूंढ निकालता है, उसका वर्णन करता है। पहले विभाग को भावात्मक प्रधान अथवा आत्माभिव्यंजक कविता कह सकते हैं दूसरे को हम विषय प्रधान अथवा भौतिक कविता कह सकते हैं।"[1] इस प्रकार बाबू श्याम सुन्दर दास ने कविता के दो भेद किये पहला भावात्मक कविता दूसरा बाह्य विषयात्मक कविता।

आचार्य शुक्ल ने रूप की दृष्टि से कोई विभाजन नहीं

१- साहित्यालोचन : श्याम सुन्दर दास , पृ० ६५ ।

किया, किंतु उनके इतिहास ग्रंथ में विभिन्न काव्य-रूपों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट अवश्य हुआ है। उन्होंने प्रबन्ध, मुक्तक और वीर गीतों का उल्लेख किया है -

" इस वीर गाथा को हम दो रूपों में पाते हैं- मुक्तक रूप में और प्रबन्ध रूप में भी।"[१] उन्होंने वीरगाथाओं के दो रूप बताये " प्रबन्धकाव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों के रूप में।[२]

शुक्ल जी ने गीत को मुक्तक का एक भेद मात्र माना है - कृष्णोपासक कवियों ने मुक्तक के एक विशेष अंग गीत-काव्य की ही पूर्ति की------।[३]

शुक्ल जी ने कथात्मक प्रबंध काव्यों से भिन्न वर्णनात्मक प्रबंध काव्यों की भी चर्चा की है ---- कथात्मक प्रबंधों से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने में आती है जिसे हम वर्णनात्मक प्रबन्ध कह सकते हैं। दानलीला, मानलीला आदि ---- इसी प्रकार की रचनाएं हैं।[४]

प्रबन्ध काव्य के अन्य रूप - खण्डकाव्य और लघु कथा रूपों का वर्णन भी शुक्ल जी ने किया है - " मिलन" पथिक"" स्वप्न" नामक इनके तीनों खण्डकाव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्मपथ पर चली है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः आता है।[५] आधुनिक साहित्य में काव्य विधान के नूतन ढंग की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि" नवीन धारा के आरंभ में छोटे छोटे पद्यात्मक निबन्धों की परंपरा भी चली जो प्रथम उत्थानकाल के भीतर तो बहुत कुछ भाव प्रधान रही, पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृत्तात्मक होने लगी।[६]

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३०
२- वही, पृ० ३१
३- वही, पृ० १३६
४- वही, पृ० २६८
५- वही, पृ० ५७८
६- वही, पृ० ५५०

प्रगीत शैली की ओर भी शुक्ल जी ने संकेत किया है। प्रगीत को उन्होंने प्रगीतमुक्तक ही कहा है -" कला- कला की पुकार के कारण योरूप में प्रगीत मुक्तकों (Lyrics) का ही अधिक चलन देखकर यहाँ भी उसी का ज़माना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लम्बी कविताएँ पढ़ने की किसी को फ़ुरसत कहाँ जिनमें कुछ इतिवृत्त भी मिला रहता हो। अब तो विशुद्ध काव्य की सामग्री जुटाकर सामने रख देनी चाहिए जो छोटे छोटे प्रगीत मुक्तकों में ही संभव है।"[१]

आचार्य शुक्ल के इतिहास ग्रंथ में काव्य-रूपों पर तत्र-तत्र जो विचार उपलब्ध होते हैं उनसे काव्य-रूप के लक्षण तो नहीं किन्तु काव्य-भेदों के परिचयात्मक संकेत अवश्य मिलते हैं जैसे मुक्तक काव्य, प्रबन्धकाव्य, खण्डकाव्य तथा प्रबन्ध में भी कथात्मक प्रबन्ध और उससे भिन्न वर्णनात्मक प्रबन्ध का भी वर्णन मिलता है, साथ ही वीर गीत, गीत और प्रगीत का भी उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु उनका दृष्टिकोण इतिहासपरक था इसलिए काव्य-रूप का स्पष्ट विवेचन उनके ग्रंथ में नहीं मिलता।

पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी काव्य के भेद तीन प्रकार से किये : शैली की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से और बंध की दृष्टि से। पुन: शैली की दृष्टि से उन्होंने काव्य के तीन भेद किये : गद्य, पद्य और चम्पू। अर्थ की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अधम तथा बंध की दृष्टि से प्रबन्ध और ~~निर्बंध~~ निर्बन्ध दो भेद किये। पद्य शैली में लिखी रचना के प्रबंध और निर्बन्ध रूप की व्याख्या करते हुए मिश्र जी ने बताया कि " जिस रचना में कोई कथा क्रमबद्ध कही जाती है वह 'प्रबन्ध-काव्य' कहलाती है। जिसमें कोई विशेष कथा नहीं होती और जो स्वच्छंद रूप से किसी पद्य या गद्यखण्ड के द्वारा किसी रस, भाव या तथ्य को व्यक्त करती है उस बंधहीन रचना को " निर्बन्ध" या " मुक्तक " कहते हैं। प्रबंध काव्य के तीन प्रकार देखे जाते हैं। एक तो ऐसी रचना होती है जिसमें पूर्ण जीवन वृत्त विस्तार के साथ वर्णित होता है। ऐसी रचना को महाकाव्य कहते हैं। जिस रचना में खण्ड जीवन महाकाव्य की ही शैली में वर्णित होता है, उसको खण्डकाव्य

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६०२।

कहते हैं । हिंदी में कुछ ऐसी रचनाएं भी देखी जाती हैं जिनमें जीवन वृत्त तो पूर्ण किया गया है, किंतु महाकाव्य की भाँति वस्तु का विस्तार नहीं दिखाई देता । ऐसी रचनाओं में जीवन का कोई एक पक्ष विस्तार के साथ प्रदर्शित करने का प्रयत्न देखा जाता है ------ इन्हें एकार्थ काव्य या केवल काव्य कहना चाहिए ।[1] उन्होंने खण्डकाव्य, महाकाव्य तथा एकार्थ काव्य को प्रबन्धकाव्य में अन्तर्भुक्त कर मुक्तक गीत एवं प्रगीत को निर्बन्ध के अन्तर्गत स्वीकार किया । " निर्बन्ध शैली के अन्तर्गत तीन प्रकार की रचनाएं देखी जाती हैं - मुक्तक, गीत और प्रगीत । छन्दोबद्ध मुक्तक और गीतों का प्रचलन तो बहुत प्राचीन काल से रहा है, किन्तु प्रगीतों की रचना अंग्रेज़ी साहित्य के " लिरिक्स " के ढंग पर बहुत थोड़े दिनों से हिन्दी में होने लगी ।[2]

काव्य-दर्पण के प्रणेता पंडित रामदहिन मिश्र ने भी न्यूनाधिक नवीन तथ्यों के मिश्रण से काव्य के अनेक भेद किये । संस्कृत काव्य-विभाजन की परिपाटी को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने सर्वप्रथम काव्य को दृश्य और श्रव्य रूपों में विभाजित किया और फिर श्रव्य काव्य को बन्ध के आधार पर विभाजित किया " बन्ध के भेद से श्रव्य काव्य के तीन भेद होते हैं - (१) प्रबन्ध काव्य (२) निबन्ध काव्य (३) निर्बन्ध काव्य ।[3] इसके उपरान्त प्रबन्ध-काव्य के लिए बताया कि " प्रबन्ध काव्य के तीन भेद होते हैं - (क) महाकाव्य (ख) काव्य और (ग) खण्डकाव्य ।[4] मिश्र जी के इस विभाजन में कुछ नूतनता का पुट मिलता है फिर भी इनके द्वारा दी गई " काव्य " नामक भेद की परिभाषा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के एकार्थ-काव्य के समकक्ष है । निबन्ध के विषय में मिश्र जी का विचार है कि " निबन्ध साधारणता का द्योतक है । कथात्मक व वर्णनात्मक कविता जो कई पद्यों में लिखी जाती है निबन्ध काव्य कहलाती है ।

१- वाङ्मय विमर्श : पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र , पृ० १३-१४ ।

२- वही, पृ० ३३ ।

३- काव्यदर्पण : पंडित रामदहिन मिश्र , पृ० २५६ ।

४- वही, पृ० २५६ ।

वह अपने कुछ पदों के भीतर ही सम्पूर्ण होती है।[1] उनके अनुसार निर्बन्ध के दो भेद हैं : (क) मुक्तक और (ख) गीत।[2] फिर गीत के विषय में उन्होंने कहा कि ये दो प्रकार के होते हैं (क) ग्राम्य और (ख) नागर।[3] मिश्र जी के इस विवरण में ध्यान देने योग्य आवश्यक बात यह है कि उन्होंने गीति काव्य को काव्य के प्रभेदों में न रखकर उसके स्वतंत्र स्वरूप का प्रतिपादन किया है और यह भी बताया कि गीति-काव्य विभिन्न प्रकार के होते हैं उनमें काव्य गीति, कथा गीति, शोक गीति, भावना गीति, आध्यात्मिक गीति आदि मुख्य हैं।[4]

बाबू गुलाब राय ने भी काव्य रूपों का विवेचन किया है। उन्होंने दृश्य और श्रव्य काव्य में बंध की दृष्टि से श्रव्य काव्य के दो भेद किये (१) प्रबन्ध और (२) मुक्तक। प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य होता है, मुक्तक में उस तारतम्य का अभाव रहता है।[5] प्रबन्ध काव्य के भी दो भेद किये : एक महाकाव्य, दूसरा खण्ड काव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है उसमें जीवन की अनेक रूपता दिखाई जाती है, खण्डकाव्य में किसी एक ही घटना को मुख्यता दी जाती है और इसी कारण उसमें एकदेशीयता रहती है।[6] मुक्तक के "स्फुट" और "संयुक्त-मुक्तक" दोनों प्रकारों का सम्यक्‌ विवेचन करने के पश्चात् मुक्तक काव्य के पाठ्य और गेय रूपों में विषय- प्रधान और विषयी - प्रधान दृष्टिकोण की सुन्दर समीक्षा भी प्रस्तुत की है।[7] प्रगीत और गीतकाव्य की अभिन्नता को अवश्य इन्होंने स्वीकार किया" प्रगीत काव्य के कई रूप हो सकते हैं (इसके आदि भी भेद हैं) किन्तु गीत इसका मुख्य रूप है।[8]

१- काव्य दर्पण : पंडित राम दहिन मिश्र, पृ० २५० ।

२- वही, पृ० २५०

३- वही, पृ० २५०

४- वही, पृ० २५५

५- काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय, पृ० ६०

६- वही, पृ० ६० ।

७- वही, पृ० ११६-१२०

८- वही, पृ० १२२

डा० शकुन्तला दुबे ने काव्य का विभाजन किया है । सर्वप्रथम उन्होंने काव्य के तीन भेद किये प्रबन्ध, अबन्ध और अन्याबन्ध ।[1] प्रबन्ध और अबन्ध भेद तो प्राचीन काल से चली आती हुई विभाजन परम्परा का ही प्रतीक है जिसे प्रबन्ध और मुक्तक काव्य रूप की संज्ञा दी गई है । तीसरे भेद अन्याबन्ध के विषय में उन्होंने बताया कि ऐसे काव्य रूप में प्रबन्ध और अबन्ध दोनों ही वर्गों के अन्यान्य भेदों की कुछ न कुछ विशेषताएं अवश्य मिलती है ।[2] डा० दुबे की यह धारणा अपने में ऐतिहासिक महत्व तो अवश्य रखती है किन्तु इस तीसरे विभाजन की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि प्राचीन समय से लेकर आज तक बन्ध के आधार पर ही काव्य के निबद्ध (प्रबन्ध) और अनिबद्ध (मुक्तक) रूपों की चर्चा होती रही है । अन्याबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत जिन काव्य रूपों को समाविष्ट किया गया है उन सभी रूपों का अन्तर्भाव निबद्ध और अनिबद्ध काव्य-भेद के अन्तर्गत हो जाता है । इस प्रकार डा० दुबे के तीसरे काव्य-प्रभेद अन्याबन्ध की धारणा अनुपयुक्त प्रतीत होती है ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में काव्य प्रभेदों की गणना अवश्य हुई है किन्तु उनमें मौलिकता का अभाव है । यूं तो हिन्दी आचार्यों ने काव्य-भेद की स्वतंत्र चर्चा की ही नहीं है, क्योंकि उस समय तक शास्त्र साहित्याचार्य वस्तुपरक दृष्टिकोण को त्यागकर व्यक्तिपरक हो चुके थे फिर भी जहां इन विद्वानों ने काव्य-भेद की चर्चा की है वहां प्राचीन काव्य-शास्त्र का आधार ही लिया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने जहां कहीं नवीन तथ्यों की विवरणात्मक व्याख्या की है, वहां उनके विवेचन में पाश्चात्य साहित्य का पुट भी मिलता रहा है । कारण उनका ध्येय काव्याचार्य बनना नहीं प्रतीत होता ।

<u>(ग) पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में निरूपित काव्य प्रभेद :</u> पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में रूप एवं विधान के आधार पर काव्य-विभाजन का कोई प्रयास नहीं किया गया।

१- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दुबे, पृ० २७ ।

२- वही, पृ० ४० ।

काव्य-विभाजन में वे रूप की अपेक्षा मूल दृष्टि को महत्व देते हैं । पाश्चात्य काव्य-विधान के मूल में निहित दो प्रमुख भावनाएं स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं एक - अन्तर्मुखी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अन्त: साक्ष्य के आधार पर स्वानुभूति को व्यंजित करने की प्रबल भावना । दूसरी बाह्य स्थितियों से प्रेरित होकर व्यष्टि की संकुचित भाव भूमि से हटकर समष्टि के व्यापक फलक आधार पर काव्य विधान की भावना । अतएव पाश्चात्य काव्य-विधान को इन प्रमुख प्रेरक भावनाओं के आधार पर अध्ययन की सुविधा के लिए दो वर्गों में विभक्त किया गया है ।

(१) आत्मपरक काव्य (Subjective Poetry)

जब कवि आत्माभिव्यंजन की भावना से उत्प्रेरित हो अपनी निजी अनुभूति को व्यंजित करने के लिए उन्मुख होता है तब आत्मपरक काव्य का सृजन होता है । इस कोटि की रचना में कवि का लक्ष्य बाह्य संसार न होकर घटना विशेष से प्रभावित अन्त:करण की सूक्ष्म भावना तथा मानसिक संवेदना का प्रकटीकरण होता है । आत्माभिव्यक्ति प्रधान काव्य में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता होती है । कवि का प्रधान उद्देश्य अपने भावों तथा विचारों को व्यक्त करना ही रहता है । इस कथन को यूं भी कहा जा सकता है कि विषयिगत काव्य या आत्मपरक काव्य का विषय कवि स्वयं होता है क्योंकि इसमें उसकी आत्मपरक भावना की ही व्यंजना निहित होती है । काव्य में आत्माभिव्यक्ति को कवि आत्म निवेदन रूप में या फिर अन्य पात्र के माध्यम से (जिसके साथ कवि अपना तादात्म्य स्थापित कर ले) प्रस्तुत करता है । इसमें कवि के भावों का सहज एवं स्वाभाविक प्रस्फुटन होता है । इस कोटि में प्रगीत मुक्तक अथवा वैयक्तिक निबन्ध आदि की परिगणना की जाती है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है भावावेश की स्थिति में अभिव्यंजित यह काव्य राग तत्व प्रधान होता है । इसका विषय सीमित होता है इसी से रसोद्रेक के लिए आत्म निवेदन में कवि की पूर्णतन्मयता अनिवार्य है । इसमें वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता होती है । आत्मपरक काव्य में कवि अपने भावों को

कलात्मक काव्यभाषा में व्यक्त करता है । इसमें प्रभावोत्पादकता और पूर्णता की दृष्टि के लिए भावों की स्पष्टता, गम्भीरता और सूक्ष्मता अपेक्षित है, साथ ही भाव, भाषा का सामंजस्य भी अनिवार्य है । इसकी भाषा, सरस, सरल, मधुर और सुकुमार तथा भावाभिव्यक्ति में समर्थ होनी चाहिए । भाव का सौन्दर्य पूर्ण चित्रांकन करने के लिए सुनियोजित शिल्प-पक्ष अनिवार्य है जिसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावाभिव्यक्ति की क्षमता भी निहित होनी चाहिए । निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है विषयी-प्रधान काव्य आत्मपरक काव्य है। इसका क्षेत्र कवि के आत्म-विश्लेषणात्मक भावों तक ही सीमित होता है ।

(२) विषयपरक काव्य (Objective Poetry)

इसमें वस्तु-तत्व की प्रधानता होती है, व्यक्ति की नहीं । अत: विषयपरक काव्य में कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी होती है । इसमें कवि द्रष्टा की भाँति अपने मन और मस्तिष्क में एक सन्तुलन स्थापित कर समस्त दृश्य जगत को विषय मानकर जिस सत्य का काव्य में उद्घाटन करता है उसमें जीवन के समस्त पक्ष सघनता के साथ व्याख्यायित होते हैं अर्थात् विषय प्रधान काव्य में कवि जीवन और जगत के जिस किसी पक्ष को काव्य में व्यंजित करता है उसकी समग्रता अथवा पूर्णता के लिए पात्र, देशकाल, घटना, वस्तु स्थिति तथा कार्य व्यापार आदि का विस्तृत विवेचन भी करता है । काव्य की इसी कोटि में प्रबन्ध काव्य की परिगणना की जाती है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है विषय प्रधान काव्य में कवि अपने अन्तर्मुखी भावों की अपेक्षा बहिर्मुखी भावों की समर्थ व्यंजना का प्रयास करता है । उसका दृष्टिकोण वैयक्तिक न होकर वस्तुपरक होता है । इसके नाम से स्पष्ट हो जाता है कि इसका विषय अपरिमित तथा व्यापक है, बाह्य जगत की व्यंजना होने से इसमें कार्य व्यापार की सघनता अनिवार्य हो जाती है । इसमें कवि जीवन और जगत का जो वर्णन करता है उसके मूल में कवि के निजी दार्शनिक भावों की व्यंजना भी निहित होती है । विषय प्रधान काव्य

का रूप प्रायः समाख्यानात्मक होता है, इसी से पश्चिम में इस काव्य कोटि को समाख्यान काव्य (Narrative Poetry) भी कहा गया है। व्यापक फलकाधार पर रचित इस कोटि के काव्यों का शिल्प-विधान भी समृद्ध तथा भव्य होता है। इस काव्य कोटि का विषय-चयन व्यापक क्षेत्र से गृहीत होने के कारण गम्भीर तथा उदात्त भावों से युक्त होता है। इसकी कल्पना के समस्त आयाम भी अधिक तीव्र, प्रखर, ओजमय, मधुर लालित्यपूर्ण, भावस्पर्शी तथा प्रसाद गुण युक्त होते हैं।

पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में उपलब्ध काव्य विभाजन की यह प्रक्रिया अपने में स्वतः पूर्ण होते हुए भी तर्क युक्त प्रतीत नहीं होती। कारण अनेकानेक ऐसी काव्य रचनाएं हैं जिनमें कवि की आत्मपरकता तथा बाह्य वस्तु संस्पर्शी भावाभिव्यक्ति का संगुम्फन एक साथ हुआ है। प्रायः ऐसे अनेक प्रगीतों का विधान हुआ है जिनमें बाह्य विषय वस्तु को ग्रहणकर विषयान्तरानुसार प्रस्तुत किया गया है और ऐसे भी कुछ प्रबन्ध-काव्य भी हैं जिनमें विषय-वस्तु की प्रधानता के साथ गीत तत्वों का समावेश भी मिल जाता है जैसे तुलसी का रामचरितमानस। इसलिए व्यक्ति तत्व और वस्तु तत्व को लेकर एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींच देना अधिक तर्क संगत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, कवि अपनी अन्तर्मुखी भावना तथा बाह्य-विषयानुभूति की क्षमता के अनुकूल सुनियोजित काव्यरूप की सर्जना स्वयं कर लेता है, किंतु कवि-हृदय के उत्ताल तरंगों के मध्य आविर्भूत अनेक भावाभिव्यक्ति को महत्व देकर यदि काव्य-विभाजन किया जाय तो काव्य के अनगिनत रूपों की संभावना और उसके प्रति अपवादों की कमी न होगी। अतः काव्य विवेचन को जटिलता से बचाने के हेतु किया गया यह विभाजन सुविधाजनक है।

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र में निरूपित काव्य-भेद सम्बन्धी मान्यताओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है, भारतीय और पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों में किसी विशिष्ट प्रकार का वैषम्य नहीं है। भारतीय काव्यशास्त्र में यदि प्रबन्ध के साथ मुक्तक काव्य की चर्चा की जाती है तो पाश्चात्य काव्य शास्त्र में प्रबन्ध के साथ प्रगीत का उल्लेख किया जाता है।

जहाँ तक प्रबन्ध काव्य के विधान एवं शिल्प-विन्यास का प्रश्न है, वह दोनों स्थानों में प्राय: समान है। मुक्तक काव्य और प्रगीत काव्य स्थूल रूप में भिन्न नहीं लगते किंतु सूक्ष्म वैचारिक पृष्ठभूमि पर एक दूसरे से परस्पर वैषम्य रखते हैं। मुक्तक वस्तुपरक काव्य है और प्रगीत भावपरक। मुक्तक की रचना कवि के प्रयास का प्रतिफलन है और प्रगीत उसके अन्त:स्फूर्त भावों का सहज उच्छलन मात्र है। मुक्तक की रचना चमत्कारजन्य है और प्रगीत की रचना भावोद्रेकपूर्ण है। इस प्रकार मुक्तक और प्रगीत काव्य का रूप विधान स्थूल रूप में एक होते हुए भी तात्त्विक रूप से भिन्न है।

पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में आत्मपरक काव्य में प्रगीत काव्य तथा उसके विभिन्न प्रकारों का विवेचन मिलता है और विषयपरक काव्य में महाकाव्य की परिकल्पना की जाती है जो काव्य-रूप के व्यावहारिक विवेचन में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है। भारतीय आचार्यों ने अनिबद्ध तथा निबद्ध काव्य के दो प्रमुख भेद किये जिसके अन्तर्गत प्रगीत मुक्तक महाकाव्य खण्डकाव्य आदि की चर्चा की है। इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य के काव्य प्रभेद में पर्याप्त समानता मिलती है। निश्चित रूप से किसी भी काव्य को एक ही रूपाकृति के अन्तर्गत नहीं बांधा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक काव्य कृति का अपना निजी रूप होता है जो कवि के भावनात्मक प्रयास एवं अभिव्यंजना शिल्प के अनुरूप आकार ग्रहण करता है। किंतु अध्ययन की सुविधा के लिए यह रूपभेद अनिवार्य हो जाता है।

(ख) प्रसाद और निराला की काव्य-रूप सम्बन्धी मान्यताएं -

काव्यरूप शब्द अपने अपरिमित क्षेत्र में सम्पूर्ण कृतित्व अथवा रचना प्रक्रिया के वैशिष्ट्य का द्योतक है और परिमित रूप में वह कृति के बाहरी ढांचे या बाह्य रूपाकार का वाचक है। प्रसाद जी ने अपने निबन्धों में काव्य रूप सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को भी प्रस्तुत किया है। वैसे, काव्यरूप सम्बन्धी सामान्य तत्वों पर प्रसाद जी की मूल विचारधारा उनकी " काव्यकला

तथा अन्य निबन्ध" नामक पुस्तक में प्राप्त हो जाती है।

प्रसाद जी ने काव्य के स्वरूप" की विवेचना करते समय अपने पूर्व की रीतिकालीन कलात्मकता तथा द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को ध्यान में रखकर वस्तु (अनुभूति) और रूप (अभिव्यक्ति) की व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने रूप और वस्तु की तुलना में वस्तु को अधिक महत्ता प्रदान की है, फिर भी काव्य-रचना में वस्तु तथा रूप में से किसी एक की एकांतिक स्थिति में काव्य की सजीवता के लुप्त प्राय हो जाने की आशंका भी व्यक्त की है। इसीलिए उन्होंने बताया कि" व्यंजना वस्तुत: अनुभूतिमयी प्रतिभा का स्वत: परिणाम है क्योंकि सुन्दर अनुभूति का विकास सौन्दर्यपूर्ण होगा ही। कवि की अनुभूति को उसके परिणाम में हम अभिव्यक्त देखते हैं।"[1] किंतु इसके साथ ही प्रसाद जी ने यह प्रश्न उठाया कि" हाँ, फिर एक प्रश्न स्वयं खड़ा होता है कि काव्य में शुद्ध आत्मानुभूति की प्रधानता है या कौशलमय आकारों या प्रयोगों की ?[2] इसका उत्तर भी उन्होंने तत्काल ही इन शब्दों में दिया" काव्य में जो आत्मा की मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है वही सौन्दर्यमयी और संकल्पात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है। वह आकार वर्णनात्मक रचना-विन्यास में कौशलपूर्ण होने के कारण प्रेय भी होता है। रूप के आवरण में जो वस्तु सन्निहित होगी वही तो प्रधान होगी ------- मैं तो कहूँगा कि यही प्रमाण है आत्मानुभूति की प्रधानता का।"[3] और इसीलिए अभिव्यक्ति सहृदयों के लिए अपनी वैसी व्यापक सत्ता नहीं रखती जितनी कि अनुभूति।"[4]

१- जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० २५।

२- वही, पृ० २५।

३- वही, पृ० २६।

४- वही, पृ० २७।

इस प्रकार आलोच्य कवि के अनुसार "रूप" अनुभूति का परिणाम है और इस अनुभूति की प्रेरणा आत्मा की संकल्पात्मक स्थिति " से होने के कारण रमणीय आकार में प्रकट होती है । अतएव रूप की उत्पत्ति वस्तु से होती है और इसी कारण उन्होंने रूप तथा वस्तु में वस्तु (अनुभूति) को प्राथमिकता दी है । साथ ही यह भी बताया है कि रूप के आवरण में वस्तु की कई सत्ता सन्निहित रहती है जिसमें आत्मानुभूति की प्रधानता होती है । प्रसाद जी ने अनुभूति को काव्य में प्रधान माना है । कारण कि अनुभूति आत्मा से संबंधित होती है और श्रेय तथा प्रेय गुणयुक्त होती है । उन्होंने आकार या रूप को रमणीयोत्पादक तो माना है, किंतु मुख्य और मूल सत्ता आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की ही स्वीकार की है ।

प्रसाद जी ने काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बताया कि " काव्य आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति है जिसका सीधा सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है । वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है ।----- आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है ।[१] उन्होंने काव्य को श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा कहकर उसे आत्मा की मनन शक्ति की असाधारण अवस्था का परिणाम घोषित किया है । इस प्रकार प्रसाद जी ने काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों की महत्ता को स्वीकार किया है, परन्तु व्यापक सत्ता अनुभूति तत्व की ही मानी है । उन्होंने पश्चिमी विचारकों की भाँति काव्य को कला का अंग नहीं माना जैसा कि हीगेल, क्रोचे आदि ने माना है । इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी न तो कोरे कलावादी है और न इतिवृत्तवादियों के समान कोरे वस्तुवादी ही है, उन्हें रसवादी कह सकते है । उचित तो यह होगा कि उन्हें हम समन्वयवादी कहें । वाजपेयी जी ने प्रयोग शील कविताओं का विवेचन करते हुए कहा है कि " समझौता सदैव एक हार या पराजय का भी परिचायक होता है ।[२] इस सन्दर्भ में हम

१- जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १७-१८ ।

२- नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य , पृ० ७१ ।

प्रसाद जी को भी देख सकते हैं किंतु प्रसाद जी पर सनकवादी का आरोप लगाना अनुचित होगा, क्योंकि भारतीय चेतना से अनुप्राणित होकर प्रसाद जी ने हृदय पक्ष को महत्त्व देते हुए बुद्धि प्रधान कला का अस्तित्व भी मान लिया है।

प्रसाद जी के अनुभूति तत्व पर विशेष बल देने के कारण डा० भगीरथ मिश्र ने प्रसाद जी पर यह आरोप लगाया है कि काव्य की यह परिभाषा सर्वमान्य न होकर केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण ही स्पष्ट करती है ---- काव्य को हम अनुभूति मात्र ही नहीं मान सकते। हमारे साहित्य भण्डार में भरा हुआ विशेषोक्ति, लक्षणा और अलंकार को लेकर चलनेवाला समस्त काव्य अनुभूति के रूप में नहीं है। -------- अनुभूति संकल्पात्मक या विकल्पात्मक नहीं हो सकती। अनुभूति संकल्पात्मक ही होती है, ----- श्रेयमयी प्रेय ज्ञान धारा भी सदा ही काव्य नहीं हो सकती। श्रेयमयी प्रेय अनुभूति -धारा काव्य हो सकती है।[१]

प्रसाद जी की काव्य विषयक मान्यताओं पर उठाई गई ये समस्त आपत्तियाँ किन्हीं अंशों में अपना महत्व रखती हैं। किन्तु आलोचक भी इस तथ्य को भूल गए हैं कि प्रसाद जी ने अपना मंतव्य भारतीय-साहित्य-शास्त्र की पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया है। काव्य में आत्मानुभूति की प्रधानता सहृदय को साधिकार अपनी ओर उन्मुख कर सकती है और कवि की अनुभूति से सहृदय अपना तादात्म्य बड़ी सहजता से स्थापित कर सकता है, किंतु कृत्रिमतापूर्ण शिल्प उपकरणों से तराशी गई कलात्मक अभिव्यक्ति सौन्दर्यमयी तो अवश्य होगी पर वह सहृदय में स्थायित्व न प्राप्त कर सकेगी। इस कथन को हम प्रसाद जी के इस वाक्यांश से और भी स्पष्ट कर सकेंगे : "कहा जाता है कि वात्सल्य की अभिव्यक्ति में तुलसीदास सूरदास से पिछड़ गए हैं। ----- मैं तो कहूँगा, यही प्रमाण है आत्मानुभूति की प्रधानता का। सूरदास के वात्सल्य में संकल्पात्मक मौलिक अनुभूति की तीव्रता है, उस विषय की प्रधानता के कारण। ----- तुलसीदास के हृदय में वास्तविक अनुभूति तो रामचन्द्र की भक्तरक्षण- समर्थ दयालुता है, न्यायपूर्ण

१- डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० ३५८-३५९।

इश्वरता है, जीवकी युवावस्था में पाप-पुण्य निर्लिप्त कृष्ण की शिशु मूर्ति का पुष्टि तत्ववाद नहीं ।[१] इतना ही नहीं प्रसाद जी काव्य को अलौकिक आनन्द प्रद भी मानते हैं । इसी माध्यम से पारस्परिक वैषम्य भी समाप्त हो सकता है । स्कन्दगुप्त में कवि मातृगुप्त कहता है, अन्धकार का आलोक से असत् का सत् से जड़ का चेतन से और बाह्य जगत का अन्तर्जगत से सम्बन्ध कौन कराती है ? कविता ही न ? [२] इस प्रकार कवि प्रसाद ने कविता में अपरिमित शक्ति का दिग्दर्शन भी किया है ।

तद्युगीन प्रचलित काव्य की सर्जनात्मक प्रक्रिया में प्रबन्धकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तक, गीति प्रबन्ध , गीति नाट्य, प्रलम्ब काव्य (Long Verse) आदि का ही अधिक प्रचलन रहा है । किंतु काव्य की जिस विशिष्ट विधा की ओर प्रसाद जी ने अपनी प्रतिभा को उन्मुख किया वह है - महाकाव्य । प्रसाद जी ने काव्य के समग्र रूपों के आधार पर काव्य रचनाएं प्रस्तुत की हैं किंतु उन काव्य रूपों पर सैद्धान्तिक रूप से कुछ भी नहीं कहा केवल महाकाव्य के विषय में उन्होंने अपना मंतव्य इन शब्दों में प्रकट किया है -

" वर्णनों से भरे हुए महाकाव्य में जीवन और उसके विस्तारों का प्रभावशाली वर्णन आता है उसमें सुख-दुख, हर्ष-क्रोध, रागद्वेष का वैचित्र्यपूर्ण आलेख मिलता है ।[३]

प्रसाद जी ने महाकाव्य की जो विवेचना की है उसके लिए यदि यह कहा जाय कि उन्होंने पूर्वचर्चित धारणाओं की पुनरावृत्ति मात्र कर दी है तो अत्युक्ति न होगी । कारण कि संस्कृत आचार्यों ने तथा मैथिली शरण गुप्त आदि कवियों ने भी इसी प्रकार के विचारों की प्रति स्थापना की थी । आलोच्य कवि ने महाकाव्य विवेचन के अन्तर्गत भी केवल कथा वस्तु और पात्र योजना का विषयानुकूल वर्णन किया है वह भी शायद इसलिए कि तद्युगीन परिस्थितिवशात् ऐसे काव्य की उपयोगिता प्रतीत हो रही थी जो बढ़ती हुई

१- जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० २६-२७ ।

२- ,, ,, : स्कन्दगुप्त (तृतीय दृश्य) पृ० १६ ।

३- ,, ,, : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२४ ।

विषमता और उच्छृंखलता के मध्य जीवन की अखण्डता एवं सुख-समृद्धि के लिए समता और सौहार्द्र का सौजन्यपूर्ण आदर्श प्रस्तुत कर सके ।

महत् जीवन की परिकल्पना होने के कारण ही आलोच्य कवि को महाकाव्य रुचिकर लगा और महाकाव्य का उद्देश्य भी है - मानव जीवन की समग्रता का विस्तृत विवेचन । इसके साथ ही महाकाव्य का नायक भी लोक प्रसिद्ध धीरोदात्त होता है जो शीघ्र ही अपना प्रभाव डालने की क्षमता रखता है । इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रसाद जी ने कहा कि " मानव के सुख-दुःख की गाथाएं गायी गयीं । उनका केन्द्र होता था धीरोदात्त विख्यात लोक विश्रुत नायक । महाकाव्यों में महत्ता की अत्यन्त आवश्यकता है । महत्ता ही महाकाव्य का प्राण है" ।[1]

प्रसाद जी की साहित्य सर्जना में महाकाव्य के अतिरिक्त प्रगीत काव्य से सम्बद्ध विचार भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं । प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य में यह स्वीकार किया गया है कि काव्य का मूल गुण उसकी आनन्द विधायिनी शक्ति है जो स्वर-लहरी युक्त शब्द-बद्ध रचना गीति के माध्यम से निःसृत होती है । अतः गीतिकाव्य या प्रगीति काव्य का मुख्य स्वरूप संगीत-तत्वों का सम्यक बोध है जो प्रसाद जी को स्वतः अभिप्रेत था, इसका प्रमुख उदाहरण निराला के लिए लिखी गई गीतिका का प्राक्कथन है " निराला में केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेरी की ही एक ही मीठी तान नहीं, अपितु उनकी गीतिका में सब स्वरों का समारोह है । उनकी स्वर साधना हृदय के तारों को झंकृत कर सकती है या नहीं, यह तो कवि के स्वरों के साथ तन्मय होने पर ही जाना जा सकता है ।"[2] इस प्रकार प्रसाद जी ने प्रसंगवशात् गीति की प्रमुख विशेषता पर भी ध्यान दिया है । चन्द्रगुप्त नाटक के परिशिष्ट में दी गई गीतों की स्वरलिपि जो विभिन्न रागों एवं तालों में सटीक आबद्ध हो जाती है, प्रसाद जी के गीति या प्रगीत विधा के तत्वों की ओर रुझान का परिचायक है ।

प्रसाद जी ने तद्युगीन काव्य में नवीन आन्तरिक भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति पर भी विचार व्यक्त किया है " बाह्य वर्णन से भिन्न

१- जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२६ ।
२- ,, ,, : प्राक्कथन, गीतिका- लेखक निराला वि० २०१२ ।

जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया । ------ ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति हुई । ये नवीन भाव आन्तरिक स्पर्श से पुलकित थे ।[१] इस प्रकार प्रसाद जी ने नवीन आन्तरिक भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति को काव्य रूप का वह महत्व पक्ष माना है जो विशिष्ट अनुभूति प्रसूत मानसी सृष्टि को शब्दादि द्वारा रंग रूप देने में अपना अपरिमेय महत्व रखता है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने काव्यरूप शब्द का तात्विक विवेचन तो किया है पर काव्य के समग्र रूपों अर्थात् प्रकारों का विवेचन नहीं किया । उन्होंने काव्य आचार्यों की भाँति काव्य रूप गिनाकर उनका तात्विक विश्लेषण नहीं प्रस्तुत किया । इसका कारण यह हो सकता है कि उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा काव्य रूपों के सैद्धांतिक विवेचन की अपेक्षा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करनेवाले भावों को प्रस्तुत करने में संलग्न रही है । यही बात हम महाकवि निराला के लिए भी कह सकते हैं । निराला जी ने भी काव्य रूपों की व्याख्या करना अपना लक्ष्य नहीं बनाया । यह बात और है कि प्रसंगवशात् काव्य अथवा कुछेक काव्य रूपों की चर्चा उन्होंने भी कर दी है ।

निराला जी का कथन है कि "साहित्यिक संसार की अच्छी चीजों का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उनको प्राणों के रंग से रंगीन होकर वे चीजें साधारणों को भी रंग देती हैं ।[२] यहां प्राणों के रंग से आशय कवि के अनुभूति की आंतरिक भावना से उद्बुद्ध प्रतीत होती है यह ध्यातव्य है कि प्राण का सम्बन्ध उस अनुभूति को अभिव्यक्त करने से है जिसे प्रसाद जी ने आत्मा की मौलिक अनुभूति" कहा है । इस प्रकार निराला जी की काव्य विषयक उपर्युक्त धारणा में आत्माभिव्यंजन का स्वर मुखरित है । इस आत्माभिव्यंजन से उनका आशय स्वानुभूत विचारों में परिवेष्ठित उस सौन्दर्य पर्यवेक्षण को व्यंजित

१- प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १४३ ।

२- निराला : गीतिका की भूमिका, पृ० ५ ।

करने की चेष्टा ही है जो जन-मन में छूकर को स्पर्श कर कवि की मानसी दृष्टि में अवतरित होती है और फिर कवि उसे अपनी भावप्रवणता के वशीभूत हो सौन्दर्य विधायक तत्वों में निमज्जित कर काव्य-रूप में उपस्थित करता है। जहाँ तक काव्य की पूर्णता का प्रश्न है, आलोच्य कवि के अनुसार वह विषय एवं विधान अर्थात् भाव एवं व्यंजना के संश्लिष्ट रूप में सन्निहित है ; ये एक दूसरे से पृथक न होकर सम्मिश्रणजन्य हैं।

निराला जी का यह कहना कि " उक्ति की उच्चता का विचार ही ठीक होता है क्योंकि ईश्वर पर लिखो या प्रिया पर " यह सिद्ध करता है कि काव्य रचना में उक्ति की उच्चता आवश्यक है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी को कलात्मक प्रक्रिया अभीष्ट है और प्राय: ऐसे ही विचारों के कारण उन्हें क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का समर्थक घोषित किया जाता है पर ऐसा कहनेवाले विस्मृत निराला के प्राणों के रंग से रंगीन होकर साधारणों को नया रंग देती है उक्ति को विस्मरित कर बैठते हैं। अतएव निराला जी को न तो कोरा भाववादी कहा जा सकता है और न कोरा कलावादी , हाँ यदि उन्हें भाव और कला को एक करनेवाला केन्द्र-बिन्दु घोषित कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कारण कि उनकी रचनाओं में अनुभूति और अभिव्यक्ति का तादात्म्य कुछ इस प्रकार हुआ है कि उसमें भाव और कला दोनों घुल-मिलकर एक रूप हो गए हैं। उन्होंने अनुभूति और अभिव्यक्ति से ओजपूर्ण चित्रों के प्रस्तुतीकरण पर विशेष बल दिया है और अपने काव्य में उस लालित्य को ढालने का प्रयास भी किया है जिसे हम पाउंड जी के शब्दों से पुष्ट भी कर सकते हैं " शब्दों द्वारा चित्रों का रेखांकन करना और फिर शब्दों द्वारा उनमें यथाक्रम उपयुक्त रंग भरना वस्तु निष्ठा और भाव के पिंड समीकरण की अनिवार्यता पर आधारित है वह साधारण कला-साधना की क्षमता से परे है।[2]

निराला जी ने काव्य के समस्त रूपों को प्रस्तुत तो अवश्य किया किंतु विवेचन गीतिकाव्य का ही किया है। कवि की अभिरुचि काव्य की इस विधा की ओर अधिक रही है। इसी से प्राय: उन्होंने सफल गीति

१- निराला : प्रबंध प्रतिमा , पृ० २०७ ।
२- गंगा प्रसाद पाण्डे : महाप्राण निराला, पृ० ४०८ ।

काव्य का वर्णन करना उचित भी समझा " प्राचीन गवैयों की शब्दावली संगीत संगति की रक्षा के लिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी । इसीलिए उसमें काव्य का एकांत अभाव रहता था । आज तक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है । मैंने अपनी शब्दावली में काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है । ह्रस्वदीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन आया है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है , दो एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दशास्त्र की अनुवर्तिता की है । भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिए हुए हैं । ---------- जो संगीत कोमल, मधुर और उच्चभाव तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है ।[1] निराला जी के इस कथन से यह प्रतिपादित होता है कि सफल गीति रचना के लिए काव्य में माधुर्य, लालित्य, संवेदनमय आत्मनिष्ठता, संगीत तत्व का निर्वाह तथा संयत भाषा आदि अनिवार्य है । इसीलिए कवि ने यह तर्क सम्मत उक्ति प्रस्तुत की " शब्दशिल्पी संगीत शिल्पियों की नकल न करें तो बहुत अच्छा हो । कविता शब्दों की ध्वनि है । अतएव उसकी अर्थ व्यंजना के लिए भावपूर्वक साधारणतया पढ़ना भी ठीक है । किसी अच्छी कविता को रागिनी में भरकर स्वर में भाजने की चेष्टा करके उसके सौन्दर्य को बिगाड़ देना अच्छी बात नहीं ।[2] गीतिकाव्य में हृदय-राग से अनुप्राणित भाव-सौष्ठव को कविजन प्रायः संगीत तत्व में आबद्ध करने के प्रयास में तल्लीन हो, उसके अन्तर्निहित सौन्दर्य को विस्मरण कर बैठते हैं । जो गीतिकाव्य की प्रमुख स-प्राण चेष्टा कही जाती है । इसी अन्तर को स्पष्ट करते हुए निराला जी ने बताया कि " कविता एक और कला है, संगीत एक और-------- गवैयों के रचे हुए संगीत के जितने भी काव्य हैं (गीतों की ओर संकेत है) उनका उद्देश्य किसी तरह उनसे निकाला गया है, अलावा इसके कविता की दृष्टि से उनमें कोई दम नहीं है ।[3] इस प्रकार निराला जी ने काव्य की गीति विधा में भावानुभूति के सम्पर्क से कवित रस के निर्वाह एवं मधुर भाव की सुरक्षा पर बल दिया है ।

१- निराला : गीतिका की भूमिका, पृ० ६ ।

२- ,, : रवीन्द्र कविता कानन, पृ० १४० ।

३- वही, पृ० १४० ।

निराला जी ने गीत के विवेचन में भाव तथा शिल्प दोनों की महत्ता सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु बल हृदय राग से अनुप्राणित भाव-सौष्ठव पर दिया है ।

प्रसाद और निराला के काव्यरूप सम्बन्धी मान्यताओं के विवेचन के सन्दर्भ में यह अविस्मरणीय है कि काव्य की विवेचना करनेवाले ये साहित्यिक कवि पहले हैं उसके बाद में । यही कारण है कि ये कवि स्पष्ट रूप से काव्य-रूपों की तात्विक विवेचना नहीं प्रस्तुत कर सके । अपने कथन की नींव में उन्हें जहाँ पर जो कुछ भी काव्य के विषय में कहना उचित प्रतीत हुआ उसे प्रसंग के अन्तर्गत कह डाला । जिससे उनकी काव्य सम्बन्धी मान्यताओं में तारतम्यता नहीं आ पाती फिर भी जिस विषय में जितना कुछ कहा है वह स्पष्ट है ।

अध्याय - ४ : प्रसाद और निराला के काव्य-रूप

(१) प्रगीत-शिल्प

(२) मुक्तक- शिल्प

(३) प्रबन्ध- शिल्प

प्रसाद और निराला के काव्य रूप :

(२) प्रगीत - शिल्प

मनस्तत्व के सहज प्रकाशन का प्रमुख उपकरण कविता है । कविता सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या भले न हो, किंतु भावसंकुल विचारों की रागात्मक और आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति तो अवश्य है । प्रगीत भी कविता ही है जो अन्त: सलिला भावों का रागात्मक अनुगुंजन है । अत: काव्य की वह विधा जो कवि के उद्वेगपूर्ण भावात्मक हृदय से सहजाभिव्यक्ति-रूप में प्रस्फुटित हो उठती है, प्रगीत काव्य के नाम से अभिहित की जाती है । इस प्रकार, प्रगीतकाव्य कवि की हृदयानुभूति को अभिव्यंजित करने की वह स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसको रूपायित करने में कवि को किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता ।

प्रगीत का जन्म अहेतुक न होकर विकासोन्मुख समाज के चैतन्यपूर्ण क्षणों का प्रतिफलन कहा जा सकता है । युगानुकूल माँग की ओर आकृष्ट कवि की वेदनामयी भावना ने भाषा- सौष्ठव का आश्रय ग्रहणकर कलापूर्ण लयात्मक अभिव्यक्तिमय प्रगीत को जन्म दिया । अत: प्रगीत काव्य कवि की स्वत:पूर्ण भावयुक्त स्वानुभूतियों का वह सहज प्रकाशन है जो चिन्तन प्रधान क्षणों में स्वत: रूपायित हो जाया करती हैं । यूं तो प्रगीत के स्वरूपेतिहास का अवलोकन करने से यह निश्चित हो जाता है कि इसका रूप विधान उतना ही प्राचीन है जितना काव्योत्पत्ति का । किंतु प्रगीत काव्य का जो अर्थ आज अभिप्रेत है उसके सन्दर्भ में तो यही कहा जा सकता है कि प्रगीत साहित्य की वह अधुनातन विधा है, जिसका मूल पाश्चात्य साहित्य से उद्घोषित होते हुए भी भारतीय काव्य संरचना में विद्यमान है । इस तथ्य की अवहेलना नहीं की जा सकती कि प्रगीत काव्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अंग्रेजी साहित्य की " लिरिक " शैली से है और अप्रत्यक्ष सम्बन्ध हिन्दी साहित्य की गीत शैली से है क्योंकि निश्छल भावाभिव्यक्ति को छन्दोबद्ध रूप में प्रकट करना भारतीय संरचना में भी नया नहीं है ।

प्रगीत का सम्बन्ध हिन्दी साहित्य की उस विधा से माना जाता है जिसकी चर्चा भारतीय काव्य-शास्त्र में प्रबन्ध और मुक्तक से भिन्न गीत

काव्य के रूप में कुछेक आचार्यों जैसे -" भामह "[1] तथा" हेमचन्द्र" [2] ने की है। वैदिक काल में प्रचलित गीत रचना तथा संस्कृत साहित्य में जयदेव का" गीत गोविंद " और हिन्दी में विद्यापति की गीतिमय पदावली की संरचना होने के पश्चात् भी मुक्तक से भिन्न स्पष्ट रूप में गीतिकाव्य की चर्चा काव्य शास्त्र में नहीं हुई। उसका रूप-विधान प्रबन्ध से भिन्न मुक्तक में ही समाविष्ट रहा ; प्रगीत का अपरोक्ष सम्बन्ध हिन्दी की किस काव्य कोटि से माना गया, प्रारंभ में उसे मुक्तक का ही प्रतिरूप समझा गया। किंतु आगे-चलकर इस गीत शैली का स्वतंत्र विकास हुआ और तब यह देखा गया कि कुछ विशिष्ट तत्वों में वह मुक्तक से भिन्न है जैसे" प्राचीन मुक्तकों में कवि की कल्पना कुछ ऐसे बाह्य रूढ़ व्यापारों की योजना करती थी जिनसे किसी रस या भाव की व्यंजना सुकर थी। आधुनिक प्रगीत मुक्तक कवि के भावावेग के महत् क्षणों की रचना होते हैं, उनमें गीत की सहज और स्वच्छ गति होती है ----- आधुनिक मुक्तकों में कवि का भावावेग ही प्रधान होता है[3]

स्वदेशीय काव्य संरचना से गृहीत भावात्मक अनुभूति और अभिव्यक्ति के अनन्तर साहित्य की इस विधा ने निस्संकोच रूप से पाश्चात्य कवियों की रचना प्रणाली के रूप-रंग को आत्मसात् करने का भरसक प्रयास किया। इसी भावना के प्रतिफलन स्वरूप प्रगीत शब्द अंग्रेजी लिरिक " के अनुवाद में प्रयुक्त होने लगा।

प्रगीत के समानार्थी अंग्रेजी शब्द" लिरिक" Lyric) की व्युत्पत्ति यूनानी शब्द ल्यूरिकास (Lurikos) से हुई है। यह

१- अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजुकोमलम्
   भिन्नं गेयमिवेदं तु केवलं श्रुतिपेशलम् ।। १। ३४ ।।
   काव्यालंकार

२- प्रेक्ष्यं विभजते
   (११७) प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च ।।२।।
   काव्यानुशासन अष्टम अध्याय पृ० ४३२।

३- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ; साहित्य का साथी, पृ० ७१।

यूनानी शब्द " ल्यूरा " (Lura) नामक वाद्य-उपकरण की सहायता से गाये जानेवाले गीतों के लिए प्रयुक्त होता था ।[1] अंग्रेज़ी में भी आरंभ में वर्तमान प्रगीत के समकक्ष " लिरिक " का प्रयोग " लायर " (Lyre) नामक वाद्य यंत्र पर गायी जानेवाली कविताओं के लिए किया जाता था । अतः जो गेय हो, उसे ही पहले प्रगीत कहा गया ।[2] हडसन के अनुसार भी लिरिक अथवा प्रगीत वह रचना है जो अपने मौलिक रूप में " लायर " तथा " हार्प " जैसे वाद्ययंत्रों पर गाया जा सके ।[3] किंतु आज आधुनिक शब्दावली में प्रचलित प्रगीत की परिभाषा प्राचीन प्रगीत (लिरिक) से कुछ भिन्न हो गई और अब भाव प्राबल्य की स्थिति में स्वतः स्फुरित संवेगात्मक अभिव्यक्ति को कलात्मक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करना कि वह जन-सामान्य के बीच साधारणीकृत हो सके, प्रगीत का स्वरूप निर्धारित किया गया । हर्बर्ट रीड के अनुसार वह कविता जिसमें सहज तथा सरल भाव-संवेग का समाहार होता है तथा अबाधित भावना या प्रेरणा की प्रत्यक्ष अभिव्यंजना होती है वही प्रगीत है ।[4] आधुनिक काल में अन्तः प्रेरित भावों के सहज उच्छलन को प्रगीत कहा गया ।[5]

---

1. Encyclopaedia Britannica, Vol. XVII p. 177.
2. Ibid, Vol.XIV, p. 528.
3. Lyric poetry in the original meaning of the term was poetry composed to be sung to the accompaniment of lyre and harp.
   In introduction to the study of Literature- W.H.Hudson, p. 126.
4. We might define lyric as a poem which embodies a single or simple emotional attitude, a poem which expresses directly an uninterrupted mood or inspiration.
   Form in Modern Poetry . p. 62.
5. Lyric poetry ...... The term has come to signify any out burst in song which is composed under a strong impulse of emotion or inspiration.
   Worsfold, Judgement in Literature. p. 83.

प्रगीत काव्य की श्रेष्ठता उस लक्ष्य पर निर्भर करती है कि उसमें किसी अमूल्य भाव-निधि का समावेश किया गया है या नहीं और यदि किया गया है तो उसे प्रभावपूर्ण होना चाहिए । उसकी भाषा और कल्पना में केवल सौन्दर्य और सजीवता ही अपेक्षित नहीं है अपितु वह औचित्य भी विद्यमान होना चाहिए जो अन्य कलाओं के लिए उपयुक्त हो । अत: शुद्ध प्रगीत में भाव तथा अनुभूति को संक्षिप्त और गहन रूप से अभिव्यक्त करने के लिए विशिष्ट शक्ति की आवश्यकता निर्बाध रूप से अभिप्रेत होती है । अन्यथा अति-विस्तार का भय हो सकता है ।[1]

पाश्चात्य साहित्य में प्रगीत का जो प्रारम्भिक रूप था वह आगे चलकर परिवर्तित हो गया । विषय की दृष्टि से उसमें वैभिन्नता आ गई । सामूहिक विषय के स्थान पर वैयक्तिक विषय का निरूपण होने लगा । विषय और व्यक्ति-निष्ठ भावना से परिपक्व प्रगतिशील पथ पर आरूढ़ प्रगीत के रचना विधान में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । अब उस के परम्परा विहित अर्थ को छोड़कर कि वाद्यंत्र पर गाए जानेवाले गीत ही "लिरिक" या प्रगीत है, शब्दों के संगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता और लयात्मकता पर विशेष बल दिया गया । अब प्रगीत में संगीत के शास्त्रीय बन्धनों का निर्वाह नहीं होता । उसी प्रकार छंद के कठोर नियमों का उल्लंघन भी किया जाने लगा जो प्राचीन समय में अनिवार्य थे । आधुनिक काल में काव्योचित माधुर्य एवं सुकुमारता से परिपूर्ण शब्द और लय में आबद्ध अन्त: स्फुरित संवेगात्मक भावों की सफल अभिव्यक्ति को प्रगीत की संज्ञा से अभिहित किया गया । इस प्रकार प्रगीत के प्राचीन तथा आधुनिक रूपों के भावतत्व निरूपण तथा शिल्प विधान स्वरूप में आमूल अन्तर स्थापित हुआ ।

हिन्दी साहित्य में प्रगीत काव्य के सन्दर्भ में आनेवाले प्रमुख शब्द गीत (गेय) तथा गीतिकाव्य है । प्रारंभ में गीत का स्वरूप गेय था । इसमें भावों को प्रधानता न देकर संगीत तत्व को प्रमुखता दी जाती थी जबकि गीति काव्य में आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति की ही प्रधानता होती है । संगीतात्मकता

---

1. W.H.Hudson . An Introduction to the study of Literature. p. 97.

का आग्रह अवश्य होता है किंतु संगीत शास्त्रीय बन्धनों मैं आबद्ध होकर् उसके अनुसार् ही पद रचना करना गीतिकाव्य का लक्ष्य नहीं होता । आधुनिक युग मैं परम्परा विहित अर्थ का द्योतन करनेवाले " गीत " शब्द ने प्रसाद, निराला, पंत, रामकुमार, महादेवी के सान्निध्य मैं आकर् अपना स्वरूप प्रगीत या गीति शब्द मैं परिवर्द्धित कर् दिया ।

गीत और प्रगीत दोनों भावाभिव्यंजक है किंतु जहां गीत मैं वैयक्तिक भावों का अभाव है वहां प्रगीत मैं उसकी प्रधानता है । गीत का लक्ष्य आत्म निवेदन है और प्रगीत का लक्ष्य सौन्दर्यमयी भावाभिव्यंजना को चरमोत्कर्ष प्रदान करना है । गीत स्वत: स्फूर्तिमयी रचना है प्रगीत भावोच्छ्वासित काव्य विधान । गीत मध्ययुगीन भक्त कवियों की काव्य रचना है प्रगीत आधुनिक युग की उपज है । गीत मैं प्रथम पंक्ति टेक के रूप मैं गेयता की रक्षा के लिए दुहराई जाती है, किन्तु प्रगीत मैं स्वानुभूति का तीव्र प्रकाशन, लय और ध्वनि पर आधारित होता है । जिसमें गेयता उसके लिए अनिवार्य नहीं होती । प्रगीत संगीत की लय मैं गाए तो नहीं जाते किन्तु उनमें पर्याप्त माधुर्य और प्रवाह होता है ।[1]

गीति विषयि-प्रधान रचना है । इसमें किसी दूसरे की गाथा न होकर् कवि के भावोद्रेक का सहज प्रकाशन ही होता है । प्रगीत वह गीतिमय काव्यरूप है जिसमें कवि की वैयक्तिकता सर्वोपरि होती है वह अन्तर्वृत्ति निरूपक व्यक्तिपरक कविता का पर्याय है। इसमें शब्द और अर्थ, लय और छंद अथवा रूप और विषय की अभिन्नता हो जाती है ।[2] महादेवी जी के अनुसार " सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों मैं स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है ।[3] इस प्रकार गीति मैं कवि की अनुभूति (सुख-दु:ख) की भावावेश (भावावेशमयी अवस्था विशेष) की स्थिति मैं गेयतापूर्ण (स्वर-साधना) सुन्दर शैली (चित्रण भी देना) मैं अभिव्यंजित किया जाता है । प्रगीत अनेकानेक

१- राम अवध द्विवेदी : साहित्य रूप , पृ० २४४ ।

२- नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० २४ ।

३- महादेवी का विवेचनात्मक गद्य (गीतिकाव्य) , पृ० १४२ ।

तत्वों का सौन्दर्यमय पुंज है जिसके समग्र तत्वों को किसी एक साहित्यकार की परिभाषा में बाँधा नहीं जा सकता । इसकी कुछ विशिष्टताओं का बोध रामकुमार जी के इस आलोचना अंश से भी हो सकता है " आधु एक उच्चकोटि का गीतिकाव्य है इसमें भावना की एकरूपता , अनुभूति की तीव्रता तथा मधुर संगीत आदि- गीति काव्य के अनेक गुण पाए जाते हैं ।[१] इस कथन में प्रगीत के मुख्यतत्व भावना की एक रूपता, अनुभूति की तीव्रता तथा मधुर संगीतात्मकता पर विशेष बल दिया गया है । प्रगीत वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनजन्य संगीतात्मक अभिव्यक्ति है । प्रगीत काव्य के समग्र विवेचन के आधार पर उसके प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं -

(१) वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति : विषयि-प्रधान होने के कारण प्रगीत काव्य में वैयक्तिकता की प्रधानता होती है । " प्रगीतों में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है ।[२] कवि के अन्तर- राग की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ जब सार्वजनिक भाव एवं विचारों से तादात्म्य स्थापित कर रचनातंत्र में अभिव्यंजित होती है तब प्रगीत- काव्य की सृष्टि होती है । हडसन ने वैयक्तिकता को प्रगीत का मूल तत्व मानते हुए[३] यह स्पष्ट किया कि प्रगीत की वैयक्तिकता को हम व्यक्ति वैचित्र्य की संकुचित भावना से आबद्ध नहीं कर सकते वह विस्तृत रूप से समस्त मानवीय भावनाओं से सम्बद्ध होती है और इसी से उसके साथ पाठक का सहज तादात्म्य संभव हो जाता है ।[४] कवि की यह आत्माभिव्यक्ति लेखक तथा पाठक दोनों को आनन्द प्रदान करती है । कवि अपने सहज आत्मपरक भावों की व्यंजना दो प्रकार से करता है । एक तो प्रत्यक्ष रूप से आत्म स्वीकृति की पद्धति द्वारा, जिसमें मीरा के गीत आते हैं।दूसरी अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिपाद्य विषय अथवा प्रमुख पात्र के कथन द्वारा, जिसमें सूर का भ्रमर गीत आता है । आधुनिक हिन्दी कवियों ने दोनों प्रकार से आत्माभिव्यक्ति की है ।

१- रामकुमार वर्मा : विचार दर्शन, पृ० ५७ ।
२- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० २४ ।
३- डब्ल्यु० एच० हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ़ लिट्रेचर, पृ० ६७ ।
४- उपरिवत्, पृ० १२७ ।

(२) अन्त:स्फूर्ति : अन्त:स्फूर्ति प्रगीत काव्य का सहज गुण है। इसकी अभिव्यक्तिकरण में बाह्य साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं होती कारण, यह कवि की वह विशिष्ट मन:स्थिति है जो कवि के तीव्र अनुभूति को अन्तर्मुखी बनाकर सहज रूप में व्यक्त कर देती है। गाटरीड़ जैन ने स्पष्ट कहा कि प्रगीत की क्रिया आन्तरिक होती है बाह्य नहीं।[१] कवि की इस अन्त:स्फूर्तिमयी सहज अभिव्यक्ति को वर्ड्सवर्थ ने कविता की परिभाषा बना दिया है। प्रगीत-काव्य में चिन्तन, कल्पना एवं काव्य रचना के प्रति तटस्थता का भाव सर्वथा नहीं होता, कल्पनाशीलता एवं बौद्धिकता से अनुस्यूत काव्य अन्त:करण के भाव प्राबल्य में बाधक होगा। अत: कवि के अन्त:स्फुरित सहज भावों का शब्दानुशासन में अभिव्यक्त होना ही प्रगीत है।

(३) भावप्रवणता : प्रगीत का प्रमुख अंग भावतत्व है। यह भावप्रवणता काल्पनिक ही नहीं होती अपितु रागात्मक शक्ति से सन्निविष्ट होती है। प्रगीत के मूल में कवि की वह कलात्मक प्रतिभा निहित होती है जो भावोत्पन्न चित्रों को एकान्विति प्रदान करने तथा उसमें रागतत्व की सुचारुता को समाविष्ट करने का प्रयास करती है। इस तत्व में संयम और अन्विति अनिवार्य है क्योंकि "गीत के कवि को आर्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ-निश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।"[२] अतएव प्रगीतकार को अपनी भाव-प्रवणता को संयम की परिधि में रखकर व्यक्त करना पड़ता है ताकि वह रसानुभूति तथा प्रभावान्विति की सृष्टि में सफल हो सके।

(४) संगीतात्मकता : प्रगीत काव्य की उत्कृष्ट विधा है और उत्कृष्ट काव्य को संगीत की अपेक्षा नहीं होती उसी प्रकार उत्कृष्ट संगीत को भी शब्दों की आवश्यकता नहीं होती।[३] आज प्रगीत का जो स्वरूप है वह

१- ईलियट की पुस्तक "आन पोइट्री एण्ड पोयट्स, पृ० ९८ पर जी० जैन का उद्धरण।
२- महादेवी का विवेचनात्मक गद्य (गीतिकाव्य) पृ० १४२।
३- रैनेवैले तथा वारेन, थ्योरी आफ़ लिट०, पृ० १२७।

संगीतशास्त्रीय मान्यताओं के बदलते परिवेश में पहले जैसा नहीं रहा । यद्यपि प्रगीत का प्रारंभ वाद्य वाद्यों पर गाए जानेवाले गीतों के रूप में हुआ किंतु कालक्रम के आधीन हो स्वर और ताल में आबद्ध शास्त्रीय संगीत के बंधनों में जकड़ा हुआ उसका स्वरूप लुप्तप्राय हो गया और उसका वह गुण अब अनिवार्य न होकर अपेक्षित गुण मात्र रह गया । आधुनिक कवियों ने अपने काव्य में रूढ़िवादिता का तटस्थ भावन न कर एक अभिनव: वर्णयुक्त माधुर्य गीत रचना विन्यास को प्रस्तुत किया, जिसे स्वत: पूर्ण लयात्मक रचना होने के कारण प्रगीत काव्य के नाम से अभिहित किया गया । जिसमें संगीतात्मकता अनिवार्य है किंतु स्वर-ताल जैसे वाह्य संगीतात्मक उपकरणों में बद्ध संगीत की मान्यताएं अनिवार्य नहीं है । इस भाव तथा उनकी अन्तर्मुखी वृत्तियों की संगति से मुखरित संगीतात्मक तत्व अवश्य अनिवार्य है क्योंकि ये नाद के द्वारा श्रोता अथवा पाठक को काव्य की रसात्मकता से अवगत कराते है । अत: प्रगीत काव्य में कवि-नि:सृत शब्दों के प्रवाह शक्ति और माधुर्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।[१]

(५) सहज-प्रवाह : भावातिरेक , अन्त:स्फूर्ति और संगीतात्मक गुणों की समन्विति प्रगीत काव्य में एक विशेष प्रकार की गति या प्रवाह उत्पन्न करती है, जो इन समस्त तत्वों से अभिव्यंजित होने पर स्वत: प्रस्फुटित होती है । यह गति अथवा भावों का प्रवाह प्रगीत की मुख्य विशेषता है । प्रगीत में गेयता, मधुरता, कोमलता, तरलता तथा कमनीयता की रक्षा के लिए सहज-प्रवाह अपेक्षित है । अन्यथा प्रगीत काव्य की भावानुभूति तथा अभिव्यक्ति की सफलता लुप्तप्राय होने का भय हो सकता है । प्रगीत काव्य में शब्द योजना की गेयता को सुरक्षित रखने के लिए तथा सहृदय की संवेदनीयता को स्पर्श करने के लिए भाव और अभिव्यक्ति की सहज प्रवाहमयता अनिवार्य हो जाती है ।

(६) संक्षिप्तता : क्षणिक भावातिरेक के प्रभाव से प्रस्फुटित प्रगीत का आकार विस्तृत नहीं हो पाता । प्रगीत की प्रेरणाविधायिनी शक्ति इतनी

१- राम अवध द्विवेदी : साहित्य रूप , पृ० २५० ।

आवेग युक्त और क्षणिक होती है कि उसका विस्तार संभव नहीं और यदि कहीं उसका विस्तृत रूप मिलता भी है तो उसे कवि की कल्पनातिरेकता तथा बौद्धिक चिंतन का प्रतिफलन मात्र कहा जा सकता है। प्रगीत की संक्षिप्तता का कारण उसका गेय होना भी है। संगीत में शब्द-योजना उतनी ही देर तक सहृदय को रस-सिक्त कर सकती है जितने समय तक उसका मन संगीतमय रह सके। इसके अतिरिक्त प्रगीत की संरचना एक ही भाव, विचार तथा परिस्थिति से सम्बन्धित होती है जिससे भी उसकी रचना शैली संक्षिप्त ही होती है।[1] अतएव प्रगीत की सफलता के लिए उसके स्वरूप की संक्षिप्तता अनिवार्य है।

<u>(७) अभिव्यंजना शैली</u> : प्रगीत कवि की स्वानुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति का सौन्दर्यपूर्ण रूप है। कवि की अनुभूति को ज्यों की त्यों स्थापित कर देने से प्रगीत की निर्मिति नहीं होती अपितु उसे अभिव्यंजना शैली के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करना कि उसमें प्रभाव क्षमता एवं प्राण स्पन्दन में स्फूर्ति तथा आकर्षण शक्ति का सहज समावेश हो सके, कुशल प्रगीतकार का कर्तव्य है। प्रगीत की अभिव्यंजना शैली के लिए यह अनिवार्य है कि वह भाव प्रेरित, गीतात्मक, सरल, स्वच्छ, मधुर, अलंकृत एवं सरस सुकुमार गुण युक्त हो। इसकी शैली का प्रमुख गुण प्रभावान्विति तथा लयात्मकता है जिसका सहृदय को आत्म विभोर कर सकने की क्षमता से युक्त होना अनिवार्य है।

<u>प्रगीत के प्रभेद</u>

अनेक आधारों का आश्रय लेकर प्रगीत काव्य के विभिन्न भेद किये गए, किंतु प्रगीत-विभाजन के दो आधार ही अधिक सर्वसम्मत हैं एक विषयगत, दूसरा शिल्पगत। हमारे शोध-विषय के लिए शिल्पगत आधार पर किया गया प्रगीत-भेद ही अपेक्षित है, अतः प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प विषयक अध्ययन के लिए निम्नलिखित प्रभेदों का वर्णन अनिवार्य है।

१- पी०टी०पाल्ग्रेव, गोल्डेन ट्रेजरी आफ सांग्स एंड लिरिक्स, भूमिका, पृ० १।

(१) सम्बोधन-गीति

(२) शोक-गीति

(३) चतुर्दशपदी

(४) पत्र-गीति

(५) गीत

<u>सम्बोधन-गीति</u> : किसी को सम्बोधित कर अथवा किसी का अवलम्ब लेकर आत्माभिव्यक्ति की प्रणाली ही सम्बोधन- गीति है और भारतीय साहित्य में यह प्रणाली अत्यधिक प्राचीन है, किंतु आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रचलित प्रगीत के इस स्वरूप को उस प्राचीन परिपाटी का विकसित रूप न कहकर विदेशी काव्य साहित्य में व्याप्त" ओड " का पर्याय रूप अवश्य कहा जा सकता है। अंग्रेजी शब्द " ओड" का मूल रूप ग्रीक शब्द" औडे" है, जिसका अर्थ ग्रीक भाषा में गीत होता है अतः यह औडे शब्द उसी रचना-विधान के लिए प्रयुक्त होता था जो किसी वाद्ययंत्र पर छन्दोबद्ध रूप में गाया जाए ।[1] इस प्रकार के प्रगीतों को विशेषकर ग्रीकवासी गिरजाघरों की वेदी (Altar) पर गाते थे और यही ओड का वास्तविक रूप था । आरम्भ में यूनान में गेय काव्य के दो प्रमुख रूप थे एक तो वह, जो आज भी प्रगीत के नाम से विख्यात है; दूसरा वह, जिसे कवि आत्म-निवेदन के रूप में सहगान के माध्यम से व्यक्त करता था, किंतु गीत की यह प्रणाली सदैव गत्यात्मक स्थिति में रही जिसके परिणामस्वरूप आगे चलकर इसी से ओड शब्द प्रचलित हुआ ।[2] आज पाश्चात्य साहित्य में ओड का जो रूप प्रचलित है वह एक

---

1. Ode : Originally simply a poem intended or adopted to be sung to instrumental accompaniment.

   J.T.Shipley : The Dictionary of World literary terms.p.281.

2. There were two great divisions of the Greek Melos or song . One of them came close to what modern criticism knows as lyric . On the other hand the choir song, in which the poet spoke for himself , but always supported or interpreted, by a chorus , led up to what is known as ode proper.

   Encyclopaedia Britannica, Vol.XVI. p. 705.

ऐसी विशिष्ट रचना प्रणाली मानी जाती है, जिसमें किसी को सम्बोधित कर गाम्भीर्यपूर्ण, सप्राण विषय को तर्क युक्त सोद्देश्यमयी, उन्नतगामी भाषा में व्यक्त किया जाता है। अतः ओड वह रचना प्रकार है जो किसी को सम्बोधित कर लिखा जाता है, उसका वस्तु और शिल्प विधान भव्यतापूर्ण तथा भावावेशजन्य होता है।[1] ओड लिरिक काव्य का वह भावातिरेक पूर्ण गरिमायुक्त विस्तृत प्रकार है।[2] इस सम्बोधन गीत को कवि दो प्रकार से प्रस्तुत करता है प्रथम, वह जिसमें वस्तु विशेष को सम्बोधित कर अपने हृदयस्थ भावों को व्यक्त करता है। द्वितीय, वह जिसमें किसी अन्य पात्र अथवा वस्तु का आश्रय लेकर उसके माध्यम से अपने भावों को प्रकट करता है। इस प्रकार की प्रथम शैली को "क्लासिकल" और द्वितीय को "क्लाउड" कहा जाता है। पाश्चात्य साहित्य में सम्बोध-गीति को अभिव्यक्ति करने की शैली पर विशेष बल दिया गया।

यूनान तथा रोम में जिस रूप में प्रगीत काव्य का उद्भव हुआ था १६वीं शताब्दी का प्रगीत काव्य उससे भिन्न रूप में प्रस्तुत हुआ। प्रगीत काव्य के इस रूप विधान में परिवर्तन लाने का श्रेय पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, टैनीसन आदि को है, इन कवियों ने प्रगीत में सहज, सामान्य, चिंतनमय गरिमायुक्त विषयों को प्रधानता देते हुए उसके शिल्प विधान में भी आमूल-परिवर्तन किया। प्राचीन ओड में जहां छंद विधान का एक ही क्रम प्रचलित था वहां इन कवियों ने वैविध्यता का संचार किया।

छंद विधान की दृष्टि से ओड का विभाजन दो प्रमुख रूपों में हुआ।[3] एक व्यवस्थित ओड (Regular) दूसरा अव्यवस्थित ओड (Irregular)। प्रथम प्रकार में कवि अपनी संरचनात्मक प्रतिभा को सम्बद्ध

---

1. A rhymed crarely unrhymed. lyric often in the form of an address generally dignified or exalted in subject feeling and style.
Oxford English Dictionary. p. 503.

2. Ode, a form of stately and eloborate lyrical verse.
Encyclopaidea Britannica Vol.XVI. p. 705.

3. डब्ल्यू० एच० हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ लिट्रेचर, पृ० ९९ ।

छन्दों में सजोकर प्रस्तुत करता है। इसमें नियमितता के प्रति आग्रह रहता है और दूसरे प्रकार में कोई नियमित विधान नहीं होता। कवि अपनी स्वेच्छा से भावों को छन्द-बन्धन से विनिर्मुक्त होकर व्यक्त करता है।

व्यवस्थित ओड के पुन: तीन प्रकार मिलते हैं -
(१) पिंडारिक ओड, इसका नामकरण ग्रीक के प्रसिद्ध प्रगीतकार पिंडार के नाम पर हुआ। इसमें व्यवस्थित छन्दों के अन्त्यानुप्रास तथा संगीतात्मकता को महत्व दिया गया। यह ग्रीस में गिरजाघरों की वेदी पर गाया जाता था और इसके साथ नृत्य भी होता था। इसमें लय, तुक, अलंकार आदि शैली के मुख्य तत्वों का पूर्ण निर्वाह होता था। (२) होरेशियन ओड, इसका नामकरण होरेस की शैली पर पड़ा। इसमें पद विधान में नियमितता पर अधिक जोर दिया गया तथा एक ही अनुच्छेद को अनिवार्य माना गया जिससे यह सरल तथा बोधगम्य होता है। (३) आधुनिक नियमित ओड, इसके जनक स्पेन्सर माने जाते हैं। उन्होंने अपनी दाम्पत्य-गीतिका को "एपीथेलेमियन" ओड के रूप में प्रस्तुत किया। आगे चलकर मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन, जानसन आदि के हाथों इसका प्रभावकारी तथा सुनियोजित रूप प्रस्तुत किया गया।

प्रगीत-काव्य के इस ओड अर्थात् सम्बोध-गीति नामक प्रभेद का आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी प्रचलन हुआ। यद्यपि इसकी झलक संस्कृत और हिन्दी के आदिकालीन संदेश काव्यों तथा दूत काव्यों में भी मिलती है। किंतु आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपलब्ध सम्बोध गीतियों के स्वरूप विधान को देखते हुए उन्हें पाश्चात्य "ओड" का ही अनुयायी मानना पड़ेगा। आलोच्य कवियों से पहले रूप नारायण पाण्डे ने "कल्पवृक्ष के प्रति" नामक सम्बोध-गीति की रचना की थी जो पराग में प्रकाशित हुई थी। परन्तु इसका पूर्ण विकसित रूप छायावाद के प्रमुख कवि प्रसाद, निराला आदि की रचनाओं में ही मिलता है। इनके प्रगीतों में जहाँ पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है वहीं उनकी निजी विशिष्टताएं भी अवलोकनीय हैं।

प्रगीत काव्य के विकास में प्रसाद और निराला का प्रदेय

अविस्मरणीय है । दोनों कवियों की प्रगीत विशिष्ट कोटि के भाव एवं विचार तथा परिस्थिति से सम्वलित है जिसके प्रतिफलन स्वरूप उनमें भाव प्रवणता, स्वतः स्फूर्ति, तात्विक भावान्विति तथा आत्मिक संवेदनीयता का प्रस्फुटन स्वतः ही हो गया है । इसी से वाजपेयी जी ने स्पष्टतः कह दिया कि प्रसाद मूलतः श्रेष्ठ प्रगीतों के रचयिता की प्रतिभा रखते थे । प्रगीत के इस श्रेष्ठ स्वरूप का दर्शन केवल प्रसाद के काव्य में ही नहीं, निराला के काव्य साहित्य में भी होता है । इन कवियों ने प्रगीत के लिए विभिन्न विषयों का चयन करते हुए उसे कलात्मक सौष्ठव प्रदान किया है । दोनों कवियों ने प्रगीतकाव्य के स्वरूप और अर्थ की रक्षा करते हुए जो रचनाएं प्रस्तुत की है उन्हें संगीत के स्वरों की लयबद्धता तथा भावाक्रांत काव्य की पृष्ठभूमि पर परखा जा सकता है । इनमें उनका कवित्व रूप ही सर्वोपरि है, संगीत-तत्त्व का योग उतना ही है जितना एक सफल प्रगीत के लिए अपेक्षित है । प्रसाद और निराला के सम्बोधन-गीतियों में भाव चित्रों की पूर्णता के साथ ही उत्कृष्ट अभिव्यंजना शैली का भी समावेश हुआ है ।

प्रसाद के सम्बोधन गीति में भावों एवं विचारों की गूढ़ता, उत्कृष्ट कल्पना शक्ति एवं भव्य शैली के दर्शन होते हैं । वस्तुतः प्रसाद युग निर्माता कवि थे अतएव प्रगीत की इस विधा की प्रतिष्ठापना में भी उन्होंने अपने उत्तरदायित्व को निभाया । काव्य-विधान में नवीन शैली को प्रस्तुत करने के लिए उत्सुक कवि प्रसाद ने भारतीय साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर अंग्रेजी की ओड-शैली में अपने निजी भावों को व्यक्त किया । प्रसाद जी ने ब्रजभाषा में कुछेक सम्बोधन गीतियों की रचना की है, उदाहरणार्थ चित्राधार में संकलित "कल्पना", "सुख", "मानस", "प्रभात", "कुसुम", "नीरद", "संध्यातारा" आदि । किंतु जो रूप सौष्ठव अर्थात् आलंकारिकता तथा शैली की भव्यता खड़ीबोली में रचित सम्बोधन गीतियों में उपलब्ध है वह ब्रजभाषा के गीतियों में नहीं । प्रसाद की अंतः स्फूर्तिमयी भावना तथा विशिष्ट अभिव्यंजना का सुनियोजित विधान उनकी "झरना" में संकलित "सौंदर्य", "कान्त", "किरण", "बालू की बेला", "अर्चना", "स्वभाव", "प्रियतम", "कहो", "निवेदन", आशालता, "प्रार्थना", "वेदने ठहरो" आदि तथा "लहर" की "अरी वरुणा की शान्त कछार", "हे सागर संगम अरुण नील", "अब जागो जीवन के प्रभात", "ओरी मानस की गहराई", आदि में देखा जा सकता है, जिसमें कवि की भावना तथा शैली की भव्यता, उदात्तता

एवं गरिमा का सहज आभास मिलता है । किरण में कवि अपने हृदयोच्छ्वास को नाटकीय ढंग से व्यक्त करता है । इस प्रगीत का आरंभ कवि प्रश्नवाचक चिन्ह से करता है -

> किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
> रंगी हो तुम किसके अनुराग,
> स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
> उड़ाती हो परमाणु पराग ।[१]

> क्यों जीवन-धन ! ऐसा ही है न्याय तुम्हारा क्या सर्वत्र ?
> लिखते हुए लेखनी हिलती, कंपता जाता है यह पत्र ।[२]

प्रसाद की प्रश्नवाचक यह शैली उनके काव्य संग्रह के अतिरिक्त नाटकों में भी मिल जाती है ।

> अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब
> सुखी सो रहे थे इतने दिन, कैसे हे नीरद निकुरम्ब ।[3]

भावाभिव्यक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने के ध्येय से या संबोधित विषय को महत्ता प्रदान करने की भावना से अभिभूत कवि ने इस मधुर शैली को अपनाया है ।

कवि का दूसरा महत्वपूर्ण गीति संग्रह 'लहर' है जिसमें कवि की भावनाएं प्रौढ़ हो चुकी है फिर भी यौवन की मदमाती भावनाएं प्राकृतिक उपकरणों जैसे लहर तथा तट आदि का आश्रय ले फूट ही पड़ती हैं । अतीत के वे मधुर क्षण जब कवि के शान्त हृदय को उद्वेलित करने लगते है तब उसका भावुक मन किसी को सम्बोधित कर कुछ कह डालने को व्यग्र हो उठता है और ऐसी स्थिति में जिन भावों का उच्छलन हुआ है वह अत्यधिक सहज तथा स्वाभाविक बन पड़ा है । जैसे -

---

१) प्रसाद : झरना (किरण) पृ० २८ ।
२) ,, ,, (प्रियतम) पृ० ४४ ।
३) ,, अजातशत्रु (तीसरा अंक) पृ० ११२ ।

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर !
करुणा की नव अंगराई-सी,
मलयानिल की परछाई-सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर । [1]

यहाँ कवि ने लहर को सम्बोधित करते हुए अपने हृदयगत वैयक्तिक भावों को व्यक्त किया है । अपने अतृप्त तथा शुष्क हृदय तट पर आनन्द प्रदायनी लहरों के आगमन की कामना व्यक्त की है । इस प्रगीत की भाषा भी मधुर तथा सरल है । शब्द विन्यास अत्यधिक सार्थक है । भावाभिव्यक्ति की मधुरिमा को बनाए रखने के लिए 'अंगड़ाई' शब्द के स्थान पर "अंगराई" का प्रयोग किया है । "मलयानिल की परछाई" शब्द विधान भी अर्थगर्भित है लहर और मलय समीर में कोमलता तथा संस्पर्श सुख का साम्य है । साथ ही उसे परछाई कहकर मूर्तबद्ध कर दिया है । मलयानिल की अपेक्षा उसकी छाया या परछाई को अधिक स्पष्ट तथा संवेद्य है, भाव को व्यंजित करने के लिए उपयुक्त है । इस प्रगीत के माध्यम से प्रसाद जी की सूक्ष्म कल्पना विधायनी शक्ति का भी परिचय मिल जाता है ।

प्रसाद कृत "करुणा की शान्त कछार" श्रेष्ठ प्रगीतात्मक रचना है । [2] उनकी "हे सागर संगम अरुण नील" रचना भी उत्कृष्टकोटि की है । इसमें कवि ने सागर को मानवीकृत रूपाकार प्रदान करते हुए उसकी प्रिय-मिलनेच्छा के लिए भरते हुए उच्छ्वास को, जो अपनी उत्ताल तरंगों द्वारा किसी का आलिंगन करना चाहता है अत्यधिक कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । [3] इसमें कवि की प्रकृति-पर्यवेक्षण-शक्ति का स्पष्ट आभास मिलता है । इतना ही नहीं अमूर्त को मूर्तरूप प्रदान करनेवाले प्रगीतों का विधान भी प्रसाद जी ने किया है । "अब जागो जीवन के प्रभात" [4] गीति में कवि ने अमूर्त मानवीय चेतनाओं को सम्बोधित करते हुए अपनी सूक्ष्म कल्पनाशक्ति तथा अद्वितीय अभिव्यंजना शैली का परिचय दिया है ।

---

1) प्रसाद : लहर, पृ० १ ।
2) वही, पृ० ७ ।
3) वही, पृ० १२ ।
4) वही, पृ० २२ ।

प्रसाद जी सर्वोन्मुखी प्रतिभावाले कवि थे । एक ओर वो भावुक हैं तो दूसरी ओर उत्कृष्टकोटि के कलाकार । इसी प्रकार यदि वो प्रेमी रूप में दिखाई पड़ते हैं तो साथ ही दार्शनिक भी प्रतीत होते हैं उनके सम्बोध गीतियों में उनका दार्शनिक रूप भी उभरा है यथा ;

> हे रि मानस की गहराई !
> तू सुप्त, शान्त, कितनी शीतल-
> निर्वात मेघ ज्यों पूरित जल ।[१]

इस पद में कवि ने मानसिक भावना का जो कलात्मक रूप प्रस्तुत किया है उसके परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता कि इसमें प्रगीत के तत्वों का सहज समावेश हो गया है । प्रसाद के प्रगीतों में भावनाओं का ऊपरी जमघट न होकर, मानव जीवन के तटस्थ दार्शनिक विचारों का योग भी है जो जीवन और जगत के सतही धरातल पर स्थित है । प्रसाद के समग्र सम्बोध-गीति भाव एवं शिल्प की दृष्टि से पुष्ट, गंभीर एवं औदात्यपूर्ण है इनमें सन्निविष्ट कल्पना, अप्रस्तुत योजना, छंद-विधान आदि सुनियोजित तथा सुपुष्ट है ।

महाकवि निराला का हृदय रोमानी जिज्ञासा एवं विस्मय की प्रवृत्ति को आत्मसात् कर चुका था जिससे उत्कृष्ट कोटि के भावप्रेषणीय प्रगीतों के विधान में उन्हें विशेष सफलता मिली । निराला ने किसी प्रिय या आदरणीय व्यक्ति को सम्बोधित कर या फिर सम्बोध्य वस्तु पर अपने भावों को आरोपित कर जिन सम्बोधन प्रगीतों को प्रस्तुत किया है वे अद्वितीय हैं । निराला कृत "जलद के प्रति", "प्रिया के प्रति", "प्रभात के प्रति", "यमुना के प्रति", "तरंगों के प्रति", "बादलराग", "जागो फिर एक बार", "तुम और मैं" (परिमल) तथा "खँडहर के प्रति", "वसन्त की परी के प्रति", "कविता के प्रति", "प्रेम के प्रति", "प्रलाप", "उद्बोधन" - (अनामिका) आदि प्रगीत प्रमुख हैं । "यमुना के प्रति" में इस शैली का सुन्दर दिग्दर्शन होता है यथा -

> उस सलज्ज ज्योत्सना-सुहाग की
> फेनिल शय्या पर सुकुमार,

१- प्रसाद : लहर, पृ० ५८ ।

उत्सुक, किस अभिसार-निशा में,
गई कौन स्वप्निल पर वार ?
उठ-उठकर अतीत-विस्मृति से
किसकी स्मृति यह-किसका प्यार
तेरे श्याम कपोलों में छुप
कर जाती है चकित विहार ?[1]

यहाँ भावों तथा विचारों का जो कौतूहल मिश्रित रूप उपलब्ध होता है वह अत्यधिक प्रभावकारी है। एक ओर कवि श्याम-लीला को लेकर कौतूहलजन्य प्रश्न करता है तो दूसरी ओर उसकी क्रीड़ास्थली की वर्तमान दशा को चित्रबद्ध करता है। इसकी शैली बहुत ही सरस तथा भव्य है। इस प्रगीत का अप्रस्तुत-विधान तथा छन्द संयोजन भी उत्कृष्ट कोटि का है। इसके छन्दों का अपना अलग महत्व है, प्रत्येक छन्दों को यदि आगे-पीछे करके भी पढ़ा जाय तो भावान्वितिमें किसी प्रकार की क्षति नहीं आती कारण कवि की भावाभिव्यक्ति एवं कलात्मक क्षमता है।

निराला ने 'तरंगों के प्रति' रचना में तरंगों को संबोधित करते हुए प्रकृति के मनोमुग्धकारी तथा विध्वंसकारी दोनों रूपों का वर्णन किया है। एक ओर कवि उसकी विमुग्धकारी छटा का चित्र खींचता है -

किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?[2]

तो दूसरी ओर उसकी अपार रूपराशि में निहित सब कुछ विलीन कर देनेवाली शक्ति से भी अवगत कराता है, यथा -

---

१- निराला : परिमल, पृ० ४६ ।
२- वही, पृ० ७६ ।

हो मरोरती गला छिला का कभी डाँटती,
कभी दिखाती काती तल की त्रास,

--- --- ---

क्यों तुम भाव बदलती हो - हँसती हो, कर मलती हो ?[1]

यहाँ तरंगों को सम्बोधित करते हुए कवि ने अपने हृदयोच्छ्वास को व्यक्त किया है। इसकी प्रथम पंक्ति में तरंगों का नीला अंचल छिला-छिलाकर जाना और अन्तिम पंक्ति में उस असीम में मिल जाना, मूलतः कवि के दार्शनिक होने का परिचय देती है। सामान्य प्रकृति में ऐसे गूढ़ भावों की सन्निधि निराला जैसे कवि द्वारा संभव भी हो सकी है। इस गीति की नाटकीयता तथा चित्रात्मकता इसकी औपम्य विशिष्टता है।

निराला जी की " बादल राग " कविता विशुद्ध प्रगीत है। बादल के अपरिमित निर्बन्ध स्वरूप को कवि ने आत्मसात कर काव्यरूप प्रदान किया है। बादल के विप्लवकारी तथा नवनिर्माणकारी रूप को देखते हुए इसे शैली की प्रसिद्ध कविता " ओड टू दि वेस्ट विंड " के समकक्ष ठहराया जाता है। बादल के वज्र घोष वाले प्रचण्ड रूप[2] और नवजीवन प्रदान करनेवाले शीतरूप[3] की ही भाँति शैली के " वेस्ट विंड " का भी स्वरूप है। एक ओर वेस्टविंड के आगमन से वृक्ष आदि टूटकर अपना जीवन समाप्तप्राय कर देते हैं तो दूसरी ओर उसकी कृपा से बीज आदि पृथ्वी पर बिखरकर वसन्त ऋतु में नवजीवन प्राप्त करते हैं। ऐसा ही वर्णन निराला ने बादल का किया है। विश्वजनीन संवेदनशीलता और मानवतावादी गुणों का आरोपण भी बादल में किया गया है। भावों की गरिमा शैली को स्वच्छंद एवं महान रूप प्रदान करती है। इसके विधान में शास्त्रीय छंद तथा संगीत का अनुबन्ध तो नहीं है, किंतु लय का निर्वाह हुआ है। " बादलराग " निराला जी की समस्त रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

विश्व की हृत्तंत्री में ब्रह्म की सत्ता का दर्शन करनेवाले कवि ने अपनी अद्वैत -विचारधारा को सम्बोध-प्रगीत के माध्यम से व्यक्त किया है। " तुम

१- निराला, परिमल, पृ० ७६।
२- ,, ,, (बादलराग) पृ० १६२।
३- वही, पृ० १६७।

प्राण और मैं काया, तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं मनमोहिनी माया "[1] कहकर निराला जी ने बहुत ही सरल ढंग से जीव और ब्रह्म के अभेद सम्बन्ध की चर्चा की है। अपने अन्तः स्फुरित भाव को कवि ने " तुम और मैं " प्रगीत में जिस शैली का आधार लेकर व्यक्त किया है वह प्रभविष्णु तथा प्राणवन्त है। यद्यपि भावान्विति का अभाव खटकता है फिर भी भावों की प्रसारगामिता सराहनीय है। प्रस्तुत - अप्रस्तुत विधान भावाभिव्यक्ति में सहायक हुआ है। सम्बोधन-शैली सफल एवं आकर्षक है।

अन्ततोगत्वा महाकवि निराला के सम्बोध-प्रगीत शैली की भव्यता तथा विशदता से परिपूर्ण हैं। निराला के प्रगीतों की प्रमुख विशेषता उन्मुक्तछन्दविधान है, जिसमें शास्त्रीय विधान का अनुमोदन नहीं मिलता, किन्तु व्यापकता का आग्रह अवश्य परिलक्षित होता है। आकार की दृष्टि से सभी सम्बोध-गीति भिन्न दिखाई पड़ते हैं, उदाहरण के लिए " यमुना के प्रति " और " प्रिया के प्रति " प्रगीत को ही लिया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है प्रसाद और निराला के प्रगीतों में भावना की गहनता है, विचारात्मकता की अपेक्षा भावात्मकता का अधिक आग्रह है। प्रगीत के विषय चयन में प्रसाद की अपेक्षा निराला ने अधिक उदारवादी दृष्टि का परिचय दिया है उनकी विषय-परिधि प्रसाद से अधिक विस्तृत है। जहाँ तक उसे अभिव्यक्ति करने का प्रश्न है यह दोनों कवियों की अपनी-अपनी विशिष्टताओं पर आश्रित है। दोनों कवि पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैली आदि से प्रभावित होते हुए भी मौलिकता की सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं।

शोक-गीति : मानव मन की वह संवेदनात्मक भावना जिसका संबंध अन्तर्मन की करुणा एवं वेदना से होता है, कवि द्वारा शब्द-बद्ध होकर जब काव्य-रूप धारण करती है तो उसे शोक-गीति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। कारुणिक भावों तथा दुःखद स्थितियों से प्रेरित होकर काव्य रचना की प्रणाली

१- निराला : परिमल (तुम और मैं) पृ० ८१।

बहुत पुरानी है । गीत काव्य का उद्गम भी क्रौंच वेदना से आहत करुणार्द्र ऋषि के आकुल -व्याकुल मन: स्थिति का परिणाम कहा जाता है । किंतु आधुनिक युग में प्रचलित शोक-गीति का स्वरूप पाश्चात्य ' एलिजी ' से प्रभावित प्रतीत होता है । आंग्ल साहित्य में शोक-गीति के लिए ' एलिजी ' (Elegy) शब्द प्रयुक्त हुआ है । इस ' एलिजी ' शब्द का विकास ग्रीक भाषा के ' एलीजिया ' शब्द से हुआ है । ग्रीक साहित्य में करुणा तथा मृत्यु आदि से सम्बन्धित विलाप युक्त छंदों को शोक गीति कहा जाता है कहीं कहीं युद्धादि तथा पारस्परिक प्रेम को लेकर भी शोक गीति की रचना हुई है ।[1] विषय परिधि के अतिरिक्त ग्रीक साहित्य में छन्द विशेष में रचे गए गीतों को भी शोक गीति कहा गया है । ग्रीक व लैटिन भाषा में इस छन्द विशेष को ' एलिजियाक ' कहा गया। इसका निर्माण षटपदी (हैक्सामीटर) तथा पंचपदी (पैन्टामीटर) के योग से हुआ । इसमें मात्राओं का युग्मक प्रयोग हुआ ।[2] आगे चलकर जर्मन साहित्य में इस छन्द विधान का पालन हुआ किन्तु अंग्रेजी कवियों द्वारा इसे समर्थन नहीं मिला ।[3]

अंग्रेजी साहित्य में प्रारंभ से ही किसी छन्द विशेष को लक्ष्य बनाकर शोक-गीति का विधान नहीं किया गया । वहां १६वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही एलिजी को वह संक्षिप्त रचना प्रकार माना गया जिसे किसी प्रिय अथवा श्रद्धालु पात्र की मृत्यु तथा नैतिक शोक की सामान्य भावना से उत्प्रेरित होकर छन्द बद्ध किया जाय ।[4] अतएव एलिजी वह शोक व्यंजक संक्षिप्त

---

1. Encyclopaedia Britannica, Vol. VIII p. 343.

2. Elegiac .... (of metre) suited to elegies, esp. couplet, (usu. G.K. or Lat) dactylic hexameter and pentameter.
   Oxford Dictionary. p. 385.

3. Elegiac verse has commonly been adopted by German poets for their elegies, but by English poets never.
   Encyclopaedia Britannica Vol.VIII p.343.

4. Elegy, a short poem of lamentation or regret called forth by the death of a beloved or reveved person or by a general sense of the pathos of morality.
   Ibid. p. 343.

रचना प्रकार है जो भावावेग के आंदोलित क्षणों में न अंकित होकर चिंतन प्रधान क्षणों का परिणाम है। हडसन की परिभाषा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि एलिजी शोक अथवा व्यक्तिगत दुःखों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है जिसके लिए अकृत्रिम प्रकाशन अनिवार्य है। अतः एलिजी जैसे गंभीर एवं दुःखद विषय के प्राकट्य के लिए काव्यकला के सौन्दर्यमय प्रसाधन अनिवार्य नहीं।[1]

पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध एलिजी को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में बांटा गया है प्रथम में उसका प्राचीन ग्रीक तथा लैटिन काव्य का रूप आता है जिसमें विषय को तो विस्तार दिया गया किंतु छन्द विधान में एक नियम बना दिया गया। इस कोटि के प्रगीतों में केवल मृतक व्यक्ति के प्रति शोक अथवा विलाप की ही अभिव्यक्ति नहीं हुई अपितु युद्ध एवं प्रेम के प्रति समर्पित भावों को भी प्रस्तुत किया गया। दूसरे भाग में अंग्रेजी का वह प्रगीत रूप परिगणित किया जाता है जिसमें व्यक्तिगत विक्षोभ तथा आत्मीय व्यक्ति के निधन का वर्णन होने से विषय तो सीमित हो गया किन्तु छन्द योजना में समृद्धि हुई।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि एलिजी का स्वरूप कारुणिक घटनाओं को प्रस्तुत करने के कारण गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी होता है। एलिजी कवि के भावावेग क्षणों की अभिव्यक्ति न होकर चिंतन एवं संवेदन की कुशल अभिव्यक्ति है। इसकी शैली विचारपूर्ण, अनौपचारिक, अकृत्रिम तथा उदात्त होती है। वर्तमान एलिजी में छन्द के अनिवार्य बन्धन नहीं मिलते केवल लय का निर्वाह ही किया गया है। इसका आकार भी संक्षिप्त ही होता है। इस प्रकार एलिजी छन्द - बन्धन से विनिर्मुक्त कारुणिक विषय प्रधान वह संक्षिप्त रचना प्रकार है जिसमें कवि की पीड़ा, शोक तथा वेदना की निश्छल अभिव्यक्ति होती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में रचित शोक-गीति पर पाश्चात्य एलिजी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। आधुनिक युग से

---

1. An introduction to the study of Literature.
   W.H.Hudson. p. 100.

पूर्व भी हिन्दी में चिन्तन प्रधान शोकपूर्ण वर्णन मिलता है किन्तु वह स्वतन्त्र रूप से मुक्तक या गीत रूप में न होकर प्रसंगवशात् प्रबन्ध काव्यों में ही मिलता है। स्वतन्त्र रूप से शोक-गीतियों की रचना आधुनिक युग में द्विवेदी जी के समकालीन कवि नाथू राम शंकर तथा रूप नारायण पाण्डे आदि ने की। पाण्डे जी की 'दलित कुसुम' रचना शोक गीति का उत्कृष्ट उदाहरण है। फिर भी, शोक गीतियों का चरम विकास छायावाद युग की कविताओं में मिलता है। यद्यपि कल्पना प्रधान स्वर्णिम स्वप्न पिरोनेवाले छायावादी कवियों ने शोक गीतियों की रचना कम ही की है किन्तु जो कुछ भी रचनाएं की है वह उत्कृष्ट कोटि की है।

प्रसाद और निराला ने व्यक्तिगत शोकानुभूति के प्रतिफलन स्वरूप कुछ शोकगीतियों की रचना की है। जिसमें प्रसाद विरचित 'आंसू' और निराला कृत 'सरोज स्मृति' प्रमुख है। आंसू की महत्ता उसके विविध काव्य रूपों के कारण हिन्दी साहित्य में सब से अधिक है। वह प्रगीत, मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य की कोटि में अपना निरपेक्ष स्थान बनाए है। निराला ने गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल आदि से सम्बद्ध शोक गीतियां भी लिखी है किन्तु 'सरोज स्मृति' और 'तिलांजलि' प्रमुख है।

प्रसाद विरचित 'आंसू' के काव्य रूप की स्थिति द्विविधापूर्ण है। कवि ने इसकी रचना किसी प्रिय या महत्वपूर्ण व्यक्ति के मरणोपरान्त तो नहीं की है किन्तु अपने हृदयगत शोक को व्यंजित अवश्य किया है। 'आंसू' में शास्त्र-मान्य शोक की अभिव्यक्ति नहीं है। लेकिन शोक का एक रूप तो है ही, इसलिए उसे विषाद-गीति कह सकते है।

आंसू में कवि ने अतीत के स्वर्णिम अवसरों की स्मृति को, जो दुर्दिन में आंसू बनकर बरसने आई है, गीतिबद्ध किया है। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि किसी से बिछोह होने पर दग्ध मनोभावों की चिंतन प्रधान मर्मस्पर्शी व्यथा की कलात्मक अभिव्यक्ति आंसू का सहज स्वरूप है। अतीत की वह मधुर स्मृतियां जो कवि को तिल-तिल जलाती है कभी वरदान प्रतीत होती है

तो कभी अभिशाप । इसी द्विविधा के मध्य पिसता हुआ वह अपने मनोभावों को स्पष्ट करता है -

> ये सब स्फुलिंग है मेरी
> उस ज्वालामयी जलन के
> कुछ शेष चिन्ह है केवल
> मेरे उस महा मिलन के ।[1]

उस महा मिलन के अवशेष जो अब स्मृति मात्र रह गए हैं, कवि के वियोगी हृदय को दुःख से सन्तप्त किये रहते हैं । अपनी वियोगावस्था का मार्मिक वर्णन वह इन पंक्तियों में करता है -

> शीतल ज्वाला जलती है
> ईंधन होता दृगजल का
> यह व्यर्थ सांस चल-चलकर
> करती है काम अनिल का [2]

प्रिय के वियोग में सांसों का चलना उसे निरर्थक प्रतीत हो रहा है क्योंकि उसकी सांसें चलकर विरहाग्नि को और अधिक प्रज्वलित करती है । अतः उसका जीवन भार स्वरूप प्रतीत होने लगा है उसके लिए सांसों का ढोना बेगार मात्र है ।

> सुख आहत शान्त उमंगें
> बेगार सांस ढोने में
> यह हृदय समाधि बना है
> रोती करुणा कोने में ।[3]

अपने स्पंदनहीन जीवन में कवि उदास हो गया है । प्रेम के उन्माद में बौखलाया हुआ वह अपने प्रेमास्पद से कह उठता है कि ' मेरे क्रन्दन में बजती क्या वीणा ?-जो सुनते हो '[4] वियोग की दुःखमयी इन स्थितियों में उसका

१- प्रसाद : आंसू, पृ० ५ ।
२- वही, पृ० ६ ।
३- वही, पृ० ८ ।
४- वही, पृ० १० ।

शोकाकुल हृदय उचित- अनुचित का विवेक नहीं कर पाता । आँसू में व्यक्त पीड़ा या वेदना का क्रमिक विकास हुआ है, यह पीड़ा उसे शनैः शनैः मन्थर गति से खिन्नता प्रदान करती है और यही खिन्नता तथा अवसाद आगे चलकर दार्शनिकता में परिवर्तित हो जाती है । अपने जीवन में व्याप्त वेदना को कल्याणमयी समझ कर चिरसंगी बना लेता है ।

> मेरी अनामिका संगिनि !
> सुन्दर कठोर कोमलते !
> हम दोनों रहें सखा ही
> जीवन पथ चलते चलते ।[१]

यही कारण है कि कवि हृदय में व्याप्त खिन्नता, विषाद खेद, दुःख, निराशा तथा निरुपायता के भाव कहीं सरलता से सहृदय के अन्तःकरण को छूने में सफल हो जाते हैं । आँसू का छन्द विधान भी सहज ग्राह्य, प्रभावकारी तथा रोचक है । इसकी अतिरिक्त विशेषता अदृश्य अमूर्त भावों का मूर्तिकरण भी है ।

आँसू में व्यंजित कवि की मर्मस्पर्शी वेदना के आधार पर आँसू को 'विषाद-गीत' कहा जा सकता है । आँसू में खिन्नता के साथ हर्ष, उपालंभ के साथ अनुनय, कठोरता के साथ सहृदयता और वियोग के साथ संयोग का अद्वितीय मेल मिलता है । एक ओर कवि प्रेमास्पद की निष्ठुरता से घबड़ाकर अश्रुवर्षा करता है तो दूसरी ओर उसी के 'मंगलमय उजाला' की कामना करता है, जो कवि के चिंतनपूर्ण वाणी का परिणाम है और इसी से प्रायः आँसू में दार्शनिकता का समावेश भी हुआ है । वैसे शोक-गीति के लिए अनिवार्य व्यक्तिगत विक्षोह तथा शास्त्रीयता से विनिर्मुक्त लयानुमोदित छन्द-विधान भी आँसू में उपलब्ध है । उसमें व्यंजित कवि का आर्त-स्वर, व्यक्तिगत अनुभूति ,गंभीर-चिन्तन आदि भी शोक गीति के अनुकूल है । फिर भी, आँसू की प्रेरणा मरणोपरान्त शोक न होकर जीवन में घटित विक्षोह मात्र है। इसलिए इसको शोक-गीति न कहकर विषाद-गीति कहना अधिक उपयुक्त होगा।

निराला की 'सरोज-स्मृति' में व्यक्तिगत शोक की स्पष्ट व्यंजना हुई है । कवि अपनी एक मात्र कन्या सरोज की मृत्यु से दुःखी होकर इस प्रगीत की

१- प्रसाद : आँसू , पृ० ६५।

रचना करता है। पुत्री की असमय मृत्यु से कवि की कारुणिक शोकाविष्ट अभिव्यक्ति ही इस गीत का विषय है जो उसकी सफलता के लिए यथेष्ट है। पुत्री की अस्वस्थता का उपचार करा सकने में असमर्थ होने से उसके मरणोपरान्त कवि-हृदय चीत्कार कर उठा है-

> गीते मेरी, तज रूप-नाम
> वर लिया अमर शाश्वत विराम
> पूरे कर शुचितर सपर्याय
> जीवन के अष्टादशाध्याय,
> चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
> कह-"पित:, पूर्ण-आलोक-वरण
> करती हूँ मैं, यह नहीं मरण,
> 'सरोज' का ज्योतिः शरण-तरण।'[1]

सरोज की अठारह वर्ष की आयु में असामयिक मृत्यु से विक्षुब्ध कवि को उससे संबंधित विगत जीवन की अन्य घटनाएं भी याद आ जाती हैं। "माँ की कुल शिक्षा मैंने दी, पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची," [2] कहकर अपने जीवन में पत्नी के अभाव तथा पुत्री के जीवन में माँ के अभाव की ओर भी सहृदय का ध्यान आकृष्ट किया है। सरोज की स्मृति में कवि को भाई-बहन का आपस में लड़ना-झगड़ना तथा खेलना भी याद आ जाता है। उसके बाल-सुलभ क्रीड़ाओं की याद भी कवि- मस्तिष्क में सजीव हो उठती है, जिसे वह बहुत ही सरल तथा सवेग ढंग से प्रस्तुत करता है। यौवन में पग रखने के पश्चात् उसका विवाह हो जाता है और विवाह के समय उसकी कंचन काया पर कलश का जल पड़ने से जो रूप निखर आया था उसे कवि बताता है कि "तू खुली एक-उच्छ्वास-संग, विश्वास-स्तब्ध बंध अंग-अंग।"[3] उसकी उस छवि पर विमुग्ध कवि ने यह कह डाला कि --- वह मूर्ति धीति मेरे वसन्त की प्रथम गीति।"[4] ऐसी रूप लावण्य के बोझ से दबी कवि ने वसन्त की

१- निराला : अनामिका, पृ० ११७
२- वही, पृ० १३३
३- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १३२
४- वही, पृ० १३२ ।

प्रथम गीति 'कन्या' का विवाह के कुछ ही समय बाद जीवनांत हो जाता है और कवि का दु:खी हृदय रो उठता है, यथा -

> वह लता वहीं की, जहाँ कली
> तू खिली, स्नेह से हिली, पली,
> अन्त भी उसी गोद में शरण
> ली, मूँदे दृग वर महामरण ![१]

यद्यपि कविता की केन्द्रवर्ती भावना कारुणिक भावों की अभिव्यंजना ही है फिर भी प्रसंगवशात् कन्या के हर्ष-विषाद से सम्बद्ध कुछ ऐसे मार्मिक स्थलों की व्यंजना भी द्रष्टव्य है जिनसे कवि के विगत जीवन का परिचय मिल जाता है, यथा -

> धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
> कुछ भी तेरे हित कर न सका !
> जाना तो अर्थागमोपाय,
> पर रहा सदा संकुचित-काय
> लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
> हारता रहा मैं स्वार्थ-समर ।[२]

सरोज की स्मृति के साथ जुड़ी हुई कवि की असमर्थता का भान भी इन पंक्तियों में हो जाता है । पुत्री को उचित संरक्षण न दे सकने का उसे हार्दिक खेद रहा है । उसके दु:ख का अनुमान प्रगीत की इस पंक्ति से भी होता है कि 'वस्तु मैं उपार्जन को अक्षम, कर नहीं सका पोषण उत्तम ।'[३] इतना ही नहीं, दु:ख से पीड़ित कवि का हृदय तो यहाँ तक कह डालता है कि 'दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज, जो नहीं कही ।'[४] सरोज स्मृति का प्रारंभ तथा अंत दोनों शोकाविष्ट है । 'कन्ये, गत कर्मों का अर्पण कर, करता मैं तेरा तर्पण !'[५] कहकर कवि ने इस प्रगीत

१- निराला; अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १३३-३४ ।
२- वही, पृ० १२८ ।
३- वही, पृ० १२० ।
४- वही, पृ० १३४ ।
५- वही, पृ० १३४ ।

का अंत किया है । कवि के अन्तःकरण में सरोज के लिए अपार प्यार एवं दुलार है जिसके कारण वह कन्या के रूप लावण्य, गुण-दर्शन, व्यवहार-कुशलता सौन्दर्य तथा धनाभाव के मध्य व्यतीत जीवन को भुला नहीं पाया और अपनी कवि प्रतिभा से उसे जीवंत काव्य रूप प्रदान किया ।

सरोज-स्मृति का आरंभ और अंत तो कवि उस की स्मृति से ही करता है मध्य में भी सरोज के कुछ जीवन-क्षणों तथा क्रियाकलापों का वर्णन करता है किन्तु मध्य में ही वर्णित कुछ अन्य यद्यपि अनावश्यक तथा असंलग्न प्रतीत होती है, जैसे सम्पादकों का वर्णन , सामाजिक जीवन की विद्रूपता तथा कुरूपता, अपने व्यक्तिगत विचारों तथा स्वच्छंदतावादी भावों का [illegible] भावन आदि कवि के साथ तादात्म्य स्थापित होने पर भावों की यह वैभिन्नता एकान्विति के सूत्र में बंधी दिखाई पड़ती है । पुत्री के निधन से व्याकुल कवि ने अपनी स्वानुभूति की जो मर्मान्तक पीड़ा इस प्रगीत में व्यक्त की है उसके साथ सहृदय बड़ी ही सरलता से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है । यही कारण है कि उनकी सरोज स्मृति शीर्षक कविता उनके समस्त काव्य के शीर्ष पर संस्थित दिखाई देती है । ------- जान पड़ता है कि इस दुख के अवसर पर निराला की समस्त टूटती हुई वृत्तियां पुन: एकान्वित हो गई है और करुणा की भूमिका पर एक ऐसे काव्य की सृष्टि की जा सकी है जो समस्त हिन्दी काव्य में अपनी सानी नहीं रखता ।"[1]

प्रसाद और निराला की ये गीतियां आधुनिक हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। आंसू की अपेक्षा सरोज स्मृति को अधिक उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है क्योंकि इसमें शास्त्र-सम्मत शोक की व्यंजना हुई है । आंसू में अवश्य शोकगीति के लिए निर्दिष्ट शोक की अभिव्यक्ति नहीं हुई है, फिर भी उसमें प्राप्त भावों की मर्मस्पर्शिता, अकृत्रिमता, व्यक्तिगत दु:ख, आन्तरिक आकुलता तथा विचारों की गहनता एवं दार्शनिकता को अस्वीकारा नहीं जा सकता, जिसके परिप्रेक्ष्य में इसे शोक गीति तो नहीं,पर विषाद गीति मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । इन दोनों रचनाओं में कवि-हृदय की मार्मिक व्यंजना होने से सहृदय के साथ उसका तादात्म्य सहज ही स्थापित हो जाता है । पाश्चात्य शैली से प्रभावित होते हुए भी इनमें कवि की मौलिकता सुरक्षित है ।

१- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ४६-५० ।

चतुर्दशपदी (Sonnet); हिन्दी साहित्य में उपलब्ध चतुर्दशपदी अंग्रेज़ी 'सॉनेट' का ही रूपान्तरण है। अंग्रेज़ी का सॉनेट शब्द इटली के 'सॉनेटो' शब्द से बना है। सॉनेटो के सर्वप्रथम प्रयोक्ता इतालवी कवि पैट्रार्क थे। सॉनेटो से आशय ऐसी विशिष्ट रचना प्रकार से लिया जाता था जो किसी विशेष वाद्ययंत्र (पियानो) के सहारे गाया जा सके। अंग्रेज़ी साहित्य में इसी 'सॉनेटो' के आधार पर चतुर्दशपदियों की रचनाएँ हुईं। अंग्रेज़ी सॉनेट की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रगीत के अन्य प्रकारों की अपेक्षा इसका स्वरूप एक सुनिश्चित नियत है। वास्तव में सॉनेट १४ पंक्तियों में निर्मित एक ही भाव का पिष्टपेषण करनेवाली वह रचना है, जिसमें कवि आद्यन्त रूप से अपने एक ही भाव को व्यक्त करता है और अन्तिम पंक्तियों में किसी विशेष तथ्य को प्रकट करता है।[1] इसमें भावों की व्यंजना दो खण्डों के अन्तर्गत होती है। प्रथम, अष्टपदी में कवि का कथन व्यक्त होता है और द्वितीय, षटपदी के खण्ड में उस कथन की व्याख्या निहित होती है। सॉनेट का १४ पंक्तियों में लिखा जाना अत्यधिक विषम कार्य है और एक ही भाव का पिष्टपेषण तो और भी दुरूह है। किन्तु इसके संक्षिप्त रूपाकार के कारण इसमें कथन का फैलाव, दुर्बोधता, अव्यवस्था आदि का समावेश नहीं हो पाता। इसी से यह एक व्यवस्थित रचना प्रकार मानी जाती है।

अंग्रेज़ी में रूपाकार की दृष्टि से सॉनेट के मुख्य तीन प्रकार मिलते हैं जिनका नामकरण उनके रचयिताओं के नाम पर हुआ है। (१) पैट्रार्कियन सॉनेट, इसमें १४ पंक्तियों को दो भागों में बाँटकर प्रस्तुत किया जाता है। पहली अष्टपदी में दो अन्त्यक्रम पर आधारित दो चौपदियाँ होती हैं जिनमें से प्रथम चौपदी में मुख्य भाव व्यंजित किया जाता है दूसरे में उसका स्पष्टीकरण। दूसरे भाग में षटपदी का विधान होता है जिसे मिलाकर १४ पंक्तियाँ होती हैं, इस षटपदी में तीन अन्त्यक्रम से नियोजित तीन द्विपदी या दो त्रिपदी का विधान किया जाता है। बाद के इटैलियन कवियों ने अन्त में द्विपदी या युग्मक का विधान नहीं किया। (२) स्पेन्सेरियन सॉनेट; इसमें १४ पंक्तियाँ

---

1. Jacob Schipper , A History of English Versification (The Sonnet) p. 371.

के क्रम -निर्वाह में प्रथम तीन चौपदियों की रचना होती है और अन्त एक द्विपदी अर्थात् युग्मक से होता है। (३) शैक्सपीरियन सॉनेट ; इसमें तीन चौपदी और एक द्विपदी के विधान पर बल दिया गया किन्तु स्पेन्सेरियन सॉनेट की भाँति अन्त्यक्रम का कठोर नियम नहीं बनाया गया। १९वीं शताब्दी में चतुर्दशपदियों की रचना इसी के आधार पर हुई है। बीच में मिल्टन ने इटैलियन सॉनेट को आधार बनाकर कुछ चतुर्दशपदी की रचना की थी किन्तु आगे चलकर वर्ड्सवर्थ तथा कीट्स आदि ने इसे ही स्थायित्व प्रदान किया।[१]

इस प्रकार सॉनेट १४ पंक्तियों में रचित एक संश्लिष्ट रचना प्रकार है जो लय तथा अन्त्यक्रम के आधार पर कुछ खण्डों में विभक्त होती है। यद्यपि इसका आन्तरिक पक्ष एक ही भाव पर आश्रित होता है इसमें आत्माभिव्यंजना की प्रधानता होती। जिससे इसको विषयिपरक काव्य के अन्तर्गत ही रखा जाता है। शेक्सपियर, वर्ड्सवर्थ तथा पेट्रार्क ने आत्माभिव्यंजन रूप में अपनी रचना की है। जहाँ तक संगीतात्मकता का प्रश्न है, यद्यपि इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि किसी सॉनेट में कभी गेय संगीत का सफलता-पूर्वक विधान किया गया हो, परन्तु सॉनेट की आकारगत विशेषताओं को आघात पहुँचाए बिना उसकी स्वर-साधना न की जा सके, इसका भी कोई कारण नहीं।[२]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी चतुर्दशपदी की रचनाएँ की गईं, जिन पर पाश्चात्य सॉनेट का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। पाश्चात्य रचना विधि को अपनाते हुए भी इन कवियों ने विषय, शैली, भावाभिव्यंजना तथा अन्त्यक्रम विधान आदि में अपनी मौलिकता को सुरक्षित

---

1. Encyclopaedia Britannica Vol.XX p. 997.

2. But the sonnet as Shakesphears, Wordsworth and even petrarch used it was a cry from the heart, a subjective confession and although there is perhaps no evidence that a sonnet was ever set to music with success, yet there is no reason why that might not be done without destroying its sonnet character.

Encyclopaedia Britannica, Vol XX, p. 997.

रहा है । प्रगीत के अन्य प्रभेदों की भाँति सॉनेट का भी बहुमुखी विकास छायावादीयुग में प्रसाद ,निराला आदि कवियों से तभी हुआ। यद्यपि प्रसाद से पहले द्विवेदीयुग के कवि रूप नारायण पाँडे सॉनेट की रचना कर चुके थे, उनकी चार चतुर्दशपदियाँ पराग में संकलित हैं, फिर भी हिन्दी साहित्य में इसे सुव्यवस्थित रूप से स्थापित करने का श्रेय प्रसाद जी को है । अँग्रेज़ी कवियों की भाँति प्रसाद जी चतुर्दशपदी के एक ही प्रकार को लेकर नहीं चले । अपनी काव्य प्रतिभा से उसमें यथानुरूप परिवर्तन करते रहना ही उन्हें वांछनीय था । उन्होंने केवल एक ही नियम का कठोरता से पालन किया, वह है अपने संपूर्ण भावों तथा विचारों को १४ पंक्तियों में संगुम्फित करना । प्रसाद की ही भाँति निराला ने भी चतुर्दशपदियों में लय-परिवर्तन ,पंक्ति-व्यवस्था तथा अन्त्यानुप्रास योजना आदि में मौलिकता का परिचय दिया है ।

विवेचन की सुविधा के लिए आलोच्य कवियों द्वारा रचित चतुर्दशपदियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है । प्रथम,पाश्चात्य सॉनेट को आधार मानकर रची गई चतुर्दशपदियाँ । द्वितीय, केवल १४ पंक्तियों के नियम को मानकर मौलिक ढंग से रचित चतुर्दशपदियाँ । इन दो प्रमुख प्रकारों के अतिरिक्त एक प्रकार अतुकान्त छंद में रचित चतुर्दशपदियों का भी मिलता है ।

(क) प्रसाद और निराला के चतुर्दशपदियों का यह प्रथम प्रकार अधिक नहीं मिलता । जो उपलब्ध भी है उसके विधान में कहीं-कहीं क्रम-परिवर्तन इन कवियों ने अपने मन से कर दिया है । आलोच्य कवियों के प्रगीत काव्य में सॉनेट के तीनों प्रकार मिलते हैं किन्तु प्रमुखता शेक्सपीरियन सॉनेट की ही है । प्रसाद जी का सब जीवन बीता जाता है, धूप छाँह के खेल सदृश[१] गीति शेक्सपीरियन सॉनेट के आधार पर रचित है । इसकी रचना कवि ने एक युग्मक और तीन चौपदी के योग से की है। इसका अन्त्यक्रम अवश्य कवि ने अपने ढंग से किया है फिर भी, अन्य समस्त तत्व तथा भावाभिव्यक्ति की प्रणाली

१- प्रसाद : स्कन्दगुप्त (तृतीय अंक) पृ० ६४ ।

शेक्सपीरियन सॉनेट के अनुकूल है। इसी ढंग पर उन्होंने निम्नलिखित गीति की भी रचना की है -

> शिशिर-कणों से लदी हुई, कमली के भीगे हैं सब तार।
> चलता है पश्चिम का मारुत, लेकर शीतलता का भार॥
> भीग रहा है रजनि का वह, सुन्दर कोमल कवरी-भार।
> अरुण किरण सम, कर से छू लो, खोलो प्रियतम! खोलो द्वार॥
>
> — — — —
>
> मेरे धूलि लगे पैरों से, इतना करो न घृणा प्रकाश
> मेरे ऐसे धूल कणों से कब, तेरे पद को अवकाश॥
> पैरों ही से लिपटा-लिपटा कर लूँगा निज पद निर्धार।
> अब तो छोड़ नहीं सकता हूँ, पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार॥
> सुप्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुःख अपार—
> मिट जावे जो तुमको देखूँ खोलो, प्रियतम! खोलो द्वार॥[1]

निराला ने भी शेक्सपीरियन सॉनेट के आधार पर रचना की है। उनका "जीवन के मधु से भर दो मन"[2] गीति इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कवि ने आरंभ में तीन चौपदी तथा अन्त में एक द्विपदी का विधान किया है। यद्यपि इसका अन्त्यक्रम कवि ने अपने ढंग से किया है, वैसे शेक्सपीरियन सॉनेट में अन्त्यक्रम का कोई कठोर नियम नहीं मिलता। निराला ने शेक्सपीरियन सॉनेट की चौपदी तथा द्विपदी को स्थानान्तरित करके भी प्रस्तुत किया है। प्रारंभ में एक द्विपदी तथा बाद में तीन चौपदी के क्रम-परिवर्तन से उन्होंने निम्न गीति की रचना की है -

> बहुत दिनों बाद खुला आसमान
> निकली है धूप, खुश हुआ जहान।

१- प्रसाद : झरना, पृ० २१।
२- निराला : आराधना, पृ० ८८।

घिरीं दिशाएं, कटके पेड़,
चरने को चले ढोर-गाय-भैंस-भेड़।
खेलने लगे लड़के छेड़-छेड़--
लड़कियां घरों को कर भासमान।[1]

इस गीति का अन्त्यक्रम कवि ने मौलिक ढंग से लिया है। इसमें पहली, दूसरी, छठी, दसवीं और चौदहवीं पंक्ति का अन्त्यक्रम एक सा है फिर तीसरी, चौथी, और सातवीं, आठवीं और नौवीं पंक्ति का अन्त्यक्रम ड़, के शब्द से जुड़ा है। किंतु ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं पंक्ति जो एक ही क्रम में लिखी गई हैं इन तीनों का अन्त्यक्रम भिन्न-भिन्न है। जिसके आधार पर यह माना जा सकता है कि सॉनेट के अन्य नियमों को अपनाते हुए भी कवि ने अन्त्यक्रम में पूर्ण स्वतंत्रता बरती है। इसके अतिरिक्त 'जागो जीवन धनिके'[2] 'वारिद वंदना'[3], 'तरणि तार दो'[4] तथा गीतिका के कुछ गीतों की रचना भी शेक्सपीरियन सॉनेट के आधार पर क्रम परिवर्तन के साथ की गई है। इन गीतों की मुख्य विशेषता गीतात्मकता का समावेश है। इनमें युग्मक की अंतिम शब्द योजना के साथ अन्य चौपदियों के अन्तिम चरण का तुक मिल जाता है, जो गेयता की दृष्टि से उचित है।

प्रसाद जी की कुछ ऐसी चतुर्दशपदियां प्राप्त हैं जिनमें अंग्रेजी सॉनेट के क्रम विधान के साथ-साथ अन्त्यानुप्रास की योजना का भी अनुकरण मिलता है। उनकी 'प्रियतम', 'दीप', 'पाई बाग'[5], 'महाकवि तुलसीदास'[6] आदि इसके उदाहरण हैं। पैट्रार्कियन सॉनेट की प्रमुख विशेषता है- षट्पदी के अन्तिम त्रिपदी या युग्मक में भाव को भव्यता प्रदान करना, जो इन प्रसाद

१- निराला : अनामिका, पृ० १३८ ।
२- ,, : गीतिका, पृ० १७ ।
३- ,, : अनामिका, पृ० १६४ ।
४- ,, : आराधना, पृ० ७२ ।
५- प्रसाद : झरना, पृ० ३५, ४४, ६१ ।
६- ,, : कानन कुसुम, पृ० ८६ ।

जी के निम्न गीति में देख सकते हैं -

> स्वच्छ स्नेह अन्तर्निहित, फल्गु-सदृश किसी समय
> कभी सिन्धु ज्वाला-मुखी, धन्य-धन्य रमणी-हृदय ।[1]

इसमें षाटपदी और अष्टपदी के क्रमविधान का निर्वाह तो नहीं किया गया है फिर भी, अन्तिम पंक्ति में संपूर्ण कविता के भावों को जिस ढंग से व्यक्त किया गया है वह पैट्रार्कियन सॉनेट के ही समान है।

प्रसाद और निराला ने अंग्रेजी सॉनेट से प्रभावित होकर चतुर्दशपदियों की रचना तो अवश्य की है किन्तु उसके नियमों का अक्षरश: अनुगमन नहीं कर सके ।

(ख) द्वितीय प्रकार की चतुर्दशपदियाँ वे हैं जिनमें केवल १४ पंक्तियों का निर्वाह मात्र किया गया है अन्यथा उनका संपूर्ण विधान प्रसाद और निराला की प्रतिभा का प्रतिफलन मात्र कहा जा सकता है।

इस कोटि में प्रसाद जी के 'सरोज' तथा 'मोहन'[2] गीति को लिया जा सकता है जिसका आरंभ एक युग्मक से हुआ है और बाद के समचरणों से तुकान्त मिलाया गया है। विषम चरणों का तुकान्त भिन्न ढंग से किया गया है जिसे देखते हुए यह कहा जा सकता है इन गीतियों का अन्त्यक्रम पूर्णत: मौलिक है। 'मोहन' गीति के प्रत्येक सम चरणों का अन्त 'दे मोहन' शब्द से हुआ है जो अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होता है।

प्रसाद जी ने अधिकांश चतुर्दशपदियों की रचना युग्मकों के आधार पर की है। 'नहीं डरते' तथा 'गान'[3] 'वर्षा में नदी कूल'[4] आदि में कहीं भी चौपदी का विधान नहीं मिलता। यही नहीं नाटकों में भी प्रसाद जी ने द्विपदी के योग से चतुर्दशपदियों की रचना की है। 'संसृति के वे सुन्दरतम क्षण

१- प्रसाद : कानन कुसुम, पृ० ७० ।
२- वही, पृ० ७६, ७८ ।
३- वही, पृ० ८४, ८६ ।
४- प्रसाद : चित्राधार, पृ० १५० ।

यो ही भूल नहीं जाना '[1] गीति में सात युग्मक है । प्रत्येक युग्मकों का अन्त्यक्रम अपने ढंग का है, केवल प्रथम और अन्तिम युग्मक का अन्त्यानुप्रास मिलता है । इसके अतिरिक्त सात युग्मकों के योग से रचित 'काले घूम की श्याम लहरियां '[2] सल्खा की विम विकल विरहिणी' तथा 'चल वासन्तबाला अंचल से किस घातक सौरभ में मस्त '[3] आदि गीतियों में भी कवि की मौलिकता का परिचय मिलता है ।

चतुर्दशपदी की १४ पंक्तियों को सात युग्मकों के योग से प्रस्तुत करने की कला निराला में भी मिलती है । निराला द्वारा रचित 'महादेवी वर्मा के प्रति', 'श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति', तथा 'श्रद्धांजलि' (आचार्य शुक्ल के प्रति)[4] आदि में उनकी मौलिकता का स्पष्ट आभास होता है । सात युग्मकों में रचित चतुर्दशपदी का सुन्दर उदाहरण निम्न प्रणीत है-

अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर
दीप्ति -द्वितीया हुई लीन खिलने से पहले
किन्तु निशाचर सन्ध्या के अन्तर में दहले।

--- --- ---

एकादशी रुद्रता, रामा कला द्वादशी,
त्रयोदशी -प्रदोष-गत चतुर्दशी-रत्नसखी ।[5]

निराला जी ने कुछ चतुर्दशपदियों का खण्ड-विभाजन इस प्रकार किया है जो हिन्दी में ही नहीं अंग्रेजी साहित्य में भी उनकी नवीनतम उपलब्धि मानी जाएगी । उनकी 'बादल'[6] कविता का विधान जिसमें एक त्रिपदी

१- स्कन्दगुप्त (प्रथम अंक) पृ० १८-१९ ।
२- ,, (पंचम अंक) पृ० १५७ ।
३- अजातशत्रु (तृतीय अंक) पृ० ११२, १३४ ।
४- निराला : अणिमा,पृ० ४१,३८-३९,१७ ।
५- ,, ,, पृ० १७ ।
६- ,, : आरा, पृ० ४२ ।

एक चौपदी तथा एक सप्तपदी का योग है, अपने ढंग का अनूठा माना जाता है। उनके द्वारा रचित ` रे कुछ न हुआ, तो क्या ?` तथा ` विश्व के वारिधि-जीवन में; [1] गीति भी खण्ड-विभाजन तथा अन्त्यक्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण है इसमें कवि ने एक युग्मक तथा दो षाटपदी का विधान किया है और अन्त्यक्रम भी अपने ढंग से किया है।

प्रसाद और निराला के प्रगीतों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पाश्चात्य सॉनेट की शैली में अपनी मौलिक प्रतिभा का सन्निवेश कर उन्हें नूतन ढंग से प्रस्तुत किया है। आलोच्य कवियों ने चतुर्दशपदी के प्रथम प्रकार की अपेक्षा इस द्वितीय प्रकार में अपनी प्रतिभा को अधिक लगाया है।

प्रसाद और निराला के काव्य में प्राप्त चतुर्दशपदी के इन दो प्रमुख प्रकारों के अतिरिक्त एक तीसरा प्रकार भी मिलता है जिसमें १४ पंक्तियों का अतुकान्त प्रयोग मिलता है। प्रसाद जी की ` हमारा हृदय`, ` प्रत्याशा `, ` दर्शन` [2] आदि चतुर्दशपदियों को हम इस कोटि में रख सकते हैं।

छंद विधान में स्वतंत्रता के समर्थक कवि निराला ने भी भिन्नतुकांत छंदों के योग से चतुर्दशपदियों की रचना की है। ` कुत्ता`, ` मेरे घर के पश्चिम और रहती हैं`, सड़क के किनारे दुकान है`, ` जलाशय के किनारे कुहरी थी` [3] आदि रचनाओं की गणना इसी कोटि के चतुर्दशपदियों में की जाती है। अंग्रेजी कवि मिल्टन ने भी इस ढंग से सॉनेट की रचना की है। इनमें दूरांतर प्रवाही वाक्यों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सम्पूर्ण गीति का विधान एक ही वाक्य के रूप में हुआ है। बीच-बीच में यति और अन्त्यानुप्रास का विधान यथानुकूल हो गया है जैसे -

मेरे घर के पश्चिम और रहती है
बड़ी-बड़ी आँखों वाली वह युवती,

१- निराला : गीतिका, गीत सं० ५६, ७६।

२- प्रसाद : प्रसाद संगीत, पृ० १२८,१२६,१३०।

३- निराला : अणिमा, पृ० १३, ८२,८३,८७।

सारी कथा खुल-खुलकर कहती है
चितवन उसकी और चाल-ढाल उसकी ।
पैदा हुई है गरीब के घर, पर
कोई जैसे उभरी है मुक्ता हो,
उभरते जोबन की भीड़ खाता हुआ
राग साज पर जैसे बजता हो ।[1]

इस प्रकार कवि की भावाभिव्यक्ति एक वाक्य में ही संगुम्फित है जिसका अन्तः प्रवेशी रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है । यदा-कदा तुकांत की भिन्नता होते हुए भी अन्त्यानुप्रास की योजना मिल जाती है ।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि प्रसाद और निराला ने उत्कृष्ट कोटि के चतुर्दशपदियों की रचना की है जिनमें कुछ तो अंग्रेजी के शेक्सपीरियन तथा इटैलियन सॉनेट के आधार पर रचित है और कुछ मौलिक ढंग से रचित है । इनकी गीतियों का पाश्चात्य सॉनेट से अन्त्यानुप्रास, खण्ड-विभाजन ,लय-निपात तथा निर्दिष्ट पंक्तियों से साम्य होते हुए भी उसमें अनुस्यूत लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, नाद-सौन्दर्य तथा लय-अनुपात के कारण स्पष्ट प्रकार परिलक्षित होता है । दोनों कवियों की रचनाओं में विषय की विविधता के साथ ही शिल्प-विधान की नूतनता दृष्टव्य है जो केवल उनके लिए ही नहीं उनके युग-साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है।

पत्र-गीति (Epistle); हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त पत्र-गीति की प्रणाली विदेशी काव्य के एपिसिल (Epistle) का ही रूपान्तरण है । अंग्रेजी का एपिसिल ग्रीक भाषा के 'एपिस्टाले' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अभिप्राय किसी विशेष अवसर पर प्रेषित वस्तु से लिया जाता है । किन्तु साहित्य में इसका आशय उन कृतियों अथवा रचनाओं से लिया जाता है जो पत्रात्मक शैली में किसी अनुपस्थित व्यक्ति को कलात्मक

१- निराला : अणिमा, पृ० ८२ ।

ढंग से पद्यबद्ध कर लिखी जाती है। वैसे इस शब्द का प्रयोग विशेष रूप से प्रारंभ में उन पत्रों के लिए किया जाता था जो प्राचीनकाल में साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किए गए थे।[1] सामान्यत: पत्र-गीति से आज जो अर्थ लिया जाता है वह किसी को प्रेषित उन भावात्मक विचारों से है जो सर्वसामान्य के लिए आस्वाद्य हों। अन्ततोगत्वा एपिसिल शब्द पत्र का ही द्योतक है, पर साधारण गद्य-भाषा में रचे गए पत्र का एपिसिल के अर्थ में प्रयुक्त पत्र से अंतर है। गद्य भाषा में प्रयुक्त साधारण पत्र असाहित्यिक रचना होती है दूसरे वह पत्र व्यक्तिगत होता है, उसका आनन्द केवल सम्बोधित पात्र ही उठा सकता है अन्य नहीं। किन्तु पद्य-बद्ध पत्र-गीति वह कलात्मक साहित्यिक रचना है जिसके आनन्द का भोक्ता सर्व साधारण होता है और इसका प्रभाव भी स्थायी पड़ता है। अतएव, पत्र-गीति इष्ट-मित्र या अन्य किसी को प्रेषित की गई वह रचना है जो स्वत: स्फुरित होते हुए भी सर्वसामान्य के भावों तथा विचारों से सम्बन्धित सहृदय में रसोद्रेक के हेतु पद्य-बद्ध होती है।

पाश्चात्य साहित्य में सर्वप्रथम रोम के प्रसिद्ध कवि होरेस ने इसी पत्रात्मक शैली पर नीति संबंधी व दार्शनिक विषयों को लेकर काव्यमय रचनाएं प्रस्तुत कीं, जिन्हें निबन्ध ही कहा जा सकता है।[2] आगे चलकर इसी के आधार पर अंग्रेज़ी कवियों ने एपिसिल की रचना की। अंग्रेज़ी कवि डेनियल तथा ड्रायडेन द्वारा पत्रगीति की शैली का परिष्करण हुआ और उनकी शैली को विशेष मान्यता मिली। शैली, कीट्स आदि कवियों की पत्र-गीतियों का भी विषय की दृष्टि से विशेष महत्व रहा है।

---

1. Epistle - A communication made to an absent person in writing a letter, chiefly applied to those letters written in ancient times which rank as literature.

   Shorter Oxford English Dictionary, page 624.

2. Epistles in poetry - A branch of poetry bears the name of the Epistle ,and is modelled on those pieces of Horace, Which are almost essays on moral or philosophical subject and are chiefly distinguished from other poems by being addressed to particular patrons of friends.

   Encyclopaedia Britannica Vol.VIII, p. 660.

हिन्दी साहित्य में प्रचलित पत्र-गीति रचना अंग्रेजी के एपिसिल का अनुवाद है। किन्तु हिन्दी में इस शैली का विकास बंगला कवि माइकेल मधुसूदन दत्त की "वीरांगना" रचना को आधार बनाकर किया गया। आधुनिक युग में सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त द्वारा पत्रावली की रचना हुई है। गुप्त जी के बाद छायावाद युग के कवियों ने प्रगीत की इस विधा की ओर ध्यान नहीं दिया। इस युग में निराला जी की केवल दो पत्र-गीतियां मिलती हैं जिनमें विशुद्ध पत्र-गीति की श्रेणी में उनका "शिवा जी का पत्र" आता है।

निराला कृत "महाराज शिवाजी का पत्र" उत्कृष्ट कोटि की पत्र-गीति है। इस पत्र के प्रेषक तथा प्राप्तकर्ता दोनों ही ऐतिहासिक पात्र हैं, साथ ही कर्तव्यच्युत जयसिंह को चेतावनी देना, सत्कर्म की ओर प्रेरित करना आदि प्रसंग भी इतिहास सम्मत है। कवि ने प्रेषक के साथ ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि समस्त भाव तथा विषय साधारणीकृत हो जाता है। इसका विषय भी वैयक्तिक न होकर सार्वजनीन भावना से ओतप्रोत है। गीति में राजनीतिक विषय की ही प्रधानता है किन्तु कवि ने अपनी अप्रतिम काव्य-प्रतिभा से इसमें नैतिकता और दार्शनिकता का भी समावेश किया है। इस गीति में प्रेषक द्वारा प्रेषित भाव अत्यधिक स्वाभाविक बन पड़ा है जिसके साथ सहृदय का बहुत ही सहजता से तादात्म्य स्थापित हो जाता है -

> चाहते हो क्या तुम
> सनातन-धर्म-धारा शुद्ध
> भारत से बह जाय चिरकाल के लिये ?[१]
>
> --- --- ---
>
> आन-बान-शानवाला भारत-उद्यान के
> नायक हो, रक्षक हो,
>
> --- --- ---
>
> किन्तु हाय! वीर राजपूतों की

१- निराला : परिमल, पृ० २९६।

गौरव-प्रलम्ब-ग्रीवा-
अवनत हो रही है आज तुम से महाराज,
मोगल -दल-विगलित-बल
हो रहे हैं राजपूत,[१]

ये पंक्तियाँ उद्बोधन रूप में लिखी गई हैं । इसके द्वारा कवि ने वर्तमान भारत की पराधीनता, आर्थिक विषमता, स्वार्थपरता, लोलुपता, जातीय-दुर्व्यवस्था जैसी आन्तरिक दुर्बलताओं के प्रति सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट कर उसे जागृत करने का सचेष्ट प्रयत्न किया है ।

इस गीति की अन्य विशेषता है भाव-परिवर्तन । एक ओर यदि प्रबोधन के भाव मिलते हैं तो दूसरी ओर प्रताड़ना के स्वर भी दृष्टव्य हैं । उदाहरणार्थ एक ओर प्रेषक अनुनय करता है कि "अमर नहीं है यह लड़ने का साधन मैं"[२] और दूसरी ओर फटकारता है -

छोड़ो यह हीनता,
साँप आस्तीन का,
फेंको दूर
मिलो भाइयों से,
व्याधि भारत की छूट जाय ।[३]

प्रेषक के कथन को कवि ने बहुत ही स्वाभाविक तथा सहज ढंग से प्रस्तुत किया है । अपने देश तथा जाति के अध:पतन से विक्षुब्ध कवि अथवा पत्र-प्रेषक शिवाजी के हृदय की ग्लानि , क्षोभ तथा आक्रोश युक्त व्यंग भाव को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है ।

पास ही तो-देखो,
क्या कहता चित्तौड़-गढ़ ?
गढ़ गये ऐसे तुम तुर्कों में ?
करते अभिमान भी किन पर ?

१- निराला : परिमल, पृ० २००।
२- वही, पृ० २१३ ।
३- वही, पृ० २१७ ।

विदेशियों - विधर्मियों पर ?
काफ़िर तो कहते न होंगे कभी तुम्हें वे ?
विजित भी न होगे तुम ? औ' गुलाम भी नहीं ?
कैसा परित्राण यह सेवा का ! —
बादल घिर आये जो विपत्तियों के दासियों पर,
रहती सदा है जो आपदा,
क्या कभी कोशिश भी की कोई, तुमने बचाने की ?[१]

शिवाजी द्वारा प्रेषित यह कथन अत्यधिक स्वाभाविक तथा सजीव बन पड़ा है। सहृदय को यह अनुभूति होती है कि प्रेषक पत्र को लेकर पढ़ रहा है और उसके मुख पर परिवर्तित भावों को हम देख रहे हैं। इस गीति की यह सजीवता तथा चित्रात्मकता अन्य पत्रगीतियों में नहीं मिलती। इस गीति द्वारा जो चेतावनी, प्रबोधन तथा जागरूकता लाने का प्रयत्न किया गया है वह तद्युगीन सामाजिक विषमताओं तथा विद्रूपताओं को ध्यान में रखकर ही किया गया है। विषय के साथ इसका शिल्प विधान भी उत्कृष्ट कोटिका है। उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों से युक्त यह गीति वीर रस प्रधान है। भावों के उतार-चढ़ाव, कथन में तर्क-वितर्क तथा प्रश्नों की कड़ी के मध्य जिस भाषा तथा शैली का प्रयोग हुआ है, वह सरल, स्पष्ट, गंभीर तथा भव्य है। यह ऐसी सजीव, जीती-जागती वार्तालाप करती हुई रचना प्रतीत होती है जो उसे अन्य पत्र-गीतियों के मध्यशीर्ष स्थान प्राप्त करने के लिए अभीष्ट है।

निराला ने एक और पत्र-गीति 'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' भी लिखा है।[२] किन्तु इसमें पत्र-गीति के वे समस्त तत्व उपलब्ध नहीं होते जो विशुद्ध पत्र-गीति की श्रेणी प्राप्त करने में सहायक हो सके। यह पत्र किसी एक को नहीं बल्कि कई लोगों को सम्बोधित कर लिखा गया है, जिससे इसमें जीवन्तता नहीं आ पाई और विषय भी अस्पष्टता से बोझिल हो उठा है, साथ ही इसमें प्रेषक का कथन प्रत्यक्ष रूप से न व्यंजित होकर अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हुआ है।

१- निराला : परिमल, पृ० २११-१२।
२- ,, : अनामिका, पृ० ११४।

प्रेमास ऐतिहासिक पात्र न होकर सामान्य काल्पनिक पात्र है। विषय भी नैतिक तथा दार्शनिक न होकर हिन्दी हैकियों से सम्बद्ध है। यद्यपि कवि ने इसे पत्र-गीति का रूप प्रदान किया है किन्तु वह सफलता नहीं मिल पाई, कारण उसका सैद्धान्तिक व्यापार तथा कवि-दृष्टि का अभिव्यंजना शिल्प की अपेक्षा विषय पर टिका रहता है। फिर भी इसमें जो वार्तालाप की अनौपचारिकता, भावातिरेक, आत्मीयता तथा विषय की स्पष्टता मिलती है वह उसे पत्र-गीति की संज्ञा प्रदान करने के लिए पर्याप्त है।

निराला जी का 'महाराज शिवाजी का पत्र' हिन्दी की उत्कृष्ट पत्र-गीति है जिसमें अंग्रेजी एपिसिल के समस्त अनिवार्य तत्वों का समावेश हुआ है। उनकी दूसरी रचना 'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' है। समग्र काव्य-रूपों के रचयिता कवि प्रसाद प्रगीत के इस प्रकार में निराला के समकक्ष नहीं आ पाए।

गीत (Song) ; हिन्दी साहित्य में व्याप्त प्रगीत काव्य की यह विधा अंग्रेजी सांग के अर्थ में व्यवहृत होते हुए भी अपने मूल रूप में भारतीय ही है। भारतीय काव्य के विकास के साथ ही गीत के विकास तथा पुरातनता का इतिहास जुड़ा हुआ है। भारतीय कवि जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा आदि के गीत काव्य को देखते हुए इसे प्रगीत की कुछ अन्य विधाओं की भांति अभारतीय नहीं कहा जा सकता। फिर भी आधुनिक युग में प्रचलित गीत प्रणाली पाश्चात्य कवियों के विषय और शिल्प चयन के अधिक समीप और समान है। "अंग्रेजी की इस उन्नत परम्परा के साथ हिन्दी कवियों का सम्पर्क होता है। हिन्दी के कवि वर्ड्सवर्थ, शैली और कीट्स से जितना अधिक प्रभावित है उतना अधिक और किसी से नहीं।[1] अंग्रेजी साहित्य में गीत उस नियमित छन्द में आबद्ध लयात्मक रचना को कहा जाता है जो वास्तव में गेय हो।[2]

१- गीति काव्य : रामखेलावन पाण्डे, पृ० ३४।

2- A metrical composition adapted for singing ,esp. one having a regular verse form, such a composition as actually sung.

Shorter Oxford English Dictionary, p.1945.

अँग्रेजी में गीत का अनिवार्य लक्षण गेयता माना गया और उसका मूलाधार लोकगीतों को ही ठहराया गया । ये लोक गीत उन गेय प्रधान गीतों के समर्थक हैं जिनके लिए किसी वाद्यका अथवा व्यवस्थित विचार की आवश्यकता नहीं होती ।[1] अतः भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों काव्य रूपों में गीत का प्रमुख लक्षण गेय तत्व ही माना गया है और दोनों साहित्य में कविता का प्रारंभ गेय रूप में मिलता है । आज के गीतों में भी भावाभिव्यक्ति के लिए गेयता को प्रधानता दी जाती है । वास्तव में, यदि देखा जाय तो गीत प्रगीत का प्रभेद न होकर उसी का संगीतमय रूप है किन्तु गीत की यही संगीतमयता उसे प्रगीत से विलग कर देती है । नार्मन मैमिल के मतानुसार -" गीत वह छोटी कविता है जो गाने के लिए लिखी जाती है और कभी-कभी जो सचमुच उसका गान होता है, अथवा वह एक ऐसा छन्दमय स्वरूप है जो अपने में संगीतमय होता है, जो न तो बाहरी संगीत के आधार पर ही बनाया जाता है और न तो उसका गाने के ध्येय से युक्त ही होता है, उसका गान अन्तः प्रदेश में होता है । कहने का तात्पर्य यह कि गीत एक ओर तो वाद्यों के सहारे गाये जाते हैं, दूसरी ओर उनका संगीत बाह्य न होकर आन्तरिक भी हो सकता है । आन्तरिक संगीत एकांत में बैठकर पढ़नेवाले पाठकों को आनन्द विभोर कर देता है । इस प्रकार गीत की परिभाषा होती है ऐसी कविता जो संगीतमय , सरल एवं अतिभावात्मक हो और जिसमें लय, स्वर, तुक एवं नाद का ध्यान इस ध्येय से रखा जाय कि उसका संगीत पर्याप्त समय तक कानों में गूंजता रहे, भले ही उसका संगीत आन्तरिक हो अथवा बाह्य ।[2] दूसरे इस नाद व्यंजक संगीत से कविता अधिकाधिक आकर्षण तथा अमरत्व प्राप्त करती है, उसका यह गुण उसे स्थायित्व प्रदान करता है जैसा कि आचार्य शुक्ल का भी कथन है" नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है ।

---

1. Song- all song, indeed all music , is based upon folk song, - From the musical stand point, folk song represents vocal melody. evolved with no thought of harmony or an accompanying instrument.

   Encyclopaedia Britannica, Vol.XX, p.986.

२- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दुबे,पृ०३४४-४५ ।

वातावरण, भोजन, उत्सव आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है ।"[1]

गीत कवि के हृदय से निःसृत भावों का सहज प्रकाशन होते हुए भी कलात्मक रचना है । गीत-विधान में शैली की दृष्टि से कवि को अधिक सजगता तथा जागरूकता बरतनी पड़ती है । गीत की शैली सरल, सहज तथा सौकर्म्य होते हुए भी कलात्मक होती है । इसकी गेयता तथा श्रुति माधुर्यता को सुरक्षित रखने के लिए गीत में उच्चारण अवयव-स्वर तथा व्यंजन की संगीतपूर्ण मैत्री जो प्रसाद गुण युक्त हो, अनिवार्य होती है । गीत के प्रवाहमयता के लिए धारा प्रवाही सरल तथा छोटे-छोटे आकर्षक छन्दों की रचना होनी चाहिए । गीत में अलंकारों का योग भी रहता है किन्तु वाणी की सजावट के लिए नहीं, भावाभिव्यक्ति की सहायता के लिए । गीत की भाषा सरल, सुकुमार, गतिमय, माधुर्यगुणव्यंजक होती है जिसमें भावों के अनुगमन की क्षमता होना आवश्यक है । गायक की सुविधा तथा श्रोता के ग्राह्य शक्ति की परिपुष्टता के लिए गीत की संक्षिप्तता अपेक्षित है ।

गीत प्रगीत का स्वरूप होते हुए भी अपने स्वरूपगत विशिष्टताओं, सौन्दर्य-सौष्ठव, भाषा तथा आकार की संक्षिप्तता के कारण काव्य की स्वतंत्र विधा है । गीत और प्रगीत में अनेक साम्य होते हुए भी कुछ वैषम्य है, जैसे गीत की रचना प्रणाली अत्यधिक प्राचीन है और प्रगीत आधुनिक । गीत गेय प्रधान रचना है और प्रगीत पाठ्य-प्रधान । गीत सामान्य जन तथा सामूहिक मण्डली के रसास्वादन की वस्तु है और प्रगीत केवल विज्ञ मण्डली के आस्वाद्य की वस्तु है । इस प्रकार गीत कुछ अंशों में प्रगीत से भिन्न है किन्तु गीत का आधुनिक रूप जिसके परिप्रेक्ष्य में प्रसाद और निराला के गीत -शिल्प का विवेचन करना है वह पाश्चात्य कवि कीट्स, बायरन, ब्राउनिंग, रार्बटबन्स आदि की प्रगीत -शैली के अधिक समीप है । अतः इसे प्रगीत का भेद मानना ही अधिक तर्कयुक्त है । वास्तव में प्रसाद और निराला के गीत भारतीय तथा पाश्चात्य गीत शैली का तद्रूप न होकर उसका

१- चिन्तामणि, भाग १, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४४ ।

परिवर्द्धित तथा परिष्कृत रूप है जिसमें उनकी मौलिकता तथा नूतनता के सम्यक दर्शन होते हैं ।

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में सांग का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया गया जिनमें विषय तथा शैली को आधार बनाकर किया गया वर्गीकरण अधिक सर्वसम्मत है । विषय-वस्तु को आधार मानकर गीत के राष्ट्रीय गीत, प्रेम-गीत, भक्तिपरक गीत ,विचारात्मक गीत, उद्बोधन गीत आदि भेद किये गए हैं किन्तु रूप अथवा शैली को आधार मानकर नार्मन हैपिल ने गीत के दो भेद किये (१) वोकल सांग अर्थात् गेय गीत (२) लिटरेरी सांग अर्थात् साहित्यिक गीत । " वोकल सांग " में आन्तरिक भावों का प्रस्फुटन संगीत के माध्यम से होता है जिससे यह प्रभेद लिटरेरी सांग की अपेक्षा अधिक माधुर्य व्यंजक होता है और " लिटरेरी सांग " में कवि अपने अन्त:स्फूर्त भावों को सुन्दर शब्दों द्वारा जनसामान्य की भाषा से परे काव्यात्मक भाषा में व्यक्त करता है। इसमें विषय का विस्तार होता है । इसमें भी गेयता अनिवार्य है चाहे वह बाह्य तत्वों से युक्त हो, चाहे आन्तर गान से अनुप्राणित हो । गीत का लोकगीत और कला गीत के रूप में किया गया विभाजन विषय तथा शिल्प की दृष्टि से अधिक उचित प्रतीत होता है । " कलागीत साहित्यिक प्रगीत का ही पर्याय है, केवल उसकी शैली में गेय संगीत का प्रयोग होता है परन्तु इससे भिन्न लोकगीतों में गेयता उनका प्राणतत्व होता है, परन्तु उनकी शैली सायास अलंकृत और साहित्यिक नहीं होती अर्थात् इन गीतों में काव्य गुण (पोएटिक आर्ट) तो होता है काव्य शिल्प (क्राफ्ट) नहीं ।[१] कलागीत का विषय कवि की मन: स्थिति से सम्बद्ध व्यक्तिपरक होता है, जिसकी अभिव्यक्ति प्राय: कलात्मक होती है । लोकगीत का विषय सामूहिक भावों से युक्त सीधे -सादे सहज शब्दों में व्यक्त होता है जो सहजता से सर्वसामान्य के जिह्वा पर नाच सके । इसके विधान में कवि को कलागीत की भाँति मानसिक प्रयत्न नहीं करना पड़ता । शिल्प की दृष्टि से किया गया गीत का विभाजन कलागीत और लोकगीत को ही आधार बनाकर हम प्रसाद और निराला के गीतों का विवेचन करेंगे ।

१- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं : डा० निर्मला जैन,पृ० ५११ ।

कलागीत ; कवि की व्यक्ति-निष्ठ भावना का वह सहज प्रच्छन्न जो उसके सायास प्रयत्नों के फलस्वरूप कलात्मक ढंग से प्रस्तुत हो, कलागीत है। इसमें संगीत-शास्त्र और छन्दशास्त्र के योग से नाद-सौन्दर्य और श्रुतिमाधुर्य की सृष्टि करनेवाले भावों की प्रधानता होती है। प्रसाद और निराला के हृदय से निःसृत भावों का वह रूप जो संगीत-तत्त्व से निमज्जित वर्ण-मैत्री, लय, नाद, स्वर तथा ताल में कलात्मक ढंग से आबद्ध है कलागीत की श्रेणी में परिगणित किया जाएगा। कलागीतों के विधान में प्रसाद की अपेक्षा निराला अधिक सफल हुए हैं। कारण उन्होंने दो एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दशास्त्र की अनुवर्तिता की है।[1] प्रसाद और निराला के कला गीत को विवेचन की सुविधा के लिए दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

(१) अन्य भाषाओं की गीत शैली से प्रभावित गीत

(२) नूतन तथा मौलिक ढंग से रचित गीत

(१) प्रसाद और निराला के विभिन्न भाषाओं से प्रभावित गीतों के भी कई उपवर्ग किये जा सकते हैं यथा :

(क) हिन्दी-साहित्य की गीत शैली से प्रभावित गीत।

(ख) बंगला-साहित्य की गीत शैली से प्रभावित गीत।

(ग) उर्दू-साहित्य की गीत शैली से प्रभावित गीत।

(घ) अंग्रेजी-सांग की शैली से प्रभावित गीत।

(क) महाकवि प्रसाद और निराला ने अपने पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन भक्त कवि सूर, तुलसी, मीरा एवं रीतिमुक्त रसखान, घनानन्द तथा आधुनिक कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि की पद शैली से प्रभावित होकर अनेक गीतों की रचना की। प्रसाद जी ने तो अपने पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाववश गीत के अन्य तत्वों के साथ उसकी भाषा को भी अपनाया है, उदाहरणार्थ-

---

१- निराला : गीतिका (भूमिका), पृ० १० ।

आज तौ नीके नेह निहारौ
पावस के घन तिमिर भार मैं बीती बात बिसारौ
--- --- ---
हरित करौ यह मरुसम मौ मन, देहु प्रसाद पियारौ।[1]

ब्रजभाषा में रचित इस गीत का विधान पद शैली में हुआ है। प्रथम पंक्ति का टेक रूप में लिखा जाना तथा अन्य बाद की पंक्तियों का प्रथम पंक्ति के अनुरूप तुक मिलाना और सब से अन्तिम पंक्ति में अपना नाम लेते हुए विनय भाव को व्यक्त करना पूर्णतः मध्ययुगीन गीत शैली के समान है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ीबोली में भी पद शैली की रचना हुई है। प्रसाद जी के "न धरो कह कर इसको अपना यह दो दिन का सपना"।[2] "उतारोगे अब कब भू भार", "हे नाथ हमारे निबलों के बल कहाँ हो"[3] आदि गीत भक्त कवियों की भांति ही रचित हैं जैसे -

बजा दो वेणु मनमोहन! बजा दो।
हमारे सुप्त जीवन को जगा दो।
--- --- ---
तुम्हीं सब हो इसी की चेतना हो।
इसे आनन्दमय जीवन बना दो।[4]

इस गीत में व्यक्त आत्म-विह्वलता, अनुभूति की सरलता तथा स्पष्टता प्रसाद को मध्ययुगीन गीतकारों के समकक्ष लाकर अवश्य खड़ा कर देती है, किन्तु उसमें वह सहजता, श्रुतिमधुरता तथा भक्ति भावना नहीं मिल पाती जो सूर, तुलसी, मीरा आदि में है।

महाकवि निराला ने भी मध्ययुगीन कवियों की गीत शैली का अनुसरण किया है उनके इस को. के गीत यह स्वीकार करने को बाध्य करते हैं

१- प्रसाद : चित्राधार, पृ० १६० ।
२- ,, : अजात शत्रु (प्रथम खण्ड) पृ० ३८ ।
३- ,, : स्कन्दगुप्त (प्रथम अंक) पृ० ३९,४० ।
४- ,, : ,, (चतुर्थ अंक) पृ० १३९-४० ।

कि 'गीत सृष्टि की दृष्टि से निराला विद्यापति, सूर और मीरा की श्रेणी में आते हैं।'[1] उनके गीतों में व्यंजित भक्त का सविनय आत्म-निवेदन, अशरण-शरण, पतित-पावन, प्रार्थनापरक भाव आदि पूर्णत: भारतीय परम्परा के द्योतक हैं। किन्तु काव्य में नवीन शैली के उद्भावक कवि ने उसे ज्यों का त्यों न प्रस्तुत कर अपनी कलात्मक प्रतिभा से कुछ नए ढंग से उपस्थित किया जो परम्परानुमोदित होते हुए भी नवीनता का पुट लिये है। ईश्वर से विपद्ग्रस्त भक्त की प्रार्थना -

> दुरित दूर करो नाथ
> अशरण हूँ गहो हाथ।
> हार गया जीवन-रण
> छोड़ गए साथी जन
> एकाकी, नैश-क्षण
> कण्टक-पथ, विगतपाथ।[2]

इस गीत के भाव मध्यकालीन कवियों के समान हैं और पद-विन्यास का ढंग भी उन्हीं की तरह है। इसी भाव की पुष्टि 'उन चरणों में मुझे दो शरण'[3] गीत द्वारा की गई है। इसके अतिरिक्त कबीर के उपदेशक रूप को भी हम निराला में समाविष्ट पाते हैं 'हरि का मन से गुणगान करो'[4] कहकर निराला ने नाम जप की महत्ता पर जोर दिया है। इन गीतों में कवि ने परम्परागत शैली को नूतन ढंग से प्रस्तुत किया है। मात्रा, क्रम, यति, लय आदि में पूर्ण स्वच्छंदता बरती है। पद शैली की टेक पद्धति का अनुसरण करने पर भी इनमें वह प्रवाह और गति नहीं है जो मध्ययुगीन कवियों के पदों का सहज गुण है।

निराला का हृदय विश्वकल्याण की महत् कामना से आप्लावित है। ईश्वर के प्रति व्यक्त भाव केवल आत्मोन्मुखी ही नहीं है, उनमें संसार के कल्याण

१- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ४५।
२- निराला : अर्चना, पृ० ६।
३- ,, : अणिमा, पृ० ४।
४- ,, : अर्चना, पृ० ५१।

की भावना भी निहित है । " सार्थक करो प्राण! जननि, दुख-अवनि को दुरित से दो त्राण! "[1], " दलित जन पर करो करुणा "[2], " हरिभजन करो भू भार हरो "[3] आदि गीत उनके व्यष्टिपरक भावधारा के द्योतक हैं । निराला ने भी सूर की तरह " पिया देखिए उधर श्याम विराजे "[4] जैसे उत्कृष्ट सगुणोपासक भाव को प्रकट किया है ।

आलोच्य कवियों के गीतों में इस पार्थिव संसार में सुख-दुःख रूप में व्याप्त उस उद्देश्य तथा अरूप सत्ता का भी वर्णन मिलता है । साथ ही मानव जीवन की क्षणभंगुरता पर भी उनका ध्यान केन्द्रित हुआ है । प्रसाद जी ने " वसुधा के अंचल पर यह क्या कन-कन सा गया बिखर "[5] छन्द की रचना कर ओस की बूंदों की क्षणिकता के द्वारा नाशवान् जीवन का बोध कराया है । यह कबीर के " पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जाति " वाली पंक्ति के समान है । यहाँ कवि प्रसाद का भाव कबीर के भाव से साम्य रख रहा है, भले ही अभिव्यंजना प्रणाली प्रसाद जी की निजी विशिष्टताओं से उद्भूत हो । जीवन की क्षणिकता तथा नश्वरता का भाव कवि की इन पंक्तियों से भी होता है । " सब जीवन बीता जाता है, धूप-छाँह के खेल सदृश । "[6] इस प्रकार प्रसाद जी में मध्ययुगीन कवियों की दार्शनिक भावना भी मिलती है ।

निराला जी ने भी संपूर्ण विश्व के पीछे छिपकर उसे सुनियोजित रूप से चलानेवाली अदृश्य-सत्ता के प्रति अपना कौतूहल " कौन तम के पार ? (रे कह) "[7] गीत द्वारा व्यक्त किया है । उस अदृश्य शक्ति को समझने के पश्चात् जगत और ईश्वर की द्वैत स्थिति को अस्वीकारते हुए अद्वैत भाव का समर्थन किया है -

---

१- निराला : गीतिका, गीत सं० ५३ ।
२- ,, : अणिमा, ,, ६ ।
३- ,, : आराधना, पृ० ५१ ।
४- ,, : गीतगुंज , गीत सं० १२ ।
५- प्रसाद : लहर, पृ० २९ ।
६- ,, : स्कन्दगुप्त (तृतीय अंक) पृ० ६४ ।
७- निराला : गीतिका , गीत सं० १२ ।

जग का एक देखा तार।
कंठ अगणित, देह सप्तक,
मधुर स्वर-झंकार !

--- --- ---

तारक-नभ-तल में सकल-भ्रम-रेखा, श्रम निस्तार।
अलक-मण्डल में यथा मुख-चन्द्र निरलंकार।[१]

इस गीत में व्यंजित भावना तथा अभिव्यक्ति-प्रकाशन की शैली, दोनों ही मध्यकालीन कवियों के समान हैं। प्रस्तुत गीत में गेयता की सुरक्षा के लिए कवि ने मात्रा तथा लय की समनुरूपता का पर्याप्त ध्यान रखा है, फिर भी पंक्तियों के आकार में कवि ने अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

इस प्रकार पाश्चात्य प्रगीत की गीत शैली को भारतीय साहित्य की परम्परागत विशिष्टताओं के अनुकूल अभिव्यंजित करने में प्रसाद और निराला ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रसाद की अपेक्षा निराला इस कोटि के गीत-विधान में अधिक सफल हुए। प्रसाद के परम्परागत शैली में रचित गीतों में कुछ नूतनता मिलती है जो इतनी लम्बी अवधि को देखते हुए स्वाभाविक है, फिर भी उन्होंने निराला की अपेक्षा पूर्ववर्ती शैली का अनुमोदन अधिक कुशलता से किया है। निराला ने मध्यकालीन भाव तथा अभिव्यंजना दोनों में मनोनुकूल परिवर्तन किया है। मध्यकालीन कवियों की गीत शैली से प्रभावित गीत प्रसाद ने निराला की तुलना में कम लिखा है। यह भी ध्यातव्य है कि प्रसाद के गीतों में वह स्वर साधना नहीं मिलती जो निराला में है। अपने भावोद्गारों को संगीत के स्वर और लय के सुनियोजित माध्यमों से व्यक्त करने में निराला अधिक सफल हुए हैं। " ------------ उक्त विशेषताएं निराला को जयदेव, विद्यापति और सूर जैसे संगीतज्ञ कवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करती है। आधुनिक काल में इस श्रेणी के वे अकेले प्रतिनिधि हैं।"[२] फिर भी प्रसाद जी की इस कोटि की कलात्मक क्षमता

१- निराला : गीतिका, गीत सं० २२।
२- नन्द दुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ६०।

को विस्मारित नहीं किया जा सकता । वास्तव में, यदि देखा जाय तो परंपरागत शैली को यथावत् रूप में ग्रहण कर सकना इन कवियों की प्रकृति के अनुकूल न था। इसी से प्राय: इनके गीतों में परंपरागत शैली का निर्वाह न होकर प्रयोग मात्र हुआ है ।

(ख) प्रसाद और निराला ने बंगला साहित्य की मधुरता, कोमलता तथा स्निग्धता से प्रभावित हो कुछ गीतों की रचना की है जिनमें बंगला गीतों का सा सौकुमार्य तथा माधुर्य निहित है । प्रसाद की बंगला के पयार तथा त्रिपदी छन्द में रचित "संध्यातारा", "वर्षा में नदी कूल," "सागर"[1] आदि रचनाएं अत्यधिक स्वाभाविक बन पड़ी हैं ।

अनन्त तरंग पुंज माला विराजित।
फेनिल गंभीर सिंधु निनाद व्रीडित।
हेरि कुहू में नाविक जिमि भयभीत।
दीप पथे दर्शकहिं उलसत सप्रीत ॥[2]

इस प्रकार यदि प्रसाद की पदयोजना एक ओर भारतीय गीत शैली से प्रभावित दिखाई पड़ती है तो दूसरी ओर प्रत्यक्ष रूप से रवीन्द्रनाथ के पदचयन की अनुयायी प्रतीत होती है ।

प्रसाद की अपेक्षा यह प्रभाव निराला के गीतों में अधिक परिलक्षित होता है । बंगला प्रभाव को निराला ने स्वयं अपने गीतों के पाद टिप्पणियों में स्वीकार किया है । उनके गीतों की वर्णमैत्री शब्दयोजना तथा लयात्मक प्रवाह भी बंगला गीतों के अनुकूल है ।

वन्दूँ पद सुन्दर तव,
छन्द नवल स्वर-गौरव
जननि, जनक-जननि-जननि,
जन्मभूमि-भाषे ।[3]

1- प्रसाद : चित्राधार, पृ० १४६-५०, १६० ।
2- वही, पृ० १६० ।
3- निराला : गीतिका, गीत सं० ७८ ।

इस गीत की निर्मिति बँगला के वन्दना गीतों के आधार पर हुई है। इस गीत के शब्द भावों तथा भाषा भी बँगला के हैं। उनकी' वारिद-वंदना'[1]- गीत में भी बँगला शैली का मधुर रूप मिलता है। समावृत लोगार के पीछे छिपे हुए उस जगत-नियन्ता को मानने के लिए कवि ने जिस शैली से अपने भावगत भावों को व्यक्त किया है वह इससे पूर्व हिन्दी साहित्य में नहीं थी, और इसके लिए निराला जी रवीन्द्रनाथ के ऋणी हैं, यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। बंगला गीत शैली का अनुमोदन उनके निम्नलिखित गीत में देखा जा सकता है -

कौन तम के पार ?-(रे, कह)
अखिल-पल के स्रोत, जल-जग
गगन घन-घन-धार - (रे, कह)
गन्ध, व्याकुल- कूल-उर-सर,
लहर- कच कर कमल - मुख-पर,
हर्ष - अलि हर स्पर्श-शर, सर,
गूंज बारम्बार !-(रे, कह)[2]

इस प्रकार निराला जी ने बंगला के अक्षर मात्रिक छन्दों का अनुगमन किया है। किन्तु हिन्दी में इनका यह प्रयोग अधिक समय तक टिक नहीं सका। इसका कारण यह है कि बँगला के उच्चारण की मांसलता हिन्दी में नहीं, उसका ह्रस्व, दीर्घ राग बँगला छन्दों में स्वाभाविक विकास नहीं पाता।[3] फिर भी निराला जी ने हिन्दी में बँगला के छन्दों का प्रत्यावर्तन कर हिन्दी-काव्य को समृद्ध बनाने में अपना विशेष योगदान दिया।

(ग) प्रसाद और निराला के गीतों का कुछ अंश ऐसा है जिसकी निर्मिति उर्दू के वज़न पर हुई है। हिन्दी और उर्दू साहित्य की शैलियों का

१- निराला : अनामिका, पृ० १६४।

२- ,, : गीतिका, गीत सं० १२।

३- पंत : पल्लव की भूमिका, पृ० ५१।

आदान-प्रदान नवीन नहीं अत्यधिक प्राचीन है और इसी भावना से उत्प्रेरित होकर प्रसाद तथा निराला ने अपनी भावाभिव्यक्ति को उर्दू शब्द तथा छन्द में ढालने का प्रयत्न किया। प्रसाद जी ने प्रारंभ में ही उर्दू शैली से समन्वित रूप गज़ल की शैली में 'मूक'[१] कविता की रचना की थी। यह सत्य है कि उर्दू के छन्दों में बड़ी ही रोचकता एवं जीवंतता होती है, दूसरे ये छन्द श्रोता अथवा पाठक को बड़ी ही सरलता से अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इसका उदाहरण उर्दू की बहर पर आधारित प्रसाद का निम्न गीत है -

न छेड़ना उस अतीत-स्मृति से
खिंचे हुए बीन-तार कोकिल
करुण रागिनी तड़प उठेगी
सुना न ऐसी पुकार कोकिल।[२]

उर्दू छन्द पर आधारित प्रसाद जी का निम्न गीत भी प्रशंसनीय है -

अपने सुप्रेम-रस का प्याला पिला दे मोहन
तेरे में अपने को हम जिसमें भुला दे मोहन

--- --- ---

आनन्द से पुलक कर हों रोम-रोम भीने
संगीत वह सुधामय अपना सुना दे मोहन।[३]

शैली की सरलता के कारण प्रसाद जी का यह गीत प्रभात फेरी आदि के लिए प्रचलित हुआ। उर्दू की सुकुमारता तथा मधुरता ने इस गीत को सहृदय भक्तों को कठाग्र करने के लिए बाध्य किया।

प्रसाद की अपेक्षा निराला ने ऐसे गीतों की रचना अधिक की है जो उर्दू शैली से प्रभावित है। बंगला शैली की ही भांति निराला ने उर्दू शैली को

१- प्रसाद : इन्दु (पांचवीं किरण) मई १६१३।
२- ,, : स्कन्दगुप्त (प्रथम अंक) पृ० १५।
३- ,, : काननकुसुम, पृ० ७८-७६।

भी सफलता से आत्मसात किया जिसका सौन्दर्यपूर्ण उदाहरण ग़ज़ल की शैली में रचित उनका निम्नलिखित गीत है -

> गिराया है ज़मीं होकर, छुटाया आसमां होकर ।
> निकाला, दुश्मने जां; और बुलाया, मेहरबां होकर ।
> चमकती धूप जैसी हाथवाला दमकता आया,
> जलाया गरमियां होकर, खिलाया गुलसितां होकर ।[१]

निराला जी ने इस गीत के मिसरों में जो शब्द की समानता तथा लय निपात का विधान किया है वह ग़ज़ल शैली का यथावत् रूप प्रतीत होता है । निराला ने उर्दू की रूबाइयों से प्रभावित होकर भी गीत लिखा है -

> या पथिक से लोल-लोचन । कह रहे-
> "हम तपस्वी है, सभी दुःख सह रहे ।
> गिन रहे दिन ग्रीष्म-वर्षा-शीत के
> काल-ताल-तरंग में हम बह रहे ।[२]

यद्यपि इस गीत की शब्दावली विशुद्ध हिन्दी की है किन्तु पहली दूसरी और चौथी पंक्ति में अन्त्यानुप्रास की योजना और तीसरी पंक्ति की भिन्नता उर्दू की रूबाइयों का समर्थन करती है । इसके अतिरिक्त उर्दू की प्रसिद्ध शैली मर्सिया जिसमें शोक पूर्ण भावों की व्यंजना होती है, निराला के काव्य में दृष्टव्य है । उनकी 'सरोज स्मृति' को इस शैली का उदाहरण माना जा सकता है किन्तु इस गीत की अभिव्यंजना प्रणाली के अन्य उपकरण उसे अंग्रेजी की एलिजी की श्रेणी में आबद्ध करने को बाध्य करती है ।

इस प्रकार काव्य में नूतनता के आग्रही कवि प्रसाद और निराला ने उर्दू शैली का अनुकरण तो किया किंतु उसे कुछ इस ढंग से प्रस्तुत किया कि वह उभरकर प्रमुख रूप से सामने नहीं आ पाई । कारण, इन कवियों का लक्ष्य

१- निराला : बेला, गीत सं० ५४ ।
२- ,, : परिमल (नयन) पृ० ७५ ।

भी उर्दू छन्द तथा भाषा में कविता करना नहीं था । दूसरे यह भी है कि उर्दू भाषा का प्रभावकारी वज़न तथा लचीलापन हिन्दी भाषा में नहीं आ पाता । इसी से प्राय: उर्दू शैली स्थिर रूप से हिन्दी काव्य में टिक नहीं पायी ।

(घ) प्रसाद और निराला के कलागीतों में पाश्चात्य सांग की शैली से गृहीत भाव तथा अभिव्यक्ति की शैली प्राय: उन कवियों के मौलिक भाव-प्रकाशन के मध्य पुष्पित -पल्लवित होकर कुछ इस भांति भारतीय गीतों के झीने आवरण में लिपट कर प्रस्तुत हुई जिसे न तो पूर्णत: विदेशी ही कहा जा सकता है और न पूर्णत: भारतीय ही, ऐसी स्थिति में उन गीतों में अनुस्यूत भावाभिव्यंजना में आलोच्य कवियों की मौलिकता को ही प्राथमिकता देना अधिक उचित होगा । निराला जी ने स्वयं यह स्पष्ट किया है कि भाव - प्रकाशन की भंगिमा ही केवल अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित है, अन्यथा राग-रागिनियों में आबद्ध गीतों की स्वर मैत्री हिन्दुस्तानी ही रही है ।[१] अत: विषय की पुनरावृत्ति के भय से प्रसाद और निराला के गीतों की मौलिक विशिष्टताओं के साथ ही विदेशी सांग के उन आंशिक प्रभावों को, जिन्हें उन कवियों ने अपने ढंग से ग्रहण किया है, विवेक करना अधिक समीचीन होगा ।

(२) प्रसाद और निराला के कलागीतों का दूसरा प्रकार वह है जिसमें उनकी मौलिकता तथा नूतनता का समावेश हुआ है । नूतनता के लोभ का संवरण न कर सकनेवाले महाकवि निराला ने स्पष्ट शब्दों में बताया कि " भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिये हुए हैं । साथ-साथ उनके व्यक्तिकरण में एक-एक कला है जिसका परिचय विज्ञजन अपने अन्वेषण से आप प्राप्त कर सकेंगे । "[२] आलोच्य कवियों के भावाभिव्यंजना का यह नवीन ढंग आधुनिक गीत साहित्य की समृद्धि के लिए यथेष्ट है ।

महाकवि प्रसाद ने काव्यात्मक भाषा का अवलम्ब लेकर अनेक उत्कृष्ट गीतों का विधान किया है जिनमें शब्दों की क्रमबद्धता ने राग एवं

१- निराला : गीतिका (भूमिका) पृ० ७ ।

२- ,, : ,, ,, पृ० १२ ।

ताल में आबद्ध होकर संगीत तत्त्व की सृष्टि की है। ऐसे गीतों की विशिष्टता स्वरों की व्यवस्था तथा मात्रा के क्रमबद्धरूप ताल में नियोजित होना है। कवि ने हृदयस्थ भावों को संगीत के स्वरों में बाँधने के लिए शब्दों के ध्वनि संयोजन पर पूर्ण ध्यान दिया है, जिसका उदाहरण उनका निम्नलिखित गीत है -

हिमाद्रि तुंग-शृंग से प्रबुद्ध -शुद्ध भारती-
स्वयं-प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती-
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े-चलो, बढ़े-चलो। [1]

इस गीत में आए हुए शब्द तुंग, शृंग, प्रबुद्ध, शुद्ध, स्वयं-प्रभा समुज्ज्वला आदि गीत की स्वर-मैत्री तथा लयान्विति में सहायक हुए हैं। इन शब्दों में ध्वनि संयोजन की भी क्षमता निहित है वीरों के बढ़ते हुए कदमों का स्पष्ट ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त इस मार्च गीत की विशेषता शास्त्रीय संगीत की कसौटी पर खरा उतरना है। ऐसी ही कला से युक्त प्रसाद जी का एक गीत और द्रष्टव्य है -

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही-तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल -कुल सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई- मधु मुकुल नवल रस गागरी। [2]

इस गीत के प्रत्येक शब्द प्रभातकालीन संगीत की सृष्टि करते है। वर्ण-विन्यास भी कोमल, मधुर तथा कर्णप्रिय है। खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा। पंक्ति के प्रत्येक शब्द नीड़ों से चोंच निकालकर 'कुल-कुल' बोलते हुए कलरव में ध्वनित संगीत की सृष्टि करते है। 'किसलय का अंचल डोल रहा' अर्थात् प्रभात की

१- प्रसाद : प्रसाद संगीत (चन्द्रगुप्त) पृ० ११७।
२- ,, : लहर, पृ० १६।

मन्द पवन बह रही है पंक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रभात बेला आ गई है । इस गीत में प्रयुक्त शब्द श्रुति-मधुर, सुकुमार संगीत की योजना करते हैं ।

निराला ने भी पारम्परिक गीत-शैली से विक्षुब्ध होकर कुछ ऐसे गुण-निपुण परिमार्जित शब्दों को संगीत के अनिवार्य तत्वों से अधिष्ठित कर अपने गीतों में व्यक्त किया जिनकी उत्कृष्टता सर्वमान्य है कारण कवि ने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है ।"[1] यही कारण है कि निराला के गीतों में आन्तरिक संगीत का स्वाभाविक समावेश हुआ है । उनका शब्द-विन्यास नाद-सौन्दर्य की सृष्टि करता है जिसमें संगीत और काव्य दोनों के ही स्वर मुखरित हैं ; यथा -

> कण-कण कर कंकण, प्रिय
> किण-किण रव किंकिणी,
> रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
> लौट, रंकिणी;
> और मुखर पायल स्वर करें बार-बार,
> प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ![2]

इस प्रकार निराला के शब्द संगीत में ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता, अर्थ-व्यंजकता आदि गुण इस भाँति समाए हैं जैसे धागे में पिरोए हुए मोती । शब्द-संगीत के विधान में प्रसाद और निराला को अभूतपूर्व सफलता मिली है ।

प्रसाद और निराला की मौलिकता शब्द संगीत के अतिरिक्त गीतों के ताल एवं लयबद्धता में भी दृष्टव्य है । ताल और गति में बँधने पर गीत के स्वरों की गेयता स्वतः सिद्ध है । प्रसाद जी ने अपने गीत विधान में ताल-बद्धता का भी पूरा प्रयत्न किया है । जैसा चन्द्रगुप्त नाटक के अन्त में दी गई

१- निराला : गीतिका (भूमिका) पृ० १२ ।

२- ,, ,, गीत सं० ६ ।

गीतों की स्वर लिपि के साथ निर्दिष्ट ताल की नामावली से सिद्ध होता है। जौनपुरी, भैरवी आदि के गीतों को उन्होंने तीनताल और कहरवा ताल में बाँधा है। खम्माज राग के निम्न गीत के लिए कवि ने तीन ताल निर्दिष्ट किया है यथा -

> तुम कनक किरण के अन्तराल में
> लुक छिप कर चलते हो क्यों ?
>
> ---- ---- ----
>
> बैठा विभ्रम की खोल चली,
> रजनी गंधा की कली खिली,
> अब सांध्य मलय- आकुलित-
> दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों ?[१]

प्रसाद की अपेक्षा निराला में गीत की यह कला अधिक मुखरित हुई क्योंकि गीतों के विधान में कवि ने, ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है।[२] यही कारण है कि उनके सभी प्रमुख गीत प्रचलित तालों में मध्य सहजता से गाए जा सकते हैं। भूमिका में कवि ने कुछ गीतों के लिए ताल का निर्देश भी किया है -

रूपक ; " जग का एक देखा तार।
कंठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर-झंकार।"[३]

झपताल ; " अनगिनत आ गये। शरण में जन, जननि।
सुरभि सुमनावली। खुली मधुऋतु अवनि।[४]

१- प्रसाद : चन्द्रगुप्त (प्रथम अंक) पृ० ११।
२- निराला : गीतिका (भूमिका)
३- वही, पृ० १३।
४- वही, पृ० १४।

तीनताल ; " मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?
स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर, खिल न सकेगा ? ।[१]

जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल प्रायः सभी प्रचलित हैं। प्राचीन ढंग रहने पर भी ये नवीन कंठ से नया रंग पैदा करेंगी।[२] ताल से भी अधिक महत्त्व निराला ने गीतों की अर्थान्विति को दिया है। उनके गीतों की लयबद्धता भावानुगामी है। विषय की कोमलता और कठोरता के अनुकूल लय-परिवर्तन उनके गीतों की विशेषता है।

आलोच्य कवियों की मौलिकता का भान गीत की छन्द-योजना में भी होता है। इन कवियों के गीतों में समाविष्ट छंद-संगीत का रूप भी सर्वथा नूतन है जैसे निराला का यह गीत -

खोलो दृगों के द्वार,
मृत्यु-जीवन ज्ञान-तम के
करण, कारण-पार।
उधर देखोगे, सुधर तर तुम्हीं दर्शन-सार,
मोह में हो सुप्त, जग परितृप्त बारम्बार।[३]

यहाँ कवि ने पारम्परिक पद शैली को अपनाते हुए भी उसे नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रथम पंक्ति का छन्दक रूप में विधान, लय निपात आदि भारतीय गीत के छन्दों की विशिष्टता से युक्त है, किन्तु उसे प्रस्तुत करने की कला-पंक्ति विधान, यति, मात्रा क्रम आदि कवि की मौलिक उपज है, जो निराला जैसे मेधावी शिल्पकार से ही अपेक्षित है।

निराला ने अपने गीतों में छंद विधान के इतने परिवर्तन से ही संतोष का अनुभव नहीं किया, बल्कि इससे बहुत आगे बढ़कर छन्द को शास्त्रीय

१- निराला : गीतिका (भूमिका) पृ० १५ ।
२- वही, पृ० १२ ।
३- निराला : गीतिका, गीत सं० ४३ ।

नियमों से मुक्त कर, उन्हें नूतन ढंग से प्रस्तुत करने का गुरुतर कार्य भी किया । मुक्त छंद में रचित निराला का निम्न गीत दृष्टव्य है यथा :

कहा जो न, कहो !
नित्य-नूतन, प्राण, अपने
  गान रच- रच दो ।
--- --- ---
जग रहा जो छल - पियो, प्रिय,
  पियो, प्रिय, निरुपाय ।
मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु मैं
  आई हुई, न डरो ।[1]

छन्द के समस्त बन्धनों से मुक्त इस गीत की रचना निराला ने जिस छन्द में की है, हिन्दी में उस छन्द का जनक उन्हीं को माना जाता है । मुक्त छन्द में रचित निराला का यह गीत संगीत के तत्वों से भी अनुप्राणित है । निराला जी ने शास्त्रीय छंदों के परिप्रेक्ष्य में अपने गीतों का विधान इस प्रकार किया है कि उनमें नूतनता का संचार स्वत: ही हो गया है । निराला के गीतों में निहित छंद की संगीतमयता उनके गीतों को किन्हीं क्षेत्रों में प्रसाद से विलग कर देती है किन्तु जहां तक गीत विधान में नूतनता तथा मौलिकता का प्रश्न है उसमें दोनों कवियों का अनवरत प्रयास दृष्टव्य है। प्रसाद जी ने भी गीत अथवा काव्य में नए शब्द विन्यास पर बल दिया है । उन्होंने स्वत: स्फूर्त आभ्यंतरिक भावों की व्यंजना में प्रचलित पद योजना को असमर्थ बताकर नया वाक्य विन्यास[2] जो तद्रूप उत्पन्न कर सके, की सृष्टि पर पूर्णत: बल दिया है, जिसके प्रतिफलन स्वरूप उनके गीतों में ध्वन्यात्मकता ,संगीतात्मकता ,चित्रात्मकता, कोमलता, सहजता, मसृणता, माधुर्यता आदि का कुशल संयोजन हुआ है। प्रसाद और निराला ने अन्य भाषाओं तथा अंग्रेज़ी के गीत शैली से प्रभावित होकर उसे अपनाया अवश्य किन्तु उसकी हू-ब-हू नकल नहीं की, क्योंकि मेधावी बुद्धि तथा तीक्ष्ण दृष्टिवाले ये कवि यह भलीभांति

१- निराला : अनामिका (मरण दृश्य) पृ० १३५-३६ ।
२- प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १४३ ।

जानते हैं कि इससे भारत के कानों को कभी तृप्ति होगी, यह संदिग्ध है ।[1] इस प्रकार इन गीतों की शब्द-मैत्री भावान्विति, छंद-विधान तथा भाषा आदि भारतीय एवं पाश्चात्य गीत शैली की पृष्ठभूमि पर, आलोच्य कवियों की मौलिकता से सम्पृक्त होकर कुछ इस ढंग से प्रस्तुत हुई है कि उनमें नूतनता का समावेश स्वत: ही हो गया है ।

कलागीतों के अतिरिक्त प्रसाद और निराला के गीतों का वह अंश अवशेष रह जाता है जिसका विधान लोक गीत की शैली में हुआ है ।

(२) लोकगीत : लोक के सामूहिक भावों से सम्वलित कवि की वह भावाभिव्यक्ति जो गेयात्मक लय एवं स्वर-संधान पर आधारित हो, लोकगीत है । लोकगीत और साहित्यिक गीत में भावविधान का स्पष्ट अन्तर होता है । लोकगीत में सामूहिक भावों की प्रधानता होती है और गीत में वैयक्तिक भावों की । इसकी अभिव्यंजना प्रणाली सहज तथा लोक प्रचलित विशिष्टताओं से युक्त होती है । इसमें कलात्मकता का आग्रह न होकर गेयता की प्रधानता होती है । अकृत्रिम तथा सहज ढंग से जन-मानस के भावों की व्यंजना करनेवाली यह गीत शैली अधुनातन न होकर सर्वथा प्राचीन है । इसका सुमधुर रूप सूर, तुलसी आदि के गीतों में भी मिलता है किन्तु काव्य के समग्र रूपों की भांति इसे प्रसाद और निराला ने अपने ढंग से ग्रहण कर काव्य रूप प्रदान किया है । लोकगीत की शैली के विषय में प्रस्तुत डा० सत्येन्द्र का मत महत्त्वपूर्ण है उन्होंने बताया कि लोकगीत में संगीत की भांति स्वर को कृत्रिम आरोह - अवरोह सरगम और स्वर-ग्राम तथा लय-ताल में नहीं बांधा जाता, लोकगीत का ताल और लय, आरोह-अवरोह, संवृत्ति- विवृत्ति समस्त केवल स्वाभाविक मानवाकांक्षों के अनुकूल ढलता है ।[2] अतएव, लोकगीत मानव-मन की सहज मनोवृत्तियों से प्रेरित वह अन्त:स्फुरित रचना है[3] जिसमें कलात्मकता के लिए कवि को प्रयास न कर केवल सहज ढंग से प्रस्तुत करने का कर्तव्य मात्र करना पड़ता है ।

१- निराला : गीतिका (भूमिका) पृ० १० ।
२- डा० सत्येन्द्र : लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ३६२-६३ ।
३- Encyclopaedia Britannica, Vol.XX, p. 988.

हिन्दी में उपलब्ध लोकगीतों के अनेक रूप हैं यथा ; होली, लावनी, कजली, फाग, हिंडोला, बारहमासा आदि जिनमें से आलोच्य कवियों ने कुछेक लोक धुनों को आधार बनाकर गीतों का विधान किया है। लावनी ढंग पर विरचित प्रसाद की निम्नलिखित रचना लोकगीत का सुन्दर उदाहरण है -

> भरा नैनों में मन में रूप ।
> किसी छलिया का अमल अनूप ।
> जल-थल मारुत, व्योम में, जो छाया है सब ओर ।
> खोज-खोजकर खो गई मैं, पागल-प्रेम-विभोर ।
> भाँग से भरा हुआ यह कूप । भरा नैनों में -----[1]

यह गीत लावनी के ढंग पर रचित है किन्तु अन्तरा में केवल दो ही पंक्तियाँ रखी हैं जब कि लावनी में चार होती हैं। अन्यथा प्रथम पंक्ति का टेक रूप में रखा जाना और उसके बाद की अन्तरावाली पंक्तियों का भिन्न तुकान्त होना और फिर टेक से मिलानेवाली अन्तरा की अन्तिम पंक्ति में तुक निर्वाह होना इस बात का साक्ष्य है कि प्रसाद जी कुशल गीतकार थे। जो विशुद्ध साहित्यिक गीतों के अतिरिक्त जनसामान्य की रुचि के अनुकूल भी गीत-विधान कर सकते थे। उन्होंने लावनी के ही आधार पर एक और गीत की रचना की है जिसकी पंक्ति संख्या और अन्य समस्त शिल्प-विधान लावनी के अनुकूल है यथा,

> ओ मेरी जीवन की स्मृति, ओ अंतर के आतुर अनुराग ।
> बैठ गुलाबी विजन ऊषा में गाते कौन मनोहर राग ।
>
> ---- ---- ----
>
> इस अनन्त निधि के नाविक, हे मेरे अंग अनुराग
> पाल सुनहला तान, तनती हैं स्मृतियाँ उस अतीत में जाग ।[2]

१- प्रसाद : स्कन्दगुप्त (प्रथम अंक) पृ० ५५ ।

२- प्रसाद : प्रसाद संगीत (चन्द्रगुप्त) पृ० ११६ ।

इस प्रकार प्रसाद जी ने लोकगीतों की सहज शैली को अनुपम शिल्प विधान से निमज्जित कर सर्वसाधारण की जिह्वा तक पहुंचाने का कार्य भी किया । प्रसाद जी ने लोकगीत की अपेक्षा कलागीत की रचना अधिक की है कारण उनकी कवि प्रतिभा कलात्मक गीतों के विधान में अधिक रमी ।

गीत विधायकों में अग्रणी निराला ने लोकधुनों पर आश्रित अनेकानेक गीतों की रचना की है । "निराला के गमकदार कुछ सुधी विचारकों ने तो उन्हें गाते भी सुना है । प्रायः संगीत के क्षणों में वे लोकगीतों को सस्वर गाते हैं । अतः यदि उनसे सम्बद्ध भाव उनके गीतों में उतर आये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है -------- फलतः उनके गीतों में लोकगीतों की धुनें मिलेंगी ।"[1] निराला विरचित लोकगीतों में लोक संगीत की वह सुमधुर लहरी सन्निविष्ट है जो पाठक को निर्बाध रूप से अभिभूत करके छोड़ती है । उनका "बांधो न नाव इस ठांव बन्धु, पूछेगा सारा गांव बन्धु"[2] उत्कृष्ट कोटि की रचना है । इसमें कवि ने सामान्य जीवन की वह मधुरिमा भर दी है जो स्वाभाविक रूप से अपनी मिठास में श्रोता और पाठक को सराबोर कर देती है । सावनी की रचना भी उन्होंने की है -

> घन आये घनश्याम न आये ।
> जल बरसे आंसू दृग छाये ।
> पड़े हिंडोले धड़का आया,
> बढ़ी पेंग घबराई काया
> चले गले, गहराई छाया
> पायल बजे होंठ मुरझाए ।[3]

इस गीत में कवि की अनुभूति की तीव्रता तथा सहजता का स्पष्ट आभास होता है । घन बरस रहे हैं किन्तु घन श्याम के न आने पर नायिका की मनःस्थिति का जो चित्र कवि ने खींचा है वह सहज होते हुए भी कलात्मक है ।

१- निराला : गीतगुंज, प्रस्तावना
२- ,, : अर्चना, पृ० ५३ ।
३- वही, पृ० १२१ ।

इसके अतिरिक्त 'पट-बढ़ कर बहती पुरवाई', धुन मल्हार कजली की काई'[1] और कजली गीत की रचना भी निराला काव्य में उपलब्ध है। झूला गीत का अन्यतम उदाहरण उनका निम्न गीत है -

पारस, परस किशोर न दे मन
बरसे झूम-झूम घर सावन।
--- --- ---
घर छिड़े आए मन भावन।[2]

इन सावनी, लावनी तथा झूलागीतों के विधान में कवि ने जनसामान्य के बीच प्रचलित गीतों की शैली तथा व्यान्विति का अनुकरण अवश्य किया है, फिर भी अपनी कलात्मक काव्य-प्रतिभा को विस्मरित नहीं कर सके। प्रत्येक शब्द बोलते हुए संगीत की सामान्य गुणों से युक्त है। छन्द भी कजली आदि का ही है किन्तु नव्यता से परिपूरित है। झूला आदि प्रचलित गीतों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण सार्वजनिक पर्व होली पर गाए जानेवाली प्रचलित धुन के आधार पर भी गीत की रचना की है -

नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे, खेली होली।
जागी रात सेज प्रिय पतिसंग रति सनेह-रंग घोली,
दीपित दीप-प्रकाश, कंज छवि मंजु-मंजु हँस खोली -
मली मुख चुम्बन-रोली।[3]

इस गीत में जनसामान्य के मध्य प्रचलित होली गीत की सी सरलता तथा शब्दों का सहज विन्यास नहीं मिलता साथ ही विषय का रूप भी परिष्कृत तथा परिमार्जित है। कवि ने होली की अनगढ़ शैली को यथावत् रूप में न प्रस्तुत कर उसे चित्रात्मक एवं लाक्षणिक रूप में लयबद्ध करने का प्रयत्न किया है। निराला जी ने प्रचलित लोक धुनों के अतिरिक्त घरों में स्त्रियों के गान को आधार

१- निराला : गीतगुंज, पृ० ५६।
२- ,, : ,, पृ० ३८।
३- ,, : गीतिका, पृ० ५६।

बनाकर" भवना न करा "[१] मरकी साड़ी जैसे फुलवाड़ी ", " रंग गये सांवले नयन वहीं" [२] आदि गीतों की भी रचना की है। किन्तु निराला के गीतों में प्रचलित लोकगीतों का सा प्रवाह, भाषा-सारल्य, भावों की कोमलता, सरलता तथा प्रभविष्णुता नहीं आ पाई जिससे कि उन्हें विशुद्ध लोकगीत कहा जा सके। इसका कारण, लोकगीत की शैली में भी मौलिकता के सन्निवेश की प्रवृत्ति है। लोक-मानस तथा लोक-संगीत को अपने गीतों में व्यंजित कर निराला जी ने अपने काव्य साहित्य पर लगे क्लिष्टता तथा दुरूहता के आक्षेप से मुक्ति पाने का सायास प्रयत्न किया है। प्रसाद की अपेक्षा निराला लोक गीतों की रचना में अधिक सफल हुए हैं।

प्रसाद और निराला की गीत शैली के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है, इन कवियों का लक्ष्य देशी या विदेशी गीतों की कला की नकल करना या फिर लोक विहित परंपरागत शैली को बोझ समझकर उसे आगे खींचना नहीं था, प्रत्युत उसके परिप्रेक्ष्य में स्वत: स्फूर्त रागात्मक अनुभूति को स्वच्छंद भावभूमि पर मौलिक रूप से व्यक्त करना था। यही कारण है कि हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला गीतों से प्रभावित होते हुए भी इन्होंने उसे यथावत् रूप में न प्रस्तुत कर थोड़ा परिवर्तन तथा संशोधन करते हुए अपने ढंग से व्यक्त किया।

समग्रत: प्रसाद और निराला के प्रगीत-शिल्प के अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि दोनों कवियों के प्रगीतों में वैयक्तिकता की प्रधानता है, किन्तु प्रसाद के काव्य में अतीत की सुखद स्मृतियों का विषादमय वर्णन मात्र मिलता है, जबकि निराला के काव्य में उनके भावोद्रेक सहृदय को स्वस्थ, प्रसन्न एवं उदात्त भावलोक में पहुंचा देते हैं। इसी से प्राय: प्रसाद के गीतों में वह गेयता नहीं आ पाई जो निराला के गीतों में सन्निहित है। प्रसाद के गीत भावावलित वैयक्तिकता, बौद्धिकता तथा रागात्मकता से युक्त हैं जिससे उनमें सुपाठ्य तत्व प्रमुख हो गया है और निराला के गीतियों में भावना तथा

१- निराला : अर्चना, पृ० ९०।

२- ,, : आराधना, पृ० ७५।

संगीत का अपूर्व संयोजन हुआ है जो उनके गीतों में, उल्लास, भावावेग तथा जन-आस्था से प्रेम को उद्घाटित करने के लिए अभीष्ट है ।

प्रसाद और निराला के प्रगीतों में युगयुगीन शाश्वत मूल्यों का समावेश भी हुआ जिसका मुख्य कारण इन कवियों की जीवनानुभव की व्यापकता, वस्तुस्थिति का समुचित ज्ञान तथा भावों की प्रखरता एवं तीक्ष्णता है। इस प्रकार इन कवियों ने काव्य में जिस चिरंतन सत्य को उद्घाटित किया उसे नजदीक से देखा और समझा है । इसके अतिरिक्त प्रसाद और निराला के प्रगीतों की महत्वपूर्ण विशेषता है - स्वच्छंद कल्पना, संवेदनशील भावों का प्रसार, तादात्म्यपूर्ण वस्तु विन्यास, भावोद्वेग, प्रभावान्विति, लय-निपात, संगीतात्मकता, छंद-योजना भाषा की सजीवता आदि ।

प्रगीत-शिल्प का सुनिश्चित विधान आलोच्य कवियों द्वारा रचित सम्बोधन-गीति, पत्र-गीति, चतुर्दशपदी शोक-गीति तथा गीत में मिलता है, जिसके विषय में कहा जा सकता है कि प्रगीत के इन प्रभेदों को रूपाकार प्रदान करने के लिए दोनों कवियों को प्रयास नहीं करना पड़ा अपितु उनकी काव्य-प्रतिभा के प्रतिफलन स्वरूप इनका स्वाभाविक विन्यास ही हुआ है। दोनों कवियों ने प्रगीत के प्रमुख भेदों में से गीत-शिल्प को अधिक समुन्नत बनाया है। गीत का कलात्मक तथा लोक प्रचलित दोनों ही रूप इनकी रचनाओं में समाविष्ट है । अपने भाव तथा शैली को अधिक प्रभविष्णु तथा गरिष्ठ बनाने की भावना से पूर्ववर्ती हिंदी, बंगला तथा उर्दू की गीत शैली का भी अनुमोदन किया है । दोनों कवियों का लक्ष्य प्रगीत के इन रूपों द्वारा अपने भाव, विचार तथा अनुभूति-प्रवणता को जन सामान्य के मध्य प्रसारित करना था ।

प्रसाद और निराला के प्रगीत-शिल्प में अन्तः तथा बाह्य संगीत का सुन्दर विधान हुआ है । स्वर-मैत्री पर आधृत शब्द संगीत का सुपुष्ट विधान इनके गीतों की विशेषता है । "प्रसाद की संगीत चेतना ने लय-प्रसार और राग-विस्तार के भीतर पृष्ठभूमि की प्रतिष्ठा की है ।"[1] अतः प्रसाद के गीतों में निहित लयात्मकता तथा संगीत से आवेष्टित गेयता एवं प्रवाह आदि गीतों को

१- रामखेलावन पाण्डेय : गीतिकाव्य, पृ० ४७ ।

नवीन मोड़ देने के लिए पर्याप्त है । फिर भी गीतों में शास्त्रीय संगीत को प्रश्रय देने में निराला ने अधिक प्रयास किया, यही कारण है कि 'निराला के गीत मूलतः गेय हैं जबकि प्रसाद और महादेवी के मूलतः पाठ्य हैं। ------------ निराला के गीतों में स्वाभाविक स्वर संधान की क्षमता है । इस प्रकार उनमें संगीत और काव्य कला के दोहरे प्रयोजन सिद्ध होते हैं जिसका अन्य कवियों में सापेक्षिक अथवा संपूर्ण अभाव है ।'[1] प्रसाद और निराला के प्रगीतों में लय-प्रसार तथा राग-विस्तार के स्वाभाविक स्वर-संधान की जो क्षमता मिलती है वह प्रगीत-काव्य का प्रमुख तत्व है, अतएव इस दृष्टि से दोनों कवियों के प्रगीत पूर्णतः सफल हैं ।

प्रसाद और निराला के प्रगीतों का छान्दसिक विधान भावानुकूल है । उसमें भाव तथा अर्थ को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है । उनके छंदों में सर्वत्र लय, गति तथा निखार है । प्रसाद के प्रगीतों में छंद का विकास शनैः शनैः उत्तरोत्तर गति से हुआ है जो उनके आन्तरिक भावों से प्रस्फुटित सहज, मधुर एवं लय संयुक्त शब्दावली के अनुरूप निर्मित है । छंद-विधान में निराला ने प्रसाद से अधिक प्रयोग किये हैं । उनके प्रगीतों का लय-विन्यास मुक्त छन्द में भी हुआ है, जो निराला के प्रगीत की ही नहीं उनके समग्र काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है । निराला के छंदों में उनके भाव तथा विचार लय, ताल मात्र में आबद्ध हो, प्रवाह तथा गति की स्निग्धता में व्यक्त हुए हैं ।

प्रसाद और निराला के प्रगीत की भाषा भी भाव-व्यंजक है । प्रसाद के प्रगीत की भाषा में सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति की भंगिमा अवलोकनीय है । हिंदी में मूलतः शब्द-विन्यास का सांस्कृतिक कार्य सर्वप्रथम प्रसाद जी द्वारा ही संपन्न हुआ और आगे चलकर तद्युगीन तथा अन्य परवर्ती कवियों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया । इस दृष्टि से प्रसाद की भाषा उल्लेखनीय है ,

---

१- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ९६-९७ ।

किन्तु प्रयोग की दृष्टि से निराला का महत्व अधिक है, उनकी भाषा के विविध रूप हैं। साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा का प्रयोग भी उनके काव्य में मिलता है उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भाषा का निर्माण किया है। उनके प्रगीतों की भाषा सतेज, प्राणवन्त, प्रखर और प्रवाहयुक्त है।

आलोच्य कवियों की अभिव्यंजना शैली सर्वथा समृद्ध तथा प्रभावशाली है। अर्थ व्यंजकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता आदि गुणों का सन्निवेश इनकी प्रगीत शिल्प की मुख्य विशेषताएं हैं। भावाभिव्यंजना के सूक्ष्म प्रसाधनों के उपयोग में दोनों कवियों की भिन्नता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इसे अगले अध्यायों में यथा प्रसंग देखेंगे। प्रसाद के सौन्दर्य-चित्र उनकी रागात्मक अनुभूति से अनुप्राणित हैं। उनमें शालीनता और शिष्टता है, किन्तु निराला-काव्य में वे मांसल भावनाओं से उद्भूत हैं अतः उनमें विचित्र उच्छृंखलता आ गई है फिर भी, सौन्दर्याभिव्यक्ति सहज और स्वाभाविक ही है। दोनों कवियों ने अपने विषय की अर्थ व्यंजकता के लिए उत्कृष्ट काव्य-शिल्प का विधान किया है जो उनके प्रगीत-काव्य की श्रीसमृद्धि को द्विगुणित करने में पर्याप्त सिद्ध हुई है। प्रगीत-काव्य की अतिरिक्त विशेषता संगीतात्मकता है जिसके योग से भाव निष्पत्ति के लिए स्वर-मैत्री, शब्द-संगीत, नाद-संगीत, रागात्मक भाषा तथा लय-ताल पर दोनों कवियों ने विशेष ध्यान दिया है, किन्तु तुलना करने पर इस दिशा में प्रसाद की अपेक्षा निराला अधिक सफल प्रतीत होते हैं। कारण, निराला में भावों का आधिक्य तो है ही, गीत-विधान में संगीत-शास्त्र के अनुवर्तन की भावना भी निहित है। प्रसाद और निराला के शिल्प विधान की अभिनन्दनीय विशिष्टता वस्तु एवं शिल्प का संतुलित समन्वय है, जो उनकी नवोन्मेषशालिनी कल्पना-शक्ति और सूक्ष्म वैचारिक दृष्टि के सामंजस्य तथा लय संतुलित भाव प्रसार की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का प्रतिफलन मात्र है।

---

(२) मुक्तक-शिल्प :

स्वरूप एवं परिभाषा : मुक्त शब्द में कन् प्रत्यय के योग से मुक्तक शब्द बना है, जिसका अर्थ है - जो अन्य से आलिंगित या सम्बद्ध न हो, अर्थात् अपने आप में पूर्ण तथा निरपेक्ष रचना प्रकार हो ।[१] इसी अर्थ को ध्यान में रखकर अग्निपुराणकार ने ऐसे चमत्कारी श्लोक को जो अर्थाभिव्यक्ति में स्वतः समर्थ हो, मुक्तक कहा है ।[२]

मुक्तक काव्य की अत्यधिक प्राचीन विधा है । इसकी व्याख्या काव्यशास्त्र के सभी प्रमुख आचार्यों ने की है । भामह[३] और दण्डी[४] ने मुक्तक को एक श्लोक या छन्द का पर्याय मानते हुए प्रबन्ध-काव्य का अवयव मात्र माना है । उसके स्वतंत्र अस्तित्व की बात इन्होंने नहीं कही है ।

मुक्तक के विषय में भामह और दण्डी आदि से भिन्न अग्निपुराणकार से मतैक्य रखनेवाला विचारणीय मत अभिनवगुप्ताचार्य का मिलता है । उनके अनुसार इसका प्रत्येक श्लोक अर्थाभिव्यंजना में स्वतः समर्थ होता है । वह अपने विषय तथा अर्थ को प्रकट करने के लिए पूर्व और पर पद्यों का आश्रय नहीं लेता । यह पूर्वापर निरपेक्ष होते हुए भी रसोद्रेक की क्षमता रखता है ।[५]

१- मुक्तमन्येनाऽनालिंगितम् तस्य संज्ञायां कन् । ३।७ । ध्वन्यालोकलोचन टीका

२- मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम् ।
- अग्निपुराण, सं० रामलाल वर्मा, पृ० ३१

३- अनिबद्धं पुनर्गाथाश्लोकमात्रादि तत्पुनः । १।३०। काव्यालंकार

४- मुक्तकं कुलकं कोषः संघात इति तादृशः
सर्गबन्धांशरूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः । १।१३ । काव्यादर्श

५- पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।३।७ ।
- ध्वन्यालोक-लोचन

परवर्ती आचार्यों ने भी अभिनवगुप्ताचार्य के मत का समर्थन करते हुए स्पष्ट रूप से मुक्तक को अनिबद्ध या मुक्त पद रूप ही माना है । [1]

संस्कृत आचार्यों द्वारा निरूपित मुक्तक के स्वरूप तथा लक्षण को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । एक वर्ग, मुक्तक को निरपेक्ष तथा मुक्त पद रूप मानने वाले अग्निपुराणकार, अभिनवगुप्त तथा उनके समर्थक अन्य परवर्ती आचार्यों का है, जिन्होंने स्पष्टतया पूर्वापरनिरपेक्ष अनिबद्ध रस-चर्वणाशक्ति से युक्त स्वतंत्र पदशैली को मुक्तक की संज्ञा से अभिहित किया । वास्तव में, इस पक्ष के आचार्यों ने मुक्तक की अंतरंग स्थिति को पहचान कर विवेचित किया है । दूसरा वर्ग, वह है जो मुक्तक के बाह्य रूप को ध्यान में रखकर उसे प्रबंध-सापेक्ष मानता है । ये विद्वान् मुक्तक के स्वतंत्र अस्तित्व की उपेक्षा करते हुए उसे प्रबंध काव्य का अंगमात्र मानते हैं । किंतु इसे प्रबंध का अंग मानना उचित नहीं क्योंकि इसमें प्रबंध की भाँति भावों तथा विचारों की तारतम्यता नहीं होती । इसका प्रत्येक छंद पूर्वापर निरपेक्ष होता है । इस प्रकार मुक्तक स्वतंत्र रचना प्रकार है । प्रबंध काव्य में जहाँ जीवन की अनेक रूपता प्रोद्भासित होती है और खण्डकाव्य में जीवन की अनेकरूपता में से किसी एक पक्ष या घटना की विवेचना होती है, वहीं मुक्तक काव्य में मन की किसी एक अनुभूति, एक काल्पनिक भावना की व्यंजना निहित होती है । आचार्य शुक्ल ने मुक्तक की विशेषता "कल्पना की समाहार-शक्ति तथा भाषा की समास-शक्ति" बताई है । [2]

मुक्तक काव्य से आशय ऐसी स्वच्छंद काव्य-रचना से लिया जाता है जिसमें समाविष्ट रसास्वादन के लिए भोक्ता को उस पद के सिवा अन्य किसी पद या छन्द का आश्रय न लेना पड़े अर्थात् अपनी अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ एक पद या छंद ही मुक्तक है । मुक्तक के स्वरूप को हम आचार्य शुक्ल के इस कथन से भी समझ सकते हैं "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती है जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में भूला हुआ पाठक निमग्न हो जाता है और

---

[1] (क) "अनिबद्धं मुक्तादि" - हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, अध्याय ८ पृष्ठ ४०८

(ख) छन्दोबद्ध पदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।

- विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, परिच्छेद-६ पृ० ३१४

[2] हिंदी साहित्य का इतिहास; पृ०२२८

हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है । उसमें तो रस के ऐसे छींटें पड़ते हैं, जिससे हृदयकलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है । यदि प्रबंध काव्य विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है । उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन का या उसके किसी अंग का प्रदर्शन नहीं होता बल्कि कोई रमणीय खण्ड दृश्य सहसा सामने ला दिया जाता है । ।१ अत: यह निश्चित है कि मुक्तक प्रबंध की भाँति अपार गुणराशि से युक्त जीवन की समग्रता को समेटने वाली वृहद रूपाकार रचना नहीं है । फिर भी, वह अपने सीमित रूपाकार में निज अस्तित्व की रक्षा करते हुए रसोद्रेक की शक्ति तथा चमत्कार जन्य कलात्मक काव्यक्षमता से युक्त है ।

मुक्तक के स्वरूप विश्लेषण के प्रसंग में उसका गीत एवं प्रगीत से साम्य-वैषम्य भी समझ लेना अनिवार्य है । मुक्तक में गीति की भाँति भावों का उन्मुक्त उच्छलन संभव नहीं होता क्योंकि कवि जो कुछ भी व्यक्त करता है उसमें उसकी सचेष्ट बौद्धिक क्रियाओं का आभास होता रहता है । मुक्तक काव्य में व्यंजित भाव प्रयास-जन्य होते हैं । गीति काव्य आत्माभिव्यंजक हैं, मुक्तक काव्य कलात्मक है । इसमें गीति की भाँति न तो भावावेग की तीव्रतम अभिव्यक्ति होती है और न आत्माभिव्यक्ति का सहज उच्छलन । मुक्तक में कवि का अन्तर व्यक्त होने के लिए रस, छंद, अलंकार जैसे उपकरणों का अवलम्ब लेता है, अर्थात् मुक्तक में व्यंजित कवि के भाव कवि-कर्म (रस, छंद, अलंकार) से आच्छादित होते हैं । मुक्तक में रस-नियोजना के लिए कवि को प्रयास करना पड़ता है किंतु गीति में यह तत्व स्वत: उपस्थित हो जाता है । मुक्तक में छन्द-विधान के लिए एक एक मात्रा का ध्यान रखा जाता है जबकि गीति में छंद का बंधन अनिवार्य नहीं होता । मुक्तक में अनुस्यूत कवि की यही बौद्धिक भावाभिव्यक्ति गीति से वैषम्य उत्पन्न करती है । दोनों में भाव एवं विचार की ही व्यंजना होती है किंतु उसे अभिव्यक्ति करने का ढंग अवश्य अलग होता है । अत: यह स्पष्ट है कि गीतकाव्य भावप्रधान है, मुक्तक काव्य कला-प्रधान ।

आधुनिक युग में मुक्तक काव्य का रीतिकालीन उत्कर्षमय रूप क्षीण होने लगा था । द्विवेदीयुग में साहित्य ने जो नई करवट ली उसमें

।१ हिंदी साहित्य का इतिहास : पृ० २२८-२२९ ।

मुक्तक काव्य दब सा गया । भारतेन्दु युग में मुक्तक की रचना समग्र रूप से हुई है भले ही उसमें रीतिकाल की भाँति चमत्कार और नूतनता न हो , किंतु द्विवेदी युग में आकर इस रचना प्रणाली का सर्वथा ह्रास हुआ है । इसके लिए द्विवेदी युग में खड़ी बोली की समृद्धि, छायावाद का बीजारोपण तथा कवियों का अँग्रेजी प्रगीत काव्य की ओर उन्मुख होना आदि ही उत्तरदायी है । प्रसाद और निराला की सर्वोन्मुखी काव्यप्रतिभा के प्रतिफलनस्वरूप उनके काव्य में मुक्तक विधा भी मिलती है । इन कवियों ने अपने काव्य-रचना का प्रारंभ मुक्तकों से ही किया है । भले ही आगे चलकर राग-विराग की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने प्रगीति-विधा को चयन किया । आलोच्य कवियों के काव्य में उपलब्ध मुक्तक रचनाएँ परम्परागत रूप में ही मिलती हैं । इसका कारण यह है कि इनकी प्रवृत्ति मुक्तक और प्रबंध रचना की न होकर मूलत: अँग्रेजी और बंगला साहित्य के प्रगीत-काव्य के विधान में अधिक संलग्न हुई ।

आलोच्य कवियों के युग में काव्य साहित्य में वस्तु प्रधान तथा आत्मप्रधान मुक्तकों की रचना हुई । वस्तु-प्रधान मुक्तकों के दो प्रकार मिलते हैं एक वर्णनात्मक, जिनमें प्रकृति, उत्सव, दृश्य आदि की प्रधानता है ; दूसरे कथात्मक,जो किसी घटना, कथा आदि को लेकर लिखे गए हैं । समय की आवश्यकता तथा युगान्तर ने कथात्मक मुक्तकों को प्रस्तुत करने का अवकाश वर्णनात्मक मुक्तकों की अपेक्षा कम दिया । उस युग में आत्मप्रधान मुक्तकों के भी दो प्रकार उपलब्ध होते हैं । प्रथम भाव-प्रधान मुक्तक, जिनमें देवी-देवताओं की वन्दना और उनके प्रति भक्तों का आत्मनिवेदन भाव, देश एवं राष्ट्र आदि के उद्धार की कामना आदि मिलती है । द्वितीय चिंतन प्रधान मुक्तक, जो उपदेशात्मक एवं विचार प्रधान है । आत्मप्रधान मुक्तकों के द्वितीय प्रकार का समृद्ध वर्णन इनके काव्य में मिलता है ।

<u>प्रसाद और निराला के मुक्तक-काव्य की विविध शैलियाँ :</u>

प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध मुक्तकों को शिल्प की दृष्टि से दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

(१) परम्परानुमोदित-शैली में रचित प्रबन्ध मुक्तक

(२) नूतन शैली में विरचित मुक्तक

(१) परम्परानुमोदित शैली में रचित प्रसाद और निराला के मुक्तकों में रीतिमुक्त कवियों के कलात्मक वैभव एवं भारतेन्दुयुगीन कवियों के ब्रज भाषा में रचित मुक्तकों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । इनमें प्रसाद और निराला में प्रसाद ने ही अधिकता से इस शैली को अपनाया है । अपवाद-स्वरूप निराला के काव्य में भी इस कोटि की रचनाएँ मिल जाती हैं । किंतु प्रसाद के काव्य में परम्परागत दोहा, कवित्त, सवैया आदि में रचित मुक्तक अधिक मिलते हैं और उनमें तदनुरूप रसानुभूति भी होती है । रीतिमुक्त कवियों की चमत्कारमयी अभिव्यंजना शैली से प्रभावित प्रसाद जी की निम्न पंक्तियाँ मुक्तक-परम्परा का अनुमोदन करती है, यथा -

सोधि सरोज की माल बारु अनंग भरे कंग है दरसौहैं,
गोल-कपोलन पै अरुनाई अमन्द छटा झलकी सरसौहैं,
दीरघ कंज से लोचन माते रसीले उनींदे कटाक्ष लजौहैं,
छूटत बान भरे सरसान चढ़ी रहैं काम कमान सी भौहैं । ।१

यहाँ रीति कालीन कवियों के समान ही नख-शिख वर्णन मिलता है । भाषा भी ब्रज-भाषा है और शब्दावली - दरसौहैं, अरुनाई, सरसौहैं, रसीले, उनींदे, लजौहैं, भौंहैं आदि रीतिकालीन मुक्तकों के समान हैं । प्रसाद जी का निम्नलिखित छन्द जो उक्तिवक्रता से युक्त है उन्हें पूर्ववर्ती मुक्तक कवियों की कोटि में खींच लाता है, -

बैनन कहत हिये, बैन न परत तुम,
सैनन 'प्रसाद' क्यों कहत अनजानि कै ।
पंच नहीं जानों, हाँ विरंची झूक देखो किन,
राग है बचन सुनी लीजो पहिचानि कै ।। ।२

बैनन और सैनन की स्थिति स्पष्ट करते हुए पंच और विरंची शब्दों का विन्यास कवि की वाक्-चातुरी का परिचायक है । अलंकार द्वारा कथन में चमत्कार उत्पन्न करने की प्राचीन शैली का प्रयोग भी दृष्टव्य है -

---

।१ प्रसाद : चित्राधार (उर्वशी) पृ० ३ ।
।२ ,, ,, (मकरन्दबिन्दु) पृ० २७६ ।

आवत हौ अन्तर में अन्तर रहत तऊ

जपत निरन्तर हौ अन्तर जानिकै । ।१

यहाँ पर प्रयुक्त यमक अलंकार का विधान रीतिकालीन कवियों के अनुरूप है । रीतिमुक्त कवियों की शैली कवित्त, सवैया शैली के अतिरिक्त प्रसाद जी ने रीतिबद्ध कवि बिहारी की शैली का भी अनुकरण अनुभाव-चित्रण के प्रसंग में किया है -

नूपुर मधुर धुनि सुनत बिहाल होत

चंचल कुरंग मन चौकड़ी बिसारो क्यों ?

- - - - -

देखत ही ताहि पहिचानो सो परत, कहौ,

बरबस ही लागत 'प्रसाद' वह प्यारो क्यों ? ।२

कवि ने हृदय की स्थिति उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण वर्तमान शैली से भिन्न पूर्ववर्ती कवियों के ढंग पर किया है । इनकी दूसरी विशेषता सम्पूर्ण भावों का सार अंतिम दो पंक्तियों में व्यक्त कर देना भी है । अंत में अपना नाम लेकर कथन को समाप्त करना आदि परम्परागत शैली का ही अनुकरण है । प्रसाद ने बिहारी की गूढ़-शैली के अतिरिक्त रहीम की सीधी-सादी नीति-कथन की सूक्ति शैली भी अपनायी है, यथा -

सुमन न छुवौ कठिनकर, कासों कहियो जाय

इनको सौरभ दूर तै, परस पाय कुम्हिलाय ।। ।३

मध्यकालीन रीति कवियों के अतिरिक्त प्रसाद पर भक्त-कवियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । सूर के उपालम्भ गीत की ही तरह प्रसाद की 'भई ढीठ फिरैं चल चंचल-सी, यह रीति नहीं इनकी है नई', ।४ रचना है । इस गीत की भावव्यंजकता सूर की सी है, किन्तु शैली रीतिकालीन कवियों के समान है, इस मुक्तक में रूपक, अनुप्रास विरोधोक्ति का चमत्कार पूर्वकालीन

।१ प्रसाद : चित्राधार (मकरन्द बिन्दु) पृ० १७८

।२ ,, : ,, ,, पृ० १७६

।३ ,, : ,, (उर्वशी) पृ० ४

।४ ,, : ,, ,, पृ० १८३

पद्धति के अनुरूप ही मिलता है ।

निराला के काव्य में परम्परागत मुक्तकों का विधान नहीं मिलता । यत्र-तत्र पदशैली तथा उपदेशात्मक शैली में रचित कुछ मुक्तक मिल जाते हैं किन्तु उनमें परम्परागत शैली का अक्षरशः अनुमोदन नहीं मिलता, यथा -

हरि का मन से गुण-गान करो
तुम और गुमान करो, न करो
स्वर गंगा का जल पान करो
तुम अन्य विधान करो न करो । [1]

इसको हम कबीर के भक्तिपरक उपदेशात्मक शैली का अनुकरण कह सकते हैं इसके अतिरिक्त मुक्तक की पदशैली भी निराला के काव्य में उपलब्ध है -

खोलो दृगों के द्वय-द्वार ।
मृत्यु-जीवन ज्ञान-तम को
करण, कारण-पार
उधर देखोगे, इधर तर तुम्हीं दर्शन-धार,
मोह में थे दृप्त, जग परितृप्त बारंबार । [2]

निराला के इस पद की दूसरी-तीसरी पंक्ति को थोड़ा परिवर्तन कर निम्नलिखित ढंग से रखा जाय तो वह परवर्ती पद शैली का स्पष्ट अनुकरण प्रतीत होगी -

खोलो दृगों के द्वय-द्वार । (टेक)
मृत्यु-जीवन ज्ञान-तम को करण, कारण-पार
उधर देखोगे, इधर तर तुम्हीं दर्शन-धार,
मोह में थे दृप्त, जग परितृप्त बारंबार ।।

इस प्रकार प्रसाद और निराला के मुक्तक रचना पर मध्यकालीन भक्त कवि सूर, तुलसी, कबीर आदि तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त और रीतिबद्ध कवियों की शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, प्रसाद ने निराला की

---

[1] निराला : अर्चना गीत सं० ४४

[2] ,, : गीतिका ,, ४२

अपेक्षा परम्परागत मुक्तकों की रचना अधिक की है । कारण, प्रसाद ने ब्रज भाषा से काव्य रचना प्रारम्भ की है और निराला ने अपने काव्य का श्रीगणेश रूढ़िवादी रचनाशैली के विद्रोह से किया है । जिससे काव्य के समस्त रूपों को प्रस्तुत करने वाले ये दोनों कवि कहीं-कहीं पर मिला ही गए हैं ।

(२) नूतन शैली में विरचित मुक्तक-शिल्प के अन्तर्गत आलोच्य कवियों के उन समस्त मुक्तकों को परिगणित किया जा सकता है, जो मुक्तक की प्राचीन शैली में रचित होने पर भी उनकी मौलिकता से सम्पृक्त हैं । काव्यारंभ में रचित मुक्तकों में तो इन्होंने परम्परागत शैली का अनुकरण किया है किन्तु आगे चलकर ये कवि मुक्तक विधान में अपने 'स्वत्व' को नहीं भूल सके और अपनी स्वच्छंद-प्रवृत्ति के अनुकूल उसे नूतन ढंग से प्रस्तुत किया है । इनके नूतन शिल्प में रचित मुक्तकों के दो प्रमुख रूप मिलते हैं । (क) इतिवृत्तात्मक शैली (ख) प्रगीतात्मक शैली ।

(क) प्रसाद जी ने द्विवेदीयुगीन शुष्क और नीरस इतिवृत्त-प्रधान शैली का भी अनुकरण किया है । कारण, द्विवेदी जी के समय में ही प्रसाद की काव्य-साधना का आरंभ होना है । इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण निम्नलिखित छंद है जिसमें इतिवृत्तात्मक शैली की स्पष्ट झलक मिलती है -

ये मानसिक विप्लव प्रभो जो हो रहे दिनरात हैं
कुविचार-क्रूरों के कठिन कैसे कुटिल आघात हैं
हे नाथ, मेरे सारथी बन जाव मानस-युद्ध में
फिर तो ठहरने से बचें एक भी न विरुद्ध में । ।१

इसका शब्द-विन्यास तथा छंद-चयन भी द्विवेदीयुगीन प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त के समान है । हरिगीतिका छंद में रचित यह मुक्तक भक्ति-परक है । इसके अतिरिक्त प्रकृतिवर्णन और उसके क्रिया-कलापों का साफ-सुथरा इतिवृत्तवर्णन भी प्रसाद जी ने किया है, यथा -

सुन्दर प्राची, विमल ऊषा से मुख धोने को है
पूर्णिमा की रात्रि का शशि अस्त अब होने को है

।१ प्रसाद : काननकुसुम (करुण क्रन्दन) पृ० ८

तारका का निकर अपनी कान्ति सब खोने को है

स्वर्ण-जल से अरुण भी आकाश-पर धोने को है।। [1]

इस वर्णनात्मक शैली में कवि निराला के रोला छन्द में रचित कुछ मुक्तकों को लिया जा सकता है, जैसे 'आचार्य शुक्ल के प्रति', 'प्रसाद जी के प्रति' आदि। निराला ने द्विवेदी युग की इतिवृत्त-मुक्तक शैली को उसके यथावत् रूप में न ग्रहण कर कुछ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन के साथ प्रस्तुत किया है -

अमानिशा थी समालोचना के अम्बर पर

उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर। [2]

निराला के मौलिक शिल्पविधान से उद्भूत उनके इस मुक्तक को हम द्विवेदीयुगीन शिल्प से प्रभावित मान सकते हैं। किन्तु अभिव्यंजना शैली में नई लहर लाने वाले ये आलोच्य कवि मुक्तक-शिल्प में भी नूतन प्रयोग करने में नहीं चूके।

(ख) आधुनिक साहित्य की विकासोन्मुख प्रवृत्ति ने प्रसाद और निराला को द्विवेदीयुगीन शुष्क तथा नीरस मुक्तक शैली को छोड़कर छायावाद की सरस, लाक्षणिक, मूर्त-अमूर्तमयी प्रतीकात्मक शैली से युक्त प्रगीत रचना की ओर उन्मुख किया। इस कोटि के मुक्तकों में प्रगीत का आरम्भिक रूप मिलता है जिससे इन्हें मुक्तक और प्रगीत के मध्य शृंखला स्थापित करने वाली कहा जा सकता है। प्रसाद जी की ब्रजभाषा की रचना 'अहो नवल नीरद नवनीर नीर निधि सों भरि' [3] में भावों की चित्रात्मकता तथा अभिव्यंजना शैली का नूतन रूप दृष्टव्य है। इसमें काव्य शैली के विकास का स्पष्ट आभास होता है। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी के 'चित्राधार' में संकलित 'शारदीय शोभा', उद्यान-लता, प्रभात, कुसुम, नीरद, संध्यातारा, शरदपूर्णिमा, चन्द्रोदय, इन्द्रधनुष आदि में भी प्रयुक्त अप्रस्तुत-योजना, ध्वन्यार्थ-व्यंजना आदि प्रगीत-काव्य की भाँति है।

प्रसाद जी के 'झरना' काव्य में भी अधिकांश रचनाएँ ऐसी उपलब्ध हैं, जिन्हें न तो विशुद्ध मुक्तक ही कहा जा सकता है और न विशुद्ध प्रगीत

---

[1] प्रसाद : काननकुसुम (महाक्रीड़ा) पृ० ६

[2] निराला : अणिमा (आचार्य शुक्ल के प्रति) पृ० ९७

[3] प्रसाद : चित्राधार (नीरद) पृ० १५७-५८

ही । आराध्य के प्रति प्रेम और भक्ति के प्राकट्य का यह नूतन ढंग किसी प्रमुख काव्य-शैली का परिचायक नहीं कहा जा सकता जैसे -

हृदय में छिप रहे इस डर से,
उसको भी तो छिपा लिया था, नहीं प्रेम रस बरसे ।।
- - - - - -
पर कैसी अपरूप छटा लेकर आये तुम प्यारे ।
हृदय हुआ अधिकृत अब तुमसे, तुम जीते हम हारे ।। [1]

पदशैली में रचित प्रगीत-शिल्प के गुणों से युक्त उपर्युक्त मुक्तक प्रसाद की नवोन्मेषशालिनी कला का बोधक है । प्रस्तुत मुक्तक खड़ी बोली भाषा के अर्द्ध-विकसित रूप में रचित होने पर भी प्राचीन मुक्तकों की भाँति प्रभावजन्य है वैसे इस गीत का महत्त्व छायावाद के अरुणोदय की दृष्टि से अधिक है ।

प्रसाद के इन नूतन शिल्प उपकरणों से सुसज्जित मुक्तकों की प्रमुख विशेषता उनका आध्यान्तरिक अर्थात व्यक्तिगत अनुभूतिमूलक होना है । इनमें कवि के वैयक्तिक दृष्टिकोण की महत्ता होने से प्राचीन से कुछ भिन्नता आ गई है । इस कोटि के मुक्तकों में इन कवियों ने संगीतात्मकता पर विशेष बल न देकर भावात्मकता और अनुभूतिमूलकता की सहज अभिव्यक्ति का अधिक ध्यान रखा है । साथ ही वैयक्तिक भावना की सचेष्ट अभिव्यक्ति भी इनके प्रगीतमूलक मुक्तकों में मिलती है -

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की ।
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की ।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जागगया ?
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया ।
- - - - - -
सुनकर क्या तुम भला करोगे-मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नहीं - थकी सोई है मेरी मौन व्यथा । [2]

---

[1] प्रसाद : झरना (बिन्दु) पृ० ६१
[2] ,, : लहर पृ० ५-६

इसका रूप प्राचीन मुक्तकों से मिलता है, किन्तु उनमें छन्द और मात्रा का बन्धन होने से वैयक्तिकता को इस प्रकार की प्रमुखता नहीं मिल पाई जैसी प्रसाद के मुक्तकों में मिलती है । प्राचीन पाठ्य मुक्तक व्यक्ति और सवैया के बन्धन में तथा गेय मुक्तक संगीत के स्वर और ताल में इस भाँति बँधे रहे कि उनमें व्यक्तिगत भाव उभर नहीं पाए ।

नूतन शैली में विरचित मुक्तकों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि टेक (स्थायी) के बाद आने वाली पंक्तियाँ प्राचीन मुक्तकों की शैली से भिन्न होती है । इनके मुक्तकों में प्रथम पंक्ति की समानता पर अन्त्यानुप्रास नहीं होता और न तो मात्रासाम्य ही । प्रसाद का निम्नलिखित गीत इसका उदाहरण है ।

मधुप कब एक कली का है
पाया जिसमें प्रेम रस सौरभ और सुहाग
बेसुध हो उस कली से मिलता भर अनुराग
बिहारी कुंज गली का है । [1]

अत: इस गीत मुक्तक में प्रथम और चतुर्थ पंक्तियों की मात्रा, लय, तुक आदि एक ही है और तीसरी, चौथी पंक्तियों का सम्पूर्ण कलात्मक रूप उस से भिन्न है । इन दोनों पंक्तियों का मात्रा, लय तथा अन्त्यानुप्रास आदि अपना एक है और प्रथम (टेक) पंक्ति से सर्वथा अलग है । मुक्तक में प्राप्त ऐसे प्रयोग इन कवियों द्वारा अनायास ही न होकर, भावाभिव्यंजना को उत्कर्षमय बनाने के हेतु मिलते हैं । एक ही पद में विषममात्रिक प्रक्रिया कहीं कहीं मीरा आदि के पदों में मिल जाती है, किंतु वहाँ पर ऐसे प्रयोग कवि के कला-चातुर्य के परि-चायक न होकर अनायास हो जाने वाली भूल या त्रुटिमात्र है जैसे मीरा के "म्हाँरी सुध ज्यूं जानो त्यूं लीजो जी" [2] पद में स्थाई और अन्तरा में विषम मात्रिक प्रयोग मिलता है । गीत मुक्तक की यह आधुनिक कला महाकवि निराला के काव्य में भी मिलती है । मुक्तक रचना की यह शैली आलोच्य कवियों की अपनी उपज है यथा -

---

[1] प्रसाद : प्रसाद संगीत (अप्रकाशित) पृ० ११५

[2] मीरापदावली : पं० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ११२

छोड़ दो जीवन यों न मलो ।

ऐंठ अकड़ उसके पथ से तुम

रथ पर यों न चलो ।

वह भी तुम ऐसा ही सुन्दर,

अपने दल-पथ का प्रवाह हर,

तुम भी अपनी ही डालों पर

फूलो और फलो । ।१

प्रस्तुत गीत की प्रथम पंक्ति, जो टेक रूप में है, अन्य पंक्तियों से मात्रा और अन्त्यानुप्रास की दृष्टि से भिन्न है । तदनन्तर चौथी, पाँचवीं और छठीं पंक्तियाँ जो अन्तरा रूप में है उनका अन्त्यानुप्रास समान है और फिर अन्तरा की अन्तिम पंक्ति से और स्थाई की पंक्ति से साम्य बिठाने के लिए कवि ने उसमें भी अन्त्यक्रम का निर्वाह किया है । यह कवि की मौलिक उद्भावना है । इसी तरह की नूतन शैली निम्नलिखित गीत में भी मिलती है --

सोचती अपलक आप खड़ी

खिली हुई वह विरह-वृन्त की

कोमल कुन्द-कली ।

नयन नगन, नवनील गगन में

लीन हो रहे है निज मन में,

यह कैवल जीवन के वन में

छाया एक पड़ी । ।२

वर्णनात्मक शैली में विरचित महाकवि निराला की कुछ रचनाएं ऐसी भी उपलब्ध होती हैं, जो भाव और वर्णन की तुला पर प्रगीत और मुक्तक की निश्चित सीमा में आबद्ध नहीं हो पातीं जैसे -

हिन्दी के जीवन है, दूर गगन के हृतवर

ज्योतिर्मय तारा-से उतरे तुम पृथ्वी पर ;

।१ निराला : गीतिका गीत सं० १०

।२ ,, : ,, ,, सं० ५

अन्धकार कारा यह, बन्दी हुए मुक्तिधन

मरने को प्रकाश करने को जगमग केवल । ‖१

रोला छन्द (२४ मात्राओं) में आबद्ध वर्णनात्मक शैली में रचित निराला की इस रचना को किसी एक काव्य-कोटि में बाँध सकना मुश्किल है । फिर भी, इसे प्रगीतोन्मुख मुक्तक के नाम से अभिहित किया जा सकता है । उनका निम्नलिखित गीत भी मुक्तक की विधा में नूतन प्रयोग है -

कठिन शृंखला बजा-बजाकर

गाता हूँ अतीत के गान,

मुझ भूले पर उस अतीत का

क्या ऐसा ही होगा ध्यान ? ‖२

इस सम्पूर्ण छंद को, अन्त्यानुप्रास का निर्वाह होने पर भी भावाभिव्यंजना की प्रधानता के कारण विशुद्ध मुक्तक की कोटि नहीं प्रदान की जा सकती और न तो प्रस्तुत करने की शैली के आधार पर विशुद्ध प्रगीत ही कहा जा सकता है । द्विविधा की इसी ही भूमि पर निराला ने और भी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं ।

प्राचीन मुक्तकों की नख-शिख वर्णन प्रणाली भी आधुनिक कवियों द्वारा प्रगीतात्मक शैली के आधार पर वर्णित होने लगी जैसे -

ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने

नील नलिन से नेत्र चपल मद से भरे,

अरुण राग रंजित कोमल हिम खण्ड से-

सुन्दर गोल कपोल, सुघर नासा बनी । ‖३

यहाँ पर प्रसाद जी ने नारी सौन्दर्य का जो शरीरी चित्रण किया है वह रीति कालीन नख-शिख वर्णन प्रणाली से प्रेरित है । किन्तु उसे अभिव्यक्ति करने की शैली प्रगीत काव्य की शैली के अनुकूल है । इसमें समाविष्ट

‖१ निराला : अणिमा पृ० १८

‖२ ,, : परिमल पृ० ६८

‖३ प्रसाद : झरना (कम) पृ० २२

अप्रस्तुत-योजना काल्पनिकता, प्रतीकात्मकता, शब्द-विन्यास तथा विशिष्ट वर्णन-योजना आदि प्रगीत काव्य की भावी सूचक हैं।

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने मुक्तक काव्य की परम्परा-विहित प्राचीन परिपाटी को छोड़कर प्रगीत काव्य की अत्याधुनिक नवीन रचना प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में मुक्तक रचनाओं को प्रस्तुत किया है। छायावाद की नूतन अभिव्यंजना प्रणाली से प्रभावित हुए बिना मुक्तक काव्य का विधान भी आधुनिक काल में संभव नहीं हो सका।

आँसू :

प्रसाद जी के आँसू काव्य की चरम उपलब्धि काव्य की समग्र विधाओं पर खरा उतरना है। महान् कवि की इस महान कृति के रूप को निश्चित कर सकना दुष्कर कार्य है। कारण, इस रचना को काव्य की जिस विधा के परिप्रेक्ष्य में परखा जाता है, उसी में यह सफल उतरती है। प्रसाद जी की प्रगीत-शिल्प से युक्त यह रचना मुक्तक-शिल्प की कसौटी पर भी कसी जा सकती है। 'आँसू' में पूर्वापर निरपेक्षता तथा रसचर्वणा शक्ति का पूर्ण योग मिलता है।[1] इसका प्रत्येक छंद भावाभिव्यक्ति में सक्षम है और अपने में पूर्ण है। 'आँसू' अनेक छन्दों का संग्रहित रूप है। इसलिए इसके मुक्तक रूप में प्रामिक भ्रम को स्थान मिल जाता है किन्तु संस्कृत काव्यशास्त्र में परिगणित संयुक्त मुक्तक के प्रभेदों[2] के अध्ययन के पश्चात् उसे पूर्ण रूप से मुक्तक विधा के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है।

'आँसू' मुक्तक है। पर एकसूत्रता का आभास लिए हुए है। इसके छन्दों में तारतम्य है। मीरा या सूर के छन्दों का कोई अंश हम उठा लें तो उनमें मुक्तक का आनंद तो आयेगा, पर हर छन्द अलग-अलग बिखरा होगा। 'आँसू' की यह अपनी विशेषता है कि उसका हर छन्द मुक्तक है। उनमें मुक्तक

---

[1] ध्वन्यालोक लोचन, तृतीय उद्योत पृ० ७४५

[2] वही पृ० ७५५ तथा काव्य मीमांसा; राजशेखर नवम् अध्याय पृ० १२३

की पूर्णता और चुभन मिलेगी । ....यह वह मोतियों का हार है जिसमें हर मोती अलग अलग भी है और एक माला की इकाई रूप में भी ।" ।१ अतएव प्रसाद का 'आँसू' ऐसे विशिष्ट कोटि का काव्य है जिसमें प्रगीत की आत्माभिव्यक्ति तथा मुक्तक की वस्तुगत विवेचना एक साथ सुलभ है । आँसू का प्रत्येक छंद भावाभिव्यक्ति में स्वतन्त्र होने पर भी एकसूत्रता की लड़ी में पिरोया हुआ है । इस प्रकार आँसू में अभिव्यक्त विचारों में एक तारतम्य परिलक्षित होता है क्योंकि सभी भावनाएं एक निश्चित स्थल पर केन्द्रीभूत हैं । फिर भी, इसके छन्दों को यदि अलग-अलग करके देखा जाय तो इनमें मुक्तक का सफल रूप मिलेगा और यही मुक्तकों का समन्वीकरण आँसू में अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि करता है ।

आँसू की विशिष्टता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि कवि का अन्तर रोदन करते हुए भी बुद्धि के ऐसे नैसर्गिक लोक में पहुँचा देता है जहाँ व्यष्टि की परिसीमा से निकलकर हम समष्टि के व्यापक क्षेत्र में विचरण करने लगते हैं । इस मुक्तक काव्य के रचयिता को महान् कलाकार ही कहना उचित है क्योंकि जहाँ वह काव्य का आरंभ एक वियोगी के रूप में करता है वहीं उसका अंत दार्शनिक के रूप में । और इस पर भी समग्र काव्य में भावविच्छिन्नता नहीं मिलती । समस्त भावों का संगुम्फन एक ही सूत्र में बड़े कौशल से किया गया है ।

आँसू का कलापक्ष भी समृद्ध है । चमत्कारिक वाग्भंगिमा, अनूठी कल्पना, भावों की मृदुलता, चित्रात्मकता तथा रसोद्रेक की क्षमता से युक्त प्रस्तुत काव्य, कवि की अनुपम काव्य-कला का द्योतक है । मुक्तक काव्य के रचयिता का कर्तव्य सहृदय के मध्य अपनी उज्ज्वल, उदात्त, ओजस्वी, एवं तरंगित भावनाओं को यथावत् रूप में प्रस्तुत कर रसोद्रेक की सृष्टि करना है । इस कथन के आधार पर आँसू के प्रत्येक छन्द को परख करने से उसके मुक्तक रूप में सन्देह के लिए स्थान ही नहीं रह जाता । इसका प्रत्येक छंद अपने आप में पूर्ण एवं स्वतंत्र है जो उसे मुक्तत्व प्रदान करता है ।

प्रायः विद्वान 'आँसू' के मुक्तत्व में सन्देह करते हैं । किन्तु मुक्तक काव्य के अनिवार्य लक्षणों को आँसू में प्राप्त करना कठिन नहीं । उसका प्रथम गुण पूर्वापर निरपेक्षता है जो आँसू के प्रत्येक छंद में उपलब्ध है । उसका प्रत्येक छंद अपने आप में पूर्ण है एक छंद में व्यंजित भावाभिव्यक्ति को समझने ~~के लिए दूसरे छन्द का अवलम्ब नहीं ग्रहण करना पड़ता । दूसरे मुक्तक काव्य में~~

१- प्रसाद प्रतिभा : सं० इन्द्रनाथ मदान लेख(आँसू) पृ० ४१ ।

वस्तुगत वर्णन की सर्वोपरि है जो आँसू में सहज ही प्राप्य है । 'आँसू' ऐसा भावात्मक काव्य है जो वस्तुवर्णन की उपेक्षा नहीं करता । इसका प्रतीक विधान रूपकत्व को सुरक्षित रखता है । जड़ता में चेतनता का आरोप, लाक्षणिक व्यंजना आदि उसके वस्तुपरक होने के अन्यतम उदाहरण हैं । तीसरे, मुक्तक काव्य के लिए अनिवार्य रसचर्वणा शक्ति का भी आँसू में अभाव नहीं है । मुक्तक का यह लक्षण प्रसाद जी के तटस्थ दृष्टिकोण के अनुकूल ही सिद्ध हुआ । कवि के मस्तिष्क में काँपने वाली वह पीड़ा जो दुर्दिन में आँसू बनकर आयी है सब को अपने साथ रुला देती है । उस दुःख से जिस करुण रस की निष्पत्ति होती है उसमें समस्त सहृदय सराबोर हो उठते हैं । मुक्तक की अंतिम विशेषता भावों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना है । वहाँ भाव गौण और वर्णन प्रधान होता है । आँसू में भावों को कलात्मक ढंग से व्यक्त करने में कवि को अद्वितीय सफलता मिली है । भाव गौण तो नहीं प्रधान ही है, किन्तु वर्णनात्मकता को भी स्थान मिला है । फिर भी, आँसू भाव-प्रधान काव्य माना जाता है, वर्णन-प्रधान नहीं । अतएव, इस तथ्य के आधार पर आँसू के मुक्तत्व में थोड़ा सन्देह अवश्य होता है, परन्तु उसमें उपलब्ध मुक्तक के अन्य लक्षणों को देखते हुए यह भ्रममात्र कहा जा सकता है । क्योंकि आँसू में भावना और बौद्धिक चेतना का मणि-कांचन योग मिलता है । अतः आँसू एक मुक्तक काव्य है, इसमें सन्देह नहीं ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रसाद और निराला के काव्य में प्राचीन मुक्तक-शैली की एक झलक मात्र मिल जाती है । कारण, इन कवियों ने काव्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा का जो उपक्रम किया उससे मुक्तक काव्य प्रणाली का मार्ग अवरुद्ध हो गया । यद्यपि खड़ी बोली में भी मुक्तकों की रचना हुई, फिर भी खड़ी बोली में प्रगीत काव्य की प्रतिष्ठा होने से, इसकी गतिविधि एकदम समाप्त प्राय तो नहीं हुई किंतु अवरुद्ध अवश्य हो गई । खड़ी बोली में रचा गया मुक्तक काव्य नूतन प्रयोगों से परिपूर्ण है । ऐसे मुक्तकों में इन कवियों की नूतन उपलब्धियों और मौलिकताओं के सहज दर्शन होते हैं । प्रसाद के ब्रज भाषा में रचित मुक्तक दोहा, कवित्त, सवैया आदि छंदों में मिलते हैं । उनके खड़ी बोली में रचित मुक्तक कुछ तो परम्परागत सम-विषम एवं मात्रिक-वार्णिक छन्दों में मिलते हैं । और कुछ पाश्चात्य प्रगीत शैली तथा

उर्दू, बंगला आदि से प्रभावित छन्दों में मिलते हैं। निराला के मुक्तक खड़ी बोली में रचित वर्णिकमात्रिक छन्दों में प्राप्त होने के साथ ही साथ छन्दों के बन्धन से विनिर्मुक्त अतुकांत तथा मुक्त छंद में भी मिलते हैं। निराला अन्त्यानुप्रासबद्ध प्रयोगों को त्यागकर अतुकांत छंद प्रणाली को लेकर काव्य-क्षेत्र में आगे बढ़े। इस प्रकार उनके काव्य में प्राप्त मुक्तकों का स्वरूप परवर्ती कवियों से भिन्न रूप में मिलता है। मुक्तक-शिल्प-विधान में प्रसाद और निराला पाश्चात्य प्रगीत-शैली और उर्दू की बहर, गज़ल, रुबाई आदि के प्रयोग में समानता रखते हैं। दोनों कवियों के काव्य में अप्रस्तुत-योजना, मूर्त-विधान, प्रतीक योजना तथा साम्य और वैषम्य मूलक चमत्कारिक अलंकार आदि परम्परागत तथा नूतन ढंग से भी प्रस्तुत किए गए हैं। किंतु इनके द्वारा रचित मुक्तकों में जहाँ नूतनता का प्रादुर्भाव हुआ है वहाँ विशेष मौलिकता नहीं मिलती क्योंकि इनकी दृष्टि शब्दार्थ के चमत्कार पर न जाकर भावाभिव्यक्ति पर ही अधिक टिकी रही है। इनके काव्य में मुक्तक की रससिक्तता तथा जीवन-पथ के अनेकानेक मार्मिक एवं महत्वपूर्ण तथ्यों के उद्घाटन की पूर्ण क्षमता निहित है। दोनों कवियों की मुक्तक रचनाएँ उनकी अप्रतिम काव्य प्रतिभा की प्रतीक हैं, यह दूसरी बात है कि मुक्तक रचना के अनुकूल इनकी प्रवृत्ति न होने से इनके काव्य में मुक्तक का अभाव है। प्रसाद और निराला ने मुक्तक काव्य के अनिवार्य शिल्प-उपकरणों से सुसज्जित, रचनाओं को प्रस्तुत किया है, जिसका विस्तृत विवेचन शिल्प-विषयक अन्य अध्यायों के अन्तर्गत यथा-स्थान किया जाएगा।

३- प्रबंध - शिल्प

स्वरूप एवं परिभाषा : प्रबंध से अभिप्राय ऐसी काव्यात्मक रचना से है जिसमें किसी घटना अथवा कार्य की योजना क्रमिक श्रृंखलाबद्ध रूप में होती है और उसी के विपरीतार्थक शब्द से अभिहित मुक्तक काव्य में विशिष्ट भाव-बिंदु का वर्णन स्वतंत्र ईकाई के रूप में मिलता है। इस प्रकार प्रबंध में पूर्वापर संबंध प्रमुख होता है जो स्वतंत्र छंद विधान द्वारा संभव न होकर क्रमिक रूप से नियोजित छंदों द्वारा ही प्रस्तुत हो सकता है।

भारतीय आचार्य कुंतक तथा पाश्चात्य विचारक अरस्तू ने प्रबंध शिल्प के विषय में जो कुछ अपना मत प्रकट किया है उसके आधार यह कहा जा सकता कि प्रबंध काव्य में घटना प्रसंगों की एकसूत्रता, सजीव काल्पनिकता नवोन्मेषशालिनी उद्भावना शक्ति तथा वस्तु का औचित्य-विधान, समापन-वक्रता, तथा विच्छेद योजना आनुषंगिक फलवक्रता आदि आवश्यक है।

प्रबंध काव्य की कुछ निजी विशेषताएं हैं जैसे - प्रबंध काव्य (महाकाव्य तथा खण्डकाव्य) उद्देश्य प्रधान होता है। प्रबंध काव्य में व्यंजित भाव तथा विचार एकांगी न होकर बहुमुखी दृष्टिकोण से युक्त होता है। इसमें काल्पनिकता तथा असंभव कार्य व्यापार का अभाव होता है, और यदि ऐसे वर्णनों का समावेश भी होता है तो मूल कथा या नायक, प्रतिनायक की समृद्धि को बढ़ाने के हेतु ही होता है। इसमें यथार्थता ही सर्वोपरि होती है या फिर आदर्शवादिता को भी महत्व दिया जाता है। इसमें कथा वर्णन अविच्छिन्न रूप से होता है। इसकी कथा विभिन्न भावों तथा रसों की एकान्विति से युक्त होती है। इसकी शैली अलंकृत भावानुकूल अभ्यंजना से युक्त उदात्त तथा गरिमामयी होती है। इसमें अनेकानेक घटना प्रसंगों तथा दृश्यों से समन्वित पूर्ण चित्रण या फिर जीवन की अनेक रूपताओं में से किसी एक रूप या किसी महत्वपूर्ण घटना प्रकार का सांगोपांग वर्णन होता है। मुक्तक की तुलना में यह कहीं अधिक विस्तृत तथा वृहद् रचना प्रकार है। आचार्य शुक्ल ने प्रबंध काव्य के विषय में बताया है

कि "प्रबंध काव्य में मानव-जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम से ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले - उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले - प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता।"[१]

भारतीय काव्यशास्त्र में प्रबंध काव्य के दो रूप मिलते है एक, महाकाव्य और दूसरा खण्ड काव्य। इसी भांति पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी विषय प्रधान काव्य के दो प्रकार मिलते है एक समाख्यान काव्य और दूसरा नाट्यकाव्य किंतु आधुनिक हिंदी काव्य साहित्य के बदलते प्रतिमानों में काव्य के स्वरूप भेद में भी अपेक्षित परिवर्तन हुए। परंपरागत काव्य साहित्य की मान्यताओं के प्रति उदासीन आलोच्य कवियों ने काव्य में विविध रचना शैली को प्रोत्साहन दिया। स्वच्छंदतावादी विचारधारा के अग्रदूत कवि प्रसाद और निराला के काव्य साहित्य में उपलब्ध प्रबन्धात्मक रचनाओं के आधार पर प्रबंध काव्य के निम्नलिखित विभाजन किये जा सकते है।

१- लघु आख्यानक प्रबंध काव्य

२- काव्यरूपक

३- खण्ड काव्य

४- महाकाव्य

(१) लघु आख्यानक प्रबंध काव्य :

यह एक से अधिक छन्दों का वह संगुम्फित काव्य प्रकार है जो वस्तुवर्णन कथात्मक प्रसंग आदि को एकसूत्रता में आबद्ध कर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। साहित्य में इस काव्य कोटि का न्यूनाधिक प्रयोग होने के कारण प्राचीन काव्य-शास्त्रियों द्वारा इसका विवेचन नहीं किया गया। वास्तव

१- रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली (वक्तव्य) पृ० ६८।

में लघु प्रबंध काव्य की स्थिति मुक्तक और प्रबंध के मध्य की है। यह पूर्वापर सापेक्ष होने के कारण मुक्तक से भिन्न प्रबंध काव्य के अंतर्गत परिगणित किया जाता है। मुक्तक में यदि किसी कारणवशात् भाव तथा छन्द की अन्विति मिलती भी है तो छन्दों की स्थिति सावलम्ब नहीं होती। किन्तु लघु आख्यान काव्यों में छन्दों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। छन्दों के स्थानान्तरण से भावों की क्रमबद्धता तथा विचार के स्पष्टीकरण को आघात पहुँचता है। आख्यानक काव्य में व्यंजित भाव एवं विचार क्षणिक भावावेशमयी स्थिति के परिणाम मात्र न होकर कवि के गंभीर चिंतन, रागात्मक अनुभूति तथा कलात्मक प्रतिभा के प्रतिफलन होते हैं।

लघु आख्यानक काव्य को प्रबंध काव्य के मुख्य विभेद खण्डकाव्य के अंतर्गत भी नहीं परिगणित किया जा सकता क्योंकि खण्डकाव्य में किसी भी घटना आदि का सम्पूर्ण चित्रण विस्तार के साथ होता है, जिस एक अंश की व्यंजना उसमें की जाती है वह अपने में पूर्ण होती है, इसका यह आशय नहीं कि लघु आख्यानक काव्य में व्यंजित विषय अपूर्ण होता है। यह अवश्य है कि इसका रूपाकार खण्डकाव्य से लघु अर्थात् संकुचित होता है जिससे जीवन के किसी एक अंश या घटना की विस्तृत या समग्र व्याख्या इसमें संभव नहीं हो पाती। महाकाव्य की भव्यता और संपूर्णता का अभाव भी इसमें मिलता है। फिर भी, महाकाव्योचित शैली, गरिमा तथा उदात्तता आदि इसका गुण है। इस प्रकार लघु आख्यानक काव्य की स्थिति गंगा जमुना के मध्य अवस्थित संगम जैसी प्रतीत होती है। यह मुक्तक और प्रबंध अर्थात् गंगा और जमुना के मिश्रण से निर्मित वह स्वतंत्र काव्य प्रकार, अर्थात् संगम है जिसकी अपनी महत्ता है।

लघु आख्यानक काव्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें कथात्मक प्रसंगों की महत्ता विषय वस्तु की झलकी, वस्तु वर्णन की उत्कृष्टता, सुविन्यस्त भावाभिव्यक्ति, संक्षिप्त रूपाकार आदि का होना अनिवार्य है। आलोच्य कवियों के काव्य-साहित्य में उपलब्ध आख्यानक काव्यों के आधार पर इसे अध्ययन की सुविधा के लिए कुछ भागों में बाँटा जा सकता है -

(क) पद्यबद्ध लघु कथा
(ख) कथा-काव्य
(ग) आख्यानक गीति

(क) पद्यबद्ध लघु कथा :

किसी सत्य या नैतिक प्रतिमानों की प्रतिष्ठा के लिए दृष्टांत रूप में प्रस्तुत किये गये संक्षिप्त कथांश या प्रसंग को पद्य-बद्ध कथा काव्य के अंतर्गत परिगणित किया जाता है। इसकी वस्तु योजना तथा अभिव्यंजना शैली सरस, सहज तथा प्रभावजन्य होती है। इसमें कवि किसी एक शिक्षाप्रद कथांश को प्रबंधात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता, आदि से युक्त ऐतिहासिक पद्यबद्ध प्रसंग ही इस काव्य की विशेषता है।[१] शुक्ल जी ने ऐसी ही रचनाओं के लिए "कथा प्रसंगों" शब्द का प्रयोग किया है और मिश्र जी ने इस कोटि की रचनाओं को निबन्ध काव्य कहा है।[२] इस प्रकार लघु कथा काव्य प्रसंग मात्र है, विषय की समुचित व्याख्या इसमें नहीं मिलती। इसी से प्राय: यह काव्य प्रकार अपने में पूर्ण होते हुए भी असंबद्ध प्रतीत होता है। इसमें पाठक को संश्लिष्ट कथा का आनन्द नहीं मिल पाता। अन्य नूतन काव्य-विधाओं की भांति इस प्रबंध काव्य का प्रारंभ भी द्विवेदीयुगीन कवियों द्वारा ही हुआ है। सर्वप्रथम लाला भगवानदीन ने "वीर बालक" तथा "वीर क्षत्राणी" काव्य की रचना की है। आगे चलकर प्रसाद जी ने भी कुछ लघु कथाओं की रचना की है।

वस्तु- विन्यास : प्रसाद जी की 'चित्राधार' में संकलित "प्रेमराज्य", "वन मिलन", "अयोध्याउद्धार",[३] आदि की गणना इसी काव्य कोटि के अंतर्गत होती है। ब्रजभाषा की इन समस्त रचनाओं का मूलाधार ऐतिहासिक तथा पौराणिक ग्रंथ है। इसमें नायक-नायिका के जीवन के किसी महत्वपूर्ण अंश के उद्घाटन द्वारा आदर्श तथा नैतिकता की प्रतिष्ठापना की गई है। घटना-विन्यास अत्यधिक सरल तथा स्पष्ट है। रचना की संक्षिप्तता के कारण कथा सूत्र की क्षीणता खलती है।

ब्रजभाषा की इन रचनाओं के अतिरिक्त खड़ीबोली में रचित प्रसाद जी की चित्रकूट, भरत, कुरुक्षेत्र, वीरबालक, शिल्प सौन्दर्य आदि लघुकथाएं

१- रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ५७२।

२- रामदहिन मिश्र : काव्य दर्पण, पृ० २५०।

३- प्रसाद : चित्राधार, पृ० ६३, ५५, ५५।

भी उपलब्ध है। 'चित्रकूट' में भ्रातृ-मिलन की लघु कथा वर्णित है।[1] जिसके माध्यम से भाई की सौहार्द्रता तथा प्रेम की महत्ता व्यक्त की गई है। प्रसाद जी ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के सप्तम अंक के आधार पर[2] 'भरत' जैसी लघुकथा की रचना हृदय में वीरता का संचार करने के हेतु की है। इसमें दुष्यंत, शकुन्तला आदि को महत्त्व न देकर कवि ने भारत पर साम्राज्य करनेवाले प्रमुख पात्र भरत को महत्ता दी है।[3] 'कुरुक्षेत्र' में अर्जुन को, सारथी बने श्री कृष्ण द्वारा दिये गए उपदेश की घटना प्रस्तुत की गई है।[4] यही इस काव्य की आधिकारिक कथा है। प्रासंगिक कथा के रूप में थोड़ा पीछे की कथा भी कह दी गई है। इसका वस्तु विन्यास प्रबन्धकाव्य के अनुरूप हुआ है। 'वीर बालक' लघु कथा के माध्यम से जाति और धर्म को श्रेय सिद्ध करते हुए राष्ट्रीयता की भावना को महत्व दिया गया है।[5] इसमें सिक्ख बालक जोरावर सिंह और फतेहसिंह की वीरता और शौर्यता को कविने पद्य-बद्ध किया है। इनके अतिरिक्त प्रसाद जी ने शिल्प सौन्दर्य और 'कृष्ण जयंती'[6] की भी रचना की है। 'शिल्प सौन्दर्य' में कवि ने मोती मस्जिद पर खड़े ऐतिहासिक पात्र सूर्यमल के मनोभावों की चर्चा की है। 'कृष्ण जयंती' में कृष्ण जन्म की प्रसिद्ध पौराणिक कथा का आश्रय लिया गया है। इसमें केवल कृष्ण जन्म के समय का प्राकृतिक वातावरण ही वर्णित है, जिससे कुछ आलोचक उस रचना को केवल भक्तिपरक संक्षिप्त रचना मात्र मानते हैं किन्तु कृष्ण जन्म की कथा से संबंधित उसके कथानक को प्रबंध काव्य ही मानना अधिक समीचीन है। इस प्रकार प्रसाद जी ने ऐतिहासिक और पौराणिक कथासूत्रों को प्रबंधत्व प्रदान करने का पूरा प्रयत्न किया है। इन समग्र रचनाओं में विराट् और शक्तिवान प्रसंगों का भी वर्णन हुआ है किंतु कवि को करुण और सुकोमल प्रसंगों के वर्णन में अद्भुत सफलता मिली है कारण उसके मूल में छिपी कवि की सुकोमल छायावादी भावना है। एकाध रचनाओं में रोचकता का सन्निवेश भी

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० ९५-१०३।
२- कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तल ७।३३ ।
३- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० १०४-१०६।
४- वही, पृ० १११-११७।
५- वही, पृ० ११८-१२२।
६- वही, पृ० १०७-१२३।

हुआ है । इन रचनाओं में उत्कृष्ट कथाओं को प्रश्रय मिलने के पश्चात् भी प्रबन्ध काव्य की शिथिलता तथा स्पन्दहीनता दृष्टव्य है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का लक्ष्य इन रचनाओं के माध्यम से संदेश प्रेषित करना मात्र है, घटना अथवा कथा को प्रस्तुत करना नहीं । फिर भी, प्रसाद जी ने इस कोटि की रचनाओं द्वारा हिंदी काव्य साहित्य को समृद्ध बनाने का जो प्रयास किया है वह सराहनीय है ।

शिल्प- विन्यास : प्रसाद की कुछ लघु कथाएं ब्रजभाषा में रचित हैं, जो वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से अत्यधिक साधारण कोटि की रचनाएं कही जाएंगी । इन पद्य बद्ध कथाओं में प्रसाद की काव्य-कला का अविकसित तथा अपरिपक्व रूप ही मिलता है । फिर भी, इन रचनाओं में उनकी परवर्ती काव्य-साधना का उत्कर्ष विधायक रूप मिल जाता है, शब्दों की वक्रभंगिमा, नवीन उपमान योजना तथा प्रकृति वर्णन का परिमार्जित रूप आदि सराहनीय है । खड़ीबोली में रचित इन लघु रचनाओं का कथा-विन्यास तथा शिल्प- विन्यास ब्रजभाषा की रचनाओं की अपेक्षा अधिक सुनियोजित, स्पष्ट तथा कलात्मक है । कथा की रोचकता के हेतु इसमें संवाद योजना को भी समाविष्ट किया गया है । कवि ने सरस,सरल तथा शिक्षाप्रद कथाओं को ही उपयुक्त समझकर पद्यबद्ध किया है ।

इन कथा प्रबन्धों की भाषा सरस, सहज तथा प्रवाह युक्त है, साथ ही कलात्मक भी है । इन रचनाओं की भाषा सुलझी तथा स्पष्ट है । वैचित्र्यपूर्ण न होते हुए भी भाषा प्रभावोत्पादक है, जो उत्कृष्ट कवि की उत्कृष्ट कविता का आवश्यक गुण है ।

प्रसाद की इन रचनाओं में अलंकरण कला का उत्तरोत्तर विकसित रूप मिलता है । ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली की पूर्ववर्ती रचनाओं में प्रयुक्त अलंकार परंपरागत है, किन्तु परवर्ती लघु कथाओं में मानवीकरण ध्वन्यर्थ व्यंजना तथा चित्रात्मकता आदि नूतन अलंकारों का सहज समावेश हुआ है । उपमा, रूपक, संदेह व्यतिरेक, काव्यलिंग आदि अलंकारों का कलात्मक विन्यास इन रचनाओं में मिलता है । नवीन उपमान का उदाहरण " रविकर सदृश हेमाभ ऊंगली से चरण-सरसिज हुआ "[1] पंक्तियों में देखा जा सकता है ।

---

१ - प्रसाद : काननकुसुम (चित्रकूट) पृ० १०० ।

इन समस्त रचनाओं में परंपरागत छन्द-योजना के निर्वाह के साथ ही नूतन छन्दों का विधान भी मिलता है। चौपाई, रोला, बरवै, हरिगीतिका आदि के अतिरिक्त काननकुसुम के 'भरत' तथा 'वीरबालक' लघु कथा में २१ मात्रावाले प्लवंगम छंद का विधान हुआ है। इन कथाओं की तुकान्त योजना कवि की अपनी मौलिक है। 'भरत' तथा 'शिल्प सौन्दर्य' में अतुकान्त छन्द का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार चित्राधार और काननकुसुम में संगृहित इन लघु कथाओं में भाव एवं व्यंजना का विविध रूप मिलता है। काननकुसुम की रचनाओं के विषय में कवि का मत है कि 'इसमें रंगीन और सादे, सुगन्धवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए पराग में लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं।'[1] अतएव काननकुसुम में संगृहित खड़ीबोली की लघु प्रबन्धात्मक रचनाएं कवि के काव्य प्रयास एवं उत्कट भावना के प्रतिफलन स्वरूप रंगीन और सादे तथा सुगन्ध और निर्गन्धयुक्त मकरन्द से सुवासित पराग को बिखेरने में सफल हुई है। आंचल भाव से रचित प्रसाद की इन लघु कथाओं में विषय का कलात्मक सौष्ठव अपना साहित्यिक महत्व रखता है।

(ख) कथाकाव्य :

प्रबन्ध काव्य का यह रूप गंभीरता महत् उद्देश्य और महच्चरित्र के अभाव में महाकाव्य और खण्डकाव्य से भिन्न होने के साथ ही अपने में निहित रसात्मकता एवं अलंकरण जैसे गुणों के कारण इतिवृत्तात्मक कथाओं से भी पार्थक्य रखता है।[2] इस प्रकार यह महाकाव्य और खण्डकाव्य की भाँति किसी कथा अथवा कथाखण्ड की संपूर्णता का द्योतक तो नहीं होता। फिर भी, संक्षिप्त रूप से किसी छोटी कथा को प्रस्तुत करने में समर्थ अवश्य होता है। इसमें किसी छोटी कथा का विस्तार से विवेचन उपलब्ध होता है, जिसकी रचना प्रणाली महाकाव्य और खण्डकाव्य से भिन्न स्वतंत्र प्रकार की होती है। इस काव्य कोटि के अंतर्गत प्रसाद की 'प्रेमपथिक' तथा निराला कृत 'राम की शक्ति पूजा' को लिया जा

१- प्रसाद : समर्पण'

२- साहित्य कोश (कथाकाव्य) पृ० २०२ ।

रखता है। प्रेम पथिक के समस्त काव्यात्मक गुणों की चरम परिणति राम की शक्ति पूजा में मिलती है।

प्रेम पथिक वस्तु-विन्यास :

"प्रेमपथिक का कथानक सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक है। किसी के प्रेम में योगी होना और प्रकृति के निर्जन क्षेत्र में कुटी छाकर रहना एक ऐसी भावना है जो समान रूप से सब देशों के श्रेणियों के स्त्री-पुरुषों के मर्म का स्पर्श स्वभावत: करती आ रही है।[1] इस काव्य में कवि ने समस्त कथा को पथिक के मुख से कहलाया है। बीच-बीच में तापसी का भी बोलना नाटकीयता की सृष्टि करता है। इस प्रकार कथा का विकास संवाद-योजना के माध्यम से ही हुआ है और कथा-विकास की यह नूतन प्रक्रिया शिल्प विधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। संवाद योजना में कौतूहल की भी सृष्टि हुई है। पुतली के प्रश्न पर, पथिक तुम्हारा नाम क्या है वह तो अभी तक तुमने बताया ही नहीं ? कौतूहल (सस्पेंस) की उत्पत्ति होती है। ऐसे ही और भी जिज्ञासापूर्ण प्रश्न उठते हैं जैसे पथिक कौन है ? क्या तापसी ही पुतली है ? फिर क्या हुआ होगा ? आदि। इस काव्य में कवि का लक्ष्य प्रेम, योग और प्रकृति का चित्रण करना है। जिसे कवि ने रहस्यात्मक रूप भी देना चाहा है। जहाँ प्रेम को क्षुद्र वासना या शारीरिक स्पर्शमात्र न मानकर साक्षात् ईश्वर रूप जो विश्व की मूल प्रेरक शक्ति है, माना गया है।[2] प्रेम की व्यंजना में समर्थ यह छोटी सी आख्यायिका हिंदी साहित्य में एक नूतन दिशा की सूचक है।

प्रस्तुत रचना के कथानक को, कुछ आलोचक[3] गोल्ड स्मिथ के 'दि हरमिट' काव्य का श्रीधर पाठक द्वारा अनुदित 'एकान्तवासी योगी' से

१- रामचन्द्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ५२२।
२- पथिक प्रेम की राह अनोखी भूल भूलकर चलना है
   घनी छांह है जो ऊपर तो नीचे कांटे बिछे हुए
   — — —
   उस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
   किंतु पहुंचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।
   प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ० २२
३- प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य, पृ० १८८ तथा
   रामरतन भटनागर : प्रसाद की झीका और साहित्य, पृ० ५४।

प्रभावित तथा अनुप्रेरित मानते हैं । उनके अनुसार आगे नायिका पुरुष वेश धारण कर नायक की खोज करती है और प्रेमपथिक में नायक नायिका की खोज में निकलता है । फिर भी, इस काव्य में कवि ने अपनी जिस उर्वर कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है, वह सराहनीय है । यह तो माना जा सकता है कि अनजान रूप से एकान्तवासी योगी की कोई हृदय स्पर्शी भावना जो कवि के अन्तर्मन में पड़ी रही हो, उसकी प्रतिच्छाया इस रचना में आ गई हो, पर इससे कवि की मौलिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता ।

शिल्प- विन्यास :

इस काव्य की शैली कथात्मक शैली ही है जो द्विवेदीयुगीन अन्य कथा काव्यों के समान है । स्पष्टता, प्रवहमानता ,प्रसाद मधुरता आदि इसके मुख्य गुण हैं । भाषा भी नाटकीय शैली से युक्त अलंकारमय है । रसोद्रेक तथा कलात्मकता की सिद्धि में भाषा प्रसन्नतात्मकगुणों से युक्त दिखाई पड़ती है । शब्द-चयन भी काव्य सौंदर्य की वृद्धि में सहायक हुआ है । मालती का तोरण , कोमल तिनके, मृगछाला, कौपीन, कमण्डल, वल्कल आदि शब्दों का विन्यास विषयानुकूल वातावरण की सृष्टि में सहायक हुआ है । इस प्रकार प्रेमपथिक की भाषा और शैली प्रबन्ध काव्य के अनुकूल है ।

प्रेमपथिक का अलंकार विधान समयुगीन काव्यों की तुलना में प्रगतिशील कहा जा सकता है । इसमें पारम्परिक अलंकारों की अपेक्षा नूतन अलंकारों को अधिक स्थान मिला है । मानवीकरण, पुनरुक्ति प्रकाश, उपमा, श्लेष, दृष्टांत, विशेषण विपर्यय आदि अलंकारों का नव्य रूप उपलब्ध होता है । मूर्तामूर्त अप्रस्तुत विधान का कलात्मक विन्यास भी इस काव्य में हुआ है ।[1] प्रेमपथिक में प्रतीकों का भी सुन्दर विधान मिलता है ।[2]

१- " एक तापसी भी है बैठी दुःख पहलिता छाया-सी ।
 प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ० १० ।

२- विमल हृदय के छायापथ में अरुण विभा थी फैली
 घेर रही थी नवजीवन को वसन्त की सुखमय सन्ध्या । वही,पृ० १६ ।

इस कथा-काव्य का छन्द-विधान भी सर्वथा नूतन है। इसमें कवि ने पारम्परिक छन्द के स्थान पर नूतन छन्द योजना से अतुकान्त प्रयोग को अपनाया है। इसमें प्रयुक्त ताटंक छन्द का भिन्न तुकांत प्रयोग हिन्दी साहित्य में अपना महत्व रखता है। प्रेमपथिक के रचना समय तक प्रसाद जी साहित्य में नूतनता के आग्रह को स्वीकार करने लगे थे। जिससे संगीतात्मकता की उद्दाम अभिव्यक्ति को इस काव्य में विशेष महत्व दिया है। इस रचना के छन्द विधान में गद्यात्मक पुट अधिक मिलता है।

इस प्रकार विषय, शैली, अलंकार एवं छन्द विधान आदि की दृष्टि से प्रस्तुत रचना पूर्णत: सफल है। इसमें प्रबन्ध शिल्प के प्रमुख अनिवार्य तत्वों का संयोजन मिलता है यह छोटी सी आख्यायिका कवि के परवर्ती महाकाव्य की भावी सूचक है। इसमें परवर्ती प्रबन्ध काव्य की शैली का विकसित रूप भी मिलता है किन्तु इसके साथ ही प्रबन्ध काव्यों के लिए अनिवार्य विराट और उदात्त प्रसंगों का अभाव खलता है। फिर भी, इसकी कथा में समाविष्ट भावप्रवाह, प्रभविष्णुता, रागोद्रेक की शक्ति तथा शिल्प विधायक प्रमुख तत्व प्रबन्धकाव्य के अनुकूल है। अत: यह रचना अपने में पूर्ण तथा समर्थ है।

राम की शक्ति पूजा :

प्रस्तुत रचना में कवि ने पौराणिक कथा को काव्य के नूतन परिवेश में प्रस्तुत किया है। उनकी यह महान उपलब्धि हिन्दी काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यदि महाकाव्य के कुछ रूढ़िगत मानदण्ड इसके प्रशस्त मार्ग को अवरुद्ध न करें तो इसका कथानक, रसनिष्पत्ति में प्रवाह, उदात्त तथा गरिमा युक्त शैली, नाटकीय योजना, मूर्त-विधान, भव्य तथा विराट चित्रमयता एवं कलात्मक सौष्ठव आदि महाकाव्य के अनुकूल ही है। यही कारण है कि इसके ये समस्त भावात्मक तथा कलात्मक गुण इसे प्रौढ़ एवं सशक्त प्रबंध काव्य का रूप प्रदान करते हैं।

निराला की इस महान् कृति को कुछ विशिष्ट प्रतिबन्धों के कारण महाकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। महाकाव्य का औदात्य और संतुलन

कथा गाथा की अतिरंजना और असंभाव्यता अनुरूप तत्त्व नहीं है। ----- शक्ति पूजा का शिल्प इन दोनों के बीच किस प्रकार सेतु बंधन कर सका है यह हमें देखना है।"[1] अतः महाकाव्य का सा गाम्भीर्य और औदात्त्य होते हुए भी शक्ति पूजा में प्राप्त गाथा-काव्य की विशिष्टता उसे महाकाव्य नहीं मानने देती। इसके अतिरिक्त शक्ति पूजा को प्रबन्ध काव्य के प्रमुख भेद खण्डकाव्य में भी परिगणित करने में भी संकोच होता है। कारण, इसमें राम के जीवन के किसी एक पूरे खण्ड का विवेचन नहीं मिलता, यहाँ तक कि बीच में आई हुई घटनाएं भी टाल दी गई हैं और एक संक्षिप्त घटना को जो छोटी सी कथा मात्र है उसी भव्य रूप प्रदान किया गया है। इसके कथानक को देखते हुए तो इसे खण्डकाव्य मानना उचित नहीं प्रतीत होता।

यह सत्य है कि 'शक्ति-पूजा' एक गाथा काव्य है, जिसे निराला ने गाथा की भूमि से उठाकर महाकाव्योचित गाम्भीर्य देना चाहा है। 'गाथा-काव्य में लोक विश्वासों की प्रचुरता, अतिरंजन से चमत्कार और अलौकिकता की योजना रहा करती है, ये सभी योजनाएं राम की शक्ति पूजा में भी हैं।'[2] वास्तव में, महाकाव्योचित गरिमा से मण्डित 'शक्तिपूजा' निराला साहित्य की चरम परिणति है। इसका सब से विलक्षण गुण एक सीमित विषय तथा सीमित आकार में काव्य के महाप्राण तत्वों का संगुम्फन है। कवि ने इसमें उत्कर्ष विधायक अभिव्यंजना सौष्ठव का सन्निवेश किया है तथा एक सुगम कथा को समृद्धि प्रदान कर उसे अन्य आख्यानक काव्यों के आकार में भी वृहद बना दिया है। अपने संक्षिप्त रूपाकार में भी यह काव्य पूर्णता का प्रतिनिधित्व करता है। कथा केवल राम-रावण युद्ध के मध्य व्याकुल राम की साधना प्रक्रिया का सफल चित्रण तथा विजय हेतु शक्ति की आराधना में ली गई परीक्षा में राम की सफलता मात्र है। इसके कथानक में अनुस्यूत प्रचलित लोक विश्वास की कथा तथा अलौकिक एवं चमत्कारजन्य तथ्यों की उद्भावना यह सिद्ध करती है कि शक्ति पूजा एक सफल गाथा काव्य है। इस काव्य की रसात्मकता, भावव्यंजना, अलंकृति और काव्य

१- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ११८।

२- वही, पृ० ११८-११९।

सौष्ठव भी कथा काव्य के अनुरूप है । शक्ति पूजा की इन विशिष्टताओं के आधार पर इसे कथा काव्य मानना ही अधिक समीचीन होगा ।

वस्तु-विन्यास :

"राम की शक्ति पूजा" के कथानक के आधार रूप में रचित तीन प्रमुख पौराणिक ग्रंथ है, जैसे-भागवत, शिवमहिम्न स्तोत्र तथा बंगला- ग्रंथ कृत्तिवासीय रामायण । किन्तु निराला द्वारा प्रस्तुत शक्ति पूजा का वस्तु विन्यास गाम्भीर्य एवं मौलिकता से पूर्ण है उसकी कल्पना प्रणाली सर्वथा मौलिक है । कथा ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होने के कारण अन्य प्राचीन ग्रंथों के समान ही है यद्यपि इसमें नवीनता नहीं किंतु इसे प्रस्तुत करने की कला तथा कथानक का गौरवपूर्ण विधान अवश्य मौलिक एवं आकर्षक है ।

इस काव्य की प्रमुख कथा राम -रावण के अपराजेय समर में हतोत्साहित राम का युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये शक्ति पूजा का अनुष्ठान है, उस अनुष्ठान में देवी राम की परीक्षा लेती हैं और अन्त में विलुप्त कमल की राम द्वारा पूर्ति होते देख स्वयं प्रकट हो, "होगी जय होगी जय" का आशीर्वचन देते हुए राम में समाहित हो जाती है । इस मुख्य कथा में कवि ने प्रासंगिक कथाओं की अवतारणा भी की है - राम तथा उनकी सेना का युद्ध में निराश होना, हनुमान की उत्तेजना तथा नीलकमल लाना, विभीषण का राम की शक्ति जागृत करने का प्रयत्न, जाम्बवान का परामर्श तथा स्मृति जन्य प्रसंग जनकवाटिका, धनुष यज्ञ, सीता स्वयंवर आदि । ये प्रसंग पूर्वापर निबद्ध हैं । इन कथाओं ने मुख्य कथा को अग्रसरित करने में विशेष योग दिया है साथ ही इनसे कथानक में रोचकता एवं सजीवता की दृष्टि से भी सहायता मिली है । अवान्तर कथा हनुमान की उत्तेजना के विषय में कतिपय विद्वानों का तर्क है कि मूल कार्य में बिना किसी योगदान के बीच ही में समाप्त हो जाने के कारण हनुमान की अन्तर्कथा आरोपित सी लगती है ।"[1] किन्तु इस प्रसंग को आरोपित या अनावश्यक कहना उचित

1- धनंजय वर्मा ; निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृ० १५६ ।

नहीं प्रतीत होता क्योंकि इसके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से राम को एक बार फिर से जागृत किया गया है। वैषम्य प्रभाव की दृष्टि से यह प्रसंग अपना विशेष महत्व रखता है। तामसी वृत्ति के दमन (राक्षसों के विनाश) और सात्विकी वृत्ति के विजय (राम के पराक्रम) के लिए जिन महत्वपूर्ण कार्यों का समावेश किया गया है उनमें इस कथा का महत्व योगदान है। रचना की नाटकीयता तथा गतिशीलता को विकसित करने में हनुमान की उत्तेजना सहायक हुई है। इसी प्रकार सीता की स्मृति प्रसंग द्वारा भी कवि ने निराश तथा निस्तेज होते हुए राम में बल तथा पौरुष का संचार किया है और उन्हें कर्तव्यरत होने के लिए प्रेरित किया है।

शक्ति पूजा के संक्षिप्त प्रबंध रूप का विन्यास कवि ने नाटकीय ढंग से किया है। उसमें महाकाव्य की भांति नाटक की पांचों कार्यावस्थाओं का सुनियोजित विधान हुआ है। युद्ध के उत्तेजक वातावरण की विराट पृष्ठभूमि में राम की विषण्ण सभा का दृश्य आरंभ अवस्था है। राम की निराशा, हनुमान की उत्तेजना और विभीषण का उद्बोधन देना प्रयत्न है, जाम्बवान द्वारा राम को शक्ति पूजा का परामर्श देना प्राप्त्याशा है, राम द्वारा शक्ति उपासना का समग्र विधान नियताप्ति है और उस उपासना में शक्ति का प्रकट होकर वरदान देना अंत में राम के वदन में समाहित हो जाना फलागम है। इस प्रकार कथानक के सुनियोजित विधान में कार्यावस्थाओं का निर्वाह भी हुआ है। इसके अतिरिक्त शक्ति पूजा का आरंभ और अंत भी महत्वपूर्ण ढंग से किया गया है। राम-रावण युद्ध में खिन्न-चित्त, विषण्ण मनः स्तोत्राच्छिन्न राम को लेकर किया गया आरंभ और देवी के त्वरित उदय तथा राम के वदन में हुई लीन से किया गया शक्ति पूजा का कथांत सर्वथा नाटकीय ढंग का है। काव्य में प्रयुक्त छोटे-छोटे वाक्य रवि हुआ अस्त, लौटे युग दल, खिल गयी सभा, निशि हुई विगत आदि भी नाटकीय गतिशीलता का प्रतिपादन करते हैं।

शक्तिपूजा में नाटक के मूल तत्व द्वन्द्व तथा संघर्ष का भी समावेश हुआ है। श्रीराम के निराशाग्रस्त खिन्न चित्त का जो चित्रांकन इस काव्य में हुआ है उसमें आन्तरिक द्वन्द्व का गंभीर रूप दृष्टव्य है। शक्तिपूजा में आन्तरिक द्वन्द्व के साथ ही बाह्य द्वन्द्व का भी कुशल विधान हुआ है जिससे नाटकीय घनत्व

एवं सक्रियता की सृष्टि में सहायता मिली है। इसके साथ ही श्री राम का अपने नेत्र कमल को चढ़ाने के लिए उद्यत होने में नाटकीय कौतूहल की भी सृष्टि हुई है। श्री राम की स्मृति में जनकवाटिका, धनुष-यज्ञ, सीता-स्वयंवर तथा खरदूषण वध आदि प्रसंगों को दिखाकर कवि ने नाटकीय गुण एवं स्मृति का भी परिपालन किया है। शक्तिपूजा में कवि ने जिस विराट की परिकल्पना की है, उसके प्रतिफलन स्वरूप रात्रि, समुद्र, वज्राहत पवन, महाकाश आदि का ओज-पूर्ण गंभीर वर्णन भी मिलता है। जिसके परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि निराला जी इसके कथानक में महाकाव्योचित तत्वों का समावेश करने में नहीं चूके।

प्रस्तुत रचना में कवि ने भव्य एवं विराट वर्णनों के मध्य भावपूर्ण स्थितियों की भी उद्भावना की है। रावण की तामसी वृत्ति की विजय होते देख परास्त श्री राम के मानसी पटल पर विगत घटनाओं का चित्रांकित हो जाना और तत्काल ही रावण का अट्टहास सुनकर नेत्रों से दो बूंद आंसुओं का टपक जाना अत्यधिक मार्मिक बन पड़ा है। प्राय: इसी हृदयस्पर्शी मार्मिक भावना से प्रेरित हो, हनुमान नभ को हिला देने के लिए तत्पर हो उठे हैं। शक्तिपूजा का सब से मार्मिक एवं भावपूर्ण स्थल राम का अपने कमल नेत्र को चढ़ाने के लिए उद्यत होने की घटना है। इस प्रकार शक्तिपूजा जैसे विराट और उदात्त वर्णन प्रधान काव्य में भावपूर्ण मार्मिक स्थलों का अभाव नहीं है। शक्तिपूजा के माध्यम से कवि ने वर्तमान पर भी प्रकाश डाला है। घटनाओं के द्विविध प्रसार (वाह्य तथा आन्तर) के रूपांकन द्वारा काव्य में अद्भुत तत्वों का समाकलन शक्तिपूजा की अतिरिक्त विशेषता है।

शक्तिपूजा के संक्षिप्त कथानक में प्रबंध काव्य के समस्त तत्वों का सन्निवेश हुआ है। इस छोटे से काव्य में कवि ने महाकाव्योचित गरिमा और औदात्य का जो कलात्मक रूप प्रस्तुत किया है, वह महत्वपूर्ण है। चारित्रिक घात प्रतिघात, तीव्र भावाभिव्यंजना, अमूर्त अन्तर्द्वन्द्व तथा आन्तरिक एवं मनोवैज्ञानिक संघर्षों की योजना कथावस्तु को सम्प्रेषणीय तथा सक्रिय बनाने में विशेष सहायक हुई है।

शिल्प-विन्यास :

"राम की शक्तिपूजा" की अभिव्यंजना शैली छायावादी अभिव्यक्ति प्रणाली का सुन्दरतम उदाहरण है। इसकी शैली समाख्यानात्मक होने के साथ ही साथ उदात्त एवं गंभीर होने से महाकाव्यात्मक भी हो गई है। शक्ति पूजा की शैली महाकाव्य की विशिष्टताओं से युक्त है। एक संक्षिप्त कथा को व्यक्त करने के लिए कवि ने जिस विशद शैली का आश्रय लिया है वह कथा को सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल है।

शक्तिपूजा की भाषा भावानुगामिनी है। मधुर एवं लालित्यपूर्ण सुकोमल भावों की व्यंजना में उसका स्वरूप कोमल, सरस तथा माधुर्यपूर्ण परिलक्षित होता है,[1] और भव्य एवं विराट भावों को उद्दीप्त करने में पुरुष तथा ओजस्वी दिखाई पड़ता है।[2] भाषा के इस मधुर और ओजस्वी रूप के अतिरिक्त इस काव्य में उसका प्रतीकात्मक रूप भी महत्त्व रखता है। युद्ध भूमि से लौटते हुए श्री राम के विषण्ण तथा उद्विग्न मनोमस्तिष्क के विक्षोभपूर्ण वर्णन में भाषा प्रतीकात्मक हो गई है। श्रीराम का दृढ़ जटा मुकुट बिखर कर पृष्ठ, बाहु और वक्ष पर इस भांति फैला है मानो दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अंधकार फैला हो।[3] यहाँ पर दुर्गम पर्वत श्रीराम के पौरुष का प्रतीक है और उस पर फैला अंधकार उनके हृदय पर आवृत निराशा तथा व्याकुलता का प्रतीक है।

शक्तिपूजा की भाषा विश्लेषणात्मक है जो संस्कृत की संश्लेषणात्मक भाषा के समान है। इसमें क्रिया और कारक चिन्हों का प्रयोग भी हुआ है किन्तु प्रारंभ में जहाँ संस्कृत के शब्द प्रयुक्त हुए हैं वहाँ पर ऐसा

१- "----------- याद आया उपवन विदेह का, - प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन नयनों का ---- नयनों से गोपन, प्रिय संभाषण,- पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन,--------।"
निराला, अनामिका, पृ० १५१।

२- प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह,-भेद-कौशल समूह,-
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरितवह्नि-राजीव-नयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन- रावण- मदमोचन-महीयान।"
वही, पृ० १४८।

३- वही, पृ० १४९।

नहीं मिलता उस स्थल पर आश्चर्य-चिह्न की जगह विराम-चिह्न या शब्दों का दुरान्वय प्रधान प्रयोग मिलता है। इस प्रकार एक ओर गंभीर भावों की व्यंजना के लिए सामासिक पदावली का विन्यास हुआ है तो दूसरी ओर उदात्त एवं विराट भावों को व्यंजित करने के लिए महाप्राण शब्द पर आधृत ओजस्वी भाषा का विधान भी हुआ है। अतएव कोमल और कठोर भाषा का सम्मिश्रण शक्तिपूजा की महत्वपूर्ण विशेषता है। शक्ति पूजा में प्रयुक्त भावानुकूल भाषा का शब्द चयन, वर्ण विन्यास, नाद-योजना, व्यवहृत स्वरों का सामासिक प्रयोग तथा स्वरों का लघु दीर्घ होना आदि काव्य की नाटकीयता को प्रमाणित करने के साथ ही साथ कवि निराला की अद्भुत काव्य के परिचायक है।

शक्तिपूजा काव्य में समस्त रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। युद्ध तथा रात्रि आदि के वर्णन में भयानक रस तथा वीर रस का आनन्द मिलता है और श्रीराम की मनः स्थिति में को व्यंजित करने में कवि ने शृंगार (वियोग) करुण तथा शांत रसों का चित्रण भी किया है। एक कमल के विलुप्त होने तथा देवी-प्राकट्य के समय अद्भुत रस का सुन्दर नियोजन हुआ है। इन समस्त रसों का परिपाक महाकाव्य के रस-विधान के अनुकूल ही हुआ है। फिर भी समस्त रसों से युक्त 'शक्ति-पूजा' काव्य वीर-रस प्रधान ही कहा जाएगा।

प्रतिपाद्य के अनुरूप लय एवं गति के नियोजन से परिपूर्ण शक्ति पूजा का छन्द विधान भी सुघटित तथा असाधारण है। शक्तिपूजा का छंद विधान विशिष्ट कोटि का है जो काव्य जगत में निराला के अद्भुत प्रदेय का परिचायक है। २४ मात्राओं को भावानुकूल गति और लय में आबद्ध कर निराला ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। यति, आदि के लिए किसी निश्चित नियम का परिपालन न कर भावानुरूप मात्राओं का संयोजन तथा लय एवं गति का स्वच्छंद विधान इस छंद की विशेषता है। इन्हीं गुणों को ध्यान में रखकर डा० पुत्तू लाल ने इसके छंद को "शक्तिपूजा छंद" के नाम से अभिहित किया है।[१]

१- पुत्तू लाल : आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना, पृ० २९० ।

अन्ततः यह मानने में संकोच नहीं किया जा सकता कि निराला ने अपने इस छोटे से प्रबन्ध काव्य में उदात्त एवं विराट तथा गंभीर एवं सुकोमल भावों को लिपिबद्ध करने के लिए तदनुकूल शैली के प्रयोग में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। इस संक्षिप्त प्रबंध काव्य में महाकाव्योचित शैली का समावेश निराला की लेखनी द्वारा ही संभव हो सका है, जो अन्य साधारण कवि की क्षमता से परे की वस्तु है। अस्तु, शक्तिपूजा की इन विशिष्टताओं के आधार पर उसे काव्य के किसी विशिष्ट रूपाकार में आबद्ध करना उचित नहीं प्रतीत होता, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए उसे किसी एक काव्य विधा के अन्तर्गत परिगणित करना आवश्यक हो जाता है। शक्ति पूजा का अनूठा विधान अपने ढंग का स्वतन्त्र है और उस पर महाकवि की मौलिकता की लगी हुई मुहर सर्वथा उसके नवोन्मेषशाली रूप के लिए पर्याप्त है। 'राम की शक्ति पूजा' का संपूर्ण विन्यास कौशलमय ढंग से हुआ है जिस प्रकार कवि ने 'रवि हुआ अस्त' कहकर तामसी वृत्ति के व्याप्ति की सूचना से काव्यारंभ किया है और राम के मन में उठनेवाले अन्तर्द्वन्द्व, स्मृतियों तथा विविध मानसिक संघर्षों का परिपोषण किया है उसी प्रकार सौन्दर्यपूर्ण ढंग से राम के चरित्र का उत्कर्ष मय रूप दिखाकर कथा की परिसमाप्ति भी की है। जिसमें प्रसंगानुकूल भाषा छन्द तथा अप्रस्तुत विधान का पूर्ण योग स्वतः अपेक्षित है जिसका विस्तार से वर्णन आगे शिल्प विषयक अध्यायों में होगा, यहाँ पर अभिव्यंजना-शिल्प का विवेचन प्रबंधकाव्य के संदर्भ में संक्षिप्त रूप से करना ही हमारा अभीष्ट है।

(ग) आख्यानक गीति :

लघु आख्यानक प्रबन्ध काव्य के इस प्रभेद से आशय प्रायः उन रचनाओं से लगाया जाता है जिसमें कथाकाव्य और प्रगीत काव्य के तत्वों का सुनियोजित सामंजस्य मिलता है। इसकी स्थिति आख्यानक काव्य तथा प्रगीत काव्य के बीच की है। आधुनिक काव्य प्रणाली में प्रचलित इस नूतन विधा का संबंध पाश्चात्य साहित्य के 'बैलेड' से माना जाता है, जिसमें प्रधानता

वीरगीतों की भी शैली है किन्तु आधुनिक शब्दावली में प्रयुक्त 'बैलेड' से अभिप्राय उस विशिष्ट रचना तंत्र से है जो नूतन कलात्मक शिल्पों को महाकाव्य और सुदीर्घ रोमांसपूर्ण प्रबन्धों की शैली से भिन्न बैलेड की रचना-विधि के अनुकूल प्रगीत काव्य की शैली में प्रस्तुत करे।[1] वस्तुतः बैलेड सामान्य रूप में रचित कथाकाव्य से भिन्न प्रगीतात्मक शैली में रचित समाख्यानात्मक कविता है या यों कह लीजिए कि समाख्यानात्मक शैली में रचित प्रगीतात्मक कविता है।[2] जोसेफ टी० शिप्ले की 'डिक्शनरी आव वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स' के अनुसार बैलेड शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में होता है (१) साहित्य के क्षेत्र में सीमित और विशिष्ट अर्थ में बैलेड मुख्यतः एक लघु कथात्मक और प्रगीतात्मक काव्य का नाम है। (२) सामान्य अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसे लघु गीत के लिए होता है, जो हमारी भावात्मक सत्ता का स्पर्श करता है, (३) संगीत के क्षेत्र में भी बैलेड शब्द का प्रयोग होता है ----------।[3]

साहित्य में प्रचलित 'बैलेड' काव्य-रचना की प्रणाली न तो केवल विदेशी है और न केवल भारतीय है। कथात्मक गीतियों का विकास हिंदी और अंग्रेज़ी साहित्य में आरंभ से ही होता रहा है आचार्य शुक्ल ने वीरगाथा काल की साहित्यिक विशेषताओं के संदर्भ में स्पष्टतः इस विधा की ओर संकेत किया है। उन्होंने बताया कि ये वीरगाथाएं दो रूपों में मिलती हैं - 'प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीरगीतों (Ballads) के रूप में।'[4] इस प्रकार प्राचीन साहित्य में भी काव्य की इस विधा का प्रचलन मिलता है।

---

1. The ballads is form and the essence of itz is shown in two ways, in the power of taking up new subjects, and treating them according to the laws of the Ballad; and in the lyrical beauty, which is utterly unlike the beauty either of epic poetry or of the longer sort of romance.
   Lectures and Notes by W.P.Ker ;(edited by R.W.Chambers) Form and Style in Poetry . p.41.
2. Ballad is here taken as meaning a lyrical narrative poem..... It is not a narrative poem only, it is a narrative poem lyrical in form, or a lyrical poem with a narrative body in it. Ibid. p. 3.
3. उद्धृत : हिंदी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ७४८।
4. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३१।

जहाँ तक आख्यानक गीतियों के विषय का प्रश्न है उसमें वीर-गाथात्मक विषयों के अतिरिक्त अन्य आख्यान परक विषयों का विवेचन भी होता है। इसमें किसी एक संक्षिप्त कथा की प्रधानता होती है जिसका आख्याता स्वयं कवि होता है और वह कथा या उसमें आए हुए पात्रों के माध्यम से अपने भावोच्छ्वास को व्यक्त करता है। इस प्रकार इसमें विषय-निरूपण में कवि की भावदीप्ति ही प्रमुख होती है घटना अथवा पात्र नहीं। जबकि आख्यानक खण्डकाव्य में भाव की अपेक्षा घटना और पात्र की प्रमुखता होती है। अतः यह भाव-प्रधान रचना है।

आख्यानक गीति का विधान प्रगीतात्मक शैली में होता है। इसकी शैली अन्तः स्फुरित भावों को व्यक्त करने के कारण प्रायः सहज, सरस और स्पष्ट होती है। छन्द भी सहज एवं मार्मिक होते हैं। अप्रस्तुतों का सहज भावन ही होता है। इसमें गेयता भी होती है किन्तु शास्त्रीय संगीत से भिन्न। इसमें भावावेश और सरल कल्पना की प्रधानता होती है, कल्पनाशीलता तथा प्रयास-जन्य कलात्मकता की नहीं। इस प्रकार आख्यान गीति कवि के अन्तः स्फुरित भावोच्छ्वास को कथा एवं पात्रों के माध्यम से प्रगीत शैली में व्यक्त करनेवाली सरस एवं सहज काव्य-विधा है। इस कोटि की रचना में प्रसाद जी को विशेष सफलता मिली है।

प्रसाद कृत 'अशोक की चिन्ता', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'प्रलय की छाया', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' उत्कृष्ट कोटि की आख्यानक गीतियाँ हैं। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' के अतिरिक्त अन्य गीतियाँ लोक प्रचलित परंपरा से भिन्न नाटक के स्वगत कथन की शैली में रची गई हैं। इन गीतियों में आख्यान तत्व का वक्ता कवि स्वयं न बनकर किसी एक ऐतिहासिक पात्र को बनाता है, जिसके माध्यम से वह अपने समस्त भावोच्छ्वास को व्यक्त करता है। आख्यानक गीति की यह शैली बहुत कुछ अंग्रेजी कवि ब्राउनिंग और टैनीसन की 'मोनोलाग' शैली से मिलती है। इस कोटि की रचनाओं को हिंदी साहित्य में प्रस्तुत करने का श्रेय आधुनिक हिंदी कवियों को है।

'पेशोला की प्रतिध्वनि' वीर भावोत्तेजक रचना है जो [illegible] के घिसे-पिटे अर्थ (वीरगीत) की सुरक्षा करती है । कवि ने इस रचना को अपने ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे यह अन्य गीतियों से कुछ अंशों में भिन्न प्रतीत होती है ।

शैली की दृष्टि से प्रसाद की इन आख्यानक गीतियों के दो रूप उपलब्ध हैं । (क) स्वगत-कथन (मोनोलॉग) की शैली में रचित गीतियाँ (ख) सामान्य गीति की शैली में रचित गीति ।

(क) स्वगत कथन की शैली में रचित आख्यानक गीतियाँ :

इस कोटि की रचनाओं में प्रसाद जी को अद्भुत सफलता मिली है । उनकी नाटकीय संवाद-योजना की आत्म-संलाप शैली में विरचित 'अशोक की चिंता' अत्यन्त मार्मिक तथा प्रभविष्णु है । कलिंग विजय के तत्पश्चात् अशोक के मन में हिंसा के प्रति उदित क्षोभ, घृणा तथा जीवन की क्षणभंगुरता एवं नश्वरता के विचार ही इस गीति का विषय है । कवि ने इस सर्व विदित कथा का इतिवृत्तात्मक वर्णन न कर उसे भावना के धरातल पर परिव्याप्त किया है । जिसके लिए उसे स्वगत कथन की आत्म-संलाप शैली का आश्रय लेना पड़ा है । इसमें कथाख्यान के प्रतिपाद्य विषय कलिंग विजय का वर्णन न होकर युद्ध में हुए घोर नर-संहार से विक्षुब्ध एवं विषण्ण अशोक की मन:स्थितियों का ही वर्णन हुआ है । शासनसुख के प्रति अशोक के भावों को[1] हम स्कन्दगुप्त नाटक में स्कन्दगुप्त के मुख से भी सुनते हैं - 'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है । अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है ---------।[2] बौद्ध मार्ग में

१- यह सुख कैसा शासन का ?
शासन रे मानव-मन का !
गिरिभार बना सा तिनका,
यह घटाटोप दो दिन का !
फिर रवि-शशि -किरणों का प्रसंग । - प्रसाद, लहर (अशोक की चिंता) पृ० ५३ ।

२- प्रसाद : स्कन्दगुप्त : प्रथम अध्याय (प्रथम दृश्य) पृ० ३ ।

निरूपित क्षणभंगुरता, दु:खमयता, करुणा आदि की सारगर्भित व्यंजना इस कथा गीति की विशेषता है जिसमें पाठक क्षण भर के लिए डूब जाता है। साधारणीकरण की यही स्थिति प्रस्तुत रचना को उत्कृष्टता प्रदान करती है। संपूर्ण गीति काव्य का विधान नायक के अन्तर्मन में उठनेवाले भावों एवं विचारों से युक्त है। इसी से प्राय: संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व का बाह्य विधान न होकर आन्तरिक विधान ही हुआ है। इसमें नाटक की अन्य स्थितियों को भी खोजा जा सकता है किन्तु चरम सीमा का अभाव खटकता है। करुण, इस रचना की सुमधुर- स्वर संधान से निमज्जित गीतिमयता है।

'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' ऐतिहासिक कथा-गीति है। इसमें रणजीतसिंह के मरणोपरांत लाल सिंह की कपटी और धूर्त के सौजन्य से पंजाब पर यवनों के विजित होने के पश्चात् शेरसिंह के शस्त्र-समर्पण करने की संक्षिप्त कथा प्रगीतात्मक शैली में काव्य-बद्ध की गई है। शेरसिंह की कारुणिक भावनाओं तथा वीरोत्तेजक शब्दों से अभिभूत होकर सहृदय उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उसकी भुजाएं स्वत: फड़कने लगती है और देश द्रोही गद्दार के प्रति घृणा तथा वितृष्णा के भाव उत्पन्न हो मन को स्वत: उद्वेलित करने लगते है। इसमें बाह्य वर्णन के स्थान पर अन्त:मन की गम्भीर भावाभिव्यक्ति की गई है।[1] कथानक में नाट्य तत्व संघर्ष का भी समावेश हुआ है। शेरसिंह के हृदय में उठने वाले स क्षोभ, आक्रोश, खेद आदि के सम्मिलित वेग में यह नाटकीय तत्व सहसा उभरा है किन्तु प्रलय की छाया की भाँति आपन्न इस तत्व का विधान नहीं हो पाया है। अशोक की चिन्ता की ही भाँति प्रस्तुत रचना में भी चरम सीमा का अभाव है। कथा का प्रारंभ ही चरम सीमा से हुआ अतएव चरम सीमा की परिपक्व

१- ऊर्जस्वित रक्त और उमंग भरा मन था
जिन युवकों के मणिबन्धों में अकम्प बल
इतना भरा था, जो उलटते शतघ्नियों को।
— — —
वीर पंचनद के सपूत मातृभूमि के
सो गये प्रतारणा की थपकी लगी उन्हें
छल-बलिवेदी पर आज सब सो गये।
— — —
यह तलवार लो, ले लो यह थाती है।
प्रसाद, लहर, पृ० ६०-६१

स्थिति कभी नहीं आ पाई। उतार और चढ़ाव की स्थिति का कुशल संयोजन शेरसिंह की मनःस्थितियों के वर्णन में दृष्टव्य है।

प्रसाद कृत समस्त आख्यानक गीतियों में 'प्रलय की छाया' उत्कृष्ट कोटि की गीति है। कथा ऐतिहासिक ही है किन्तु प्रस्तुत करने का ढंग अत्याधुनिक है। इस रचना में कवि ने अलाउद्दीन द्वारा गुर्जर-रानी कमला के बन्दी बनने की संक्षिप्त कथा को भावनाओं के धरातल पर व्यक्त किया है और समस्त स्थूल कथा को स्मृति रूप में प्रस्तुत किया है। रूप और यौवन से भाराक्रान्त नारी के अन्तर्जीवन में घात-प्रतिघात उठनेवाले भावावेगों की कुशल अभिव्यक्ति तथा नाटकीय तत्व अन्तर्द्वन्द्व एवं संघर्ष की चरम परिणति इस काव्य की अतिरिक्त विशेषता है।[1] खुसरू नामधारी मानिक द्वारा सुलतान का वध और उसके सर्व शासन ग्रहण से कमला के मनोमस्तिष्क में जो संघर्ष उठता है उसकी पराकाष्ठा इस रचना में दृष्टव्य है। कथा की इस चरम स्थिति के तत्पश्चात् उतार की स्थिति भी प्रभावजन्य है। 'ढुलकती ही हिम बिन्दु-सी सत्ता सौन्दर्य के चपल आवरण की।'[2] पंक्ति में नियति के साथ ही कौतूहल मिश्रित अंत हो जाता है। जिसमें कमला के जीवन में घटित परिस्थितियों तथा संघर्षों का परिवर्तनपूर्ण अंत कलात्मक ढंग से हुआ है। इसमें स्वगत-कथन का परिष्कृत तथा परिमार्जित रूप मिलता है। नाटकीय तत्व अन्त

१- (क) मैं भी थी कमला,
रूप-रानी गुजरात की।
सोचती थी - 'पद्मिनी जली थी किन्तु मैं जलाऊँगी-
वह दावा नल। ज्वाला जिसमें सुलतान जले।
\---- ---- ----
आह! कैसी वह स्पर्द्धा थी ?
स्पर्द्धा थी रूप की।' प्रसाद, लहर, पृ० ७० ।

(ख) रूप ने बनाया रानी मुझे गुजरात की,
\---- ---- ----
और सोचती थी मैं, आज हूँ विजयिनी
चिर पराजित सुलतान पद तल में। वही, पृ० ८२ ।

(ग) मैं जो करने आई थी
उसे किया मानिक ने! खुसरू ने!!
\---- ---- ----
कह गया कभी नीच परिवारी वह!
'नारी, यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं।' वही, पृ० ८६ ।

२- वही, पृ० ८५ ।

तथा संघर्ष के आद्यन्त निर्वाह के साथ ही कौतूहल की भी सृष्टि हुई है। रूप मदोन्मत रानी कमला के मस्तिष्क में रूप से अलाउद्दीन को परास्त कर जीवनांत करने की उत्कट अभिलाषा के मध्य सहसा जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है।"[1] जैसे मनोभावों के जाग्रत होने से जिस कौतूहल की सृष्टि होती है वह प्रस्तुत रचना के प्रबंधत्व के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार इस लघु आख्यानक रचना में प्रबन्ध काव्य के समस्त गुणों का समाहार पाया जाता है।

शिल्प- विन्यास : स्वगत-कथन के रूप में प्रस्तुत इन रचनाओं की शैली आत्म-संलाप शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इन आख्यानक गीतियों का वक्ता कवि स्वयं तो नहीं है किन्तु मुख्य पात्र से तादात्म्य स्थापित कर लेने के कारण इसकी शैली आत्माभिव्यंजक शैली ही कही जाएगी।" प्रलय की छाया" में छायावाद युग की विकसित तथा प्रौढ़ शैली के दर्शन होते हैं।

आलोच्य गीतियों के विधान में कवि ने भाषा का वह कलात्मक रूप प्रस्तुत किया है जो सहृदय के भावों एवं विचारों में एक नूतन तड़प उत्पन्न कर सके। इन रचनाओं की भाषा कोमल, सरस, स्वाभाविक तथा अर्थगर्भित है। जिसमें चित्रात्मकता तथा लाक्षणिकता की पूर्ण क्षमता निहित है।" सो रहा है पंचनद आज उसी शोक में[2]" पंक्ति के प्रत्येक शब्द लक्षणा तथा व्यंजना से ध्वनित अर्थ के प्राकट्य में पूर्णतः समर्थ है। समस्त गीतियों में सार्थक शब्दावली का विधान हुआ है। शब्दों का प्रयोग साभिप्राय एवं विशिष्ट अर्थ की व्यंजना के हेतु होने से सर्वथा निष्प्रयोजन और निरर्थक नहीं है। नारी मैं ! कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की" [3] पंक्ति में रानी के लिए पति से बिछुड़ने के कारण" अबला" तथा रूपमदोन्मत्त होने के कारण" प्रमदा" शब्द का विन्यास पूर्णतः सार्थक है।

१- प्रसाद , लहर (प्रलय की छाया) पृ० ८६ ।

२- प्रसाद , लहर (शेरसिंह का शस्त्र समर्पण) पृ० ६१ ।

३- प्रसाद, लहर (प्रलय की छाया) पृ० ७५ ।

पीछे शब्दों में गूढ़ भावों को समाविष्ट करने में भाषा का प्रतीकात्मक प्रयोग भी हुआ है ।[1]

प्रस्तुत आख्यानक गीति में छायावादी कला का उन्मेष-शाली रूप मिलता है । कवि ने इन रचनाओं के विधान में नूतन अलंकारों का सौन्दर्यपूर्ण प्रयोग किया है । परंपरागत उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास,[2] रूपक,[3] आदि अलंकारों के अतिरिक्त नूतन अलंकार व्यतिरेक, विशेषण-विपर्यय[4], मानवीकरण[5] विरोधाभास[6] आदि का प्रौढ़ एवं सशक्त प्रयोग भी इन रचनाओं की विशेषता है । इन अलंकारों के माध्यम से कवि ने काव्य रूप में सजीवता तथा सप्राणता लाने का पूर्ण प्रयत्न किया है । ये अलंकार भाव व्यंजकता तथा चित्रात्मकता की दृष्टि से विशेष सहायक हुए हैं ।

प्रस्तुत गीतियों की छन्द योजना भी अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं 'अशोक की चिन्ता' गीति की रचना कवि ने मानव छन्द के आधार पर पाँच-पाँच पंक्तियों की [illegible] की है, साथ ही अन्त्यानुप्रास का निर्वाह भी किया है । 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' नामक प्रबन्ध की छाया

१- कृष्णागुरु-वर्तिका
जल चुकी स्वर्ण पात्र में जो अभिमान में
धूम रेखा मात्र शेष थी;
उस निस्पन्द रंग मन्दिर के व्योम में
दीपित-गन्ध निस्तब्ध ।
वही, पृ० ८२

२- दूध भरी धूप सी दुलार भरी माँ की गोद
प्रसाद, लहर, पृ० ६१

३- पावक-सरोवर में अवभृथ स्नान था
आत्म-सम्मान यज्ञ की वह पूर्णाहुति ।
वही, पृ० ६६ ।

४- थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
संध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में । - लहर, पृ० ६५ ।

५- जैसे अन्तरिक्ष की अरुणिमा
पी रही दिगन्त व्यापी संध्या-संगीत को । - वही, पृ० ६७ ।

६- किन्तु दुर्भाग्य पीछा करने में आगे था ।
वही, पृ० ७२

गीति की रचना मुक्त छंद में हुई है जिसमें प्रवाहयुक्त लयान्वेष्ठित संगीत का सुमधुर स्वच्छंद रूप अन्तर्भुक्त है ।

हिन्दी साहित्य में इन गीतियों का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। इन रचनाओं में छायावादी अभिव्यंजना शिल्प का परिष्कृत तथा समर्थ रूप उपलब्ध होता है। ये रचनाएं केवल प्रसाद साहित्य को ही गौरव नहीं प्रदान करती अपितु संपूर्ण आधुनिक हिंदी साहित्य के वैभव एवं कलात्मक समृद्धि को द्विगुणित करती है ।

(ख) सामान्य गीति-शैली में रचित आख्यानक गीति : 'पेशोला की प्रतिध्वनि' इसी कोटि की रचना है। कवि ने वीर भावोत्तेजक ऐतिहासिक प्रसंग के निर्वाचन का पूर्णरूपेण ध्यान रखा है और उसे प्रस्तुत करने में प्रगीत शैली का आश्रय भी लिया है। कवि की सुकोमल अनुभूति तथा सूक्ष्मता के आग्रहवश इस गीति के कथानक में घटनाओं की सघनता नहीं मिलती, जिससे इसका कलापक्ष अत्यधिक दुर्बलतः क्षीण हो गया है । इस रचना के आरम्भ और अन्त में भारतीय इतिहास से सम्बद्ध स्थान-विशेष का वर्णन हुआ है और मध्य में मेवाड़ छोड़कर जाते समय प्रताप का उत्तराधिकार ढूंढने के लिए उद्विग्न होने की घटना वर्णित है । कथा के नाम पर मध्य का यही संक्षिप्त अंश लिया जा सकता है। महाराणा के वाक्यों में संघर्ष तथा द्वन्द्व का विधान हुआ है। अन्य नाटकीय स्थितियों का संयोग इस छोटी सी कथा में प्राप्त कर सकना असंभव है। कथा की संक्षिप्तता तथा क्षीणता इसे एक साधारण गीति की श्रेणी में खींच लाती है, किन्तु ऐतिहासिक घटना का चयन और प्रस्तुत करने की प्रगीतात्मक शैली इसके आख्यानक गीति होने में संदेह नहीं उत्पन्न होने देती ।

<u>शिल्प-विन्यास</u> : 'पेशोला की प्रतिध्वनि' प्रगीतात्मक शैली में रचित है किन्तु इसमें आख्यानतत्व को व्यंजित करने के लिए वर्णनात्मक शैली का भी आश्रय लिया गया है ।

अलंकरण कला का विकसित तथा समृद्ध रूप इस रचना में मिलता है। पारम्परिक प्रयुक्त अलंकार उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि में

उपमा का सुन्दर विधान [1] इस काव्य में हुआ है। प्रताप की वाणी को प्रस्तुत करने में कवि ने लाक्षणिकता का भी आश्रय लिया है। इसके अतिरिक्त इस रचना में गतिमय-चित्रों का भी कुशल विधान द्रष्टव्य है।[2]

'पेशोला की प्रतिध्वनि' की रचना कवि ने घनाक्षरी छंद के आधार पर मुक्त छंद में की है जिसमें लयान्विति तथा प्रवाहमयता है। इसे अतुकान्त छंद की मात्रा-विहीन स्वच्छंद रचना भी कहा जा सकता है।

आख्यानक गीतियों को प्रस्तुत करने में कवि ने सामान्य गीति शैली के अतिरिक्त अंग्रेज़ी की 'मोनोलाग' शैली का भी आश्रय लिया है। जो हिन्दी के लघु प्रबन्ध शिल्प में एक नूतन अध्याय जोड़ने के लिए यथेष्ट है। प्रसाद और निराला के इन काव्य रूपों के अध्ययन के पश्चात् निःसंदेह रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि आलोच्य कवियों ने अपनी उपर्युक्त रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध तथा समुन्नत बनाने का गुरुतर कार्य संपन्न किया है। इन कवियों ने लघु प्रबन्ध रचनाओं में गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है जिसकी वास्तविक व्यंजना निराला की 'शक्ति पूजा' में निहित है। इस संक्षिप्त कथा काव्य में महाकाव्योचित वस्तु एवं शिल्प विन्यास की योजना तथा जीवंतता एवं सप्राणता लाने का प्रयास निराला की अद्भुत काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। इन रचनाओं की भावानुकूल शब्द योजना, प्रतीक, विधान, लाक्षणिकता तथा प्राचीन और नवीन छंदों और अलंकारों का धूपछाँही

१- अरुण करुण बिम्ब।
वह निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिण्ड?
विकल विवर्तनों से विरल प्रवर्तनों में
श्रमित नमित सा —
पश्चिम के व्योम में है आज निरवलम्ब सा।
तथा
तेज ओज बल जो वदान्यता कदम्ब-सा।
लहर, पृ० ६२।

२- तट तरु हैं चित्रित तरल चित्र सारी में
छार जलद खण्ड भटक पड़े हैं
जैसे विजन अनन्त में।
कालिमा बिखरती है संध्या के कलंक सी, —— ।
वही, पृ० ६२-६३

विन्यास प्रबन्ध कला के अनुरूप है। दोनों कवियों का उद्देश्य अपनी रचनाओं में अनुभूति प्रवणता, रमणीयता, काल्पनिकता के साथ ही यथासंभव तद्युगीन शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठापना है।

(२) काव्य - रूपक

काव्यत्व और नाटकत्व के सामंजस्य से निर्मित रचना प्रकार को काव्य-रूपक की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। काव्य-रूपक में विजड़ित 'काव्य' शब्द से अभिप्राय भाव-संकुल पद्य-बद्ध रचना से है और 'रूपक' शब्द से आशय नाटकीय तत्वों से अनुप्राणित रचना विधान से है। इस प्रकार काव्य रूपक संज्ञा का समग्र अर्थ उन रचनाओं से लिया जा सकता है जो नाटकीय तत्वों से युक्त काव्यात्मक शैली में या काव्य-तत्वों से युक्त नाटकीय शैली में प्रस्तुत है। 'काव्य रूपक' काव्यत्व और रूपकत्व का संगम स्थल है। 'काव्य तत्व और नाटक-तत्व आपस में मिलकर एक नये स्वरूप-विधान की सृष्टि कर देते हैं जिसमें काव्यत्व के कारण मानव जीवन के रागतत्व बड़ी स्पष्टता से उभर कर आते हैं, भावनाएं और अनुभूतियां अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं। नाटक तत्व भी काव्य-नाटक के निर्माण में महत्वपूर्ण योग देता है। ------- काव्य नाटकों में कथावस्तु के माध्यम से हम बहिर्जगत का भी चित्र देखते हैं। इस प्रकार काव्य-नाटकों में मनुष्य का अन्तर्जीवन और बहिर्जीवन एक साथ ही चित्रित होता है।'[1] वस्तुत: ऐसे प्रभावकारी काव्य रूप को साहित्य में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी सहज एवं स्वभावगत ही होती है कृत्रिम या थोपी हुई नहीं। क्योंकि प्रत्येक कविता नाटक की ओर तथा प्रत्येक नाटक कविता की ओर अवश्य अग्रसरित होता है।[2] इस प्रकार साहित्य में काव्यत्व तथा नाटकत्व के मिश्रण की

---

1. हिन्दी साहित्य कोश (भाग १) काव्य नाटक, पृ० २५५ ।
2. **All Poetry tends towards drama, and all drama towards poetry.**

   T.S.Eliot, Selected Essays, P. 52.

प्रवृत्ति सत्य, स्वाभाविक तथा प्राचीन है । किन्तु प्रसाद और निराला ने काव्य रूपक को उसके परम्परागत प्राचीन रूप में न प्रस्तुत कर अपनी मौलिकता का सन्निवेश करते हुए नूतन शिल्प-विधान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है ।

काव्य रूपक शब्द अंग्रेजी के पोइटिक ड्रामा का समानार्थी है। काव्य -विधान की यह प्रवृत्ति अंग्रेजी कवि टेनीसन, मैथ्यू आर्नाल्ड, ब्राउनिंग आदि में भी पायी जाती है । किन्तु प्रसाद और निराला कृत काव्य-रूपक सर्वथा उनकी मौलिकता से अनुप्राणित हैं । ऐसी रचनाओं में आलोच्य कवियों का साध्य नाट्य तत्व है और साधन पद्य-बद्ध रचना प्रकार है । उनकी रचनाओं में काव्यत्व और नाटकत्व के मिश्रण- अनुपात को निश्चित कर पाना असंभव तो नहीं परन्तु दुरूह अवश्य है जिस पर आगे विवेचनात्मक अंश में विचार करेंगे ।

आधुनिक आलोचनाशास्त्र में इसके अनेक प्रकार निश्चित किये गए हैं यथा ; पद्य-बद्ध नाटक (पोइटिक ड्रामा) नाट्य कविता (ड्रेमेटिक पोइट्री गीति-नाट्य (लिरिकल ड्रामा) तथा नाट्य गीति (ड्रैमेटिक लिरिक) आदि । स्थूल रूप से काव्य और नाट्यतत्वों के संयोजन से निर्मित इन प्रभेदों में विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता किन्तु सूक्ष्म रूप में ये समस्त प्रभेद एक दूसरे से भिन्नता रखते हैं जिसका आधार बाह्य न होकर आन्तरिक है । साहित्य में परिगणित इसके विभिन्न प्रकारों में से हम यहां केवल उन्हीं रचना प्रकारों की चर्चा करेंगे जो आलोच्य कवियों के काव्य में उपलब्ध है -

(अ) नाट्य कविता
(ब) नाट्य गीति
(स) गीति नाट्य

<u>(अ) नाट्य कविता</u> : प्रबन्ध के इस प्रभेद से आशय नाट्य गुणों से सुनियोजित ऐसे काव्य विधान से है जो काव्य में वर्णित विषय को पाठक की मनःस्थिति में अभिनय नाटकों की भाँति स्पष्ट रूप से उतार सके । नाट्य कविता में काव्य

तत्वों की प्रधानता होती है, नाट्य तत्वों की नहीं। इसमें नाटकीयता कवि के लिए साध्य न होकर साधन मात्र होती है। नाट्य कविता में कवि का लक्ष्य तथा भाव को काव्यत्व प्रदान करना होता है और उसमें विशिष्ट गुणों के समावेश हेतु वह नाट्य तत्वों का भी आश्रय ले लेता है किन्तु गीति नाट्य में नाटकत्व की ही प्रमुखता होती है।" नाट्य कविता में नाट्यतत्व अर्थात् प्रदर्शन या अभिनेयता होती अवश्य है परन्तु उसका आस्वादन पढ़कर ही होता है, अभिनय या प्रदर्शन द्वारा नहीं-यानी वह पाठ्य ही है - अभिनय नहीं। गीति नाट्य में नाट्यतत्व मुख्य होता है नाट्य कविता में गौण।"[१] नाट्य कविता में नाट्य तत्व - अभिनेयता, द्वन्द्व, कार्य-व्यापार, कौतूहल आदि रचना को उत्कृष्टतम रूप प्रदान करने के हेतु प्रयुक्त होते हैं साथ ही ये तत्व वाचिक रूप में मिलते हैं अभिनय रूप में नहीं, कारण नाट्य कविता का पाठ्य रूप होना है। इसमें विषयों का निरूपण वर्णनात्मक शैली में न होकर संवाद रूप में होता है। ये संवाद भी दो प्रकार के होते हैं एक तो, दो या दो से अधिक पात्रों के बीच वार्तालाप के रूप में, दूसरे, प्रथम पुरुष के स्वगत-कथन रूप में, जिसे आत्माभिव्यंजक शैली का ही प्रतिरूप कहा जा सकता है।

प्रसाद कृत 'महाराणा का महत्व' को इसी कोटि में परिगणित किया जा सकता है। यद्यपि प्रकाशक ने प्रस्तुत रचना को गीतिरूपक (Opera) की संज्ञा से अभिहित किया है। किन्तु पाश्चात्य साहित्य में आपेरा शब्द दृश्य विधान तथा पाठ्य अनुच्छेदों से युक्त वाद्य यंत्रों की सहायता से सामूहिक राग में प्रयुक्त काव्यमय नाट्य रचना के लिए व्यवहृत होता है। जिसका मूलाधार नाटकीयता न होकर संगीतात्मकता है।[२] अतः इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'महाराणा का महत्व' रचना को गीतिरूपक न मानकर नाट्य कविता कहना अधिक

१- डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिंदी नाटक (हिन्दी में गीति नाट्य) पृ० ८८।

2- "Opera, A dramatic performance in which music forms an essential part, consisting of recitatives, arias and choruses, with orchestral accompaniment and scenery."

Shorter Oxford Dictionary, Vol.II p.1374.

अधिक समीचीन होगा । सम्पूर्ण रचना में केवल नवाब की पत्नी के सौन्दर्यवर्णन में कुछ संगीतात्मकता का पुट आ पाया है अन्यथा समग्र काव्य संगीत तत्वों से रिक्त ही है।

वस्तु-विन्यास : महाराणा का महत्व ऐतिहासिक घटना प्रधान रचना है जिसमें नाट्य तत्वों का सौन्दर्यपूर्ण विधान हुआ है जिससे प्रस्तुत रचना में एक तो ऐतिहासिक कथा की शुष्कता तथा नीरसता समाप्त प्राय हो गई है दूसरे मुख्य पात्र के अनुपम चारित्रिक विकास से काव्य में नैतिकता की प्रतिष्ठा भी हुई है। कथा में प्रमुख पात्र के चरित्र को महत्ता देने के कारण प्रस्तुत रचना घटना प्रधान हो गई है । सम्पूर्ण कथा पांच भागों में विभाजित है।प्रथम भाग में खानखाना के बेगम की कष्टप्रद यात्रा,दूसरे भाग में अमरसिंह का मुगलों के बाधा दल पर आक्रमण तथा बेगम और मुगल दल को बन्दी बनाना, तीसरे भाग में क्षात्रिय कुल के आदर्श के प्रतिष्ठापक राणा प्रताप द्वारा शत्रुपत्नी बेगम की मुक्ति घोषणा, चौथे भाग में मुख्यपात्र महाराणा को कुछ क्षणों के लिए हटाकर खानखाना और बेगम की वार्तालाप तथा पांचवें भाग में आगरा का दरबार जहां युद्ध का सेनप पद छोड़नेवाले खानखाना और अकबर दिखाए गए हैं तथा अकबर के सम्मुख महाराणा से युद्ध विराम के प्रस्ताव की प्रस्तुति तथा स्वीकृति है । इस रचना की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अन्य पात्रों के सामने आने पर भी, महाराणा प्रताप जो केवल एक ही दो स्थल पर सामने आए हैं, समस्त काव्य में छाये हुए हैं,उनके सुकृत्य की गूंजे- अनुगूंजे समस्त काव्य में फैली हुई है। प्रमुख पात्र को इस ढंग से प्रस्तुत करने का यह प्रयास सर्वथा नूतन है ।

प्रस्तुत काव्य में नाटकीय तत्व संघर्ष की सघनता नहीं आ पाई है फिर भी घटना क्रम का कुशल विन्यास हुआ है । काव्य में बाह्य संघर्ष की स्थापना में कवि को अधिक सफलता मिली है यथा ;

> मचा द्वन्द्व तब घोर उसी रणभूमि में
> गुंथीं बिजलियां सी मानों रण-व्योम में
> वर्षा होने लगी रक्त के बिन्दु की;

***   ***   ***

किन्तु यवन का तीक्ष्ण वार अति प्रबल था
जिसे रोकना राजपूत का काम था,
रुधिर-फुहारा-पूर्ण-यवन-कर कट गया
असि जिसमें था, वैसे मण्डित कर गिर पड़ा
पुच्छल तारा-सदृश, केतु-आकार का।
अभी बैर भी पूर्ण नहीं थी सिर रुण्ड से
अलग जा पड़ा यवन-वीर का भूमि में।[1]

इस युद्ध में दृष्टव्य बाह्य संघर्ष के अतिरिक्त यदि कवि चाहता तो अन्त: संघर्ष की सृष्टि भी महाराणा के हृदय में उस समय हो सकती थी जब नवाब पत्नी के बन्दिनी होने की सूचना उसे मिलती है किन्तु भारतीय आदर्श की प्रतिष्ठापना में व्यस्त कवि इस मूल्यवान अवसर की अवहेलना कर बैठता है। यद्यपि संपूर्ण काव्य में चरमस्थिति की परिणति इसी स्थल पर हुई है। यहां पर भी भावसघनता और कौतूहल का अभाव खटकता है। परन्तु इससे प्रस्तुत काव्य की अभिनेयता पर संदेह नहीं होता। 'महाराणा का महत्व' काव्य का समारंभ तथा परिसमापन दोनों ही नाटकीय ढंग से हुआ है। फिर भी, रचना में काव्यत्व की प्रचुरता से नाट्य तत्व कुछ दब सा गया है।

<u>शिल्प-विन्यास</u> : प्रस्तुत काव्य की रचना नाटक की संवाद शैली में हुई है। कहीं-कहीं नाट्य रचना में प्रयुक्त होनेवाली कथनात्मक शैली का भी आश्रय लिया गया है। दोनों प्रकार की शैलियों में एक सजीवता है जिससे कथनात्मक स्थलों पर केवल पाठ्य रस की अनुभूति न होकर दृश्य नाटकों का आनन्द भी मिलता है।

इस काव्य की भाषा भावाभिव्यक्ति के अनुकूल सरस तथा ओजपूर्ण है। युद्धादि स्थलों पर भाषा का ओजमय रूप मिलता है तथा चिंतनशील सामान्य स्थलों पर वह सरस तथा कोमल प्रतीत होती है। इसकी भाषा परिष्कृत तथा परिमार्जित होते हुए भी अरबी फ़ारसी के कैम, चक्कर, हकीम, रण, दाग जैसे शब्दों से

१- महाराणा का महत्व, पृ० ६-७।

युक्त है। इसमें यत्र-तत्र सूक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग भी मिलता है।[1] काव्य में अर्थ की व्यंजकता के हेतु सूक्ति रूप में प्रयुक्त पंक्तियां भी प्रभावकारी बन पड़ी हैं।[2] इस प्रकार इस रचना की भाषा कठोर तथा कोमल भावों की व्यंजना में समर्थ है। इसमें भाषा का परिष्कृत रूप ही उपलब्ध है। फिर भी, यत्र-तत्र भाषा सम्बन्धी कुछ त्रुटियां आ गई हैं।[3] निष्कर्षतः सम्पूर्ण काव्य की भाषा सरस, ओजपूर्ण तथा भावाभिव्यंजक है।

प्रस्तुत काव्य में कवि ने परम्परा विहित अलंकारों के साथ ही छायावादी नूतन अलंकारों का प्रयोग भी किया है। प्रकृति के मानवीकरण में परवर्ती अभिव्यंजना शिल्प की स्पष्ट झलक मिलती है। रूपक[4] के प्रयोग द्वारा तथ्य में गम्भीरता लाने के साथ ही उपमा द्वारा चित्रात्मकता[5] के सौन्दर्यपूर्ण विधान में कवि ने जिस अद्वितीय कला का परिचय दिया है वह तद्युगीन साहित्य में अनुपमेय है।

'महाराणा का महत्व' काव्य की रचना कवि ने २१ मात्राओं वाले प्लवंगम छंद के आधार पर की है। इस छंद में ८ मात्रा पर यति का विधान अनिवार्य है किन्तु कवि ने इसमें ८ मात्राओं के स्थान पर कहीं कहीं ११ मात्राओं पर यति का विधान करते हुए छन्द का स्वच्छन्द प्रयोग किया है। इस प्रकार शास्त्रीय छंद का प्रयोग कवि ने अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के अनुकूल ही किया है।

१- " यह थोथा पाण्डित्य न आज बघारिये "

प्रसाद : महाराणा का महत्व, पृ० १४

२- जिसकी नारी छोड़ी जाकर शत्रु से
स्वीकृत हो सादर अपने पति से, भला
वह भी बोले तो चुप होगा कौन फिर ?

वही, पृ० १४-१५।

३- पत्र भी - न एक थे उनमें
कुसुमों की क्या कथा। - महाराणा का महत्व, पृ० २

४- सुयशलता की बीज-उर्वरा भूमि में
शान्ति-वारि से सिंचित हो, फलवती भी। - वही, पृ० २४।

५- कभी सुरा सी भरकी, छलकी वारुणी
बैस उठाई स्वच्छ मधुप कपोल में
खिसक गई डर से उतारी ओढ़नी
चकाचौंध सी लगी किसल आलोक को। - वही, पृ० १३।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कवि ने कथा-शिल्प तथा अभिव्यंजना-शिल्प के समस्त उपकरणों को नूतन परिवेश में प्रस्तुत कर 'महाराणा का महत्व' को विशेष गरिमा प्रदान की।

(घ) नाट्य-गीति : नाट्य तथा गीति तत्वों के योग से निर्मित रचनाओं के लिए नाट्य-गीति शब्द का प्रयोग किया जाता है। काव्य-रूपक के इस प्रभेद में प्रमुखता 'गीति' शब्द की है। 'नाट्य' शब्द विशेषण मात्र है। अतः इस कोटि की रचनाओं में आत्म निष्ठता, भावान्विति, संगीतमय शब्द विधान आदि प्रगीतात्मक तत्वों की प्रधानता होती है। इन प्रगीत तत्वों से अनुरंजित विषय को प्रकट करने में नाटकीय तत्वों का आश्रय भी ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार नाट्य-गीति गीतितत्व और नाट्यतत्व का मिश्र रूप होता है जिसमें प्रधानता गीति तत्वों की होती है नाट्य तत्व तो अभिव्यक्त करने का माध्यम मात्र होते हैं। स्थूल रूप से नाट्य गीति और नाट्य कविता में विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता, किन्तु सूक्ष्म रूप से इन शीर्षकों के विशेषतः कविता और गीति में प्रायः मौलिक अन्तर मिलता है। नाट्य गीति में प्रगीतत्व - भाव प्रवणता, मार्मिकता, प्रवहमानता आदि की प्रमुखता होती है जो उसे नाट्य कविता से सर्वथा भिन्न कर देती है। नाट्य कविता और नाट्य गीति के इस अन्तर के पश्चात् नाट्य गीति और गीति नाट्य के अन्तर को भी समझ लेना अनिवार्य है। नाट्य गीति में जहाँ गीति तत्वों की प्रधानता होती है वहीं गीति नाट्य में नाटकीय तत्वों की। इस प्रकार गीति-नाट्य में नाटकीय प्रदर्शन, अभिनेयता अन्तः संघर्ष, कार्य व्यापार आदि प्रमुख होते हैं और नाट्य गीति में भावान्विति संगीतात्मकता, मार्मिकता आदि। द्वन्द्व या संघर्ष भी बाह्य न होकर आन्तरिक ही होता है। वास्तव में, नाट्य गीति नाट्य कविता का ही दूसरा रूप है जो अपने प्रगीतात्मक तत्वों के कारण उससे भिन्न हो गया है। निराला के 'पंचवटी प्रसंग' नामक आख्यानक काव्य को जो प्रगीत तत्व प्रधान है, इस प्रभेद के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है। 'अनामिका' में पंचवटी प्रसंग शीर्षक जो काव्य रूपक है वह उतना अभिनेय नहीं क्योंकि उसमें अतिशय प्रवहमानता, भावात्मकता भी है।[1] इस कथन से

१- नन्द दुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ५३ ।

का स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत रचना में अतिशय प्रवहमानता, धारावाहिकता और वेग की प्रधानता है जिससे इस रचना को नाट्य गीति मानना ही अधिक समीचीन है। इस रचना में नाटकीयता कम, प्रगीतात्मकता अधिक है।

<u>वस्तु- विन्यास</u> : निराला की "पंचवटी प्रसंग" रचना रामायण की प्रसिद्ध कथा शूर्पणखा - प्रसंग पर आधारित है। नामकरण कथाख्यान के अनुसार ही हुआ है, किन्तु कथा प्रसंग की अपेक्षा पात्रों के चरित्र पर अधिक बल दिया गया है। कथानक में भाव प्रवणता की ही प्रधानता है। समस्त कथा पांच भागों में विभाजित है। प्रारंभ के चार दृश्यों में नामकरण के अनुकूल पंचवटी के वन्य दृश्य तथा राम लक्ष्मण-सीता संवाद आदि को व्यक्त किया गया और अंतिम पांचवें दृश्य में लौकिक कथानक शूर्पणखा-विरूपण की घटना को दिखाया गया है जिससे कथानक में स्वाभाविकता तथा रोचकता का सहज समावेश हुआ है।

नाटकीयतत्व संघर्ष की सफल परिणति पंचवटी प्रसंग में नहीं हो सकी। जहाँ संघर्ष की कुशल सृष्टि हो सकती थी वहीं कवि ने कोष्ठक में सूचना मात्र देकर कथांत कर दिया। साहित्य में मूल तथ्य को इस भांति व्यंजित करने की कला एक नया प्रयोग है। इस रचना में संघर्ष अथवा द्वन्द्व का विधान न हो सकने का प्रमुख कारण कवि की स्वच्छंदतावादी भावना है" स्वच्छंदतावाद का सच्चा साहित्यिक स्वरूप अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ पंचवटी प्रसंग में देखा जा सकता है। यद्यपि उसका प्रवाह और प्रवेग इस संतुलित गीति नाट्य का स्वरूप प्रदान करने में बाधक भी हुआ है। इसमें नाटकीयता कम, प्रगीतत्व अधिक है।"[१] वाजपेयी जी के इस कथन से सहमत होते हुए ही हमने पंचवटी प्रसंग को नाट्य गीति कहना अधिक तर्कसंगत समझा है।

सम्पूर्ण कथानक में कवित्व की प्रधानता है। राम और सीता की पूर्व स्मृति, लक्ष्मण की सुकोमल मातृ-भक्ति तथा शूर्पणखा की अपने यौवन समर्पण की वासनामयी कामना में भावप्रवणता की प्रधानता है। फिर भी, कथोपकथन तथा

१- नन्द दुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ६२।

स्वगत भाषण के द्वारा इसमें नाटकीय सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है। कथानक का विकास पात्रों के कथोपकथन के मध्य हुआ है। अन्तर्मुखी तथ्यों की गंभीर अभिव्यक्ति में अधिकतर स्वगत कथन कवित्वमय हो गए हैं किन्तु जहां दो या दो से अधिक लोगों के मध्य संवाद चलता है वहां नाटकीयता आ गई है। इस प्रकार यह रचना काव्य अधिक नाटक कम है। फिर भी इसकी अनौपचारिक तथा अलंकृत नाटकीयता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। निराला ने इसे अपनी अप्रतिम काव्य प्रतिभा के प्रतिफलस्वरूप कुछ इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि यह एक विशिष्ट कोटि की रचना बन गई है।

शिल्प- विन्यास : प्रस्तुत रचना की शैली नाट्य शैली है जिसमें संवाद योजना की प्रधानता है। किन्तु इसके साथ ही पंचवटी प्रसंग में अन्तर्मुक्त निराला की कवित्व-मयता भी महत्वपूर्ण है जिसके परिप्रेक्ष्य में इसकी शैली को नाट्य तत्व मिश्रित प्रगीतात्मक शैली ही कहा जाएगा। कहीं-कहीं पर वर्णनात्मक शैली का भी पुट आ गया है।

'पंचवटी प्रसंग' की भाषा कोमल कांत तथा मधुर है। भाषा भावाभिव्यंजना में समर्थ है। सामासिक शब्दावली के प्रयोग से भाषा का सामासिक रूप भी उपलब्ध हो जाता है। इसके साथ ही नाटकोचित सामान्य शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो प्रस्तुत रचना की भाषा की सरलता तथा स्पष्टता को सिद्ध करने के लिए यथेष्ट है। इस प्रकार पंचवटी प्रसंग में एक ओर काव्यत्व की प्रबलता से शब्दों का काठिन्य दृष्टव्य है तो दूसरी ओर नाटकत्व के आग्रहवश शब्दों का सारल्य भी अवलोकनीय है। मूलतः इसकी भाषा गीतिमय ही है। अतएव इसकी भाषा मार्मिक भावशबल, कवित्वमय तथा नाटकोचित सारल्य से युक्त है।

पंचवटी प्रसंग के अलंकारों में कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा तथा सूक्ष्म कल्पना शक्ति का बोध होता है जैसे -

मीन-मदन फांसने की बंशी-सी विचित्र नासा,-
फूलदल -तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल,-
चिबुक चारु और बंकी त्रिवली-सी;-
यौवन-गन्ध-पुष्प-सी प्यारा यह मुखमण्डल,-[1]

१- निराला : परिमल, पृ० २३३।

इन नूतन अप्रस्तुतों का विधान कवि की कला-विदग्धता का बोधक है। नवीन उपमानों के साथ ही 'मृगी का सा हुआ भ्रम' तथा 'काल-नागिनी-सी' में जैसी परम्पराविहित अलंकारों की योजना भी इसमें निहित है।

पंचवटी प्रसंग की रचना कवि ने मुक्त छंद में की है। जिसमें कवि को अद्भुत सफलता भी मिली है। इसके मुक्त छंद में अबाध गति एवं वेग है, पंक्तियां भी भावानुकूल छोटी-बड़ी हैं।

इस प्रकार निराला की प्रस्तुत नाट्य गीति में संवादों की सजीवता, मन:स्थिति के चित्रांकन, अन्त:स्फुरित भावाभिव्यक्ति तथा अभिव्यंजना शैली की दृष्टि से विशेष सफल हुए हैं। यह रचना विषय एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से हिंदी काव्य में अपना वैशिष्ट्य रखती है, जिसे देखते हुए कहा जा सकता है कि पंचवटी प्रसंग हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

(ख) गीति- नाट्य : आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रचलित काव्य-रूपक के समस्त प्रभेदों में गीति-नाट्य की रचना प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। 'गीति-नाट्य' गीति तथा नाट्य का मिश्र रूप है। गीति-नाट्य की प्रमुख विशेषता उसका वैषम्यमूलक होना है। यह दो विरोधी तत्वों का एक सम्मिलित रूप है। एक ओर जहां गीति में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होती है और कवि का ध्येय स्वानुभूति के सहज भावों को व्यंजित करना मात्र होता है, वहीं दूसरी ओर नाटक में वस्तु-तत्व की प्रधानता होती है और रचनाकार का लक्ष्य उसे बाह्य तत्वों से सुसज्जित कर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना होता है। नाटककार भावनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होता है। इस प्रकार गीति-नाट्य दो भिन्न विचारों का संगुम्फन है। 'नाट्यतत्व इसका बाह्य-स्वरूप निर्मित करता है, काव्य तत्व इसमें आत्मा की स्थापना करता है। -------- नाट्य तत्व कथानक का निर्माण करता है, घटनाएं देता है, संघर्ष देता है, पात्रों की सृष्टि करता है और काव्य-तत्व इसमें अनुभूतियों का दान देता है।'[1] सिद्धनाथ जी के इस कथन से गीति नाट्य का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यह नाट्य कविता से अपना पार्थक्य रखती है जैसा कि नाट्य कविता के सैद्धान्तिक विवेचन में बता आए हैं कि

१- सिद्धनाथ कुमार : सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक (भूमिका)

गीति नाट्य में गीति तत्वों की अपेक्षा नाट्य तत्व की प्रधानता होती है और नाट्य कविता तथा नाट्य गीति में नाट्य तत्वों की अपेक्षा काव्यत्व तथा गीति-तत्व की प्रमुखता होती है।

गीति नाट्य में नाटक के प्रमुख तत्व ---- तथा संघर्ष की स्थिति अवश्य पाती है जहाँ नाटक का बाह्य संघर्ष गीतिमय भावुकता से निमज्जित होकर आन्तरिक संघर्ष का रूप धारण कर लेता है।" गीति नाट्य में कार्य की अपेक्षा भाव का महत्व अधिक है। ---- भावना का प्राधान्य होने के कारण गीति नाट्य में संघर्ष स्वभावत: बाह्य न होकर आन्तरिक होता है बाह्य परिस्थितियों का संघर्ष यदि होगा भी तो उसका प्रयोग आन्तरिक संघर्ष को तीव्रतर बनाने के लिए ही होगा।[1]" गीति नाट्य भावबहुल होने के साथ ही अभिनेय भी होते हैं। गीति नाट्य में भाव प्रवणता की महत्ता देखते हुए कतिपय विद्वान उसे 'भाव-नाट्य' की संज्ञा से अभिहित करते हैं[2] किन्तु गीति नाट्य में पर्याप्त भाव प्रवणता होने पर भी उसे 'भाव-नाट्य' कहना अधिक समीचीन नहीं, क्योंकि भावबहुलता तो गीतिकाव्य का एक गुण मात्र है। दूसरे यह संज्ञा उसके बाह्य पक्ष को विस्मरित कर केवल आन्तरिक पक्ष पर प्रकाश डालती है।

गीति नाट्य काव्य रूपक का वह सुनियोजित प्रकार है जिसमें भावप्रवणता, सस्वर संगीत विधान, कोमलता आदि नाटक के आवश्यक उपकरणों (दृश्यमयता कार्य-व्यापार ,संघर्ष एवं संवाद-योजना आदि) द्वारा विकसित हो सहृदय के मध्य प्रस्तुत होते हैं। जहाँ तक इसके कथानक का प्रश्न है, वह पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या कोई भी प्रख्यात घटना हो सकती है केवल उसका वस्तु तथा शिल्प विन्यास भावप्रधान नाटकीय शैली में होना चाहिए। इसकी शैली क्लिष्ट न होकर सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए ताकि तत्क्षण ग्राह्य हो सके।[3]

१- डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी नाटक (हिन्दी में गीति नाट्य)पृ० ७८ ।

२- उदयशंकर भट्ट : विश्वामित्र और दो भावनाट्य की भूमिका, पृ० १ ।

३- The business of dramatic poet is not to be too emphatic through mere words , mere vocabulary, he must use a vocabulary simple and clear.

W.P.Ker. 'Form and Style in Poetry' p. 170.

निष्कर्षत: गीति नाट्य प्रबन्ध काव्य के नाट्य रूप का ही एक प्रकार है जिसमें गीति तत्व और नाट्य तत्व के सम्मिलन से ऐसे भावाश्रित अन्त: संघर्ष की सृष्टि होती है जो भाव प्रवण दर्शक या सहृदय से अपना तादात्म्य सहज ही स्थापित कर लेती है। हिंदी कवियों ने इस कोटि की रचनाओं की प्रेरणा अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवि शैली, कीट्स आदि से ग्रहण की है। हिन्दी में सर्वप्रथम प्रसाद जी ने 'करुणालय' गीति नाट्य की रचना की है। 'करुणालय' अपने युग की सर्वप्रथम रचना होने से परवर्ती अन्य गीति नाट्यों से कुछ भिन्न हो गई है किन्तु इससे उसकी सफलता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

वस्तु-विन्यास : करुणालय की रचना हिन्दी में एक अभिनव प्रयोग है। इसके माध्यम से कवि ने वैदिक नरमेध-यज्ञ की भर्त्सना करते हुए बौद्ध धर्म की करुणा की स्थापना का भरसक प्रयत्न किया है। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कवि ने मूल उक्त और नाटकीय कथानक में यथोचित परिवर्तन किया है। कथानक में नाटकीय कार्य-व्यापार का नियोजन भी हुआ है। घटना-विधान में अलौकिक कार्यों एवं दैवी संयोग की भी सृष्टि हुई है। कथानक की आरंभ अवस्था- हरिश्चन्द्र का नौका विहार और आकाश-वाणी है जिसे शुष्क एवं शिथिल घटना मात्र कहा जा सकता है। प्रयत्न अवस्था- रोहिताश्व का पर्यटन हेतु निकलना और शुन:शेप को क्रय करना है जिससे कथानक में किसी प्रकार की चमत्कृति या रसवृष्टि नहीं होती। प्राप्त्याशा- यज्ञ की तैयारी और हरिश्चन्द्र का शुन:शेप को बलि देने के लिए मान जाना तथा अजीगर्त का बलि देने के लिए उद्यत होना आदि है ये घटनाएं सशक्त हैं और कथानक को गति प्रदान करती है, इस स्थल पर कथानक की सघनता तथा अन्विति का परिचय मिलता है। नियताप्ति- बलि के अवसर पर विश्वामित्र तथा सुव्रता का प्रकट होना और शुन:शेप का विश्वामित्र की परित्यक्ता पत्नी सुव्रता के पुत्र होने की रहस्यमयी घटना का उद्घाटन होना है। यह घटना महत्वपूर्ण है किन्तु सुव्रता का इस ढंग से प्रकट होना सहृदय अथवा दर्शक के जिज्ञासा भाव या कौतूहल को बड़ी सरलता से विनष्ट कर देता है। फलागम- शुन:शेप का बन्धनमुक्त होना तथा करुणा की स्थापना है, जिसमें किसी प्रकार की सजीवता या चैतन्यता नहीं मिलती। इस प्रकार नाटक का अंत बड़ा ही शुष्क तथा नीरस है।

इसका सम्पूर्ण कथानक कुछ क्षीण तथा अशक्त सा लगता है फिर भी इस दिशा में प्रथम प्रयास होने से इसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

'करुणालय' में नाटकीय कार्य-व्यापार के अतिरिक्त अन्तःसंघर्ष उत्थान-पतन, प्रभावान्विति आदि का कुशल विन्यास नहीं हो पाया। नाटक के प्रमुख तत्व द्वन्द्व तथा संघर्ष की दृष्टि से भी कवि असफल रहा है। यदि कवि ने प्रयास किया होता तो कथा के प्रारंभ में ही पुत्र की बलि की ओर हरिश्चन्द्र के मनःस्थिति में सुपुष्ट तथा सबल अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि हो सकती थी। हाँ, रोहित के हृदय में अवश्य पितृ-आज्ञा और जिजीविषा की ओर आन्तरिक संघर्ष दिखाई पड़ता है, किन्तु वह भी अजीगर्त से भेंट तथा शुनःशेफ को क्रय कर लेने से तत्काल ही समाप्त हो जाता है और इस प्रकार यह महत्त्वपूर्ण घटना तत्वहीन बनकर रह जाती है। कवि को अजीगर्त के क्षुधा-पिपासा तथा शुनःशेफ के जीवन रक्षा की ओर ईश-वन्दना में उत्पन्न संघर्ष की व्यंजना में अवश्य सफलता मिली है।

मुख्य पात्र हरिश्चन्द्र को यहाँ पर उस रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया जो श्रुति में सदा प्रचलित है। विश्वामित्र, वशिष्ठ, अजीगर्त, सुव्रता, रोहिताश्व आदि पात्रों का चरित्र यथास्थान ठीक है। पात्रों के संवाद उनके आयु, पद, लिंग के अनुकूल हैं, जिनमें एक प्रवाह और भावावेग तो है किन्तु सजीवता तथा मार्मिकता नहीं है। पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए कवि ने संकेत शैली का भी आश्रय लिया है।

कवि ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि "यह दृश्य काव्य गीति नाट्य के ढंग पर लिखा गया है।" किन्तु वाद्यों की योजना तथा संगीत के प्रसंगानुकूल स्वर-परिवर्तन आदि के लिए किसी प्रकार का संकेत नहीं किया। अतएव प्रस्तुत रचना को रंगमंच पर अभिनीत करने के लिए रंग-प्रयोक्ता की मौलिक शक्ति का प्रयोग अपेक्षित है। इसके अभिनय में घटना स्थल, दृश्य-विधान, पात्र-संख्या पटापेक्ष आदि की दृष्टि से किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो सकती। कवि ने गीति तथा नाटक के तत्वों से युक्त प्रस्तुत रचना को प्रभविष्णु तथा सहजसंवेद्य होने का पूरा प्रयत्न किया है।

<u>शिल्प-विन्यास</u> : काव्यरूपक के क्षेत्र में नूतन प्रयास होने की दृष्टि से इसका शिल्प-

विन्यास सशक्त तथा सुक्तियोक्ति कहा जाएगा । इसकी शैली नाटकीय संवाद की गीतिमय शैली है । स्वगत कथन का विधान कम ही हुआ है । किन्तु द्वितीय दृश्य में रोहित के आत्मचिंतन में स्वगत कथन की प्रधानता शैली मिलती है । नैपथ्य कथन तथा आकाशभाषित की अवतारणा भी हुई है जिसकी शैली अतिप्राचीन है । कहीं-कहीं पर 'करुणालय' की शैली उपदेशात्मक भी हो गई है । कथानक के प्रारंभ में ही प्रकृति- चित्रण में वर्णनात्मक शैली का भी प्रादुर्भाव हुआ है । इसकी शैली में नाट्य गीति की मधुरता , प्रवाहमयता, सरसता तथा लालित्य नहीं है, बल्कि शुष्कता तथा नीरसता ही है ।

'करुणालय' की भाषा सरल, मधुर, स्पष्ट तथा प्रसाद गुणयुक्त है । सम्पूर्ण काव्य की भाषा भावानुकूल है भाषा में वस्तुवर्णन की अपूर्व कोमलता निहित है । कवि की तत्कालीन अन्य रचनाओं की अपेक्षा करुणालय की भाषा सशक्त भावपूर्ण, प्रवाहजन्य तथा साहित्यिक गाम्भीर्य से युक्त है जिसे प्रसाद के परवर्ती काव्य साहित्य की भूमिका मात्र कहा जा सकता है । अजीगर्त के क्षुधा-पिपासा को व्यक्त करने में भाषा का गंभीर रूप बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है ।

करुणालय में प्रयुक्त अलंकारों का सौन्दर्यपूर्ण विधान काव्य की शोभा को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है । उपमा रूपक, अपन्हुति, मानवीकरण आदि अलंकारों के परंपरागत रूप को कवि ने नवीन आभरण पहनाकर प्रस्तुत किया है । इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में मूर्तामूर्त उपमान योजना[1], मानवीकरण[2] तथा अपन्हुति[3] आदि का सौन्दर्यपूर्ण विधान प्रशंसनीय है । इन अलंकारों के प्रयोग से कवि ने काव्य में अर्थ गाम्भीर्य की भी सृष्टि की है ।

१- वैशाख से होता पूर्ण दिगन्त है
जो परिमल सा फैल रहा आकाश में ।
प्रसाद , करुणालय, पृ० २ ।

२- मलयानिल ताड़ित लहरों में प्रेम से
जल में ये शैवाल जाल हैं झूमते ।
वही, पृ० ३ ।

३- फूल नहीं यह पैरों में लग रही
समझो, यही विभूति लिपटती है तुम्हें ।
वही, पृ० ८ ।

प्रयोग की दृष्टि से इस गीति-नाट्य का छन्द सर्वथा नूतन ही है क्योंकि विभिन्न मात्रिक छंद में वाक्यानुसार विराम चिह्न दिया गया है। यद्यपि हिंदी में इस ढंग की कविता का प्रचार नहीं है तथापि अन्य भाषाओं में (जैसे संस्कृत में कुलक, अंग्रेज़ी में ब्लैंक वर्स, बंगला में अमित्राक्षर छन्द) इसका उपयुक्त प्रचार है।[१] इस प्रकार कवि ने २१ मात्राओं के प्लवंगम छन्द को (जो अन्तः प्रगेदी पादान्तवाले अतुकान्त प्रयोगों से युक्त है) प्रस्तुत काव्य की रचना के लिए चुन लिया है। यथा-स्थान विराम चिह्नों का प्रयोग भी किया है। इस छन्द विधान से काव्य में नूतनता का समावेश तो हुआ है किन्तु गीति-नाट्य की प्रवहमानता तथा गति को कुछ आघात सा लगा है और काव्य में एक शिथिलता सी आ गई है।

निष्कर्षत: 'करुणालय' को गीति नाट्य की कसौटी पर कसने के पश्चात् बहुत सफल तो नहीं कहा जा सकता, पर इसकी नाटकीयता में संदेह भी नहीं किया जा सकता। अन्त: संघर्ष, प्रभावान्विति, प्रतीकात्मकता आदि की क्षीणता होते हुए भी गीतिमय संवादों तथा नाटकीय तत्वों से नियोजित और रंगमंच पर अभिनीत हो सकने के कारण इसे सफल गीति नाट्य माना जा सकता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में काव्य की नूतन विधा को समाविष्ट करनेवाली इस सर्वप्रथम रचना की ऐतिहासिक महत्ता है।

आलोच्य कवियों की प्रबन्ध काव्य की शैली में गीति तथा नाट्य शैली को समाविष्ट कर काव्य-रूपकों की रचना करने की प्रवृत्ति सराहनीय है। काव्य रूपकों में भावप्रवणता, सरलता, कोमलता, सस्वर संगीत विधान तथा नाट्यगुण अभिनेयता, संवाद-योजना कार्य व्यापार आदि का सगुम्फन बड़ा सहज एवं सजीव रूप में प्रस्तुत करने में दोनों कवियों को विशेष सफलता मिली है। वास्तव में, प्रसाद और निराला ने काव्य के अन्य प्रभेदों की भाँति इन काव्य रूपों के रचना विधान की प्रेरणा भी अंग्रेज़ी कवियों से ग्रहण की है। यह बात और है कि उसे अभिव्यंजित करने की शैली इनकी अपनी मौलिक है। इनके विवेच्य प्रबन्ध काव्यों का स्वरूप सरस, सहज,

---

१- वही, सूचना।

रोचक, प्रभविष्णु तथा कलात्मक सौष्ठव से युक्त है। दोनों कवियों के काव्य रूपों का शिल्प पक्ष बहुत सशक्त तथा प्रौढ़ है जिससे वह सहज और स्वाभाविक तथा आकर्षक और मार्मिक प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रसाद और निराला ने साहित्य में नूतन काव्य रूपों की उद्भावना कर जिस प्रकार शिल्प की वैविध्यता तथा व्यापकता का समावेश किया है, उसका हिंदी साहित्य में अक्षुण्ण महत्व है।

(३) खण्ड काव्य

खण्डकाव्य को भारतीय काव्यशास्त्र में प्रबन्ध काव्य का एक प्रकार मात्र उद्घोषित किया गया है। संस्कृत के पूर्ववर्ती आचार्यों ने खण्डकाव्य के विषय में अपना कोई भी विचार नहीं व्यक्त किया। इन आचार्यों ने सर्गबन्ध काव्य (महाकाव्य) की ही विवेचना की है। संस्कृत आचार्यों में सर्वप्रथम आनन्दवर्धन ने कथा प्रसंग में पर्यायबन्ध, परिकथा, सकलकथा के साथ ही खण्डकथा का उल्लेख किया है।[१] इसके उपरान्त अभिनवगुप्ताचार्य ने खण्डकथा के कुछ लक्षण भी निर्धारित किये।[२] खण्डकाव्य की स्पष्ट व्याख्या परवर्ती आचार्य विश्वनाथ ने 'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। यथा मेघदूतादि:' कहकर की।[३] संस्कृत काव्यशास्त्र के अन्य आचार्य जहां इसके प्रति मौन रहे वहां विश्वनाथ की यह परिभाषा अपने में कुछ अंश तक पूर्ण ही मानी जायगी। इस प्रकार खण्डकाव्य में जीवन के किसी एक ही पहलू या तत्सम्बन्धी किसी एक महत्त्वपूर्ण घटना का ही चित्रण होता है जो किसी चरित्र का खण्डित या विश्रृंखलित वर्णन होकर अपने में पूर्ण होता है। इसका आकार भले ही लघु होता है, किन्तु जिस घटना अथवा खण्ड का वर्णन इसमें होता है, वह स्वत:पूर्ण होता है।

हिंदी में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रबन्ध काव्य के तीन भेद किये जिनमें एक खण्डकाव्य भी है। महाकाव्य के ही ढंग पर जिस काव्य की रचना

१- ध्वन्यालोकलोचन (उत्तरार्द्ध) तृतीय उद्योत, पृ० ७५५।

२- वही।

३- साहित्य दर्पण, परि० ६-३२९।

होती है पर जिसमें पूर्ण जीवन न ग्रहण कर खण्डजीवन ही ग्रहण किया जाता है, उसे खण्डकाव्य कहते हैं। यह खण्ड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वत:पूर्ण प्रतीत हो।[1] मिश्र जी की इस परिभाषा में खण्डकाव्य के स्वरूप का विवेचन तो हुआ है किन्तु उसके अभिव्यंजना पक्ष पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया।

खण्डकाव्य के विषय में बाबू गुलाब राय ने महाकाव्य से तुलना करते हुए बताया कि खण्डकाव्य में प्रबन्ध काव्य का सा तारतम्य तो रहता है किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता है उसमें जीवन की वह अनेक-रूपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में होती है। उसमें कहानी और एकांकी की भाँति घटना के लिए सामग्री जुटाई जाती है।[2] अत: खण्डकाव्य में समग्र जीवन का एकपक्षीय विवेचन होता है जो अपने में पूर्ण होता है। इसमें कथानक की सुसम्बद्ध योजना, वर्णन प्रवाह, प्रभावान्विति तथा पूर्णता का समाहार आवश्यक है।

भारतीय संस्कृत तथा हिंदी काव्यशास्त्र में खण्डकाव्य की जो परिभाषा मिलती है उनमें उसके विषय, कथानक तथा आकार की संक्षिप्तता पर विशेष बल दिया गया है। किन्तु विषय को आकार प्रदान करनेवाले उपकरणों की अवहेलना की गई है। फिर भी हिन्दी साहित्य में उपलब्ध खण्डकाव्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि खण्डकाव्य का विषय ऐतिहासिक कथात्मक तथा प्रख्यात घटना से युक्त होता है जिसमें कथान्विति तथा पूर्णता अनिवार्य है। मुख्य घटना के साथ आवश्यकतानुसार प्रासंगिक घटनाओं का संघटन भी होता है। अनावश्यक वर्णन विस्तार वर्जित है। महाकाव्य की भाँति सर्ग-विभाजन का बन्धन इसमें अनिवार्य नहीं है। वस्तु विन्यास की चुस्तता तथा सीमितता मुख्य है। इसकी शैली इतिवृत्तवर्णन प्रधान होती है जिसे वस्तु प्रधान समाख्यानात्मक शैली भी कहा जा सकता है। भावा-भिव्यंजना के लिए सरल तथा अलंकारमयी भाषा का प्रयोग अनिवार्य है। साधारणत: इसमें छन्द वैविध्य नहीं मिलता पर कभी-कभी एक छन्द का बन्धन नहीं भी माना गया है।

१- वाङ्मय विमर्श, पृ० ४६।

२- गुलाब राय : काव्य के रूप, पृ० ११७।

आलोच्य कवियों की प्रबन्ध काव्य के प्रति उत्पन्न मोह एवं निष्ठा ने प्रबन्ध के प्रभेद खण्डकाव्य की भी रचना की। किन्तु अन्य प्रभेदों की भांति इसमें भी वस्तु तथा शिल्प में नूतनता के समावेश तथा परिष्कार की उत्कृष्ट अभिलाषा का संवरण वे नहीं कर सके। उन्होंने खण्डकाव्य के लिए कुछ ऐसे कथाख्यानों का चयन किया जो स्थूल घटनाओं की अपेक्षा सूक्ष्म भावनाओं के अंकन में अधिक सक्षम हों। कवि प्रसाद के 'आंसू' तथा 'निराला' के 'तुलसीदास' में इन काव्यों की प्रमुख विशेषताएं आविर्भूत हुई हैं। रूपाकार की दृष्टि से आंसू का कलेवर-लघु परिलक्षित है। आंसू की अन्तर्मुखी प्रक्रिया उसे प्रगीत, मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य की कोटियों में परिगणित करने के लिए बाध्य करती है। इसका साहित्यिक रूप विधान तथा कला परिधान अपने ढंग का अनूठा है। 'आंसू' में प्रसाद जी ने भौतिक जगत और स्थूल घटनाओं को विस्मरित कर मानव मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों तथा विचारों को ही व्यक्त किया है। अतएव आंसू में स्थूल घटनाओं का वर्णन कम, भावुक हृदय का भावोच्छ्वास अधिक वर्णित है। इसी प्रकार 'तुलसीदास' में भी कवि ने नायक के अन्तर्मन की सूक्ष्म स्थितियों का ही वर्णन किया है। वर्ण्य-विषय में अमूर्त तत्वों की व्यंजना तुलसीदास की महत्वपूर्ण विशेषता है। वास्तव में, आंसू और तुलसीदास काव्य के साहित्यिक रूप सौष्ठव का हिंदी साहित्य में अक्षुण्ण स्थान है।

आंसू

वस्तु-विन्यास : आंसू के समस्त पद संश्लिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति में सक्षम है। इसके प्रबन्धत्व पर विचार करते समय महाकाव्य की सी व्यापकता तथा उदात्तता भले ही न मिले किंतु खण्डकाव्य की सी कथान्विति तथा विचारों की तारतम्यता अवश्य मिलती है। जिसके प्रतिफलनस्वरूप आंसू के अध्ययन के तत्पश्चात् मनुष्य एक छोटी सी कथा या किसी महत्वपूर्ण घटना का अनुभव करने लगता है। इसमें स्मृतिजन्य मधुर घटनाओं का कलात्मक विन्यास हुआ है। काव्य का आरंभ कवि के मस्तिष्क में छाई घनीभूत पीड़ा की स्मृति से होता है और मध्य उसी स्मृति में प्रिय के साथ व्यतीत क्षणों की सुखद अनुभूति तथा विछोह से संतप्त हृदय के करुण क्रन्दन से युक्त है इसमें प्रिय के

जो ' इस करुणा कलित हृदय में, अब विकल रागिनी बजती ।'[1] यहाँ 'रागिनी' शब्द का अर्थ अंगुलियों से खींचकर तारों से राग निकालना न होकर, दुःख की उत्पत्ति होना है । इन विशेषताओं के साथ आँसू में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है । "अब छाले आँसू दिखलाकर मुँह क्यों ही तुमने फेरी ।"[2] पंक्ति में, छाले दिखलाना तथा मुँह फेरना मुहावरे का कुशल विधान हुआ है । इस प्रकार आँसू की भाषा समृद्ध तथा सुपुष्ट है ।

आँसू में प्रयुक्त अलंकार भावोत्कर्षक हैं । काव्य में उनका सहज भावन हुआ है वे प्रयास जन्य नहीं हैं । इसमें उपमेय और उपमान का कलात्मक रूप द्रष्टव्य है ।[3] इसके अतिरिक्त रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा नूतन अलंकार मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, विरोधाभास आदि का कुशल विधान भी आँसू में मिलता है । श्लेष और सांगरूपक को एक साथ भी देखा जा सकता है ।[4] आँसू में प्रयुक्त अलंकारों में विरोधाभास महत्वपूर्ण है । मिथ्या जग में चिरसत्य की कल्पना या ज्वाला का शीतल होना आदि विरोधाभास के सुन्दर उदाहरण हैं ।[5] आँसू का काव्य-वैभव एवं कलात्मक सौष्ठव इसके आलंकारिक कौशल पर भी निर्भर करता है । आँसू की अलंकार योजना पाठक को तत्क्षण आकर्षित कर लेती है ।

काव्य में नूतनता के आग्रही कवि प्रसाद ने २८ मात्राओं के स्वरचित छन्द में आँसू की रचना की है । २८ मात्राओं का यह छन्द दो पंक्तियों में पूर्ण होता है । यह छन्द मात्रिक है । १४-१४ मात्राओं की चार पंक्तियों में आँसू का एक पद सुगठित है । इसमें द्वितीय और चतुर्थ पंक्तियों में तुकान्त योजना मिलती है और प्रथम तथा तृतीय पंक्ति तुकविहीन है । कामायनी के आनन्द सर्ग की रचना भी इसी

१- प्रसाद : आँसू, पृ० ३ ।
२- वही, पृ० ३५ ।
३- मादकता से आये तुम संज्ञा से चले गये थे ।
   हम व्याकुल पड़े बिलखते थे, उतरे हुये नशे से । वही, पृ० २८ ।
४- जल उठा स्नेह, दीपक-सा नवनीत हृदय था मेरा
   अब शेष धूम-रेखा से चित्रित कर रहा अँधेरा । वही, पृ० २६ ।
५- तुम सत्य रहे चिर सुन्दर
   मेरे इस मिथ्या जग के । ' आँसू ', पृ० १२ ।
   शीतल ज्वाला जलती है
   ईंधन होता दृग-जल का । ' वही , पृ० ६ ।

छन्द में हुई है। प्रायः इसी आधार पर कुछ लोग इस छन्द को आनन्द सर्ग या आँसू छन्द की संज्ञा से अभिहित करते हैं। कुछ भी हो आँसू का यह छन्द लय तथा ताल की दृष्टि से अत्यधिक सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। इसमें लय गति है, वेग है, प्रवाह है, सरसता है, जो आँसू की लोकप्रियता तथा सफलता का मूल कारण है।

आँसू में कथान्विति, अनुभूति की प्रगाढ़ता, सरस भाषा, समृद्ध अलंकरण, सूक्ष्म प्रतीक योजना, तन्मयकारिणी व्यंजकता और प्रवाहपूर्ण छन्द विधान का सौन्दर्यपूर्ण विन्यास हुआ है। इसकी वस्तु सामग्री और समग्र कथा वह मृगमरीचिका है जो यथाप्रकार अपना स्वरूप परिवर्तित करने की पूर्ण सामर्थ्य रखती है। आँसू में प्रबन्ध-शिल्प, प्रगीत-शिल्प और मुक्तक शिल्प की ऐसी सम्मिलित योजना मिलती है जिसमें इसका स्वरूप निश्चितकर पाना कठिन सा प्रतीत होता है। काव्य के विविध रूपों की दृष्टि से आँसू का सापेक्षिक महत्व है।

तुलसीदास

वस्तु-विन्यास : कवि निराला ने सर्वसाधारण के मध्य प्रचलित 'तुलसीदास' की कथा में रूपकतत्व का समावेश कर उसे अभिनव रूप प्रदान किया है। कथानक की रचना भौतिक एवं मूर्त तथ्यों के आधार पर न होकर सूक्ष्म अन्तश्चेतना या अमूर्त तत्वों के उपनिवेश में हुई है। कवि ने नायक के मनोजगत में घटित अमूर्त एवं सूक्ष्म तत्वों को रूपायित किया है जिसमें आत्मोन्नति सांस्कृतिक जागरण, मोहाविष्ट जीव में ज्ञानोदय, आत्मचेतना का विकास, मनःस्थितियों के तीव्र घात प्रतिघात आदि की समुचित व्यंजना निहित है।

साधारण रूप से तुलसीदास की कथा अत्यधिक संक्षिप्त और सर्वविदित है जिसमें नाट्य स्थितियों का कलात्मक संयोजन हुआ है। इस्लाम धर्म और संस्कृति के अधःपतन से आक्रान्त भारत के चित्रांकन से लेकर नायक के चित्रकूट भ्रमण में प्रकृति से साक्षात्कार तक की कथा काव्य के आरंभ स्थिति में आती है। तत्पश्चात् चित्रकूट भ्रमण के समय प्रकृति की रम्य छटा के मध्य रत्नावली का अचानक प्राकट्य और मोहाभिभूत तुलसीदास का वहाँ से घर लौट आना, तदोपरांत रत्नावली के भाई के आगमन की घटना विकास की स्थिति है। रत्नावली का पितृगृह जाना और प्रेमविह्वल

तुलसीदास का कर्म पर पहुँचने की घटना चरमसीमा है। रत्नावली की भर्त्सना से तुलसीदास के अज्ञानान्धकार की विनष्टि तथा गूढ़ ज्ञान की कथा उतार या नियति की स्थिति कही जा सकती है। प्राची दिगन्त में भारत के अस्तमित सांस्कृतिक सूर्य के उदय का कारण अन्त की स्थिति में अन्तर्भुक्त होता है। यहीं पाँचों स्थितियाँ भारतीय शब्दावली में आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम है। सांस्कृतिक सूर्य के अस्तमित हो जाने से लेकर भारतीय क्षितिज पर पुनः सूर्योदय होने की जिन विविध स्थितियों का चित्रांकन कवि ने किया है वह प्रस्तुत रचना को प्रबन्ध की गरिमा तथा संश्लिष्ट कथासूत्र की आभा से मण्डित करने के लिए पर्याप्त है।

तुलसीदास की कथा संक्षिप्त है। उसमें न तो घटना बाहुल्य है और न तो प्रसंग विस्तार। फिर भी, उसकी सुसम्बद्ध कथायोजना की प्रभावान्विति को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें आधिकारिक कथा के अतिरिक्त प्रासंगिक कथाओं का संयोजन नहीं मिलता है। संभव है, मूल कथा की रक्षा तथा स्पष्टता के लिए ही कवि ने ऐसा किया हो। यूँ भी अमूर्त एवं सूक्ष्म भावों की पुष्टि में कथा-विस्तार तथा अन्य कथाओं का समावेश बाधक ही सिद्ध होता, सहायक नहीं।

'तुलसीदास' काव्य का महत्व उसके साधारण प्रतिपाद्य अर्थ में निहित न होकर प्रतीकार्थ में है, जो तद्युगीन काव्य साहित्य में इसे कामायनी के साथ परिगणित करने के लिए बाध्य करता है। कथा का आरंभ और अंत सूर्यास्त तथा सूर्योदय से जुड़ा है जो प्रायः भारतीय संस्कृति के पराभव तथा नवोदय का प्रतीक है। प्रतीक शैली के माध्यम से ही तुलसीदास के अधोमुखी स्थिति को ऊर्ध्वमुखी बनाकर यह स्पष्ट किया गया है कि भारत की दीन-हीन विषण्ण स्थिति को मिटाकर पुनः सांस्कृतिक उत्थान तथा भारतीय गौरव एवं समृद्धि की प्रतिष्ठापना हो सकती है। इस काव्य के प्रमुख पात्र तुलसीदास राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवोत्थान के प्रतीक हैं और रत्नावली नीलवसना शारदा की प्रतीक है जो नायक के लिए प्रेरणास्रोत है। अतः कवि ने स्थूल घटना तथा पात्रों आदि के माध्यम से सूक्ष्म वैचारिक भावों का कलात्मक चित्रांकन किया है।

तुलसीदास का कथा संगठन मूर्त एवं स्थूल पृष्ठभूमि पर होने

की उपेक्षा अतृप्त अन्तश्चेतना के आधार पर हुआ है। जिसमें नाटकीय तत्व संघर्ष तथा चरम गति का अन्तर्मुखी विधान हुआ है। यूं तो सम्पूर्ण काव्य आन्तरिक संघर्ष से युक्त है किन्तु उसकी चरमपरिणति मोहाभिभूत तुलसीदास के ससुराल पहुंचने पर कौतुक से आहत रत्नावली की मनःस्थितियों के आलोडन-विलोडन में निहित है। कौतुक से रत्नावली के सहज ज्ञान जग गये, जिससे स्पष्ट धिक्कार कर तुलसीदास को प्रताड़ित करते हुए सम्भा कह उठती है कि राम से नहीं काम से मूल उपकार।" पत्नी के ऐसे अप्रत्याशित वचन को सुनकर तुलसीदास का अज्ञानान्धकार विनष्ट हो जाता है और गृहत्याग कर रत्नावली से प्राप्त ज्ञानालोक को मानुष संसार में विकीर्ण करने निकल पड़ते हैं। इस स्थल पर नायक- नायिका के मानसिक अशान्ति, क्षोभ, चिन्ता, पीड़ा आदि का संश्लिष्ट वर्णन कवि ने बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। तुलसीदास के मस्तिष्क में प्रकृति के विषण्ण रूप को देखकर चित्त क्षण की पुष्टि होती है वह काव्य में नाटकीय सक्रियता को उत्पन्न करने में सहायक है।

कथा का आरंभ तथा अंत नाटकीय ढंग का है। मनःस्थिति के तीव्र घात-प्रतिघात तथा कथानक संगठन में जिस गतिशीलता, सघनता, सरसता तथा कलात्मकता के दर्शन होते हैं वह निराला की कवि को द्योतित भी है। कवि ने अन्त में तुलसीदास की अन्तश्चेतना को पूर्णतः जागृत (अस्तमित सूर्य का उदय) दिखाकर प्रभावान्विति की सौन्दर्यपूर्ण सृष्टि की है। समग्रतः तुलसीदास का वस्तु विन्यास उसे खण्डकाव्यत्व प्रदान करता है।

<u>शिल्प-विन्यास</u> : मनोवैज्ञानिक पीठिका पर आवेष्टित प्रस्तुत आख्यानपरक काव्य की शैली मनोभावों की व्यंजना के प्रतिफलनस्वरूप मनोविश्लेषणात्मक हो गई है। यद्यपि खण्डकाव्य के तत्वों के निर्वाह में कवि ने वर्णनात्मक शैली का भी आश्रय लिया है। तुलसीदास की मनःस्थिति के परिवर्तन करनेवाले उन महत्वपूर्ण क्षणों में कवि स्वयं प्रश्न करते हैं और स्वयं ही उसका समाधान भी प्रश्नोत्तर शैली का कलात्मक रूप द्रष्टव्य है। वाजपेयी जी ने इसकी शैली को उदात्त शैली कहा है। "निराला की तीसरी शैली उदात्त और विराट चित्रों की है जिसमें उन्होंने महाकाव्योचित उत्कर्ष किया है। यह उनकी पाण्डित्य शैली भी कही जा सकती है। यहाँ उन्होंने

विशाल चित्र फलक पर संश्लिष्ट और समासिक भाषा प्रयोगों के माध्यम से विराट चित्रों की अवतारणा की है यहाँ बादल राग की सी प्रगल्भता नहीं, है और न गीतिका के से आलोक चित्रों का ललित अंकन है। यहाँ वास्तव में कवि का प्रौढ़ि का विन्यास कर रहा है ------- जिसे हमने उदात्त शैली का नाम दिया है।[1] तुलसीदास में विविध शैली के दर्शन होते हैं फिर भी अन्तर्विश्लेषण में [illegible] शैली को मनोविश्लेषणात्मक शैली कहना समीचीन होगा।

प्रस्तुत काव्य की भाषा भावानुकूल है। सूक्ष्म भावों तथा विचारों को मूर्त रूप प्रदान करनेवाली भाषा में शब्द-चयन तथा शब्द विन्यास विषयानुकूल है जैसे 'भारत के नभ का प्रभापूर्य शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य, अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य'[2] की व्यंजना में कवि की समर्थ भाषा का रूप ओजमय हो गया है। इसके अतिरिक्त 'वह आज हो गयी दूर तान, इसलिए मधुर वह और गान'[3] की भाषा अत्यधिक कोमल तथा मधुर बन पड़ी है। अतएव इनकी भाषा भावपक्ष वैचारिक पक्ष की आत्मा का अनावरण करने में पूर्णतः समर्थ है, एक और उसमें ओजमयी गरिमा एवं औदात्त्य है तो दूसरी ओर लालित्यपूर्ण रस प्रवाह तथा भावगाम्भीर्य भी है। तुलसीदास की भाषा कोमल एवं विराट, सूक्ष्म एवं स्थूल, तीव्र एवं क्षिप्र तथा मृदुल एवं गाम्भीर्यपूर्ण वर्णनों की व्यंजना में सक्षम होने के साथ ही प्रतीकात्मक भी है। यद्यपि यह प्रतीकात्मकता कवि के लिए साध्य न होकर साधनमात्र ही है फिर भी समस्त काव्य प्रतीकमय हो गया है। इसमें कवि ने अमूर्त एवं सूक्ष्म गतिमय मानसिक चित्रों को प्रतीक तथा बिम्ब के विराट फलकाधार पर प्रस्तुत किया है।

तुलसीदास का अलंकरण विधान उसके साहित्यिक रूप सौष्ठव को प्रस्तुत करने में पूर्णतः सहायक हुआ है। जहाँ कहीं कहीं कवि ने पौराणिक अथवा पारम्परिक उपमानों को प्रस्तुत भी किया है तो उसमें उनकी मौलिकता का स्पष्ट आभास मिलता है। द्रौपदी के चीरहरण का रूपक बाँधकर कवि ने रत्नावली के लज्जा

१- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० १३५-३६।

२- निराला : तुलसीदास, छन्द सं० १।

३- वही, छन्द सं० ७३।

हरण का सुन्दर वर्णन किया है । रत्नावली के लज्जाजनित भावों के चित्रण में कवि ने सांगरूपक[1] का कुशल विन्यास किया है। इसके अतिरिक्त 'मानवीकरण[2], विरोधाभास,[3] तथा विशेषण विपर्यय[4] आदि अलंकारों का कलात्मक विधान भी इस काव्य में हुआ है । इसमें कवि ने मनोवैज्ञानिक तत्वों से अनुविद्ध सूक्ष्म और अस्पष्ट भावों तथा विचारों को अप्रस्तुतों के माध्यम से मूर्तिमत किया है जो प्रस्तुत रचना के कलात्मक सौष्ठव का उत्कृष्टतम उदाहरण कहा जा सकता है ।

छन्द विधान की दृष्टि से इस काव्य का अत्यधिक महत्व है । पज्झटिका तथा रास छन्द के मिश्रण से निर्मित तुलसीदास का छन्द भावाभिव्यक्ति की व्यंजना में पूर्णतः सफल हुआ है । इस नूतन छन्द की पहली, दूसरी, चौथी और पांचवीं पंक्ति एक ढंग से निर्मित है और तीसरी तथा छठी पंक्ति दूसरे ढंग से । इस प्रकार दो छन्दों के योग से निर्मित तुलसीदास का छन्द विधान साहित्य में एक अभिनव प्रयोग माना जायगा । डा० पुत्तूलाल के अनुसार 'तीसरे और छठे चरण की २२ मात्राएं चौपाई में सम्प्रवाही पादपूरक जोड़ने से बनी हैं । चौपाई के दो चरण और २२ मात्राओं के चरण के योग से छन्द का आधा भाग बनता है । इस प्रकार के दो खण्डों में छन्द का निर्माण हुआ है ।[5] किन्तु इस मताधार पर प्रत्येक छन्द की स्थिति संदेहास्पद हो जाती है क्योंकि चौपाई जैसा साम्य अन्य प्रवाह कुछ ही छन्दों में मिलता है और दूसरे १६ मात्राओं की छोटी पंक्तियों का अंत लघु अक्षर से (जो वर्जित है) हुआ है जिससे भी इसको चौपाई के समान नहीं माना जा सकता है । इसके प्रत्येक छन्द की गति, लयनिपात तथा अन्त्यानुप्रास की योजना पज्झटिका तथा रास छन्द के अनुरूप है ।

१- लाज का आज भूषण, अकलंक, नारी का;
खींचता छोर, वह कौन और
बैठा उनमें जो अधम चोर ?
खुलता अब अंचल, नाथ पार साड़ी का । - निराला : तुलसीदास, छन्द सं०७८ ।

२- तरु-तरु, वीरुध्-वीरुध्, तृण-तृण
जाने क्या हंसते मसृण-मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लखकर ; वही, छन्द सं० १६ ।

३- रग-रग से रंग रे रहे जाग स्वप्नोत्पल । वही, छन्द सं० ८० ।

४- कल्पनोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम । वही, छन्द सं० ३६ ।

५- डा० पुत्तूलाल : आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना, पृ० ३६० ।

फिर भी उसके मात्रा, यति-गति, छन्दादि के विधान में कवि को भावानुकूल परिवर्तन भी अभीष्ट रहा है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास की प्रस्तुत और अप्रस्तुत कथा-संघटन में शैलीगत विविधता, भाषा, नाटकीयता, छन्दयोजना, नाद व्यंजना, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता आदि का उत्कृष्ट विधान हुआ है। काव्य में रूपकत्व का समावेश उसकी महती विशेषता है।

प्रस्तुत काव्य की सर्गविहीनता तथा आख्यान प्रमुखता के कारण कतिपय विद्वान इसे लघु आख्यान काव्य या गीतिनाट्य मानते हैं।[१] किन्तु ऐसा मानते हुए भी वे विद्वान इसके महाकाव्योचित गरिमा की उपेक्षा नहीं कर सके[२] और तुलसीदास में शिथिल प्रबन्धत्व को स्वीकार करते हैं। इसमें नायक के जीवन के एक सूक्ष्म खण्ड या महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हुआ है जिससे इसे खण्डकाव्य कहना ही अधिक समीचीन होगा। कथानक की एकान्विति और क्रमबद्धता तथा शैली की प्रबन्धकाव्योचित उदात्तता एवं गरिमा इसके खण्डकाव्यत्व को पुष्ट करती है। इसमें कवि ने नायक के जीवनवृत्त को ज्यों का त्यों न दुहराकर कुछ इस भाँति प्रस्तुत किया है कि उसमें बाह्य साक्ष्य की अपेक्षा अन्तःसाक्ष्य की प्रधानता हो गई है। नायक की मनःस्थितियों के आलोड़न-विलोड़न में तद्युगीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गरिमा को रूपायित किया गया है। इसमें तुलसीदास के चेतनासंकुल भावों की अन्तर्धारा के माध्यम से कवि ने अपने भावोद्गारों को निःसृत किया है। विषय, नाटकीय कथा विन्यास तथा कार्य व्यापार, प्रतीकात्मक शैली से अनुस्यूत प्रकृतिवर्णन, विषयानुकूल भाषा, उदात्त तथा गरिमामय शैली अप्रस्तुत विधान और छन्द संयोजन आदि इस खण्डकाव्य की सफलता के ज्वलंत उदाहरण हैं।

(४) महाकाव्य

प्रबन्ध काव्य के प्रमुख रूप-महाकाव्य की प्रतिष्ठा आदिकाल से लेकर आज तक अक्षुण्ण गति से प्रवहमान रही है, भले ही उसके स्वरूप विधान के

१- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० १२२।
तथा
डा० शान्ति श्रीवास्तव : छायावादी काव्य और निराला, पृ० १२२।
२- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० १२२।

प्रतिमान बदलते रहे हैं । कारण, इसमें सत्यं-शिवं-सुन्दरं जैसे आदर्शों से उद्भूत तथा महत् जीवन के भव्य एवं उदात्त चेतनाओं से संयुक्त आदर्श कथानकों का कलात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण है । विवेच्य महाकाव्य की परख आधुनिक महाकाव्य के प्रतिमानों के परिप्रेक्ष्य में करना है किन्तु इस सन्दर्भ में महाकाव्य सम्बन्धी पूर्व विचारों से अवगत होना भी अनिवार्य है । महाकाव्य के विषय में विचार व्यक्त करनेवाले संस्कृत आचार्यों में भामह[1], दण्डी[2], रुद्रट[3], हेमचन्द्र[4] विश्वनाथ[5] तथा धनंजय[6] आदि प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त अग्निपुराणकार[7] ने भी महाकाव्य पर अपना मत व्यक्त किया है । इन संस्कृत आचार्यों ने अपने ढंग से महाकाव्य के स्वरूप तथा लक्षणों को निर्धारित किया है जिसकी यहाँ पर संक्षिप्त रूप से सम्मिलित चर्चा करेंगे । भारतीय संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं :

कथानक अनतिदीर्घ होना चाहिए । कथा नाटकीय तत्वों से युक्त सर्गबद्ध होनी चाहिए । कम से कम ८ सर्ग और प्रत्येक सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए । कथा को प्रख्यात तथा इतिहास सम्मत होना चाहिए । साथ ही कथावस्तु में ऐसी महत्वपूर्ण घटना का नियोजन होना चाहिए जिस पर समस्त कथा को आधारित किया जा सके । प्रमुख कथा के अतिरिक्त अवान्तर कथाओं का संयोजन भी होना चाहिए । कथानक में अविरल रस प्रवाह अनिवार्य है और श्रृंगार, वीर तथा शांत रस में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए । कथा का प्रारंभ मंगलाचरण के साथ तथा अंत नायक द्वारा फलप्राप्ति के साथ होना चाहिए । अंत में उपसंहार होना चाहिए ।

१- काव्यालंकार; भामह, १। १९-२३ ।

२- काव्यादर्श ; दण्डी, १। १४-२० ।

३- काव्यालंकार ; रुद्रट १६। ७-२३ ।

४- काव्यानुशासन ; हेमचन्द्र, अ० ८ पृ० ३३० ।

५- साहित्य दर्पण ; विश्वनाथ ६। ३१५-२५ ।

६- दशरूपक ; धनंजय ३। १२

७- अग्निपुराण, १। ३३७

महाकाव्य का नायक धीरोदात्त, उच्चकुलोत्पन्न, वीर, महान् , नीतिज्ञ, सर्वगुण सम्पन्न , सद्वंशोत्पन्न -देवता, क्षत्री एवं राजा होना चाहिए । नायक के चरित्र की महत्ता को बढ़ाने के लिए प्रतिनायक भी होना चाहिए । प्रतिनायक को भी शौर्य, वीर एवं पराक्रमी होना चाहिए । नायक को वर्षा, धर्म, काम, मोक्ष आदि सिद्धियों पर समग्र रूप से या फिर किसी एक पर विजय प्राप्त करना चाहिए । उसमें अलौकिक तथा अतिप्राकृत कार्यों को संपन्न करने की क्षमता निहित होनी चाहिए । नायक और प्रतिनायक के अतिरिक्त मंत्र-दूत प्रयाण आदि का समावेश भी होना चाहिए ।

महाकाव्य में जीवन के विविध व्यापारों का वर्णन अनिवार्य है । वन-विहार, जलक्रीडा, विवाह, यज्ञ, युद्ध, राज-काज आदि क्रियाओं के साथ नगर, सागर, पर्वत , वन ऋतु, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी होना चाहिए । ये समस्त वर्णन प्रसंगानुकूल होने चाहिए । पांडित्य प्रदर्शन के हेतु इनकी अनावश्यक सूची तैयार करना आचार्यों द्वारा वर्जित बताया गया है ।

महाकाव्य की शैली गंभीर तथा गरिमामयी होनी चाहिए । इन आचार्यों ने स्पष्ट से महाकाव्य की शैली पर अपना मंतव्य नहीं प्रकट किया । किंतु महाकाव्य के लक्षणों का निर्देश करते समय यत्र-तत्र शिल्प विधान पर भी अपना विचारव्यक्त किया है जिसे संकलित कर संक्षेप में देखा जा सकता है ।

महाकाव्य की छन्द योजना पर भामह ने ध्यान नहीं दिया किंतु दण्डी ने यह बताया कि महाकाव्य में रम्य छन्दों का प्रयोग होना चाहिए जो पढ़ने सुनने में अच्छे लगे ।[1] इसके साथ ही यह भी कहा कि एक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिए और सर्ग के अन्त में उसे बदलकर भिन्न छन्द द्वारा अगले सर्ग की सूचना देना चाहिए ।[2] किन्तु इस कथन के अपवाद स्वरूप विश्वनाथ ने केवल इतना कहा कि किसी- किसी महा-काव्य में नाना प्रकार के छन्दों से युक्त सर्ग भी मिलते हैं ।[3] इस प्रकार महाकाव्य की छन्द योजना पर कोई सुनिश्चित विचार नहीं मिलता और जो मिला भी है उसे लक्षण

१- सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ।
काव्यादर्श, १।१८

२- वही । १-१९

३- नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चनदृश्यते ।
साहित्य दर्पण ६।३२१ ।

न कहकर चर्चा मात्र कहा जा सकता है ।

महाकाव्य में अलंकार की उपयुक्तता को स्वीकारते हुए भामह ने बताया कि महाकाव्य को सालंकार होना चाहिए ।[1] इसी कथन को दण्डी ने भी दुहराया ।[2] हेमचन्द्र ने भी महाकाव्य में अलंकार की स्थिति को स्वीकार किया ।[3] पूर्ववर्ती आचार्य रुद्रट तथा परवर्ती आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य में अलंकार की स्थिति पर कोई विचार नहीं व्यक्त किया , जो प्रकट करता है कि उनकी महाकाव्यों में अलंकार के गहन भावन को देखकर ही शान्त हो गए थे ।

महाकाव्य की भाषा के विषय में इन आचार्यों ने स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा । भामह ने अवश्य महाकाव्य में अग्राम्य शब्दार्थ को आवश्यक बताया[4] अतएव महाकाव्य की भाषा को शिष्ट एवं सुसभ्यजनों के मध्य प्रयुक्त होने के अनुकूल होना चाहिए ।

इन आचार्यों ने महाकाव्य के सृजन में निहित उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला है । दण्डी ने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष अर्थात् 'चतुर्वर्गफलायत्तं' पर जोर दिया है ।[5] रुद्रट[6] तथा आचार्य हेमचन्द्र[7] ने भी इस मत का समर्थन किया । किन्तु आगे चलकर विश्वनाथ ने इन समस्त स्थितियों में से किसी एक को भी महाकाव्य का ध्येय मानकर काव्य संरचना में प्रवृत्त होने को कहा ।[8]

संस्कृत आचार्यों ने उपलब्ध महाकाव्यों को आधार बनाकर महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं । महाकाव्य के उपर्युक्त समस्त लक्षण आधुनिक हिन्दी

१- अग्राम्य शब्दमर्थं च सालंकार सदाश्रयम ।
काव्यालंकार, १।१९

२- काव्य कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति।
काव्यादर्श, १।१९

३- उभयवैचित्र्यं यथा ------ सदलंकारवाक्यत्वम् --- इति ।
काव्यानुशासन ; आठवां अध्याय

४- काव्यालंकार, १।१९

५- काव्यादर्श, १।१५

६- काव्यालंकार, १६।५-६

७- काव्यानुशासन ८वां अध्याय ।

८- चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
साहित्यदर्पण ६।३१८

महाकाव्यों की विपुल राशि पर घटित नहीं होते । साहित्य के बदलते प्रतिमानों के साथ काव्य की इस विधा ने भी अपने स्वरूप के निश्चित आयामों में महत्वपूर्ण - परिवर्तन किये हैं । आज के महाकाव्यों को परखने के मानदण्ड बदल चुके हैं । अब महाकाव्य की कथावस्तु प्रख्यात और सज्जनाश्रित हो तथा नायक धीरोदात्त, उच्च कुलोद्भव हो, जिसको चारों सिद्धियों की या फिर किसी एक ही सिद्धि की प्राप्ति होती हो, ऐसी मान्यता नहीं रही । अब सम्सामयिक चर्चा तथा युगोत्पन्न जटिल स्थितियां महाकाव्य का विषय बनती हैं । नायक भी किसी जाति अथवा वर्ग का हो सकता है उसे केवल कर्म से महान् तथा उच्च होना चाहिए । कथानक का आरंभ मंगलाचरण से तथा अंत सुखांत होने की मान्यता भी आज के महाकाव्यों में नहीं मिलती । इस प्रकार कथानक के निर्माण की प्राचीन परिपाटी आज के महाकाव्यों में समाप्तप्राय हो चुकी है । प्राचीन महाकाव्य छंद प्रधान थे आज के महाकाव्य गीत प्रधान हैं । प्राचीन महाकाव्यों में भावाकुलता ही प्रमुख थी किंतु आज के महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिकता मुख्य है । प्राचीन महाकाव्यों में द्वन्द्व तथा संघर्ष का बाह्य विधान होता था किन्तु आज उनका बाह्य विधान न होकर आन्तरिक विधान ही होता है और आज में संघर्ष तथा द्वन्द्व की निर्मिति मानसिक धरातल पर होती है । प्राचीन महाकाव्यों में जीवन के विविध व्यापारों का वर्णन होता था और आज युग-परिस्थिति तथा समस्याओं का वर्णन होता है । कारण इन कवियों के रचना-विधान के मूल में निहित उनकी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति तथा साहित्य के बदलते हुए प्रतिमान हैं ।

आधुनिक महाकाव्यों के स्वरूप ज्ञान के लिए पाश्चात्य आचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के तत्वों से अवगत होना भी आवश्यक है जिस प्रकार भामह दण्डी आदि ने प्राचीन महाकाव्यों को आधार मानकर उसके लक्षण निर्धारित किये, उसी प्रकार पाश्चात्य काव्य चिंतकों ने भी होमर के 'इलियड' 'ओडिसी' आदि को ध्यान में रखकर महाकाव्य के तत्व निर्धारित किये । पाश्चात्य आचार्यों में सर्वप्रथम मत व्यक्त करनेवाले आचार्य अरस्तू हैं । उन्होंने स्वतंत्र रूप से महाकाव्य के विषय में न कहकर त्रासदी (ट्रैजिडी) और महाकाव्य (एपिक पोएट्री) के तुलनात्मक

वर्णन के प्रसंग में जो कुछ भी कहा वह महत्त्वपूर्ण है।[1] अरस्तू के पश्चात् मैकनील डिक्सन[2], एबरक्राम्बी[3] सी० एम० बावरा[4] और डब्ल्यू पी० कर[5] आदि ने भी महाकाव्य के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

अरस्तू के अनुसार महाकाव्य में षटपदी छन्द के अन्तर्गत समाख्यानात्मक अनुकरण होता है। उसकी रचना त्रासदी की भाँति नाटकीय तत्वों से युक्त होनी चाहिए, जो जीवंत इकाई के रूप में प्रतीत हो और समग्रत: आनंद प्रसारित कर सकने में सक्षम हो।[6] त्रासदी के साथ तुलना करते हुए अरस्तू ने महाकाव्य के विषय में जो कुछ भी कहा है उसके आधार पर संक्षिप्ततः यह कहा जा सकता है कि महाकाव्य की कथा स्वाभाविक होनी चाहिए। इसमें जीवन के किसी एक सत्य का उद्घाटन होना चाहिए। इसमें उदात्त कार्य-व्यापार तथा घटनाओं का प्रतिपादन इस प्रकार होना चाहिए जो स्वत: पूर्ण गम्भीर तथा वर्णनात्मक हो, आदि से अंत तक एक ही छन्द में रचित हो तथा अलंकारमय, मनोरम भाषा से युक्त उत्कृष्ट शैली में संग्रथित हो, जिससे कथा का सजीव तथा जीवंत विकास हो सके। यहाँ पर विषय को विस्तार से बचाने के लिए अरस्तू तथा अन्य पाश्चात्य विचारकों के मत को आधार बनाकर संक्षेप में महाकाव्य के तत्वों पर विचार करेंगे।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार महाकाव्य वृहदाकार, वर्णन प्रधान काव्य है। इसमें एक मूल कथा होती है जिसके साथ-साथ अवान्तर कथा का विन्यास होता है। कथानक का विकास नाटकीय ढंग से होता है। कथा विस्तार में कार्यान्विति तथा घटना-विस्तार का भी योग रहता है। कथा में आदि, मध्य और अवसान का एकसूत्र में गुंथा होना अनिवार्य है। इसमें किसी महान् घटना का वर्णन होता है जिसका प्रभावान्विति में युक्त होना आवश्यक है। इसमें यथासम्भव जीवन का सर्वांगीण वर्णन ही होता है।

१- अरस्तू का काव्यशास्त्र, भाग ३, संपा० नगेन्द्र, पृ० ३४, ३६, ५६-५८।
२- इंग्लिश एण्ड हीरोइक पोइट्री, एम० डिक्सन, पृ० २२।
३- दि एपिक, एल० एबरक्राम्बी, पृ० ५२।
४- फ्राम वर्जिल टु मिल्टन, बावरा, पृ० १।
५- एपिक एण्ड रोमांस, डब्ल्यू० पी० कर०, पृ० १७।
६- अरस्तू का काव्यशास्त्र, भाग ३, संपा० टी०ए०मोकान, पृ० ५७।

महाकाव्य का नायक महान् , वीर, युद्धप्रिय तथा पराक्रमी होता है, साथ ही उसका सम्पर्क देवताओं के साथ भी होता है। उसके कार्यों की दिशा निश्चित होती है जिसमें नियति या देववाद का भी हाथ रहता है। अरस्तू ने महाकाव्य के लिए तीन प्रकार के नायक बताए है। एक यथार्थवादी, दूसरे सामान्य चारित्रिक विशेषताओं से युक्त और तीसरे परम्परा से माने हुए कल्पित नायक- जिनमें देवता गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि आते हैं। नायक के अतिरिक्त अन्य पात्रों का समावेश भी महाकाव्य में आवश्यक होता है। समस्त पात्रों के चरित्र में नवीनता, गरुरूपता, अद्भुत कार्यक्षमता तथा व्यक्ति वैशिष्ट्य आदि गुणों का होना अनिवार्य है। पाश्चात्य साहित्य में महाकाव्य का नायक स्वयं कवि भी हो सकता है इसका प्रमाण `डिवाइन कामेडी` के रचयिता कवि दांते का नायकत्व ग्रहण करना है।

महाकाव्य की शैली वर्णनात्मक होती है जो उदात्त तथा गंभीर तत्वों से युक्त होती है। उसकी शैली के विषय में अरस्तू का कथन है कि महाकाव्य में कवि सब कुछ अपने शब्दों में सामान्य ढंग से कहता है या आलंकारिक भाषा में कहता है। भाषा पर अधिकार होने से कवि उसे अन्यान्य विशेषताओं से सजा-संवार कर सुन्दर रूप में भी व्यक्त करता है।[१] इस प्रकार वहां भाषा एवं शैली के विन्यास में स्वतंत्रता है। केवल महाकाव्य में षटपदी छन्द का प्रयोग अनिवार्य है। महाकाव्य की शैली में विशिष्ट शालीनता, उच्चता और स्पष्टता का होना अनिवार्य माना गया। बृहद्-आकार में रचित होने से ही किसी रचना को महाकाव्य नहीं माना गया उसका महाकाव्यत्व उसकी शैलीगत विशिष्टताओं पर निर्भर करता है यह शैली कवि की अपनी विचारधारा लेखनी तथा कल्पना पर आधारित होती है। ऐसी विशिष्ट शैली से युक्त महाकाव्य ऐसे अनोखे लोक में पहुंचा देते हैं जहां सब कुछ महत्त्वपूर्ण होता है कुछ भी अकारणभित नहीं होता।[२]

१- अरस्तू का काव्यशास्त्र, भाग ३, संपा० टी०एस०मोहन, पृ० ५१।

2- What Epic quality, detached from epic proper, do these poems posses, then, apart from the mere-fact that they take up great many pages ? It is simple a question of their style the style of theis conception and the style of their writing the whole style of their imagination, in fact , they take us into a region in which nothing happens that is not deeply significant a dominant , noticeable symbolic purpose presides over each peom, moulds it greatly and informs it throughout.

The Epic , by L.Abercrombie. p. 52.

आगे चलकर पाश्चात्य महाकाव्य की शैली में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसका ज्ञान सी०एम०बावरा डब्ल्यू० पी० कर, थामसन, वरटन, हरबर्ट रीड आदि आधुनिक काव्य चिंतकों की नूतन मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में होता है।

अरस्तू ने महाकाव्य की शैली के समाख्यानात्मक रूप पर विशेष बल दिया। परवर्ती काव्य चिंतकों ने होमर की काव्य शैली अभिव्यंजना में प्रवाह, गरिमा, अलंकृति आदि को महाकाव्य के लिए उचित ठहराया। यद्यपि इनकी महत्ता पहले भी थी किन्तु काव्य में इनका सहज भावन ही मान्य था। आधुनिक महाकाव्य के विधान में शैली के इन विशिष्ट तत्वों को अनिवार्य माना गया। हरबर्ट रीड ने महाकाव्य की भाषा में लालित्य, भाव-सर्वेक्षण क्षमता तथा अभिव्यंजना शक्ति आदि का महत्व देते हुए उसे अति-व्याख्या से बचने को कहा।[१]

महाकाव्य में षटपदी छन्द के निर्वाह की रूढ़िवादी विचारधारा का खण्डन किया गया। महाकाव्य में षटपदी के स्थान पर अतुकान्त वृत्त के प्रयोग पर बल दिया गया।[२]

परवर्ती पाश्चात्य विचारकों ने महाकाव्य की औपचारिकता को महत्व न देकर उसके अनिवार्य तथ्यों पर अधिक बल दिया। काव्य रूढ़ियों की अवहेलना कर महाकाव्य के लिए हृदयग्राही सौन्दर्यवर्द्धक तत्वों को अनिवार्य बताया।

इस प्रकार महाकाव्य की रचना- विषयक मान्यताएं भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों की एक ही है केवल उनके प्रस्तुतीकरण का ढंग भिन्न है। महाकाव्य के प्रमुख तत्व दोनों देशों के एक समान है। महाकाव्य के कथानक तथा रूप सौष्ठव के लिए आवश्यक शिल्प उपकरणों की चर्चा भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने विशद रूप से की है। फिर भी भारतीय आचार्यों द्वारा प्रस्तुत तर्क एवं सिद्धान्त पाश्चात्यों की तुलना में अधिक व्यापक एवं सूक्ष्म है। दोनों देशों की महाकाव्य विषयक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में आलोच्य महाकाव्य की विवेचना अधिक सुकर होगी।

१- फार्म्स इन माडर्न पोइट्री ; हरबर्टरीड, पृ० ७२।

२- Finally Trissino is life Milton in making the unpopular plea that the continuity of blank verse suits the epic better than the interruption of rhyme.

The English Epic and its Back ground. E.M.W.Tillyard.p.225.

कवि प्रसाद का महाकाव्य : कामायनी :

आलोच्य कवि प्रसाद ने हिन्दी साहित्य में अपनी अद्वितीय काव्य प्रतिभा से समग्र काव्य रूपों को प्रस्तुत किया है परन्तु जिस विशिष्ट काव्य विधा की पुनर्निर्मिति एवं साज-सज्जा में वे सोत्साह संलग्न हुए, वह है महाकाव्य। इस काव्य रूप में उनकी अनुपमेय प्रतिभा दृष्टव्य है। प्रसाद जी में महाकाव्य के अपेक्षित गुणों का सहज संभावन हुआ था। जिससे इस क्षेत्र में उनकी तुलना महाकवि निराला भी नहीं कर सके। निराला की प्रबन्धात्मक प्रतिभा खण्डकाव्य की परिधि तक ही प्रसरित हो सकी और वे महाकाव्य जैसे वृहदाकार काव्य का निर्माण करने में असमर्थ रहे।

युग के केन्द्रीय भाव एवं जीवंत विश्वास से अनुप्रेरित तथा महाकाव्यो-चित गरिमा से युक्त कामायनी आधुनिक युग का उत्कृष्टतम महाकाव्य है। हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्द भावधारा के प्रवर्तक कवि प्रसाद की मौलिक दृष्टि होने के कारण कामायनी के अंतरंग तथा बहिरंग दोनों ही पक्ष स्वच्छंद काव्यकी भूमिका पर अधिष्ठित है। सामान्यतः इसी से महाकाव्य की शास्त्रीय रूढ़ियों से जकड़े हुए आलोचक कामायनी में छिपी विशद महाकाव्यात्मक अन्तर्योजना की उपेक्षा कर बैठते है और इसकी सफलता में संदेह करते हैं। कामायनी मानवता के धरातल पर रचित है। इसमें मानवीय संस्कृति और मानवीय भावनाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इन्हीं सब तत्वों से उत्प्रेरित हो महादेवी जी ने यह स्वीकार किया कि "प्रसाद जी की कामायनी महाकाव्यों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ती है, क्योंकि वह ऐसा महाकाव्य है जो ऐतिहासिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित है और सांकेतिक अर्थ में मानव-विकास का रूपक भी कहा जा सकता है। कल्याण भावना की प्रेरणा और समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण वह भारतीय परम्परा के अनुरूप है।[१] इस प्रकार कामायनी की सफलता और उत्कृष्टता सर्वमान्य है। वह अपने युग की अनुपम कृति है, इसमें संदेह नहीं।

१- कामायनी - एक परिचय (भूमिका- महादेवी वर्मा, पृ० ८) लेखक- गंगा प्रसाद पाँडे।

वस्तु-विन्यास : कामायनी की कथा भारतीय काव्य शास्त्र में निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों के अनुकूल इतिहास सम्मत तथा प्रख्यात है। उसकी प्रस्तुत कथा को कवि ने जीवन के शाश्वत तथ्यों से नियोजित कर अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति के माध्यम से इस प्रकार रूपान्तित किया है कि मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित होते हुए भी रोचक तथा सरस है। स्थूल रूप से कामायनी की निर्मिति जलप्लावन में बचे हुए एकाकी मनु की कथा को लेकर हुई है। जलप्लावन की यह घटना शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद, छान्दोग्य, उपनिषद्, विष्णु पुराण आदि में मिलती है। इतना ही नहीं, यह घटना मिस्र, बेबिलोन, असीरिया आदि के इतिहास में भी अपने ढंग से वर्णित है। अतएव कथा की ऐतिहासिकता और प्रख्यात होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं उठाया जा सकता।

महाकाव्य की अनन्य सिद्धियों से युक्त कामायनी की अतिरिक्त विशेषता उसका रूपकत्व है। ऐतिहासिक कथा को केवल महाकाव्यत्व प्रदान कर प्रसाद जी ने संतोष नहीं किया अपितु अप्रस्तुत रूप में भावना और बुद्धि को रूपक द्वारा एक सूत्र में आबद्ध करते हुए एक मौलिक कथा की रचना द्वारा हिन्दी साहित्य में नूतनता का समावेश भी किया। कवि के अनुसार "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत सम्मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमश: श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"[1] रूपक की व्याख्या करते हुए डा० नगेन्द्र ने बताया कि "रूपक से तात्पर्य एक ऐसी दिव्यर्थक कथा से है जिसमें किसी सैद्धांतिक अप्रस्तुतार्थ अथवा ध्वन्यार्थ का प्रस्तुत अर्थ पर अभेद आरोप रहता है।"[2] कामायनी की चरम परिणति डा० नगेन्द्र के इस कथन में ही निहित है। कामायनी का प्रस्तुत रूप ऐतिहासिक और अप्रस्तुत रूप मनोवैज्ञानिक है। जिसकी पुष्टि कवि ने इस कथन से की जा सकती है - "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।"[3] इसी भावना से उत्प्रेरित कवि ने घटनाक्रम में स्थूल तत्त्वों की अपेक्षा

१- कामायनी "आमुख", पृ० ७।

२- कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० ४२।

३- कामायनी "आमुख", पृ० ४।

सूक्ष्म मनोवृत्तियों की प्रगल्भता को विशेष महत्त्व दिया। मानस (मन) का ऐसा वास्तविक विश्लेषण और काव्यमय निरूपण हिन्दी में आठ शताब्दियों के बाद हुआ है।"[1] प्राय: इसी से तद्युगीन महाकाव्यों में कामायनी का विशेष महत्त्व है। कामायनी की कथा जहाँ एक ओर जलप्लावन के तदोपरान्त खिन्नमना मनु द्वारा देवों से भिन्न मानवों की एक विलक्षण सभ्यता को प्रतिष्ठित करती है वहीं दूसरी ओर मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क के संघर्ष में हृदय अर्थात् भावना की विजय दिखाकर चिरानन्द की प्राप्ति का प्रशस्त मार्ग भी बताती है। कामायनीकार ने आद्यन्त रूप से प्रस्तुत कथा के साथ अप्रस्तुत कथा का निर्वाह किया है और उसकी रक्षा हेतु प्रत्येक सर्गों के शीर्षक तथा विषय-वस्तु को भी मनोवृत्तियों के अनुकूल ढालने का प्रयास किया है। जिसमें कवि को अभूतपूर्व सफलता भी मिली है।

कामायनी की सम्पूर्ण कथा १५ सर्गों में विभाजित है और ये समस्त सर्ग त्रिवर्षक कथा की संरचना में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। इन सर्गों में मूल ऐतिहासिक कथा के साथ ही साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों को निरूपित करनेवाली मनोवैज्ञानिक कथा को भी व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता निहित है। चिंता, आशा और श्रद्धा जैसी वृत्तियों का कामायनी में बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक निरूपण हुआ है। नारी का सर्व सुलभ गुण लज्जा है जिसे मानवीकृत करने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। काम, वासना तथा लज्जा आदि अमूर्त भावों की मूर्त उद्भावना कवि की मौलिक कल्पना का प्रतिफलन है। कवि ने इनके मूर्त विधान में जिस जीवंत कला का परिचय दिया है, वह साधारण कवि की क्षमता से परे है। कामायनी के प्रमुख पात्र, घटना, स्थान आदि प्रतीकात्मक हैं जिनके कारण कथानक में रूपकत्व का निर्वाह काफी दूर तक हो सका है।

कामायनी में श्रद्धा और मनु की कथा आधिकारिक कथा है और इड़ा तथा सारस्वत प्रदेश की कथा प्रासंगिक है। ये दोनों कथाएं बहुत ही प्रांजल तथा पुष्ट हैं। इनके अतिरिक्त प्रसंगवशात् और भी कथाएं हैं जो कथान्विति में सहायक हुई हैं।

१- नन्द दुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० ८६।

कामायनी के इस कथानक में कवि ने कल्पित कथांशों का भी समावेश किया है जिनके दो प्रकार है। एक तो कुछ संशोधन द्वारा जैसे मनु की दस संतानों के स्थान पर एक संतान मानव की चर्चा हुई है। दूसरे, कुछ नूतन तथ्यों की उद्भावना द्वारा जैसे - श्रद्धा का मातृ-गृह, दिन-चर्या, तकली, पशुपालन, ऊन से पट्टी बुनना आदि जो काव्य में लावण्य की पुष्टि करते हैं। कामायनी का पूर्वार्द्ध तो पुराणों से गृहीत कथानक ही है किन्तु उत्तरार्द्ध अधिकांशत: कल्पना प्रसूत है। श्रद्धा का स्वप्न देखना, मनु को खोजने के लिए निकल पड़ना, मनु से पुन: मिलन, श्रद्धा और मनु की कैलाश यात्रा और सारस्वत इड़ा, मानव तथा नगरवासियों का भी कैलाश यात्रा पर निकल पड़ना आदि घटनाएं सर्वथा काल्पनिक हैं।

कामायनी एक सफल महाकाव्य है। इसमें कथावस्तु के विकास की विभिन्न सरणियों का समुचित संयोजन इसमें मिलता है। मनु की चिंताकुल स्थिति में आशा का संचार होना और तदोपरांत श्रद्धा का मिल जाना 'आरंभ' अवस्था है। श्रद्धा द्वारा प्रेरित होकर मनु का यज्ञादि कर्म में प्रवृत्त होना 'प्रयत्न' अवस्था है। मनु का श्रद्धा से अलग होकर इड़ा से संसर्ग स्थापित करना तथा सारस्वत प्रदेश पर राज्य करना 'प्राप्त्याशा' है। किंतु कामायनी में यह अंश बहुत सुनियोजित नहीं कहा जा सकता क्योंकि मनु के स्वनिर्मित झंझटों में फल प्राप्ति की विशेष आशा नहीं दृष्टिगोचर होती। मनु और श्रद्धा के पुन: मिलन तथा शिव के तांडव नृत्य की घटना 'नियताप्ति' है। और अंत में मनु का श्रद्धा के सहयोग से सामरस्यपूर्ण आनन्दोपलब्धि करना 'फलागम' है। इस प्रकार कामायनी में कार्यावस्थाओं का कुशल विधान हुआ है। इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता भारतीय तथा पाश्चात्य वस्तु शिल्प के आवश्यक तत्वों का सामंजस्यपूर्ण विधान है। पाश्चात्य त्रासदी की अंतस्थिति को छोड़कर अन्य समस्त स्थितियों का कलात्मक विन्यास कामायनी में उपलब्ध है। कथा का प्रारंभ मनु के हृदय की उद्विग्नता, वेदना और विकलता से होता है जिसे पाश्चात्य शैली की आरंभ अवस्था कहा जा सकता है। महत्वपूर्ण प्रलय विभीषिका को लेकर चिंतित मनु के वर्णन से कथा प्रारंभ की इस नूतन शैली को शुक्ल जी ने स्पष्टत: पाश्चात्य साहित्य की देन माना है। वहां पर इस पद्धति को अति प्रशंसनीय माना गया है।[1] मनु के हृदय में श्रद्धा के आगमन तथा सुखमय

१- चैम्बर्स इनसाइक्लोपीडिया, भाग ४, पृ० ३६६-६७।

कारणों का व्यतीत होना विकास अवस्था है। मनु और इड़ा का सम्बन्ध स्थापित होना तथा संघर्ष सर्ग में मानसिक तथा भौतिक संघर्ष की परिणति चरम सीमा है। मनु का आहत होकर मूर्छित होना तत्पश्चात् स्वप्न, संघर्ष और निर्वेद सर्ग की कथा निर्गति या उतार (Denoucment) है। यहाँ तक कथानक का विधान पाश्चात्य त्रासदी के ढंग पर हुआ है और ऐसा प्रतीत होता है कि कथा की परिसमाप्ति भी दुखान्त ही होगी किन्तु कथांत कवि ने सब का मिलन और सामरस्य की प्राप्ति कराकर भारतीय शैली के अनुसार कर दिया। इस प्रकार पाश्चात्य शैली का अनुसरण करनेवाली कामायनी की कथा का अंत भारतीय महाकाव्यों के अनुरूप होता है। कामायनी की कथा में सम्बन्ध युक्त अन्विति का क्रम अनवरत बना रहता है। उसमें कार्यान्विति की आदि, मध्य और अवसान स्थितियों का भी कुशल संयोजन हुआ है।

कामायनी में द्वन्द्व तथा संघर्ष की चरम परिणति मिलती है। यह संघर्ष बाह्य होने के साथ ही आन्तरिक भी है। बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक संघर्ष के विधान में कवि को अधिक सफलता मिली है। कवि ने महाकाव्य का आरंभ ही चिन्ताकुल मनु की मनःस्थितियों के उत्थान-पतन से किया है। बीच-बीच में नायक, नायिका के मानसिक द्वन्द्व का विधान कथानक की गम्भीरता तथा सरसता के हेतु किया गया है। इसके अतिरिक्त कवि ने एक पूरे सर्ग में बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष को ही वर्णित किया है और उस सर्ग का नाम भी "संघर्ष" रखा है।

कामायनी में प्रलय एवं मानव विकास की जिस जीवंत कथा को व्यक्त किया गया है उसमें एक गति है, वेग है, प्रवाह है। इस कथा को कवि ने जीवन के भव्य एवं विराट तथा कोमल एवं करूण चित्रणों के मध्य प्रस्तुत किया है। अपने ढंग का यह अकेला महाकाव्य है जो जीवन तथा जगत की समग्रता को अपने में समेटे है।" सामासिक रूप से विचार करने पर कामायनी के कथानक में अपूर्व आयाम है। वह केवल एक महापुरुष की जीवन-गाथा नहीं है, एक राजवंश का वृत्त वर्णन मात्र नहीं है, एक युग या राष्ट्र की कथा नहीं है, वह तो सम्पूर्ण मानवता के विकास की गाथा है- अथ से इति तक। अन्य महाकाव्य जहाँ मानव सभ्यता के खण्डचित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं, वहाँ कामायनीकार ने उनका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण प्रयास किया है। यह प्रयास पूर्ण नहीं

हुआ किन्तु इसका परिधि विस्तार इतना अधिक है कि अपनी अपूर्णता में भी यह अद्भुत असामान्य है।"[1]

कामायनी की महती विशेषता इसके कथानक में दो कथाओं की अन्विति है। कामायनी भारतीय काव्य-प्रांगण के उद्यान में विदेशी पुष्प के पल्लवित होने का अनुपम उदाहरण है। कामायनी की कथा भारतीय पृष्ठभूमि पर विदेशीयता का बाना पहनकर उपस्थित हुई है। परन्तु इसमें समग्रता और अखण्डता है जिससे वह (कथा) मेघ की प्रबंधकारी स्थिति से दूर अनन्त की सुचिंतित भावभूमि पर अधिष्ठित है। इसका वस्तु-विन्यास कामायनीकार की वैयक्तिक अनुभूति का प्रतिफलन है। कामायनी को कथा प्रधान महाकाव्य न कहकर यदि भाव प्रधान या विचार प्रधान महाकाव्य कहा जाय तो अधिक समीचीन होगा। भाव प्रधान महाकाव्य होने पर भी कामायनी की कथान्विति में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आया। यही वह कारण है कि परम्परागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नये युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई हिचक नहीं होती।[2]

शिल्प विन्यास : कामायनी की शैली महाकाव्योचित गरिमा, भव्यता तथा उदात्तता से युक्त है। इसकी शैली महाकाव्यात्मक होते हुए भी रूपकात्मक है जो इसे अन्य तद्युगीन महाकाव्यों से पृथक करती है। कामायनी में प्राप्त भाव प्रवणता और अन्तर्वृत्ति-निरूपण में छायावाद की विकसित प्रगीतात्मक शैली भी मुखरित हो उठी है। वस्तुतः यह महाकाव्य वस्तुपरक न होकर भावपरक है जिससे इसकी शैली भी विवरणात्मक न होकर व्यंजनात्मक है। इसमें महाकाव्य की वर्णनात्मक शैली का सर्वथा अभाव है कारण "इतिवृत्त-शैली के प्रति प्रसाद के मन में एक विचित्र वितृष्णा रही है। कामायनी में कथा का स्तर कल्पना विलास, दार्शनिक गरिमा और रागात्मक ऐश्वर्य के कारण सामान्य से इतना भिन्न रहा है कि वृत्त-वर्णन की ऋजुता उस समृद्धि को वहन नहीं कर सकती थी।"[3] कामायनी की रचना स्वच्छन्द काव्य की भूमिका पर मानव मन की अन्तर्वृत्तियों को लेकर हुई है

१- डा० नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० १६।
२- नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ८०।
३- डा० नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० २२।

जिससे स्वच्छन्दतावादी तथा मनोवैज्ञानिक शैली का भी इसमें समावेश हो गया है। कामायनी में भावात्मक , लाक्षणिक, चित्रात्मक, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक, प्रगीतात्मक तथा महाकाव्यात्मक आदि शैलियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह विविध शैलियों के सम्मिश्रण से निर्मित एक ऐसा महाकाव्य है जो अपने में पूर्ण तथा अनुपमेय है। कामायनी में प्रयुक्त विविध शैलियां एकाकार होकर इसको महाकाव्यत्व प्रदान करती है।

भाषा : कामायनी की भाषा महाकाव्योचित है। लाक्षणिकता ध्वन्यात्मकता सौन्दर्यमय प्रतीक विधान आदि इसके सहज गुण है। इसकी भाषा में नए वाक्य-विन्यास एवं नवीन शब्दों की वह भंगिमा निहित है जो आभ्यंतर के वर्णनों के सर्वथा अनुकूल है। कामायनी की भाषा. विषय तथा भावना के अनुरूप भव्य, उदात्त,गंभीर, मधुर, जटिल, सरल, मसृण, सुकोमल तथा स्वाभाविक बन पड़ी है। इसकी भाषा हिमालय के विराट सौन्दर्य प्रलय की भीषण घटना, सारस्वत प्रदेश के विद्रोह तथा शिव के तांडव नृत्य जैसे भव्य एवं विशाल चित्रों को मूर्तमान करने के साथ ही मनु और श्रद्धा के संयोग चित्रों को तथा त्यागमयी ममता की मूर्ति श्रद्धा के सुकुमार एवं मधुर भावों को भी व्यक्त करने में सफल हुई है। इसकी भाषा सरल, सुपुष्ट तथा समर्थ है।

कामायनी की भाषा में शब्दों के भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति निहित है जिसके प्रतिफलन स्वरूप इसकी शब्दावली प्रौढ़ तथा सशक्त प्रतीत होती है। इसमें तत्सम्, तद्भव और देशज शब्दों के अतिरिक्त यत्र-तत्र कवि के स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। कामायनी में विशिष्ट कोटि के नादात्मक तथा ध्वन्यात्मक शब्दों का कलात्मक विन्यास मिलता है। इसमें प्रयुक्त विशेषण वाचक शब्द - विषाद के साथ अलस, लहर के साथ अधीर और अलकों के साथ उलझी आदि इसके सौन्दर्य विधायक तत्व कहे जा सकते हैं। कामायनी में शब्दार्थों की कलात्मक विच्छित्ति अवलोकनीय है।

कामायनी को संवेदनशील तथा बोधगम्य बनाने के ध्येय से लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है जिनमें लोकोक्तियां कम मुहावरे

अधिक मिलेगी । भावाभिव्यक्ति में समर्थ कामायनी की भाषा व्याकरण संबंधी त्रुटियों से मुक्त नहीं हो सकी ।[1] किन्तु ये त्रुटियां कामायनी के कलात्मक रूप-विन्यास के सम्मुख नगण्य तथा महत्वहीन है । गहन अध्ययन ,मनन तथा चिंतन के पश्चात् विन्यस्त कामायनी की भाषा शब्दार्थों के नूतन तथा सौन्दर्यमय कलात्मक विधान में पूर्णत: समर्थ है । चित्रात्मकता , प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता आदि का सहज भावन कामायनी की विशेषता है ।

चित्रात्मकता : चित्रमयता कामायनी का संभाव्य गुण है । अमूर्त एवं सूक्ष्म भावों को चित्रमय रूप प्रदान कर उन्हें मानस पटल पर मूर्तिमन्त करने में कामायनीकार को विशेष सफलता मिली है । कामायनी के कल्पित चित्र दुरारूढ़ न होकर सामीप्य के हैं । प्रकृति के भव्य, विराट, उग्र, मसृण तथा कोमल रूपों के चित्रांकन में प्रसाद जी की कलात्मक क्षमता का स्पष्ट बोध होता है । प्रकृति ही नहीं मानवीय वृत्तियों को भी कवि ने चित्रांकित किया है -

गिर रहीं पलकें झुकी थी नासिका की नोक
भ्रूलता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदंब सा था भरा गदगद बोल ।[2]

इसी प्रकार की अनेक मानवीय वृत्तियों को चित्रांकित करने की अपूर्व शक्ति प्रसाद जी ने अर्जित की थी जिसके अनेकों उदाहरणों से प्रस्तुत महाकाव्य भरा पड़ा है ।

प्रतीकात्मकता : कामायनी की प्रतीक योजना सफल तथा सुपुष्ट है । इसका सर्वाधिक महत्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि कामायनी का समग्र रूप स्वयं में

१- शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय ।।
प्रसाद, कामायनी (श्रद्धा-सर्ग) पृ० ५७ ।

२- वही (वासना सर्ग) पृ० १०२ ।

प्रतीकात्मक है। इसमें संगठित प्रत्येक घटना, पात्र तथा दृश्य आदि प्रतीकात्मक है। प्रतीक शैली के माध्यम से कवि ने सांकेतिक अर्थ की व्यंजना में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। कामायनी में प्रयुक्त प्रतीकों के दो प्रमुख रूप उपलब्ध हैं - एक तो दार्शनिक प्रतीक दूसरा साहित्यिक प्रतीक। इन दो प्रमुख प्रकारों के अतिरिक्त तीसरा महत्व-पूर्ण प्रकार उनके स्वानिर्मित प्रतीकों का भी है। जिनके समन्वित प्रयोग से कामायनी की भावस्फीति तथा साहित्यिक रूप की कलात्मक अभिव्यक्ति अत्यधिक सुन्दर बन पड़ी है।

लाक्षणिकता : कामायनी में अभिधा की अपेक्षा लक्षणा का प्रयोग बहुलता से हुआ है। इसमें लक्षणा के विभिन्न रूप उपलब्ध हैं "वह सारस्वत नगर पड़ा था क्षुब्ध मलीन कुछ मौन बना"[1] इस पंक्ति में सारस्वत नगर से अभिप्राय सारस्वत नगर वासियों से है जिसमें रूढ़ि लक्षणा है। इसके अतिरिक्त प्रयोजनवती-लक्षणा का सुन्दर विन्यास निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :-

> नारी का वह हृदय ! हृदय में सुधासिन्धु लहरें लेता,
> बाड़व-ज्वलन उसी में जलकर कंचन सा जल रंग देता।[2]

यहाँ मुख्यार्थ की बाधा है। सुधा का सिन्धु नहीं होता और और ऐसा हो भी तो उसका हृदय में लहरें लेना तो असंभव ही है। दूसरे हृदय में बड़वाग्नि की स्थिति भी संभव नहीं हो सकती। अतएव इसको लाक्षणिक प्रयोग ही कहा जायगा। इन शब्दों का लक्ष्यार्थ यह है कि नारी हृदय गंभीर और सरस होता है फिर भी उसमें दुख की बड़वाग्नि लगती है। इस दृष्टान्त में प्रयोजनवती लक्षणा के साथ ही सारोपा लक्षणा का गुण रूपक अलंकार भी मिल जाता है जिससे इसको प्रयोजनवती सारोपा लक्षणा का भी उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। इसी पद योजना में ढूंढने पर उपमा, उपमेय के सादृश्य तथा लक्षण साम्य के कारण गौणी और लक्षण लक्षणा का रूप भी मिल जाता है। अतएव इसको हम "प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षण लक्षणा" भी कह सकते हैं इस प्रकार

1- प्रसाद : कामायनी (निर्वेद सर्ग) पृ० २१३।

2- वही, पृ० २१५।

कामायनी महाकाव्य की अन्यतम विशेषता उसका लाक्षणिक विधान भी है। इसके आश्रय से कवि ने अपनी बात को बहुत ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

ध्वन्यात्मकता : संवेदनशील कवि प्रसाद ने कामायनी की भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग भी किया है। जिसके प्रतिफलन स्वरूप उनकी भाषा में अनुस्यूत शब्दार्थ सर्वसाधारण के मध्य प्रयुक्त शब्दार्थों से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं। कामायनी में वस्तु-ध्वनि, रस ध्वनि और अलंकार ध्वनि के अप्रतिम उदाहरण मिलते हैं। रूपक और उपमा अलंकार के माध्यम से नारी के आत्मोत्सर्ग तथा विश्वास आदि को निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्वनित किया गया है -

क्या कहती हो ठहरो नारी संकल्प अश्रु जल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने से सपने।[१]

यहाँ नारी, संकल्प और दान शब्दों से व्यंग्यार्थ ध्वनित हो रहा है अतएव यह शब्दशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि का सफल उदाहरण कहीं। इसके अतिरिक्त वस्तु ध्वनि और रस ध्वनि के भी उत्कृष्ट उदाहरण कामायनी में बहुलता से मिलेंगे।

वक्रताएं : कामायनी में उक्ति की वक्रता का निराला ढंग अवलोकनीय है। इसमें वक्रता का जो सुनियोजित विन्यास हुआ है उसका अपना स्वतंत्र लावण्य है। अनुभूति की भंगिमा को साकार रूप प्रदान करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। कवि ने कामायनी में वक्रोक्ति के विभिन्न रूपों को पद्यबद्ध किया है। उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत[२] में यौवन के साथ उपेक्षामय का विशेषण का प्रयोग कर कवि ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि मनु अपने यौवन की ओर से खिन्न हो चुके थे या उनका यौवन समस्त संसार की उपेक्षा करने की सामर्थ्य रखता था। कवि ने यहाँ उपेक्षामय यौवन कहकर पद्ययोजना में लावण्य की सृष्टि का प्रयास किया है।

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० ११४।
२- वही, पृ० १२।

अलंकरण : कामायनी को श्री समृद्धि सम्पन्न बनाने में प्रसाद जी ने अलंकरण कला का भी आश्रय लिया है। इसमें अनेकानेक पारम्परिक तथा रूढ़िमुक्त नवीन अलंकारों की योजना हुई है किन्तु नूतन अलंकारों का जो विधान हुआ है वह चमत्कार सृष्टि की भावना से नहीं अपितु वर्ण्य वस्तु को सहज ग्राह्य तथा भावसंवर्द्धक बनाने की दृष्टि से। प्रसाद जी ने पारम्परिक अलंकारों का विधान भी इस ढंग से किया है जिसमें नूतनता का स्वतः समावेश हो गया है। ऐसे अलंकारों में उनकी मौलिकता सुरक्षित है, यथा -

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग।[1]

इन पंक्तियों में परम्परागत उत्प्रेक्षा अलंकार का कलात्मक रूप द्रष्टव्य है। उपमान की सूक्ष्मता, सजीवता और मादकता में कवि की सौन्दर्यान्वेषिणी प्रतिभा झलकती है। यहाँ श्रद्धा के रूप वर्णन में केवल उसके रूप लावण्य का ही बोध नहीं होता बल्कि समस्त व्यक्तित्व भी आभासित होने लगता है। श्रद्धा के शारीरिक गठन हाव-भाव, रूप-सौन्दर्य तथा परिधान आदि का समुचित वर्णन इस पद में हुआ है। अतएव प्राचीनता में नवीनता को समाविष्ट करते हुए प्रसाद जी ने कामायनी की रचना की है।

कामायनी में परम्परागत अलंकारों के साथ ही पाश्चात्य नूतन अलंकारों की भी सृष्टि हुई है। इसकी साज-सज्जा के लिए कवि ने नवीन आभरण भी जुटाए हैं। कामायनी में प्रभावोत्पादकता तथा रमणीयता के हेतु पाश्चात्य अलंकार मानवीकरण, विशेषण- विपर्यय, विरोधाभास, ध्वन्यार्थ व्यंजना, विस्तारणा आदि की रचना हुई है। इसमें लानजाइनस द्वारा निरूपित उदात्त तत्व के पोषक अलंकार विस्तारणा का समावेश काम, वासना, लज्जा के वर्णन में तथा त्रिपुर, रहस्य, आनन्द सर्ग के जड़ चेतन के विस्तृत वर्णन में हुआ है। प्रसाद की अद्वितीय कला का बोध सूक्ष्म तथा अमूर्त अशरीरी वृत्तियों को मानवीकृत करने में भी होता है। मानवी-

---

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० ५४।

२- वही, पृ० १०८।

करण का प्रयोग द्रष्टव्य है -

संध्या की लाली में हँसती उसका ही आश्रय लेती सी
छाया प्रतिमा गुनगुना उठी श्रद्धा का उत्तर देती सी।[१]

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण कामायनी में मिलते हैं। मानवीकरण की ही भांति विरोधाभास का भी प्रयोग कामायनी में अधिकता से हुआ है जिनकी विशेषता उनके चमत्कारजन्य कलात्मक रूप में निहित न होकर भावोत्पत्ति तथा प्रभावोत्पादकता में है। इसके अतिरिक्त स्वभावोक्ति या सम्मोहन के उदाहरण भी मनु तथा श्रद्धा के संवाद में मिलते हैं। कामायनी के अलंकारों के अध्ययन से यह निश्चित हो जाता है कि इसमें प्रयुक्त अलंकार अयत्नज हैं। कामायनीकार के लिए ये साध्य न होकर साधनमात्र हैं।

छन्द-विधान : कामायनी का छन्द विधान कवि ने अपनी सुरुचि तथा भावना के अनुकूल रूढ़िगत संस्कारों से हटकर यति-गति, गुरु-लघु एवं विराम-चिन्हों में यथोचित परिवर्तन करते हुए किया है। कामायनी के छन्द-मूलत: शास्त्रीय हैं पर उनके विन्यास में कवि ने जो स्वतंत्रता बरती है उसके प्रतिफलन स्वरूप नूतनता का स्वत: समावेश हो गया है। उसके प्रथम सर्ग का प्रथम पद वीर छन्द में रचित है। वैसे, चिंता सर्ग में ताटंक छन्द भी प्रयुक्त है। आशा, स्वप्न तथा निर्वेद सर्गों में भी ताटंक छन्द प्रयुक्त है किन्तु इसमें छन्द के भावानुकूल होने से प्रयोग में वैविध्य आ गया है। ताटंक छन्द के अनेक रूप इसमें मिलते हैं- एक तो वह जिसमें शास्त्रीय छन्द का यथावत् प्रयोग हुआ है, दूसरा वह, जिसकी प्रथम द्वितीय और चतुर्थ पंक्तियों में अनुप्रास एवं तुक निर्वाह हुआ है (स्वप्न सर्ग) और तीसरा जिसकी प्रथम और द्वितीय पंक्ति का क्रम विधान एक-सा है तथा तृतीय और चतुर्थ पंक्तियों का एक-सा। इस छन्द के लय-निपात तथा तुक योजना में कवि ने अपनी मौलिकता का स्पष्ट परिचय दिया है, इसका उदाहरण निर्वेद सर्ग है। श्रद्धा, काम तथा लज्जा सर्ग की रचना श्रृंगार छन्द में हुई है। श्रद्धा सर्ग के कुछ छन्दों में अन्त्यक्रम परिवर्तन भी हुआ है। लघु को गुरु बना दिया गया है पर ऐसा कम ही हुआ है। वासना सर्ग की रचना रूपमाला

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० ७८।

छन्द में और कर्म सर्ग की रचना सार छन्द में हुई है । संघर्ष सर्ग में रोलाछन्द और निर्वेद सर्ग में सरस छन्द की योजना मिलती है । ईर्ष्या तथा दर्शन सर्ग का विधान पादाकुलक तथा पद्धरि छन्द के योग से हुआ है यद्यपि दर्शन सर्ग की रचना कुछ विद्वान पद्धरि तथा चौपाई के मिश्रण से मानते हैं ।[1] प्रसाद विरचित नूतन छन्दों का कलात्मक रूप इड़ा, रहस्य तथा दर्शन सर्ग में दृष्टव्य है । इड़ा सर्ग में विषय तथा भाव के अनुरूप पदशैली का प्रयोग हुआ है और यह पद शैली पारम्परिक ढंग की न होकर तद्युगीन साहित्यिक भावना से उत्प्रेरित है । इसकी विशिष्टता के आधार पर इसे इड़ा छन्द कहना समीचीन होगा । आनन्द सर्ग की रचना जिस नूतन छन्द में हुई है । उसी २८ मात्राओं के छन्द में आंसू की रचना भी हुई है । इस छन्द को आनन्द छन्द के नाम से अभिहित किया जाता है । इस प्रकार कामायनी में शास्त्रीय तथा नूतन छन्दों का कलात्मक विन्यास हुआ । कामायनी की मधुरता, सुकुमारता, भव्यता तथा उदात्तता की सुरक्षा में ये सभी छन्द पूर्णतः सफल हुए हैं ।

कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करते समय उसमें अनुस्यूत महाकाव्य के परंपरागत लक्षणों से अवगत हो लेना आवश्यक है । यद्यपि कामायनी नए युग का महाकाव्य है जिससे उसमें पारम्परिक तत्वों का अभाव है फिर भी एक महान कृति होने के नाते कुछ महत्वपूर्ण परंपरागत तत्वों का इसमें सहज समावेश हो गया है ।

(१) कामायनी की कथा वस्तु ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होने के कारण शास्त्रानुमोदित है ।

(२) प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण उसकी नायिका कामगोत्रजा श्रद्धा के केन्द्रीयत्व में हुआ है । अतः रचना के नामकरण में कवि का रूढ़िगत संस्कार स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

(३) कामायनी का सर्ग-विभाजन पारम्परिक है सर्गों का आकार भी न अधिक लघु है और न अधिक दीर्घ । सर्गान्त में भावी कथा की सूचना कतिपय सर्गों में दी गई है किन्तु इस सैद्धांतिक तत्व का पालन नियमतः प्रत्येक सर्गों में नहीं हुआ है ।

१- डा० पुत्तूलाल : आधुनिक हिन्दी काव्य की छन्द योजना, पृ० ३३५ ।

(४) एक सर्ग की रचना एक ही छन्द में हुई है। सर्गान्त में छन्द परिवर्तन के द्वारा भावी सर्ग की सूचना अवश्य नहीं दी गई है।

(५) कथानक में अवान्तर कथाओं का समावेश हुआ है।

(६) कामायनी निरुद्देश्य न होकर उद्देश्यपूर्ण महाकाव्य है।

(७) इस महाकाव्य में विविध वर्णन भी उपलब्ध है। राज्य, नगर तथा प्रकृति के विविध वर्णन मिलते हैं। प्रकृति वर्णन विस्तार से हुआ है, कारण, सम्पूर्ण काव्य ही प्रकृति के प्रांगण में संग्रथित है। सामाजिक जीवन के विस्तार पूर्ण वर्णन का अवश्य अभाव है।

कामायनी में अनुस्यूत महाकाव्य के इन रूढ़िगत तत्वों से परिचित होने के पश्चात उसके चयन, परिष्कार प्रस्तुतीकरण तथा नूतन संयोजन से अवगत होना भी आवश्यक है।

१- कामायनीकार वैवस्वन्तर के प्रवर्तक मनु की पौराणिक कथा को सामयिक परिवेश एवं युगधर्म में रखकर इस भांति प्रस्तुत किया है कि उसमें उनकी मौलिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यूं भी इस कथा की ओर प्रसाद जी से पहले किसी कवि का ध्यान नहीं गया था। हिन्दी साहित्य में प्रसाद जी ने सर्वप्रथम इस कथा को काव्यबद्ध किया है। साहित्य में प्रसाद की कामायनी की वही स्थिति है जो वाल्मीकि के `रामायण` और कालिदास के `रघुवंश` की है।

२- कामायनी की महत्वपूर्ण विशेषता उसके सम्पूर्ण कथानक का रूपकत्व है। कामायनी की इस द्विअर्थक कथा का आधार लोग `एलिगरी` से मानते हैं। इस दृष्टि कोण से पाश्चात्य साहित्य में तो कतिपय ऐसे उदाहरण मिल भी जाते हैं किन्तु हिन्दी साहित्य में यह अकेला उदाहरण है। यद्यपि जायसी के `पदमावत` में भी रूपकतत्व है किन्तु उसमें वह जीवतंता तथा सजीवता नहीं मिल पाती जो कामायनी में उपलब्ध है। निराला का `तुलसीदास` अवश्य कामायनी के समकक्ष रखा जाता है किन्तु वह भी महाकाव्य न होकर खण्ड काव्य मात्र है। इस प्रकार कामायनी का वैदिक रूपकत्व अद्भुत ,असामान्य तथा सर्वश्रेष्ठ है।

३- कामायनी की अतिरिक्त विशेषता उसकी मनोवैज्ञानिकता है। यूं तो अनेक महाकाव्य मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित मिलेंगे किन्तु इसमें कवि ने अन्तः स्तल की सूक्ष्म मनोवृत्तियों का जो स्पष्ट चित्रांकन किया है वह अन्य रचनाओं में प्राप्त कर सकना असंभव है। कामायनीकार ने घटनाओं को मानसिक धरातल पर व्यक्त किया है। घटनाएं मन में घटित होती हैं किन्तु साकार रूप से दृश्य प्रतीत होती हैं। नटेश का नृत्य तथा लज्जा, वासना आदि मन की अमूर्त स्थितियां हैं जिन्हें कवि ने एक सूत्र में आबद्ध कर मनोवैज्ञानिक कथा का रूप प्रदान किया है।

४- कामायनी का कथा संघटन भारतीय शैली की भांति न होकर पाश्चात्य शैली की कार्यान्विति के अनुरूप है और इसे हिन्दी साहित्य में एक अभिनव प्रयोग ही कहा जाएगा।

५- कामायनी का शिल्प विधान सर्वथा नूतन है। अभिव्यंजना के नूतन प्रसाधन - चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, उक्ति की वक्रता, अप्रस्तुत योजना, अमूर्त विधान, छन्दयोजना आदि कामायनी की नव्य कला के परिचायक हैं।

६- कामायनी की नूतनता उसके प्रगीतात्मक रूप में भी निहित है। महाकाव्य जैसी विशद रचना में प्रगीत तत्वों का संगुम्फन आश्चर्यजनक ही नहीं प्रशंसनीय है।

इन महत्वपूर्ण विशेषताओं के साथ ही कामायनी की एक और मुख्य उपलब्धि है - काव्य में युग परिवेश की व्यंजना। इस आणविक युग में महाकवि प्रसाद ने कामायनी का सृजन दार्शनिक पीठिका पर करके तद्युगीन स्थितियों को बहुत ही सहजता से सुलझाया है। आज के वैज्ञानिक युग में प्रसरित कोरी बुद्धिवादी सभ्यता आनन्द विधायिनी नहीं हो सकती, इस भावना के पोषक कवि ने मन के दोनों पक्ष बुद्धि और हृदय, धर्म और कर्म तथा विज्ञान और संस्कृति के सामंजस्य पर विशेष बल देते हुए यह सिद्ध करना चाहा कि बुद्धि और हृदय के समन्वय से ही मानव सभ्यता का उत्तरोत्तर उन्नतिशील विकास संभव हो सकता है। कवि ने सर्वप्रथम इस महाकाव्य में आध्यात्मिक और व्यावहारिक तथ्यों के बीच संतुलन स्थापित करने की चेष्टा की है।

इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए मानवीय वस्तुस्थिति से परिचय रखनेवाली जिस मर्मभेदिनी दृष्टि की आवश्यकता है, वह प्रसाद जी को प्राप्त थी। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से शरीर, मन और आत्मा, कर्म, भावना और बुद्धि, क्षर, अक्षर और उत्तम तत्वों को सुसंगठित कर दिया है। कहीं कहीं उन्होंने इन तीनों तत्वों के भेद को मिटाकर इन्हें पर्यायवाची भी बना दिया है।[1]

कामायनी में सामयिक परिवेश, यथार्थता, प्रसंगानुकूलता, औचित्य अन्तः प्रकृति, चिरन्तन मूल्य, सजीवता तथा जीवतंता आदि का सहज समावेश दृष्टव्य है। कामायनी में बाह्य जगत की अपेक्षा वस्तु एवं भाव सत्य की आन्तरिक विवृत्ति पर अधिक बल दिया गया है। अतएव उसके महाकाव्यत्व की परख केवल रूढ़िवादी शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर न करके यदि भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधारा की समन्विति के आधार- तुला पर की जाय तो यह अपने ढंग का अनूठा महाकाव्य सिद्ध होगा। कामायनी में पाश्चात्य शैली के भावन को देखकर या उसकी नूतनता से अभिभूत होकर प्रायः विद्वान इसके महाकाव्यत्व पर संदेह करने लगते हैं पर वे इस महाकाव्य में अन्तर्भुक्त निरन्तर प्रवाह- मान मानव जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति तथा भारतीय आत्मा को, जो परिवेश के क्रमिक परिवर्तन के साथ नये संदर्भ में व्यक्त हुई है विस्मृत कर देते हैं। अतः यह निश्चित है कि कामायनी के महाकाव्य के विषय में सन्देह करनेवाले वे ही लोग हो सकते हैं जो या तो महाकाव्य की शास्त्रीय रूढ़ियों को दृढ़तापूर्वक पकड़कर चलनेवाले होंगे या जिन्हें कामायनी में विशद काव्य की अन्तर्योजना और समष्टि रूप में कोई समन्वित प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता होगा।[2]

कामायनी की आत्मा भारतीय है तथा आकृति या बाह्यांग विदेशी है जिससे इसका स्वरूप तद्युगीन अन्य महाकाव्यों से भिन्न प्रोद्भासित होता है। इसमें मानव जाति के चिरंतन मूल्यों को विश्व कल्याण की आनन्दविधायनी सामरस्य भावना से सवंलित कर इस भांति प्रस्तुत किया गया है जिसमें जाति-पांति, द्वैत- अद्वैत, अपने - पराये का तनिक भी भान नहीं होता और जड़-चेतन समरस होकर एक

१- नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ५८।

२- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६६३।

प्रतीत होते हैं। इस नैतिक भावना को नयी भंगिमा से दीपित कर कवि ने कामायनी को राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय महाकाव्य की श्रेणी में पहुंचा दिया है। " वर्तमान हिन्दी साहित्य जगत में प्रथम बार एक ऐसा काव्य ग्रंथ प्रकाशित हुआ है जो विश्व काव्य कहे जाने की विशिष्टता रखता है।"[1] श्रेष्ठ महाकाव्य के समस्त प्रतिमानों का सौन्दर्यपूर्ण विनियोग कामायनी की विशिष्टता है। यह कवि प्रसाद का गौरव ग्रंथ है, हिन्दी में ऐसा दूसरा काव्य नहीं मिलेगा।

१- पं० इलाचन्द्र जोशी : कवि प्रसाद की काव्य साधना , पृ० ३५७ ।

अध्याय - ५ : काव्य-भाषा

(क) स्वरूप और प्रकृति

(ख) प्रसाद और निराला की काव्य-भाषा

काव्य - भाषा

(क) स्वरूप और प्रकृति : काव्य-शिल्प का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है - काव्य-भाषा। कवि मानसी सृष्टि को रूप प्रदान करनेवाली काव्य-भाषा का स्वरूप सामान्य रूप से व्यवहृत भाषा से भिन्न असामान्य तथा कलात्मक होता है। प्राचीन आचार्यों ने इस विशिष्ट भाषा का निरूपण स्वाभावोक्ति[1] (वस्तु का यथावत् या नैसर्गिक रूप में वर्णन) और अतिशयोक्ति[2] (लोक सीमा का अतिक्रमण करनेवाली उक्ति) कहकर किया है।

पाश्चात्य विचारक अरस्तू ने काव्यभाषा को कवि का असामान्य प्रयोग बताया है।[3] पाल्वेलरी ने सामान्य जनभाषा से भिन्न कलात्मक भाषा को काव्य-भाषा की संज्ञा से अभिहित किया है।[4] इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने भी कवि कर्म में भाषा की महत्ता पर बल देते हुए उसके कलात्मक रूप का समर्थन किया है। कवि से प्रतिपादित अर्थ और संवेदन का योग ही काव्य-भाषा है। यहाँ भी काव्य-भाषा को कवि के भावों तथा विचारों के संप्रेषण का सशक्त माध्यम माना गया है।

काव्य के संप्रेषणीय तत्व (अनुभव) को कलात्मक शब्दों के सुनियोजित विधान के माध्यम से मूर्त किया जाता है जिसे कवि अपनी अप्रतिम काव्य प्रतिभा से सजीवता प्रदान करता है। "कवि भाषा का सृष्टा कहलाता है। काव्य में भावोद्बोधक नव-नव शब्दों के प्रयोग के कारण वह भाषा का प्रचारक भी है। भावाभिव्यक्ति के लिए न तो समासयुक्त भाषा की, न तो कठिन भाषा की और न तो सालंकार भाषा की आवश्यकता है। हमारे शब्द शक्तिशाली अवश्य हों जो भावों को हृदयंगम करा सकें और प्रभाव डाल सकें।"[5] काव्य-भाषा का स्वरूप बहुत कुछ कवि कर्म पर निर्भर करता है। कवि की अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के कारण काव्य-भाषा का रूप भी परिवर्तित हो जाता है। "रूप योजना व्यक्तिगत होती है, वह कवि के वैयक्तिक मानस से संचालित है, पर वाणी की शक्ति उस रूप-सत्ता को सार्वजनिक बनाती है और उसमें ऐसे तत्व की प्रतिष्ठा

१- दण्डी : काव्यादर्श, ३।१३

२- भामह : काव्यालंकार, ३।२१

३- अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० ४४

४- पाल्वेलरी कृत 'द आर्ट आफ़ पोइट्री' का अनुवाद, पृ० ७७२।

५- रामदीन मिश्र : काव्यशास्त्र में अप्रस्तुत योजना, पृ० ४१।

रहती है जो काव्य को सार्वजनिक आह्लाद का विषय बना देता है । इस प्रकार कल्पना को प्रेषणीयता प्राप्त होती है और कवि का अन्तःसौन्दर्य वाणी का परिधान पहनकर अपूर्व रमणीय बन जाता है ।"[1] किन्तु इस वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है ।[2]

काव्य-भाषा विशिष्ट अवयवों का एक संश्लिष्ट रूप है जो कवि के भाव-व्यापारों तथा तीव्रतर अनुभूतियों को ओजपूर्ण ढंग से अंकित करता है । प्रसाद का कथन है "अभिव्यक्ति का यह निरालापन अपना स्वतन्त्र लावण्य रखता है ।"[3] कारण, यह कवि की संवेदनाओं का मूर्त रूप है साथ ही कवि की भावात्मक तथा कलात्मक प्रक्रिया का प्रतिफलन है ।

अदृश्य भावों को शब्दों के माध्यम से साहित्यिक उपकरणों के सांचे में तद्वत् रूपायित करनेवाली भाषा को निराला जी ने अलंकार-लेश रहित, स्नेहहीन, शून्य विशेषणोंवाली नग्न नीलिमा भी व्यक्त बताया है जो आज भी वेदों में सुरक्षित है ।[4] निराला ने इन विशिष्टताओं से युक्त काव्य-भाषा को स्पष्टतः भावानुगामिनी कहा है।[5]

काव्य-भाषा और सर्व सामान्य-भाषा में अंतर है । काव्यभाषा के स्वरूप को बोधगम्य बनाने के लिए यह अंतर समझ लेना उचित होगा ।

काव्य-भाषा और सामान्य-भाषा में अंतर

भाषा शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ व्यक्त वाणी (व्यक्तायां वाचि) से लिया जाता है। प्रत्येक युग में इस व्यक्त वाणी(भाषा) के दो रूप रहे हैं। एक, हाट बाजारों, कल-कारखानों, खेत-खलिहानों आदि में बातचीत के लिए प्रयुक्त जनसामान्य की भाषा। दूसरी शिक्षित समुदाय के मध्य विचार-विनिमय के लिए प्रयुक्त विशिष्ट भाषा। इस विशिष्ट भाषा में ही साहित्य का सृजन होता है। साहित्यिक भाषा के भी दो रूप हैं एक गद्य-भाषा दूसरी काव्य-भाषा।

काव्यभाषा विशिष्ट कलाओं से युक्त रसोत्पत्ति तथा अनुभव संप्रेषण को लक्ष्य बनाकर प्रस्तुत होती है। किन्तु जनभाषा लोक जगत में कथ्य की अभिव्यक्ति करने के कारण सरल, अनलंकृत होती है। काव्यभाषा में प्रयुक्त शब्द निर्दिष्ट अर्थ से आगे

१- नन्द दुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न (निबन्ध) पृ० ३० ।
२- जयशंकर प्रसाद : काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ६० ।
३- वही, पृ० ६० ।
४- निराला : परिमल (जागरण) पृ० २४९ ।
५- ,, : प्रबन्ध पद्म ,पृ० २६ ।

करूपर प्रतीकात्मक भी होते हैं जबकि जनभाषा में प्राय: कोषगत अर्थ ही पर्याप्त होता है। काव्यभाषा व्यक्तिनिष्ठ होती है और सामान्य भाषा वस्तुनिष्ठ होती है। काव्यभाषा कवि की भावात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त करने के कारण लाक्षणिक, व्यंजनात्मक, ध्वन्यात्मक, प्रतीकात्मक, लाक्षणिक तथा चित्रात्मक होती है किन्तु जनभाषा का रूप सीधा सादा इतिवृत्तात्मक होता है। "सामान्य भाषा में साज-सज्जा की वैसी कोई अपेक्षा नहीं होती जब कि काव्य-भाषा में स्वाभाविक कलात्मकता एवं विशेषीकरण पहली शर्त है।"[1] काव्य भाषा और सामान्य भाषा की इन मूलभूत भिन्नताओं के बाद भी यह निश्चित है कि काव्य-भाषा के निर्माण में सामान्यभाषा का पूर्ण योगदान रहता है। कवि के वाक्-शक्ति का प्रस्फुटन जनभाषा द्वारा ही होता है और आगे चलकर वह गहन अध्ययन, मनन तथा काव्यात्मक प्रतिभा के प्रतिफलन स्वरूप भावसंवाहिका काव्य-भाषा का सृजन करता है। काव्यभाषा और सामान्य-भाषा का यह अंतर तात्त्विक तो नहीं पर व्यावहारिक अवश्य है।

<u>काव्य-भाषा के अंग</u>

कवि के भाव-प्रकाशन में समर्थ शब्द भण्डार ही काव्यभाषा की संज्ञा से अभिहित किये जाते हैं। इन शब्दों का कलात्मक स्वरूप जो अर्थव्यंजना में सक्षम हो, उत्कृष्ट माना जाता है। वास्तव में, काव्यभाषा कवि के विचारों, भावावेशों के संप्रेषण का एक माध्यम है, जिसे तज्जनित प्रभाव की सृष्टि के लिए भावानुकूल शब्दों, अर्थों तथा आभरणों से युक्त होना चाहिए। इस दृष्टि से भाषा के तीन प्रमुख तत्त्व सामने आते हैं (1) स्वरूप (2) सौष्ठव और (3) अर्थ व्यंजना।

(1) स्वरूप - (क) शब्द-भण्डार
(ख) व्याकरण
(2) सौष्ठव - (क) नाद संगीत
(ख) अनुप्रासगत वर्णावृत्तियाँ
(ग) ध्वनि-चित्र
(घ) लय संगीत
(ङ) चित्रमयता
(3) अर्थव्यंजना- (क) शब्द शक्तियाँ

1- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ६।

(ख) प्रतीकात्मकता

(ग) गुण, रीति, वृत्ति

(घ) मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

(अ) प्रसाद और निराला की काव्य-भाषा का स्वरूप :

शब्द-भण्डार : शब्द समूह भाषा का एक अनिवार्य उपकरण है जिसके माध्यम से कवि अपने सर्जनात्मक प्रतिभा को मूर्त रूप प्रदान करता है। कवि की भावना तथा कला का समस्त कौशल एवं विधान शब्दों के सुनियोजित विन्यास पर निर्भर करता है। कविता में विन्यस्त शब्दों से कवि की भाषा का स्वरूप निर्धारण संभव होता है। अतएव काव्य-निर्माण में शब्द भण्डार की विस्तृति तथा उसके समुचित विन्यास का होना अनिवार्य है।

प्रसाद और निराला की काव्य-भाषा साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी है। प्रसाद की आरम्भिक कुछ रचनाएँ ब्रजभाषा में भी मिलती हैं। जिस समय साहित्य में प्रसाद का आविर्भाव हुआ उस समय काव्य युग के लिए ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी को लेकर द्वन्द्व चल रहा था। परिणामतः द्विवेदी युग तक दोनों भाषाओं में काव्य संरचना का कार्य चलता रहा। किन्तु आगे छायावाद युग में काव्यभाषा का स्वरूप निश्चित हो गया और उसने अपना बहुरूपिया बाना लगभग त्याग दिया। प्रसाद की 'चित्राधार' तथा 'प्रेम-पथिक' के अतिरिक्त अन्य सभी रचनाएँ खड़ीबोली में रचित हैं। प्रसाद और निराला ने अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम खड़ीबोली को बनाया और उसके शब्द भण्डार, रूप सौष्ठव तथा अर्थव्यंजकता को समृद्ध तथा विस्तार देने का यथाशक्ति प्रयत्न भी किया। प्रसाद का कवि जीवन ब्रजभाषा की रचनाओं से प्रारंभ हुआ है। अतएव, शिल्प की दृष्टि से उन रचनाओं की भाषा पर भी दृष्टिपात कर लेना होगा।

शताब्दियों से कविता में प्रयुक्त ब्रजभाषा प्रसाद के समय में परिष्कृत तथा परिमार्जित हो गई थी। ब्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम रूप भी उसी के अनुकूल ढलकर व्यवहृत होते थे जैसे -

विस्तृत कुंतल भार पूर श्रम अम्बु कनी के।
रति श्रम कण लव मंडित श्रान्त वदन रमनी के।।[1]

१- प्रसाद : चित्राधार (वभुवाहन) पृ० ८ ।

उक्त उद्धरण में 'रमणी' के स्थान पर 'रमनी' और 'कणिका' के स्थान पर 'कनी' शब्द का प्रयोग ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप हुआ है। ब्रजभाषा में कर्णबिन्दु, ऊष्म तथा महाप्राण शब्दों का प्रयोग नहीं होता, अतः कवि ने 'ण' को 'न' में रूपान्तरित कर दिया। फिर भी, इन पंक्तियों में तत्सम प्रयोग 'विस्तृत' तथा 'रति श्रम जल लव मंडित श्रान्त वदन' ब्रजभाषा के लालित्य को समाप्तप्राय कर देते हैं जिससे यहाँ पर ब्रजभाषा का प्रचलित रूप नहीं समाविष्ट हो पाया।

प्रसाद विरचित ब्रजभाषा की कविताओं में तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, यथा -

लाज तौ नीके नैक निहारौ ।
पावस के घन तिमिर मार मैं बीती बात बिसारौ ।।

--- --- ---

हरित करौ यह मरुसम मौ मन, देहु 'प्रसाद' पियारौ ।[1]

यहाँ नैक, निहारौ, बिसारौ, मौ, देहु आदि ब्रजभाषा के तद्भव शब्दों को प्रयुक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त 'चित्राधार' आदि में केरौ, ठाँव, टेरौ, ठौर, तातो, तावर, गोइयै, उड़ाहु, पतीजत आदि देशज शब्दों का विन्यास भी मिलता है।

प्रसाद जी की ब्रजभाषा रचनाओं में उर्दू तथा अरबी-फारसी के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। मौजै, कैद, बिहाल, माफ़, दाग़ आदि शब्दों का विन्यास 'चित्राधार' तथा 'प्रेमपथिक' में हुआ है। प्रसाद जी की इन रचनाओं की भाषा में छायावादी भाषा-शिल्प का अंकुर विद्यमान है। कवि ने अपनी खड़ीबोली काव्य में भी ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है, यथा-

चेतना- तरंगिनि मेरी
लेती है मृदुल हिलोरें ? ।[2]

यहाँ पर प्रयुक्त 'तरंगिनि' शब्द ब्रजभाषा के अनुरूप ढला हुआ है। 'आँसू' के अतिरिक्त 'काननकुसुम', 'झरना', 'लहर', 'कामायनी' आदि में भी उल्लिंग तरुन, ध्वनी, आँस, औषधी, गैल, समकूल, मुक्तमाला आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। हालांकि खड़ीबोली के मध्य प्रयुक्त ब्रजभाषा के शब्दों में वर्ण विन्यास की शिथिलता, मात्रा परिवर्तन, मात्रालोप आदि भी मिलता है। यद्यपि प्रसाद ने कुछ रचनाएं ब्रजभाषा में की है

१- प्रसाद : चित्राधार (~~[illegible]~~) पृ०१६०।
२- ,, : आँसू, पृ० ४।

तथापि उनको कवि के समृद्ध ब्रजभाषा-शब्द भण्डार का बोध होता है ।

प्रसाद और निराला का अभ्युदय काल एक न होने से ब्रजभाषा के प्रयोग में निराला प्रसाद की तुलना में पीछे रह जाते हैं । निराला ने काव्य-निर्माण जब प्रारंभ किया उस समय खड़ीबोली शैशवावस्था को छोड़कर अपनी यौवनावस्था में आ गई थी जिससे निराला ने ब्रजभाषा की ओर ध्यान नहीं दिया । फिर भी, निराला के ब्रजभाषाविद् होने के कारण उनकी कुछ रचनाओं में अपवाद स्वरूप ब्रजभाषा भी प्रयुक्त हुई है । उन्होंने चण्डीदास के एक पद का अनुवाद ब्रजभाषा में किया है । इतना ही नहीं, निराला ने पंडित श्री नारायण शर्मा के आग्रह पर समस्यापूर्ति के रूप में एक दोहा भी ब्रजभाषा में रचा है -

> लख्यो विजन वन गहन में श्रमकन-कम्पन नारि
> रही मोहिबिन -उर-भरि, भरी हरी-भर नारि ।[1]

निराला की खड़ीबोली रचनाओं में भी ब्रजभाषा के एकाध शब्द मिल जाते हैं, यथा -

> पहुंचा जहां उसने की केलि कली खिली साथ ।
> --- --- ---
> निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की ।[2]
> पलक-हीन नयनों से तुमको प्रतिपल
> हेरूँ अज्ञात ।[3]

फिर भी, इस संदर्भ में निराला की प्रसाद के साथ तुलना करना भूल होगी । निराला के रचना-काल में ब्रजभाषा को तीन-चार सौ वर्ष की रक्त मांसहीन बूढ़ा समझा जाने लगा था ।[4]

द्विवेदी जी के अथक प्रयास से छायावाद युग की काव्य-भाषा में खड़ी-बोली का परिष्कृत तथा परिमार्जित रूप प्रयुक्त होने लगा और आलोच्य कवियों के

१- निराला : चयन, पृ० ६७३ एवं सुधावर्ष १, खण्ड २
२- ,, : परिमल (जुही की कली) पृ० १७१-७२ ।
३- ,, : गीतिका, पृ० ३० ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव (भूमिका) पृ० २१ ।

मनोमस्तिष्क में यह धारणा निश्चित रूप से जम गई कि समकालीन युगबोध और अभिनव भाव-प्राकट्य तथा विषय की व्यंजना के लिए खड़ीबोली ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। इस विषय में इन कवियों ने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि ब्रजभाषा में नींद की मिठास थी, इसमें जागृति का स्पन्दन, उसमें रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय-ज्योत्सना इसमें दिवस का सशब्द कार्य-व्यग्र प्रकाश।[1] अत: काव्यभाषा- विषयक इस धारणा ने ब्रजभाषा को काल के गर्त में समाहित कर दिया। आलोच्य कवियों ने अपनी महती काव्य प्रतिभा से खड़ीबोली में श्रुतिमाधुर्य, लालित्य एवं मसृणता को समाविष्ट कर साहित्य में सदा-सर्वदा के लिए अमर कर दिया।

आलोच्य कवियों ने भावना की अभिव्यक्ति के विशेषाधार-भाषा में शब्दों के नूतन प्रयोग पर अधिक बल दिया। उनका विश्वास था कि शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतन्त्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द-विशेष का नवीन अर्थ द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस नूतन शब्द प्रयोग का अतुल हाथ होता है।[2] अत: भाषा में नूतन शब्द प्रयोग की बलवती स्पृहा के फलस्वरूप प्रसाद और निराला की रचनाओं में संस्कृत के तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दों का कलात्मक विधान मिलता है। प्रचलित शब्दों का इन कवियों ने नूतन विन्यास तो किया ही, साथ में अपनी रुचि तथा आवश्यकतानुसार नवीन शब्दों का निर्माण भी किया।

प्रसाद और निराला के शब्द-भण्डार में संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। कुशल भाषा-शिल्पी इन कवियों ने तत्सम शब्दों में नवीनता का ऐसा पानी चढ़ाया कि वो नवीन स्वरों में बोलने लगे और नूतन तत्त्व उत्पन्न कर सकने में सफल हुए। काव्यभाषा में प्रयुक्त तत्सम शब्दों में वह नवीन भंगिमा तथा अर्थव्यंजकता निहित है जो उसे सजीवता तथा जीवंतता प्रदान करती है। शब्दों का ऐसा विन्यास द्रष्टव्य है-

मदिर माधव यामिनी का धीर पद विन्यास।[3]

यहाँ पर प्रसाद जी ने शब्द मर्मज्ञ होने के नाते युगों से प्रयुक्त यामिनी शब्द में प्राण फूंक दिये हैं। कवि की भावना और कल्पना ने यामिनी के चरणों में नव-

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव (भूमिका) पृ० ३।
२- प्रसाद : काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १४५।
३- ,, : कामायनी (वासना सर्ग) पृ० ६४।

उप, नवल-लाल भर दिया है, जिससे वह गीर पद विन्यास करने लगती है । इस प्रकार प्रसाद जी ने प्रचलित तत्सम शब्दों को पुष्ट, सजीव तथा भावुक बनाने का महत् कार्य किया है । संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग में उनकी अटूट निष्ठा थी -

> दल विरल डालियाँ भरी मुकुल, कुचली सौरभ रस लिये अतुल ।
> अपने विषाद विष में मूर्छित काँटों से बिंध कर बार बार ।[1]

महाकवि निराला की भाषा में तत्सम शब्दों का कलात्मक विन्यास हुआ है । कवि ने तत्सम शब्दों के नूतन प्रभावोंजा, सामासिक विधान तथा संयुक्त शब्द प्रयोग द्वारा अपनी भाषा को समृद्ध बनाया है। किन्तु, निराला ने ऐसे शब्दों का प्रयोग भावानुकूल, कोमल, सरस तथा कठोर रूप में किया है । कारण, वो इस मत के पोषक थे कि भाषा भावों की सच्ची अनुगामिनी है ।' उनके काव्य में सरस कोमल और कांत शब्दावली का प्रयोग -

> मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता
> मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका ।[2]

यहाँ पर प्रयुक्त तत्सम शब्द भावाभिव्यक्ति तथा अर्थ व्यंजकता में पूर्णत: सफल है । निराला ने अपनी भाषा को संस्कृत के अत्यधिक निकट ले जाने का जो प्रयास किया है उससे उनकी शब्दावली कुछ क्लिष्ट हो गई है जैसे -

> उस सलज्ज ज्योत्स्ना-सुहाग की फेनिल शय्या पर सुकुमार
> उत्सुक, किस अभिसार-निशा में गई कौन स्वाप्निक पल मार ?[3]

हिन्दी में संस्कृत के ऐसे तत्सम शब्द-प्रयोग को लेकर विद्वत्समाज निराला की भाषा पर क्लिष्टता का आरोप लगा बैठते हैं ।

आलोच्य कवियों ने तत्सम शब्दों का सामासिक विधान कर काव्य-भाषा को समृद्ध बनाया है, यथा -

> ---- तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग प्रखर,
> शतशेलसम्वरणशील, नीलनभ-गर्जित-स्वर, --
> --- --- ---

१- प्रसाद : लहर, पृ० ३४ ।

२- निराला : अनामिका (प्रिया से) पृ० ४२ ।

३- ,, : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ४६ ।

गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत्-केवल-प्रबोध,

उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत- कपि- चतुःप्रहर, --[1]

तत्सम शब्दों के सामासिक विधान से निराला ने युद्ध के सजीव वातावरण को जिस प्रकार मूर्तिबद्ध किया है, वह शब्दों के अन्य विधान द्वारा संभव न हो पाता । सामासिक पद विधान की यह शैली निराला को संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट के समकक्ष ला खड़ा करती है । कादम्बरी में इस प्रकार की पदावलियाँ कई पृष्ठों तक लगातार चलती है ।

प्रसाद और निराला ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का विन्यास स्वर-संधि के आधार पर भी किया है, यथा -

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो ।[2]

'माँ' -फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी ।[3]

जागो, नव-अम्बर-भर, ज्योतिस्तर- वासे

उठे स्वरोर्मियों - मुखर दिक्कुमारिका- पिक-रव ।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों में 'स्नेहालिंगन', 'दूरागत', 'स्वरोर्मियों' 'दिक्कुमारिका' शब्द संधिज हैं । इसके अतिरिक्त प्रसाद ने प्रत्यों का हेमाभरश्मि, तन्द्रालस, करुणार्द्र आदि तथा निराला ने प्रलयाब्धि, उद्गीरित, नैराश्यान्धकार, त्यागोज्जीवित नयनोन्माद, जाज्जीवन्मृत, कमलानन्दित आदि संधिज शब्दों का नूतन संदर्भ में संयोजन किया है । निराला ने सामासिक पदावली में ही संधिज शब्दों का विन्यास भी किया है ।

इन कवियों ने तत्सम शब्दों का संयुक्त विधान भी किया है -

क्यों व्यथित व्योम-गंगा सी छिटका कर दोनों छोरें ।[5]

नभ-मुक्त- कुन्तला धरणी दिखलाई देती लूटी ।[6]

जागो- नव - अम्बर- भर,[7]

१- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४८-४९ ।
२- प्रसाद : लहर, पृ० २८ ।
३- ,, : कामायनी (स्वप्न सर्ग) पृ० १८७ ।
४- निराला : अपरा (वंदूँ पद सुन्दर तव) पृ० ३५ ।
५- प्रसाद : आँसू, पृ० ४ ।
६- वही , पृ० ६ ।
७- निराला : अपरा , पृ० ३५ ।

भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाने के हेतु इन कवियों ने संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया है। जैसे प्रसाद के काव्य में तिमिंगलों, प्रव्या, प्रज्ञा, श्वापद, कलमकुणा, चिति, वर्त्तिका, अवभृथ स्नान, ज्योतिरिंगणों आदि। निराला के काव्य में भी ऐसे शब्द मिलते हैं, यथा - पुरश्चरण, नत-शत, आत्मावोधन, किन्नरगणा, भावित आदि।

आलोच्य कवियों ने तत्सम शब्दों का नूतन संदर्भ में जो विधान किया वह भावानुकूल है। समस्त शब्द-विधान की प्रणाली अर्थ-व्यंजकता में समर्थ है। यद्यपि ऐसे शब्द विधान से कहीं-कहीं भाषा क्लिष्ट हो उठी है। फिर भी, उसके अर्थाभिव्यक्ति को कोई आघात नहीं लगा है। यह क्लिष्टता का आरोप भी निराला पर ही लगाया जाता है। परन्तु, वे विज्ञजन यह विस्मरण कर बैठते हैं कि निराला ने भावगाम्भीर्य की रक्षा के लिए ऐसा किया है। दूसरे ऐसी पदावली में भाषा का लालित्य तथा सौकुमार्य सुरक्षित है, जिससे वह रसोद्रेक में सफल हुई। निराला ने तत्सम शब्दों का सरल विन्यास भी किया है। सामासिक तथा संधिय शब्दों के विधान में जिस सरसता, कोमलता, सजीवता स्पष्टता तथा मर्मस्पर्शिता का समावेश इन कवियों ने किया है, वह काव्य-भाषा की महान उपलब्धि है।

प्रसाद और निराला के समृद्ध शब्द भण्डार में तद्भव तथा देशज शब्दों की भी अपार राशि सुरक्षित है। भाषा को सरल, कोमल तथा मसृण बनाने के प्रयोजन से ऐसे शब्दों का विन्यास हुआ है। दूसरे, अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित हुए बिना कवि भी नहीं रह सकता। अतएव उनके काव्य में खड़ीबोली की बोधगम्यता, सरलता तथा मधुरता की पुष्टि के हेतु तद्भव शब्दों का विन्यास हुआ है, यथा -

सो अलस उनींदी नखत पाँत।[१]

झुम रहे जीवनघन मुख-साथ।।[२]

ईश्वर की गाज
यहाँ है गिरी, है बिपत बड़ी,
पड़ा है अकाल।[३]

१- प्रसाद : लहर, पृ० ३१।
२- ,, : झरना, पृ० ५८।
३- निराला : अनामिका, पृ० १७६।

इस प्रकार से तद्भव शब्दों का प्रयोग आलोच्य कवियों ने भाषा में सरलता एवं स्वाभाविकता लाने के हेतु किया है। प्रसाद के काव्य में पाँति, पात,पाँत, नखत,गात,रवैया,छाया, छलाई, कराई, रैला, निछावर, अक, ऊब, उजाकार,निरखुँ बिछाल, तपना, दुलार, हरा,फँ, छुट्टी, छुआ, पुतल आदि शब्दों के अगणित प्रयोग मिलते हैं। तद्भव शब्दों का प्रयोग निराला ने भी किया है, जैसे - फाँस, मारवाद, नियत, पूरा, पैठे, गरा, लैवनहार आदि।

आलोच्य कवियों ने स्थानीय शब्दावली को भी काव्य-भाषा में स्थान दिया है। जैसे-`चली लक्ष्मी मई जौन` (चित्राधार) , `अरा दिया मकरंद की कड़ी` (काननकुसुम) , `रहा चन्द्रिका निधि गंभीर`, `छायामय राग उजाला में`, `चुपचाप बरजती रही खड़ी`, `कितने कष्ट सहे हों` आदि (कामायनी) । प्रसाद की भाषा में बनारसी बोली का पुट मिलता है और निराला की भाषा में बैसवाड़ी बोली का, यथा- प्रथम बांस में गुच्छ, गुच्छ कली हुई आग कहो कब गई जुड़ा, धन्य और मृत्यु मेरे पैरों पर लौटते (अनामिका), छल छल करता वह महाफलक (राम की शक्तिपूजा) । इसी प्रकार नकचिपटी, काँडती है, पनिहारिन, मटका, कुआ, गरियार, निराई, दोगली, पराई, लुरियाँ आदि बैसवाड़ी शब्दों का प्रयोग निराला जी ने किया है। प्रसाद की अपेक्षा निराला ने तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग कम किया है। उनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली ही अधिक मुखरित हुई है।

प्रसाद और निराला की भाषा में तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के साथ ही बंगला, अरबी-फारसी ,उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का कलात्मक विन्यास हुआ है। प्रसाद जी ने हिन्दी भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाने के हेतु बंगला शब्द अरूप, सकल, स्वर्ण और अरबी फारसी के शब्द कैफियत, खुमारी, दाग, घायल, मादकता आदि को प्रयुक्त किया है। प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में बंगला, उर्दू और अंग्रेजी शब्दों को अधिक पाया जाता है। कारण एक तो बंगला भाषा के मध्य उनकी शिक्षा-दीक्षा। दूसरे, काव्यभाषा को जनसामान्य की भाषा बनाने की अभिलाषा। निराला की कुछ रचनाएँ बंगला की अनुवाद हैं, उन्हें इस भाषा का विशेष ज्ञान था। उनकी `मौलिक मन को सुधार आगे` (अनामिका) कोई नहीं मेला` जैसी पंक्तियाँ बंगला के प्रति निष्ठा को प्रकट करने के लिए यथेष्ट हैं। कवि ने सुधार , मेला, शत-शत, राशि-राशि, सकल, स आदि बंगला शब्दों को हिन्दी में स्थान दिया है। निराला ने यूं तो सभी काव्य ग्रंथों

में जहाँ-तहाँ उर्दू के शब्द प्रयुक्त किये हैं। किन्तु बेला और कुकुरमुत्ता में तो खुलकर उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। जार, माल, नज़र, शाही, मक्कार, शहर, ख्याल, दिल, पुख्ता, नादान, वक़्त, रंगोगम, फुर्सत, ताज़ा, अदा, हद, दम आदि उर्दू शब्दों को कवि ने स्पष्ट रूप से अपनी कविताओं में स्थान दिया है। निराला जी ने हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी शब्दों का कुशल संयोजन किया है। लार्ड, कैमरा, नोटिस, मिशन, स्टीमर, प्रा ज, कैपिटल आदि शब्दों का विधान उनकी रचनाओं में दृष्टव्य है -

टु जोड़ कर ग्रेट बढ़ाया तुम पर
दु:ख रहे डिग्रि सोई।[1]

निराला ने हिन्दी भाषा में ऐसे प्रयोग, विषय और भाव की दुरूहता तथा क्लिष्टता को दूर करने के ध्येय से किया है। कठिन विचारों को सरल ढंग से सुबोध बनाने की पुष्टि निराला के इस कथन से भी हो जाती है "अधिक मनोरंजन और लोकरंजन की निगाह रक्खी गयी है कि पाठकों का मन साहित्य की ओर ध्यान दे।"[2] इस भावना के प्रतिफलन स्वरूप कवि को मानवजीवन के सांगोपांग चित्रण में निर्बाध रूप से सफलता मिली है।

इस प्रकार आलोच्य कवियों ने संस्कृत के तत्सम, तद्भव एवं देशज तथा उर्दू, बंगला और अंग्रेज़ी शब्दों को प्रयुक्त कर हिन्दी के शब्द-कोष को समृद्ध तथा व्यापक बनाने का अक्षुण्ण कार्य किया है। प्रचलित शब्दों को अपनी भावाभिव्यक्ति के अनुकूल रचकर उन्हें जीवंत रूप प्रदान करने का महत् कार्य भी इनके द्वारा सम्पन्न हुआ।

स्वनिर्मित शब्द : आलोच्य कवियों की भाषा में कुछ ऐसे शब्द हैं जो पूर्णतः मौलिक हैं। इन शब्दों का निर्माण प्रसाद और निराला ने अपने भावानुरूप ही किया है, जिस पर आंशिक प्रभाव हिन्दी से इतर भाषाओं का भी माना जा सकता है। इस कोटि के शब्दों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक, अंग्रेज़ी शब्दों के अर्थ को आधार बनाकर रचित शब्द। दूसरे प्रचलित शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रत्यय उपसर्ग आदि जोड़ कर निर्मित नए अर्थव्यंजक शब्द। प्रथम प्रकार में प्रसाद विरचित स्वर्णिम (गोल्डन), अवकाश (स्पेस) कोरी आंख (वैकेन्ट आईज), सुनहरी संध्या (गोल्डन ईव) सूना

१- निराला : परिमल (बादल के प्रति) पृ० ७८-७९।

२- ,, : नये पत्ते (परिशिष्ट)

बादल (एम्प्टी क्लाउड), आकाश तरंग (ईथर वेव्स) आदि तथा निराला कृत सोने के संगीत राज्य (गोल्डेन रेल्म आफ म्यूज़िक) जीवन-संग्राम (बैटल आफ लाइफ), आत्म-बलिदान (सेल्फ सैक्रीफाइस), कानन की रानी (क्वीन आफ द फारेस्ट), तड़ित प्रवाह (इलेक्ट्रिक करेंट) आदि शब्दों को परिगणित किया जा सकता है। द्वितीय प्रकार से रचित शब्दों की संख्या इन कवियों के काव्य में बहुत अधिक है। प्रसाद ने गुलाली, छिपती, झलाता, फेनिल, बेगुन, विदारित, कोड़ियों, पसारा, प्रणय-वन्या, तापमय, सिंचाव, पूरनिमा आदि तथा निराला ने अपनाव, निरलस, आलास, लागी, ज्ञाणान, प्रभापूर्ण, ज्योतिर्मयी, दुर्निवार आदि शब्दों के निर्माण द्वारा अपनी अप्रतिम काव्य प्रतिभा का परिचय दिया। इन दो प्रकारों के अतिरिक्त अन्य ढंगों से निर्मित कुछ असाधारण शब्द-रूप भी मिल जाते हैं। जैसे- आंसू ' में से चला प्रेम बेगुन की ' यहां पर बेगुन शब्द में बे ' उर्दू पर आधारित है। ' बे ' अर्थात् बिना और ' गुन ' संस्कृत का तद्भव रूप है। इस प्रकार उर्दू और संस्कृत के मिश्रण से भी नूतन शब्दों का निर्माण हुआ है। निराला ने ' शक्तिपूजा ' में ' भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल ' पंक्ति में भावित शब्द का निर्माण द्रवित के वजन को आधार बनाकर किया है। इसके अतिरिक्त तत्सम शब्दों को स्वर संधि के आधार पर रचकर काव्यभाषा में नूतन शब्दों की वृद्धि की है।

प्रसाद और निराला के काव्य में प्रयुक्त समस्त शब्द भावाभिव्यंजक हैं। पद-विन्यास में जड़ित शब्दावली को देखते हुए यह निश्चित हो जाता है कि शब्द-चयन में इन कवियों ने रमणीयता और भाव व्यंजकता पर विशेष ध्यान दिया है क्योंकि ' भाषा शब्दों की संख्या से धनी नहीं होती, धनी होती है उनकी भाव व्यंजकता से। द्विवेदी युग की कविता की तुलना में छायावाद की समृद्धि का रहस्य यही है। '[1] प्रसाद और निराला ने शब्द-विधान में श्रुतिमाधुर्य, लालित्य, सरसता तथा अर्थ व्यंजकता का पूर्ण ध्यान रखा है।

जहां तक आलोच्य कवियों के शब्द-समूह की समीचीनता का प्रश्न है उसके विषय में यह कहना अक्षरशः सत्य होगा कि ये कवि शब्दों की आत्मा को

१- नामवर सिंह : छायावाद, पृ० १०१।

पहचानते थे। अतएव इन्होंने जहाँ पर, जिस समय, जिन शब्दों को प्रयुक्त किया है वो पूर्णतः सटीक है। इन कवियों के काव्य में विजड़ित शब्द हीरे के सदृश है। एक भी शब्द के स्थान परिवर्तन से सम्पूर्ण पंक्ति की कान्ति अथवा भावार्थ को क्षति पहुँच जाती है। शब्द पारखी प्रसाद द्वारा प्रयुक्त शब्दों का सुनियोजित विधान दृष्टव्य है -

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये -।[1]

उपर्युक्त पंक्ति में राग और मलयज शब्द पूर्णतः सार्थक है। राग शब्द से ओठों की लालिमा, अरुणाभा और अनुराग दोनों का बोध होता है, जो इस स्थान पर प्रयुक्त किसी अन्य शब्द द्वारा संभव न होता। इसी प्रकार अलकों में बन्द 'मलयज' शब्द है जो सुरभि और शीतलता का सूचक है। इन कवियों ने भाव-व्यंजना में समर्थ शब्दों की ही रचना की है। प्रसाद के अतिरिक्त निराला के शब्द विधान में भी यह विशेषता मिलती है, यथा -

धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका।[2]

यहाँ पर प्रयुक्त निरर्थक शब्द पूर्णतः उपयुक्त है। एक ओर, पुत्री के प्रति कुछ न कर सकने के कारण पिता निरर्थक है। दूसरी ओर, अर्थ की दृष्टि से कमज़ोर होने के कारण भी वो निरर्थक है। 'इस प्रकार अत्यन्त सार्थक शब्द-सृष्टि द्वारा निराला जी ने हिन्दी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है।'[3] निराला जी अपने प्रकार के एक ही शब्द शिल्पी हैं। विषय-वस्तु को चित्रांकित करने के लिए [illegible] शब्दों का विधान करना उनके लिए कठिन न था, जैसे - 'हाँकता था रामलाल का भाई ता-ता-ता-ता-करता'[4] यहाँ पर हम देखते हैं कि गाड़ीवान के वर्णन में उसी के उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार महाकवि निराला ने एक ओर संस्कृत के तत्सम शब्दों के सामासिक तथा संधिज प्रयोगों द्वारा अपने अपार पांडित्य का परिचय दिया है तो दूसरी ओर साधारण बोलचाल की भाषा के शब्दों को प्रयुक्त कर अपनी भाषा को सामान्य रूप भी प्रदान किया है।

१- प्रसाद : लहर, पृ० २६।
२- निराला : अनामिका, पृ० १९८।
३- नन्द दुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य, बीसवीं शती, पृ० १४२।
४- निराला : नये पत्ते (स्फटिक शिला) पृ० ४३।

प्रसाद जी के काव्य में भी निरर्थक शब्दों का विन्यास नहीं मिलता। उनका शब्द-मार्दव एवं भाषा का स्वरूप उत्कृष्ट कोटि का है, उनकी काव्यभाषा में पंत और निराला जैसा शब्द - वैविध्य नहीं मिलता। संस्कृतनिष्ठता के प्रति मोह होने के कारण तत्सम शब्दों की योजना उनके काव्य में अधिक हुई है। शब्दों के संस्कार का पूर्ण ज्ञान होने से उनके विन्यास में दोनों कवियों को समान रूप से सफलता मिली है। इनके द्वारा प्रयुक्त शब्द बोलते हुए जीवंत प्रतीत होते हैं। उनमें [illegible] रूप [illegible] देने की अपूर्व क्षमता निहित है।

(ग) व्याकरण :

भाषा के संदर्भ में 'व्याकरण' की परिचर्चा अनिवार्य है। प्रसाद और निराला ने द्विवेदीयुगीन परिमार्जित एवं परिष्कृत काव्यभाषा को अपनी अतिशय काव्य प्रतिभा और कल्पनाशीलता से सजाने-संवारने तथा समृद्ध बनाने का जो गुरुतर कार्य संपन्न किया, उसमें अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण किसी प्रकार का अवरोध पसंद नहीं किया। भाषा के पैरों में बंधी बेड़ी को अपने विद्रोहाभिचार से तोड़ फेंका क्योंकि उनके विचार से 'भाषा के पैरों में व्याकरण की बेड़ी पड़ी कि उसने झट अपना स्वरूप बदला और पूर्णता की ओर किसी मन्द राह से चल पड़ी'[1] अतएव, इन कवियों ने भाषा की उन्मुक्त उड़ान में व्याकरण का रोड़ा अटकाना उचित नहीं समझा। व्याकरण सम्मत भाषा की रचना उन्होंने वहीं पर की 'जहाँ राग की उन्मुक्त स्वेच्छाचारिता तथा व्याकरण की नियमबद्धता में सामंजस्य रहता है।'[2] किन्तु ऐसे स्थलों पर जहाँ यह सामंजस्य भंग होने लगा इन कवियों ने व्याकरण के नियमों में स्वेच्छापूर्वक भावानुकूल परिवर्तन किया। प्रसाद और निराला की भाषा व्याकरण की दृष्टि से युक्त ही कही जाएगी फिर भी भाषा को भावात्मक एवं रागात्मक रूप देने में असावधानीवश कुछ त्रुटियाँ आ गई हैं।

लिंग : प्रसाद और निराला की भाषा में लिंग सम्बन्धी त्रुटि अखरती है। ऐसी भूलें प्रसाद के काव्य में अधिक हैं। इसका यह आशय नहीं कि निराला का काव्य इस प्रकार की त्रुटियों से मुक्त है। 'कामायनी' में श्रद्धा और मनु के बीच हुए वार्तालाप

१- निराला : पन्त, पृ० १६

२- पंत : पल्लव (भूमिका) ।

जिसकी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाये
स्वर्गंगा की धारा में
उज्ज्वलउपहार चढ़ाये ।[1]
('है' का लोप है)

वह आता -
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता ।[2]
('है' का लोप)

पूर्वकालिक क्रियाओं का प्रयोग -

रोदन का मूल्य चुकाकर
सब कुछ अपना लेतीं हैं ।[3]

सुमन भर न लिये
सखि, वसन्त गया ।[4]

क्रियाओं का स्थानान्तरण -

मधुर है स्रोत मधुर है लहरी ।
न है उत्पात, छटा है छहरी ।।[5]
काल चक्र में हो दबे
आज तुम राज कुंवर ! समर-सरताज ।[6]

क्रियाओं का अधांग प्रयोग -

हाँ कौन सुरस जाता था
रस-बूँद हमारे मन में ।[7]
का धोखा तो दी क्या ।[8]

१- प्रसाद : आंसू, पृ० १३ ।
२- निराला : परिमल (मिदाक पृ० १२५ ।
३- प्रसाद : आंसू, पृ० ५८ ।
४- निराला : परिमल, पृ० ३६ ।
५- प्रसाद : झरना, पृ० १५ ।
६- निराला : परिमल, पृ० १६० ।
७- प्रसाद : आंसू, पृ० १२ ।
८- निराला : गीतिका, पृ० ५४ ।

सर्वनाम : प्रसाद और निराला की काव्य-भाषा में सर्वनाम सम्बन्धी दोष भी यदा-कदा आ गया है जैसे -

कहाँ से जब प्रकाश की रश्मि खेलने आती है
तब कमलों की सी तब संध्या क्यों उदास हो जाती है ? ।[1]

तव भक्त भ्रमरों को हृदय में लिए वह शतदल विमल
आनन्द-पुलकित लौटता तव चूम कोमल चरण तल ।[2]

आलोच्य कवियों ने तव, मम आदि शब्दों का जो प्रयोग किया है वह हिन्दी के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता । इसी प्रकार इन कवियों ने तुम, तुम्हारे , तेरे आदि शब्दों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं माना और अपने ढंग से जहाँ जब चाहा प्रयुक्त कर दिया ।

विशेषण : आलोच्य कवियों की भाषा में विशेषण का प्रयोग अधिक हुआ है । यूँ तो विशेषण भाषा के सौन्दर्य विधायक गुण भी माने जाते हैं किन्तु कहीं-कहीं पर इनके अनुचित प्रयोग से हानि भी होती है । यहाँ पर हम विशेषण के भाव व्यंजक तथा भावापकर्षक दोनों ही रूपों को देखें । भाव व्यंजक विशेषण -

पर समा गये हैं, जैसे
मन के निस्सीम गगन में ।[3]

और मैं चंचलगति सुर-सरिता ।[4]

भावापकर्षक विशेषण -

अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह ।
गजगामिनि, वह पथ तेरा संकीर्ण, कंटकाकीर्ण,
कैसे होगी उससे पार ?[5]

१- प्रसाद : लहर, पृ० ५० ।
२- निराला : अनामिका, पृ० ३३ ।
३- प्रसाद : आँसू, पृ० १६ ।
४- निराला : परिमल (तुम और मैं) पृ० ८० ।
५- निराला : अनामिका ,पृ० ३४ ।

यहाँ पर अर्थविकच विशेषण के प्रयोग से भावना का सम्यक् प्रकाशन नहीं हो पाया है। काव्यगत स्वाभाविकता लुप्तप्राय सी हो गई है। इसी प्रकार संकीर्ण कंटकाकीर्ण का अनुप्रासगत रूप भी भाव की अभिव्यक्ति में सहायक नहीं हो पाया। अतएव, इन विशेषणों को भावापकर्षक ही कहा जायगा। प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में इस प्रकार के विशेषणों का रूप अधिक मिलता है।

कारक : भाषा के स्वरूप को सजाने-संवारने में ये कवि कारकीय चिह्नों को भूल गए हैं, जैसे -

उषा की रक्त निराशा कर देती अन्त कहानी -(का)[1]
प्रिय, मुद्रित दृग_(को) खोलो।[2]

अधिक पदत्व और न्यूनपदत्व : प्रसाद और निराला के काव्य में इस प्रकार की त्रुटियाँ भी मिल जाती हैं। यद्यपि भावाभिव्यक्ति में इनसे विशेष व्यवधान नहीं उत्पन्न हो पाया है। फिर भी, वाक्य विन्यास में यह त्रुटि खटकती है।

अधिक पदत्व -

इतना सुख जो न समाता
अंतरिक्ष में जल-थल में।[3]

अर्पित है चरणों पर मेरा यह हृदय-हार -[4]
मेरे जीवन पर, प्रिय, यौवन-का के भार।

न्यून पदत्व -

खिले स्मेर रुचि की रोती -
आशा, समझ मिला अपना धन।[5]

१- प्रसाद : आँसू, पृ० ४८ ।
२- निराला : परिमल (प्रभाती) पृ० ३७ ।
३- प्रसाद : आँसू, पृ० ४५ ।
४- निराला : परिमल (पारस) पृ० ६७ ।
५- प्रसाद : लहर, पृ० १५ ।

फल सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज़
या तुम बाँध कर रँगा धागा,
फल के भी उर का कटु त्यागा,
मेरा आलोचक एक बीज ।[1]

व्याकरण सम्बन्धी कुछ प्रयोग इन कवियों के अपने मौलिक तथा व्यक्तिगत हैं । ऐसे प्रयोग कर्ता और क्रिया के रूपों से विशेष सम्बन्ध रखते हैं । निराला के मत से तुम शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है - (१) अपने से बड़े के लिए सम्मानार्थ में और (२) समान आयु अथवा समान पदवाले के अर्थ में । जब सम्मानार्थ में तुम का प्रयोग होता है तब निराला जी भूतकालीन क्रिया को अनुनासिक बना देते हैं जैसे `तुम जाती थीं` । किन्तु जब समानता के अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो वे लिखते हैं - `तुम जाती थी` अर्थात् सहायक क्रिया अनुनासिकता से रहित प्रयुक्त की जाती है । गीतिका के ६१वें गीत में लिखा है - कण्ठ की तुम्हीं रहीं स्वर हार । यहाँ रहीं के स्थान पर हिन्दी व्याकरणानुसार रही होना चाहिए था । इसे व्याकरण के क्षेत्र में कवि की एक क्रान्तिकारी धारणा या मान सकते हैं ।[2] डॉ० अम्बा प्रसाद का यह विचार निराला के काव्य में प्रयुक्त कर्ता-क्रिया के विषय में पूर्णतः सत्य है । अतः यह तो निश्चित ही है कि ऐसे प्रयोगों के लिए इन प्रखर मेधावी कवियों को प्रयास नहीं करना पड़ा है । यह स्वयंसिद्ध है, जो कवि के शिल्पचातुर्य का द्योतक है ।

प्रसाद जी ने भी वाक्य को सुमधुर, कंठ्युक्त बनाने के हेतु शब्दों में प्रत्यय जोड़कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है । जैसे- मानिक को देखकर रानी ममता की दुखी `अँखड़ियों` के सामने` पश्चिम जलधि कूल का सुरम्य चित्र` खिंच गया ।[1] कवि ने आँख में `ड़` प्रत्यय जोड़कर दुखी आँखों की स्थिति को महत्वपूर्ण बना दिया, जिसमें पश्चिम का दृश्य सजीव हो उठा है । भाषा के क्षेत्र में प्रसाद का यह प्रयोग प्रशंसनीय है । इसी प्रकार जायसी के काव्य में सँदेस से` सँदेसड़ा` शब्द की निर्मिति हुई है । हो सकता है, अँखड़ियों` के प्रयोग में इसी शब्द का प्रभाव पड़ा हो ।

भाव एवं विचार को सुरुचिपूर्ण तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने में संलग्न कवि प्रसाद और निराला ने भाषा का परिमार्जन और अलंकरण तो किया किन्तु

१- निराला : अनामिका, पृ० ११५ ।

२- निराला : सं० पद्मसिंह शर्मा कमलेश, पृ० २९८ ।

उसने व्याकरणिक प्रयोगों पर विशेष ध्यान नहीं दिया । आलोच्य कविलिंग, वचन, क्रिया, कारक, सर्वनाम आदि के नियमों का पूर्णतःपालन नहीं कर सके । फिर भी, इससे भावाभिव्यक्ति को किसी प्रकार का व्याघात नहीं पहुंचा । व्याकरणिक विधान में स्वच्छंदता के लिए इन कवियों की रूढ़िबद्धता के प्रति विद्रोह तथा नूतनता के प्रति सम्मोहन की भावना ही उत्तरदायी है ।

. " सौष्ठव "

प्रसाद और निराला की काव्यभाषा के विधान में सन्निविष्ट उन समस्त प्रक्रियाओं का विशेष महत्व है जिनके परिवेश में उनकी भाषा ने गुरुत्वपूर्ण कलात्मक तथा सौन्दर्यपूर्ण परिधान धारण किया है । भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाने के साथ ही उसकी सजावट को भी इन्होंने महत्व दिया है । यदि पक्षपात रहित होकर देखा जाय तो दोनों कवियों ने भाषा के अलंकरण के लिए जितना श्रम-साध्य प्रयत्न किया है उतना स्वरूप विधान के लिए नहीं । यहाँ पर काव्य-भाषा के सौन्दर्य -विधायक नित्य गुणों की चर्चा करेंगे ।

नाद-संगीत

काव्यभाषा को सप्राण बनानेवाला एक प्रमुख तत्व नाद है । श्रव्यकाव्य में नाद-सौन्दर्य का विशेष महत्व होता है । भाषा में यह सौन्दर्य विभिन्न वर्ण मैत्रियों और शब्दों के लयात्मक क्रमबंधन से उत्पन्न होता है । भाषा-सौष्ठव को त्रिगुणित करने वाला यह तत्व सामान्य शब्दों के आश्रित न रहकर सस्वर शब्दों के लयात्मक संयोजन पर निर्भर होता है । प्रसाद और निराला ने अपने काव्य में नाद-संगीत की सृष्टि के लिए अनुप्रासगत वर्णमैत्री तथा पाश्चात्य अलंकार "ध्वनिचित्र" का आश्रय लिया है । भाषा को अलंकृत रूप प्रदान करने में संलग्न इन कवियों को शब्दों की प्रकृति का अन्तर्बोध था, जिससे उसे सस्वर तथा चित्रवत् रूप में प्रस्तुत करने में ये विशेषतः सफल हुए ।

अनुप्रासगत आवृत्तियाँ : इससे अभिप्राय है वर्णनीय विषय की अनुरूपता के अनुकूल वर्णों की बार-बार आवृत्ति । वर्णों की इस अनुप्रासमयी आवृत्ति को कुन्तक ने

१- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया), पृ० ७६ ।

वर्ण वक्रता' कहा है।[1] काव्य निर्माता अपने शिल्प-चातुर्य से शब्दों को इस प्रकार प्रयुक्त करता है कि वे नवीन स्वरों में बोलने लगते हैं। यह भाषा का सहज एवं कलात्मक अलंकरण है। साहित्य में भावाभिव्यक्ति तथा शाब्दिक चमत्कार की सृष्टि के लिए वर्णसाम्यमनुप्रास:'[2] का विधान हुआ है। अनुप्रासगत आवृत्तियों से काव्य में नाद-संगीत की सृष्टि होती है, किन्तु कुछ ऐसी अनुप्रासगत वर्णावृत्तियाँ भी हैं जो संगीतपरक नहीं हैं, सामान्य भाषा-सौष्ठव उत्पन्न करती हैं जिनका विवेचन नाद संगीत से अलग होना चाहिए। भाषा को कलात्मक रूप प्रदान करनेवाले कवि प्रसाद और निराला के काव्य में नाद-संगीत की अभूतपूर्व सृष्टि हुई है, यथा -

कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे।[3]

कोकिला कलरव कलापी कीर कूजत कुंज।[4]

इन उदाहरणों में कोमल एवं मधुर वर्ण-विन्यास द्वारा भावाभिव्यंजना की गई है। 'क' और 'क' तथा 'ण' की आवृत्ति से अनुप्रासिक योजना का जो रूप प्रस्तुत किया गया है उससे सुमधुर नाद-संगीत की सृष्टि हुई है। प्रसाद की अपेक्षा निराला की भाषा में अनुप्रासगत आवृत्तियों का अधिक कलात्मक विधान हुआ है। निराला ने संश्लिष्ट एवं सामासिक शैली पर आधृत जिन वर्णावृत्तियों की रचना की है उनकी उत्कृष्टता असंदिग्ध है, यथा -

वासना-समासीना महती- जगती दीना
जलद- पयोधर-भारा, रवि-शशि-तारक-हारा।[5]

लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान
राघव-लाघव- रावण-वारण-गत युग्म प्रहर।[6]

१- डा० नगेन्द्र : भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका (भाग-२) पृ० ६६।

२- मम्मट : काव्यप्रकाश, ९।७९।

३- प्रसाद : कामायनी (चिंतासर्ग) पृ० १६।

४- ,, : चित्राधार, पृ० ३१।

५- निराला : अर्चना, पृ० ७१।

६- ,, : अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १५८।

प्रथम उदाहरण में दो समस्त पदों का अन्तिम वर्ण-विन्यास समान है, जैसे वासना-समासीना तथा मल्ली जाती दीना का अन्तिम वर्ण 'ना' और उन्नत पयोधर भारा तथा रवि-शशि-तारक-हारा का 'रा' वर्ण। इसमें संगीत की सृष्टि के लिए 'न' व्यंजन का जो कलात्मक विन्यास हुआ है वह अति प्रभावशाली बन पड़ा है। द्वितीय उदाहरण में एक पद का निर्माण करनेवाले दो शब्दों, दो वर्णों का साम्य मिलता है जैसे लोचन-मोचन तथा राघव-लाघव। इनमें 'च' और 'न' तथा 'घ' और 'व' व्यंजन की आवृत्ति अनुप्रासगत वैशिष्ट्य की द्योतक है। यहाँ पर कवि ने समस्त पद में 'ली', 'ब', 'णा', 'म', 'न', 'रा' वर्णों की आवृत्ति से भाषा के क्लिष्ट रूप में संगीत की जिस मधुर तान को झंकृत किया है वह निस्संदेह अन्य कवियों की क्षमता से परे है।

कहीं-कहीं पर प्रसाद और निराला ने भाव-सम्प्रेषणीयता के लिए शब्दों की अनुप्रासमयी आवृत्ति भी की है, यथा -

> चल ठेल ठेल के ठहर ठहर।
> उठ-उठ गिर-गिर फिर फिर आती,[1]
>
> विश्व- विश्व नव गगन घिरा है
> नभ-नभ कानन - कानन सा है।[2]
>
> जननि, जनक जननि जननि, जन्मभूमि भाषे।[3]

यहाँ पर 'ठेल', 'ठहर', 'उठ', 'गिर', 'फिर' शब्दों की आवृत्ति भाषा के अलंकरण में सहायक हुई है। प्रसाद जी ने शब्दों की अनुप्रासमयी आवृत्ति के माध्यम से भाषा में नाद संगीत की सृष्टि की है। निराला ने भी 'विश्व', 'नभ', 'कानन' शब्द की आवृत्ति से भाषा को नूतन रूप प्रदान किया है। उन्होंने अन्तिम उदाहरण में 'ज' और 'न' व्यंजन तथा 'जननि' शब्द की आनुप्रासिक योजना से अपनी अद्वितीय काव्य-शैली का परिचय दिया है। दोनों कवियों ने भाषा में प्रवाह तथा प्रभविष्णुता के हेतु अनुप्रासानुकूल वर्ण एवं शब्द का विधान किया है। 'कारण' अनुप्रास भावावेग में नृत्य का छंद जोड़ता है, जब एक ध्वनि बार-बार दुहराई

१- प्रसाद : लहर, पृ० १-२ । (२) श्री निराला : अर्चना, पृ० ६४ ।

३- निराला : गीतिका, पृ० ८३ ।

जाती है तो श्रोता उसकी ही वक्रिमता से सहज ही प्रभावित हो जाता है।[1] संगीत की सृष्टि के हेतु प्रयुक्त अनुप्रास योजना का रूप प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में अधिक उपलब्ध है। सामासिक तथा संश्लिष्ट भाषा-विधान में भी अनुप्रासगत वर्ण मैत्री का जो कलात्मक प्रयोग निराला ने किया है, उसे तद्युगीन अन्य कवि नहीं कर सके।

ध्वनि-चित्र : ध्वन्यात्मक चित्र के प्रस्तुतीकरण में व्यंजन-मैत्री तथा अनुकरणमूलक वर्ण चमत्कार की प्रधानता होती है। 'भाषा को सजीव बनाने के लिए ऐसे ध्वन्यात्मक शब्दों की आवश्यकता होती है जो बोलते हों ------ जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों।'[2] ध्वननकारी शब्दों का इस प्रकार विन्यास करना कि अभिव्यक्त भाव चित्रवत् प्रतीत हों, प्रसाद और निराला के भाषा की अनुपम विशेषता है। इस भाँति के प्रयोग में प्रसाद की अपेक्षा निराला अधिक सफल हुए हैं। उन्हें वर्ण-चमत्कार तथा ध्वन्यात्मकता का अपूर्वज्ञान था। जिसका परिचय निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है -

वर्ण चमत्कार ;
एक-एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार।
पद-पद तक चली भाव-धारा,
निर्मल कल-कल से बँध गया विश्व सारा,
खुली मुक्ति बंधन से बँधी फिर अपार-वर्ण चमत्कार।[3]

इस प्रकार निराला काव्य में अनुस्यूत एक-एक शब्द के ध्वनिमय साकार रूप को महत्ता देते थे। इसके लिए उन्होंने अनुकरणमूलक वर्ण-चमत्कार की सृष्टि को अनिवार्य बताया। निराला को ध्वन्योत्पादक शब्दों के प्रयोग से भावधारा को मूर्त करने की कला ज्ञात थी।

प्रसाद के काव्य में कोमल तथा मधुर ध्वनियों का ध्वन्यात्मक चित्र दृष्टव्य है -

कल-कुल कुल-कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा।[4]

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का मर्म, पृ० ४१।
२- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव(प्रवेश) (३) निराला : गीतिका, पृ० ६२
४- प्रसाद : लहर, पृ० १६।

यहाँ पर कवि ने पक्षियों की वाणी को कुल कुल या चौल रत्न लिपिबद्ध करके काव्यात्मक भाषा को सस्वर बनाया है। पक्षियों का कलरव साकार रूप से श्रुति माधुर्य की सृष्टि करता है। यहाँ पर अनुप्रास का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। इस प्रकार वर्ण मैत्री पर आधृत प्रात: कालीन पक्षियों का कलरव और किसलय का अंचल डोलना (मंद मंद समीर चलना) आँख और कान दोनों को ही आनन्दाभिभूत करता है। निराला का काव्य ऐसे नाद व्यंजक प्रयोगों से भरा पड़ा है, यथा -

नूपुरों में भी रुन-झुन रुन-झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा, चुप-चुप-चुप
है गूँज रहा सब कहीं-[1]

यहाँ पर कवि ने वर्ण मैत्री के आधार पर कोमल ध्वनिव्यंजक भावों की अभिव्यक्ति की है। निराला के काव्य में ऐसे सुकोमल नाद संगीत के साथ ही बादल के उदात्त एवं भव्य रूप का भी ध्वनि-चित्र मिलता है यथा -

झूम- झूम मृदु गरज गरज घन घोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !
झर झर झर निर्झर- गिरि- सर में,
घर मरु तरु मर्मर, सागर में,

--- --- ---

धंसता दल-दल, हंसता है नद खल - खल
बहता कहता कुलकुल कलकल कलकल ।[2]

यहाँ पर कवि ने गरजते हुए बादलों का शब्दों के माध्यम से जो चित्र खींचा है, क्षण भर के लिए सहृदय, उसकी ध्वनि तथा प्रवाहित जल की कलकल आवाज में खो जाता है। यहाँ पर पदयोजना से ध्वनित शब्दार्थ विषयवस्तु को मूर्तरूप देने में सहायक हुआ है। इस प्रकार नाद संगीत से युक्त वर्णों- पदों के माध्यम से चित्रित भावों को सफलतापूर्वक ग्राह्य बनाकर सहज आस्वाद्य बनाया जा सकता है।

निष्कर्षत: प्रसाद और निराला ने अपनी काव्य-भाषा को सजीव और अलंकृत बनाने के लिए हर संभव प्रयत्न किया है। इन प्रयत्नों में भाषा की

१- निराला : परिमल (संध्या सुन्दरी) पृ० १२६ ।
२- ,, ,, (बादलराग) पृ० १६०-६१ ।

संगीतात्मक नादपरकता विशेष महत्वपूर्ण है। भाषा को सशक्त बनाने में प्रसाद की अपेक्षा निराला का अधिक योगदान रहा है। कारण, उनकी सजगता तथा संगीतप्रियता है। प्रसाद और निराला ने भाषा के सौष्ठव को द्विगुणित करने के हेतु काव्य में नाद-संगीत की सृष्टि की है, जिसमें अनुप्रासगत वर्ण मैत्री और विभिन्न ध्वनिव्यंजक शब्दों के कलात्मक विधान को भी महत्व दिया गया है।

<u>लय-संगीत</u>

भाषा की सज्जा में कलात्मक अनुरणनमय शब्द संगीत का विशेष योग रहता है। लय की निष्पत्ति गति, प्रवाह और यति, विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। लय का स्वरूप तत्वतः आवृत्तिमूलक है तथा उसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में है।"[1] कविता में लय संगीत की सृष्टि काल सापेक्ष होती है। यह वांछित शब्दों का वह गुण है जो भाषा को सहज ग्राह्य बनाता है। भाषा को श्रुतिमधुर एवं सजीव बनाने में लय यति एवं गति का विशेष महत्व है। प्रसाद और निराला को भाषा के इस अमूर्त एवं सूक्ष्म तत्व का विशेष ज्ञान था। कारण, उन्होंने भाषा को स्वानुभूति के स्तर पर ग्रहण किया था। लय-संगीत की सृष्टि के लिए अनेक उपकरणों में से पदावृत्ति का कलात्मक विधान ही इन कवियों को अधिक स्वीकार्य था।

भाषा में लय एवं गति के वेग को उत्पन्न करने के लिए इन कवियों ने अधिकतर पुनरुक्ति पद्धति का अवलम्ब लिया है, यथा -

छिल-छिल कर छाले फोड़े मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर वह रह जाते आँसू करुणा के कण से।[2]

नव-गति, नव-लय, ताल-छन्द नव,
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्र रव ;
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर नव स्वर दे।[3]

मधुर भावों की पुनरुक्ति द्वारा संगीतमय रूप प्रदान करने की प्रवृत्ति शब्दों में लयावेष्ठित कम्पन तथा प्रवाह उत्पन्न करने में सफल रही।

१- हिन्दी साहित्य कोश (भाग १) पृ० ७४९ ।
२- प्रसाद : आँसू, पृ० ७ ।
३- निराला : गीतिका, पृ० ३ ।

शब्द संगीत की सृष्टि के लिए प्रसाद और निराला ने वीप्सागत आवृत्तियों का विधान भी किया है -

इस [illegible] ताप से झंकार
सुन आओगे - आओगे ।[1]

यहाँ पर 'आओगे' शब्द आत्मविश्वास तथा निश्चयादि बोधक होने के कारण ध्वनि क्रम एवं गति की सृष्टि में भी समर्थ है ।

भाषा को लयात्मक तथा सस्वर बनाने के लिए कहीं-कहीं पर इन कवियों ने एक शब्द के आधार पर दूसरे शब्द का निर्माण भी किया है । यद्यपि इस प्रकार का विधान व्याकरण के अन्तर्गत आता है । फिर भी, इससे भाषा प्रवाह तथा लय की सृष्टि हुई है, यथा -

व्यर्थ तृष्णा जीवन तर भार ;
देता [illegible], वस्तु
वस्तुत: असार ;[2]

भाषा में संगीतमय क्रम की सृष्टि के लिए इन कवियों ने श्लेष, यमक आदि शब्दालंकारों का भी आश्रय लिया है । इनके युग में अलंकार वाणी की सजावट के लिए नहीं वरन् भाव की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने लगे थे । अत: भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए श्लेष आदि अलंकारों का भी विधान हुआ है, यथा-

है स्नेह सरोज हमारा विकसा मानस में पूरा ।[3]

इन्द्रनीलमणि महाचषक था सोम रहित उलटा लटका ।[4]

लातों के नीचे पड़ी जनता कलतोड़ हुई ।
पाठ के हलाल से वैसा हुए दैत के ।[5]

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० ३१ ।
२- निराला : गीतिका, पृ० ५६ ।
३- प्रसाद : आंसू, पृ० २४ ।
४- ,, : कामायनी (आशासर्ग) पृ० ३२ ।
५- निराला : नये पत्ते (तारे गिनते रहे) पृ० ३४ ।

इन उद्धरणों में 'मानस', 'गोभ' तथा 'कलतोड़' शब्द श्लेषार्थी हैं। 'मानस' शब्द पुष्प और मन; 'गोभ' शब्द अंकुरण और गोभिराम तथा 'कलतोड़' शब्द लाठ टूटने और शक्ति क्षीण होने के अर्थ को प्रकट करते हैं। इस प्रकार प्रसाद और निराला ने चमत्कार सृष्टि के लिए श्लेषालंकारपरक शब्दों का विधान भी किया है, यद्यपि ऐसे प्रयोग उनके काव्य में कम ही मिलते हैं। भाषा को सरल तथा वैचित्र्यपूर्ण बनाने के हेतु यमक मय शब्दों का विधान भी हुआ है -

हम प्रेम-मतवाले हों, तन मन मतवाले हों।[1]

जीते हुए भी जीते हुए गले,
नभ तक विश्व में गूंजा दिव्य गान।[2]

जनता का जन-ताता ज्ञान वह।[3]

कथन में सौन्दर्य लाने तथा भाव को चमत्कारिक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ही प्रसाद और निराला ने इन अलंकारों को प्रयुक्त किया है। भावावेग की अभिव्यक्ति तथा अनुभूति की लय संवलित व्यंजना में दोनों कवियों को सफलता मिली है। किन्तु निराला इस कला में प्रसाद की अपेक्षा अधिक सिद्ध हस्त हैं। 'शब्द संगीत परखने और व्यवहार में लाने में वे आधुनिक हिन्दी के दिशानायक हैं।[4]

चित्रमयता

भाषा द्वारा भावों का चित्रांकन काव्य-भाषा का अपरिहार्य तत्व है। भाषा के इस विशिष्ट गुण से शैली में सौन्दर्य वृद्धि के साथ सजीवता का भी समावेश होता है। कवि की अनुभूति, चिंतना तथा कल्पना को चित्र-मूर्त करनेवाला यह तत्व प्रसाद और निराला के भाषागत सौष्ठव का सद्गुण है। बिम्ब-विधान के मूल में भी प्राय: यही तत्व रहता है। किन्तु, भाषा के अलंकरण हेतु इन कवियों की रचनाओं में कुछ भिन्नरूप में भी चित्रोपम विधान हुआ है। मानव-मन की सुकोमल तथा अमूर्त भावनाओं से लेकर रम्य प्रकृति तक को मूर्तिमन्त करने में ये अधिक सफल हुए हैं। मनोवृत्तियों का सफल चित्रांकन द्रष्टव्य है -

---

१- प्रसाद : काननकुसुम (भक्तियोग) पृ० ३१।
२- निराला : अपरा (जागा दिशा ज्ञान) पृ० ३१।
३- ,, : अनामिका (सच है) पृ० ४४।
४- नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य बीसवीं शती, पृ० १४१।

गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक ।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदंब सा था भरा गदगद बोल ।[1]

यहाँ समर्पणरत नारी के मुख पर झलकने वाली भाव-भंगिमाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रांकन करने में प्रसाद जी सफल हुए हैं । सहृदय काव्यास्वादन के समय शब्दों का आनन्द केवल पढ़कर या सुनकर ही नहीं उठाता बल्कि वर्ण्य को अपनी आँखों के सामने चित्रवत् साकार देखता भी है । यह विशेषता प्रसाद के अतिरिक्त निराला के काव्य में भी मिलती है, यथा -

चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख-छल,
कभी हास, फिर त्रास, सांस-बल
उर-सरिता उमगी ।[2]

इस प्रकार प्रसाद और निराला को शब्दों से अन्तर्बोध का अद्भुत ज्ञान था । जो कुछ भी ये कवि कहना चाहते थे, उसे सुनियोजित शब्दों के विधान से चित्रमूर्त कर देते थे । किन्तु, इन्होंने इस प्रतिभा का उपयोग इन कविताओं में भाषा को सजीव-साकार बनाने के लिए ही किया है, चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं । भावचित्र के अतिरिक्त प्रतीकात्मक शब्द-चित्र का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा !
हरी-भरी-सी दौड़-धूप , ओ जल-माया की चल रेखा ![3]

यहाँ पर कवि ने 'अभाव की चपल बालिके', 'ललाट की खल लेखा' तथा 'जल-माया की चल रेखा' कहकर चिन्ता को शब्द-मूर्त किया है । शब्द-चित्र का उत्कृष्ट उदाहरण निराला की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं -

---

१- प्रसाद : कामायनी (वासनासर्ग) पृ० १०२

२- निराला : गीतिका, पृ० ३३

३- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १३

ऐ उद्दाम !

अपार कामनाओं के प्राण !

बाधारहित विराट !

ऐ विप्लव के प्लावन !

--- --- ---

सिन्धु के अश्रु !

धरा के खिन्न दिवस के दाह !

बिदाई के अनिमेष नयन ![1]

इस उद्धरण में कवि ने 'ऐ उद्दाम', 'अपार कामनाओं के प्राण' 'बाधा रहित विराट' आदि शब्दों के संयोजन से बादल की विराटता, भव्यता तथा उदात्तता का चित्र खींचा है। वर्णन प्रधान कवि होने से भावों वस्तु तत्व को सार्थक चित्रों के माध्यम से रूपायित करने में निराला पूर्णतः सफल हुए हैं। उनकी 'संध्या सुन्दरी'[2] तथा 'प्रिय यामिनी जागी'[3] आदि कवितायें शब्द-चित्र का सुन्दर उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अलसायी हुई दृग बंद किये शिथिल पत्रांक पर सोई हुई 'जुही की कली' के पास उपवन-सर सरित गहन-गिरि-कानन' को पार कर आनेवाले नायक का पहुंचना और फिर-

निर्दय उस नायक ने

निपट निठुराई की,

कि झोंकों की झड़ियों से

सुन्दर सुकुमारदेह सारी झकझोर डाली,

मसल दिये गोरे कपोल गोल ;

चौंक पड़ी युवती,[4]

यहाँ पर कवि ने क्रीड़ारत नायक-नायिका के जिन क्रिया-कलापों का चित्रण किया है, वे शाब्दिक चमत्कार के कारण मानस-चक्षुओं में सहसा साकार हो उठते हैं।

१- निराला : परिमल (बादलराग) पृ० १६१-६२

२- ,, : ,, पृ० १२६ ।

३- ,, : गीतिका, पृ० ४ ।

४- ,, : परिमल (जुही की कली) पृ० १७२ ।

निकले कमल सरों में और कुरंकुर उभरे
आये खग ; ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर उभरे ।[1]

लक्षणा : वाच्यार्थ के असमर्थ होने पर अर्थ की निष्पत्ति के लिए जिस शब्द शक्ति का आश्रय लिया जाता है, वह लक्षणा है । प्रसाद और निराला ने लक्षणा शक्ति का आश्रय लेकर भाषाभिव्यक्ति में अपूर्व सफलता प्राप्त की है । लक्षणा प्रयोग उनके काव्य में अधिक हुआ है । लक्षणा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

रूढ़ि लक्षणा -

है उंचा आज मगध-शिर -[2]
गरजता है पंचनद आज अति शोक में ।[3]
फूलों की सेज पर सोए थे ।[4]

प्रथम और द्वितीय उदाहरण में 'मगध शिर' और 'गरजता है पंचनद' से तात्पर्य मगध तथा पंचनद के निवासियों से है । यहाँ पर मुख्यार्थ बाधित है और अर्थ को जिसके माध्यम से समझा गया है वह है लक्ष्यार्थ । इसी प्रकार तीसरे उदाहरण में भी फूलों की सेज का लक्ष्यार्थ सुकोमल शय्या है । इन समस्त लक्ष्यार्थों को रूढ़ि से चले आए हुए अर्थ के आधार पर समझा जा सकता है अतः यहाँ रूढ़ि-लक्षणा है । प्रसाद और निराला ने रूढ़ि लक्षणा का विधान कम ही किया है ।

गौणी लक्षणा -

विश्व ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहु रंग-भाव भर
शिशिर ज्यों पत्र पर कनक प्रभात के,
किरण-सम्पात से ।[5]

पत्र स्थित शिशिर बिन्दुओं को जैसे स्वर्ण-किरणें विविध आकर्षक रंगों से रंग देती हैं वैसे ही यौवन सुलभ मुग्धा भाव अपने संस्पर्श से संपूर्ण

१- निराला : नये पत्ते (देवी सरस्वती) पृ० ६१ ।
२- प्रसाद : लहर (अशोक की चिंता) पृ० ५२ ।
३- प्रसाद : लहर (शेरसिंह का शस्त्र समर्पण) पृ० ६१ ।
४- निराला : परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र) पृ० २०८ ।
५- निराला : अनामिका (प्रेयसी) पृ० १ ।

विकल को आनन्दित करता है। इस लक्ष्यार्थ को अंकित करने में गुण साम्य का आश्रय लिया गया है जिससे यहाँ गौणी लक्षणा है।

प्रयोजनवती लक्षणा -

बाँधा था विधु को किसने
इन काली ज़ंजीरों से,
मणिवाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से।[1]

कवि ने विशेष प्रयोजन की सिद्धि के हेतु प्रयोजनवती गौणी लक्षणा का आश्रय लिया है। यहाँ प्रयोजनवशात् उपमान में उपमेय का अध्यवसान हो गया है और मुख्यार्थ के बाधित होने से लक्ष्यार्थ द्वारा अर्थ की प्रतीति होती है जिससे यहाँ प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

उपादान लक्षणा : उठती है नग्न तलवार [illegible] ।[2]

इस उदाहरण में उठती है तलवार [illegible] लक्ष्यार्थ युद्ध करनेवाले वीरों की ओर संकेत करता है। किन्तु यहाँ मुख्यार्थ बाधित होने के बाद भी लक्ष्यार्थ के रूप में तलवार बना रहता है। अतएव, प्रयोजनवती साध्यवसाना उपादान लक्षणा है।

[illegible] लक्षणा -

झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी, नीरद माला,
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला।[3]

तोड़ो यह शृंखला
पाप पराधीनता का
फेंको दूर।[4]

उपर्युक्त उदाहरणों में झंझा, झकोर, गर्जन, बिजली, नीरदमाला आदि शब्द अपने मुख्यार्थ को छोड़कर मानसिक संघर्ष की भीषणता,

---

१- प्रसाद : आँसू, पृ० १७ ।
२- निराला : परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र) पृ० २०७ ।
३- प्रसाद : आँसू, पृ० ११ ।
४- निराला : परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र) पृ० २१७ ।

विशिष्ट नहीं सार्थकता समझनी चाहिए। यहाँ दृष्टान्त के माध्यम से वाच्यार्थ के साथ ही व्यंग्यार्थ ध्वनित हो रहा है इसलिए यह संलक्ष्य क्रम दृष्टान्त अलंकार ध्वनि का भी सफल उदाहरण कहा जाएगा।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना - जल उठा स्नेह, दीपक सा
नवनीत हृदय था मेरा
अब शेष धूम-रेखा से
चित्रित कर रहा अंधेरा।[1]

आलोच्य कवियों के काव्य में लक्षणा और व्यंजना का अधिकांशतः एक साथ प्रयोग हुआ है। यहाँ पर प्रथम दो पंक्तियों में उपमान और उपमेय का अभेद मात्र होने से प्रयोजनवती सारोपा लक्षणा है और अन्तिम दो पंक्तियों में उपमेय का उपमान में अध्यवसान हो जाने से प्रयोजनवती साध्यवसाना लक्षणा है। कवि ने स्नेह, दीपक, नवनीत, हृदय, धूमरेखा जैसे लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग से प्रेम के वियोगजन्य दुःख, निराशा तथा व्याकुलता को व्यंजित किया है, अतः यहाँ लक्षणा मूला शाब्दी व्यंजना की सृष्टि हुई है। प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में इसका प्रयोग अधिक हुआ है। निराला के काव्य में लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना -

खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगन्ध के,
प्रथम वसन्त में गुच्छ- गुच्छ।
दृगों को रँग गई प्रथम प्रणय-रश्मि -[2]

उपर्युक्त पंक्तियाँ लक्षणाश्रित व्यंग्यार्थ को ध्वनित करती हैं। तरुणी के मुग्धाभाव की सांकेतिक व्यंजना में कवि को सफलता भी मिली है। 'प्रथम वसन्त' नए यौवन का और प्रथम सुगन्ध को विकीर्ण करनेवाले पुष्पों के गुच्छ-गुच्छ यौवन-सुलभ मदोन्माद का सूचक है। यहाँ उपमान में उपमेय का अध्यवसान हो गया है, इससे गौणी साध्यवसाना लक्षणा है। इसके साथ ही तीसरी पंक्ति में प्रणय पर रश्मि का आरोप होने से सारोपा लक्षणा है। इन लाक्षणिक प्रयोगों के माध्यम से

१- प्रसाद : आँसू, पृ० २६।
२- निराला : अनामिका (प्रेयसी) पृ० १।

नव यौवन के आगमन से यौवन-कुसुम-सुगन्धकारी भावों का बोध होता है जिसके संस्पर्श मात्र से समस्त विश्व पुलकायमान हो उठता है। अत: यौवनभाव को व्यंजित करनेवाली उपर्युक्त पंक्तियाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

आर्थी व्यंजना : प्रसाद और निराला के काव्य में व्यंजित व्यंग्यार्थ शब्दों तक ही सीमित न होकर शब्दों से निःसृत अर्थ में भी निहित मिलता है जैसे -

मैं आती तू रूठ न जाय कहीं मैं तुझे मना[1]

इन पंक्तियों के माध्यम से श्रद्धा के मन में छिपे हुए भय का बोध होता है कि कहीं मनु भी उसके अपने पुत्र मानव की तरह रूठ न जाएं। अतएव, यहाँ वाच्य संभवा आर्थी व्यंजना है। वाच्यार्थ द्वारा व्यंग्यार्थ व्यंजित होने से यह असंलक्ष्यक्रम काव्यध्वनि का उदाहरण भी है। निराला के काव्य में भी आर्थी व्यंजना के उदाहरण अप्राप्य नहीं हैं, यथा -

------------ याद आया उपवन
विदेह का, - प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का - नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण-
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-- पतन, -
कांपते हुए किसलय, - झरते पराग- समुदाय-
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय, - ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन - कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।[2]

यहाँ पर कवि ने देशकाल को शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया है और राम को अतीत की याद आती है। 'कांपते हुए किसलय', 'झरते पराग समुदाय' शब्दार्थ कम्पित अधरों तथा प्रेम-भाव-वर्षण के भी द्योतक हैं अत: यहाँ पर देशकाल वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य संभवा आर्थी व्यंजना है।

इसी प्रकार - उनके पद में कौतूहल के
मेरा सूना है गुफा-द्वार[3]

१- प्रसाद : कामायनी (स्वप्न सर्ग) पृ० १८७ ।
२- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५९ ।
३- प्रसाद : कामायनी (ईर्ष्या सर्ग) पृ० १५२ ।

यहाँ पर श्रद्धा के हृदय में जागृत पुन-कामना का भाव अंकित होता है। वह इच्छा के कारण स्पष्ट रूप से नहीं कह पाती फिर भी वक्रोक्ति के माध्यम से अपने गुफा-गार का सूनापन व्यक्त कर देती है कि उसे अपने एकाकी क्षणों को व्यतीत करने के लिए एक और साथी चाहिए। जिससे यहाँ वक्रोक्ति-स्फूर्त्योत्पन्न अर्थ गम्भीर भावों व्यंजना है।

प्रसाद और निराला ने काव्य-भाषा में रसात्मकता, चित्रात्मकता तथा अर्थबिम्बों की सृष्टि के लिए अभिधार्थ अपेक्षा लक्षणा तथा व्यंजना शक्ति के प्रयोग पर अधिक बल दिया। भाषा की अर्थ व्यंजकता को सुनियोजित तथा चित्रवत करने के हेतु प्रसाद के काव्य में उसका विधान मिलता है। निराला का काव्य अवश्य ही भावाभिव्यंजक प्रयोगों से दुरूह, अस्पष्ट तथा आलंकारिक हो गया है किन्तु इससे उनके भाषा-पांडित्य और भाषा पर एकाधिकार को किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचता। दोनों कवियों के गहन चिन्तन, अनुभूति एवं भावना के प्रतिफलन स्वरूप भाषा को गहन एवं अर्थव्यंजक शक्ति प्राप्त हुई है।

प्रतीकात्मकता

सजग कवि काव्य में अभीप्सित अर्थ की व्यंजना के लिए ऐसे शब्दों का विधान करता है जो अमूर्त भावों एवं विचारों को व्यक्त करने में समर्थ हों। वसु महोदय ने लिखा है, "प्रतीक निवासमात्र दीर्घ। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है अवयव, अंग, पता, चिह्न, निशान। किसी पद्य अथवा गद्य के आदि या अन्त के कुछ शब्द लिखकर या पढ़कर उस पूरे वाक्य का पता लगाना।"[1]

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा, कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समरूप वस्तु के द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है।[2] अभिव्यंजना की यह प्रणाली हिन्दी साहित्य की नूतन उपलब्धि न होकर प्राचीन साहित्य

१- विश्वकोश - नगेन्द्र नाथ वसु, भाग १४, पृ० ५४६।
२- हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ५५५।

भी अनुवर्तिनी है। एक बात और है कि इनके प्रस्तुतीकरण में आलोच्य कवियों ने जिस मौलिकता का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है।

इन्साइक्लोपीडिआ ब्रिटेनिका के अनुसार प्रतीक शब्द का प्रयोग किसी ऐसी प्रत्यक्ष या गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो मन में किसी अप्रस्तुत वस्तु की अनुभूति, उस वस्तु के साथ अपने सादृश्य के अनुभव सम्बन्ध के कारण लाता है।[1] इस प्रकार प्रतीक योजना द्वारा अमूर्त एवं अदृश्य को मूर्त एवं दृश्य रूप प्रदान किया जाता है और उसके लिए सादृश्य, साधर्म्य तथा प्रभाव-साम्य आदि का होना अपेक्षित है।

कवि प्रतीकों के माध्यम से अदृश्य तथा अमूर्त को दृश्य तथा मूर्त बनाता है। वास्तव में प्रतीक का सम्बन्ध शब्द-शक्ति की व्यंजना-शैली से है। अतः साहित्य में अर्थ की विपुलता के लिए प्रतीक सदैव प्रयुक्त होगा। जिस प्रकार मधु का एक बिन्दु असंख्यों पुष्पों की सुगन्धि एवं मकरंद का संश्लिष्ट रूप है, उसी भाँति एक प्रतीक अनेकानेक मानव जगत और वस्तुजगत के कार्य-व्यापारों का संकलन है। अतः साहित्य के विकास में मंत्र से लेकर आत्म-बोध की अनेकानेक भावनाएं भी प्रतीक द्वारा उद्बुद्ध हुई हैं। प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का संपोषण है।[2]

आध्यात्मिक प्रतीक सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला वह उपकरण है, जो अलौकिक से लेकर भौतिक जगत तक के मनोव्यापारों एवं अन्तर्लीलाओं को साहित्यिक शब्दावली के माध्यम से बोधगम्य बनाता है। काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों का अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। भाषा की अभिव्यक्ति को समृद्ध बनाने में प्रतीकों का विशेष योगदान होता है। अतएव, उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए संकेत और बिम्ब के साथ उसके पारस्परिक अंतर से अवगत होना अनिवार्य है।

<u>प्रतीक और संकेत :</u> इन दोनों में अप्रस्तुत तत्त्व की महत्ता होती है, जिससे इन्हें एक ही शब्द एवं अर्थ का पर्याय माना जाता है। किन्तु तत्त्वतः दोनों में अन्तर है -

---

१- 'The term (Symbol) given to a visible object represents to the mind the resemblance of something which is not shown but realised by association with it'.

Encyclopaedia of Britannica. Vol. XXVI. P.284.

२- रामकुमार वर्मा : साहित्य-शास्त्र (साहित्य की शैली) पृ० १९८।

जब परोक्ष या अज्ञात वस्तु को स्पष्ट करने के लिए किसी प्रत्यक्ष या ज्ञात वस्तु का चित्रण किया जाता है, वहाँ उस चित्र को प्रतीक कहा जाता है और जब किसी प्रत्यक्ष किन्तु सूक्ष्म और भावात्मक सत्ता की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सामान्य और स्थूल वस्तु के चित्रण द्वारा होती है तो उसे संकेत कहते हैं।"[1] इस प्रकार एक भाव के पर्याय होते हुए भी प्रतीक और संकेत भिन्न-भिन्न हैं। प्रतीक जहाँ अप्रस्तुत को व्यक्त करते हैं वहाँ संकेत उसकी ओर इंगित मात्र करके समाप्त हो जाते हैं। इसके साथ ही प्रतीक और संकेत एक दूसरे के पूरक हैं। प्रतीकों का अतिशय प्रयोग एवं पुनरावर्तन ही उन्हें संकेत का रूप प्रदान कर देता है और संकेतों में समाविष्ट नूतन अर्थ की व्यापकता उन्हें प्रतीक बना देती है। फिर भी, इस व्यावहारिक समता के अतिरिक्त दोनों में सैद्धांतिक भिन्नता है।

<u>प्रतीक और बिम्ब</u> : दोनों अत्यधिक निकटवर्ती शब्द होते हुए भी परस्पर भिन्न हैं। प्रतीक अमूर्त सत्य को मूर्त रूप प्रदान करने के कारण इन्द्रियग्राह्य नहीं होता जबकि बिम्ब चित्रात्मक व्यंजना के कारण इन्द्रियग्राह्य होता है। प्रतीक की अर्थ व्यापकता बिम्ब की अपेक्षा अधिक समृद्ध होती है। बिम्ब किसी एक अर्थ को ही व्यक्त करते हैं किन्तु प्रतीक किसी वस्तु के चिन्ह रूप में प्रयुक्त होने से संपूर्ण एवं विशद अर्थ को व्यंजित करते हैं। फिर भी प्रतीक अपने मूल में बिम्ब ही होता है। बिम्ब ही प्रयोगाधिक्य से प्रतीक हो जाता है, वह चित्रता की इन्द्रिय ग्राह्य एवं संवेदनात्मक शक्ति से युक्त हो पर उसका पर्यवसान प्रतीकात्मक शब्दों की व्यंजना शक्ति में ही होता है।

काव्य में प्रतीक शैली का प्रयोग प्राचीनकाल से होता आ रहा है। किन्तु आलोच्य कवियों के काव्य में प्रतीक योजना का आधार अंग्रेजी का 'सिम्बल' शब्द है। जिसके प्रस्तुतीकरण में अंग्रेजी शैली का पुट आ गया है। इनके प्रतीक अमूर्त भावों के अतिरिक्त मस्तिष्क में सुप्त विचारों एवं भावों को भी जाग्रत कर सजीव बनाते हैं। वास्तव में प्रतीक का प्रयोग कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों की व्यंजना के लिए होता है। इस दृष्टि से प्रसाद और निराला के गहन एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को कुछेक शब्दों के माध्यम से सहज शैली में प्रस्तुत करनेवाले प्रतीक

१- डा० शम्भु नाथ सिंह : छायावाद युग (युंग के आधार पर) पृ० ६५

अत्यधिक उपयोगी है। दोनों कवियों ने अपने काव्य में अव्यक्त एवं दुरूह को व्यक्त दृश्य बनाने के लिए जिन प्रतीकों की रचना की है उसके दो प्रमुख रूप उपलब्ध हैं। एक परम्परागत प्रतीक, दूसरा-नूतन अथवा मौलिक प्रतीक।

परम्परागत प्रतीक : प्रसाद और निराला के काव्य में चिरपरिचित अर्थों का भावन करनेवाले जिन शब्दों का विधान हुआ है वे परम्परागत प्रतीक ही माने जायेंगे। इनसे काव्य में सौन्दर्यवर्द्धन के साथ ही अर्थ में गंभीरता का समावेश भी हुआ है, यथा -

मुझको काँटे ही मिले धन्य !
हो सफल तुम्हें ही कुसुम कुंज।[1]
डोलती नाव, प्रखर है धार
संभालो जीवन- खेवनहार
तिर-तिर फिर-फिर प्रबल तरंगों में घिरती है
डोले पग जल पर डगमग-डगमग फिरती है
टूट गई पतवार - जीवन खेवनहार।[2]

उक्त उदाहरणों में काँटे विषमताओं का, कुसुम सुख एवं ऐश्वर्य का तथा नाव, धार, खेवनहार, प्रबल तरंग और पतवार आदि जीवन, विश्व, ईश्वर, कामोक्षा तथा आस्था का प्रतीक है। चिरपरिचित होने के कारण प्रसाद और निराला द्वारा प्रयुक्त ये प्रतीक उनकी मौलिक देन न होकर साहित्य की परंपरागत संपत्ति है। इन कवियों के काव्य में यथावसर भ्रमर (प्रेमी), कमल (माधुर्य युक्त सौन्दर्यपरक भावना) कुमुदिनी (मुक्तहास) चातक (निस्वार्थ प्रेम) आदि परंपरागत प्रतीकों का विधान हुआ है जो जीवन के चिरंतन मूल्यों एवं भावाभिव्यक्ति की अनिवार्यता हेतु समय-समय पर काव्य में प्रयुक्त हुए हैं।

नूतन एवं मौलिक प्रतीक : अभिव्यंजना शिल्प पर पूर्ण अधिकार होने से प्रसाद और निराला ने भावनाओं, कल्पनाओं तथा मनोविकारों को अभिव्यक्त करनेवाले नव्य प्रतीकों

१- प्रसाद : कामायनी , पृ० १६२
२- निराला : परिमल, पृ० ३० ।

की भी रचना की है । इन कवियों के काव्य में प्राप्त प्रतीकों के दो रूप हैं । एक तो वे पुरातन प्रतीक हैं, जो परिवेश के क्रमिक परिवर्तन के कारण नये संदर्भ में प्रयुक्त हो नयी अर्थ भंगिमा से दीपित हो उठे हैं जैसे - 'गुलाब' परम्परागत प्रतीक ही है किन्तु निराला ने अर्थ विस्तार को समृद्ध बनाने के हेतु उसे पूंजीपति शोषक वर्ग का प्रतीक बना दिया । ऐसे ही 'नलिनी' शब्द भी इन कवियों के काव्य में प्रसार वृत्ति वाले प्रेमी का प्रतीक न होकर त्यागीवृत्ति के प्रेमी का प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुआ है । दूसरा रूप नौतिक प्रतीकों का वह है, जो मूलत: इन्हीं द्वारा निर्मित है यथा - अभिलाषा का यौवन - (उद्दाम भावना) अरुण सवेरा (उन्माद)[1] नीलनिलय (हृदय) क्षितिज पटी (आंखों की पुतली) नीलम की नाव (काली पुतली) तृषित जलधि (प्यासी आंख)[2] वर्षा के मेघ (प्रसन्नता) मेघ का शिशु (उन्मुक्त रूप से क्रीड़ारत बादल) जुही की कली (आत्मा) कोकिला (जाव)[3] कुकुरमुत्ता (सर्वहारा तथा शोषित वर्ग) आदि प्रतीक सर्वथा नौतिक हैं ।

प्रसाद और निराला द्वारा कल्पित्र्रण करानेवाले प्रयुक्त परम्परागत एवं नूतन प्रतीकों को, जो निरन्तर प्रवहमान जीवन के क्रमिक परिवर्तन एवं राजनीतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक संदर्भों को अर्थ विस्तार के साथ पुराने तथा नए परिवेश में अभिव्यंजित करते हैं, विवेचन की सुविधा के लिए तीन प्रमुख रूपों में बांटा जा सकता है ।

१) प्राकृतिक प्रतीक

२) सांस्कृतिक प्रतीक

३) मनोवैज्ञानिक प्रतीक

प्रसाद और निराला के परम्परागत तथा नूतन प्रतीकों को यहां पर विस्तार के भय से हम उपर्युक्त तीनों प्रकारों के अन्तर्गत एक साथ ही विवेचित करेंगे और यथा प्रसंग उनकी नवीनता तथा प्राचीनता का वर्णन भी करते रहेंगे ।

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० १०८, १२८

२- ,, : आंसू , पृ० १८

३- निराला : परिमल, पृ० ५,१६०,१६४,१७०,१७२

(.) प्राकृतिक प्रतीक :

प्रकृति के प्रांगण में जन्म लेनेवाले कवि के काव्य में प्राकृतिक शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग अत्यधिक स्वाभाविक है। उसका खान-पान, आमोद-प्रमोद, शयन-वास आदि दैनिक उपयोग प्रकृति के मध्य ही होता है, जिससे भावाभिव्यंजना में उनकी प्रतिच्छाया अनिवार्य है यथा -

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे सूखी-सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में।[१]
गये सब पराग, नहीं भ्रात;
शून्य डाल, रात अन्धरात,
आयेगा फिर क्या वह प्रात,[२]

यहाँ पर 'पतझड़' अभाव का 'झाड़' शुष्कता का, 'सूखी फुलवारी' नीरस हृदय का, 'किसलय' प्रियतम की सहृदयता एवं कोमलता का और 'क्यारी' कवि के हृदय का प्रतीक है। इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में 'पराग' 'शून्य डाल' 'अन्धरात', 'प्रात' आदि शब्द दुर्भाग्य, विषाद, नैराश्य तथा सुख आदि के प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुए हैं। प्रसाद और निराला ने प्रतीकों के परंपरागत रूप को प्रयुक्त कर उत्कृष्ट तथा भावात्मक चित्रों को सजीव रूप प्रदान किया है। जो रूप, गुण और धर्म के साम्य से प्रभावान्विति में सफल है।

प्रसाद और निराला के काव्य में नूतन प्राकृतिक प्रतीकों का विधान भी अत्यधिक कलात्मक ढंग से हुआ है, यथा -

और उस मुख पर वह मुसक्यान! रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम।[३]
तथा
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बंद कर पाखें।[४]

१- प्रसाद : आँसू, पृ० १५
२- निराला : गीतिका, पृ० २५
३- प्रसाद : कामायनी (श्रद्धासर्ग) पृ० ५५
४- निराला : अनामिका, पृ० १४६

यहाँ पर प्रयुक्त 'पाखंड', 'पढ़े पण्डित और पण्डा', 'पीकना' और 'कान्था' आदि प्रतीकों का स्रोत सामाजिक ही है । कवि ने उनको संप्रेषणीय बनाने के लिए काव्य में ऐसे प्रचलित सामाजिक प्रतीकों का विधान किया है । प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में ऐसे प्रतीकों का विधान अधिक हुआ है ।

सामाजिक प्रतीकों का बाहुल्य निराला काव्य में है । उन्होंने समाज में व्याप्त रीति-रिवाजों तथा भावनाओं का नग्न रूप उपस्थित किया है । उनकी 'दान' तथा 'विधवा', कवितायें समाज के प्रश्नों का जीता जागता उदाहरण है । वर्तमान दरिद्र समाज का प्रतीक उनकी 'भिक्षुक' कविता है -

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथपर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक [१]

कवि ने समाज की गरीबी और दरिद्रता का प्रतीक 'भिक्षुक' को काव्य-विषय बनाकर वर्तमान समाज की विद्रूपताओं पर प्रकाश डाला है । इस प्रतीक में सच्चे मानवतावादी कवि का उत्पीड़न निहित है । यही नहीं, कवि ने 'वह तोड़ती पत्थर', 'रास्ते के फूल', 'डिप्टी साहब आए', 'कुकुरमुत्ता' आदि रचनाओं में सामाजिक स्थितियों पर विचार व्यक्त किया है । इस प्रकार इन कवियों ने अतीत के स्वर्णिम संसार का उदाहरण प्रस्तुत कर वर्तमान को जागरूक तो बनाया ही है । साथ ही वर्तमान की समस्याओं को भी प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

प्रसाद और निराला के वे प्रतीक जो अतीत को व्यंजित करते हैं, लगभग समान हैं । किन्तु जो समसामयिक स्थितियों को चित्रित करते हैं, कुछ भिन्न हैं । कारण, निराला ने छायावाद से आगे बढ़कर यथार्थ और प्रयोगवाद की सीमा का भी स्पर्श किया है । इसी से उनके प्रतीक प्रसाद के प्रतीकों की अपेक्षा कुछ कठोर प्रतीत होते हैं । उनके खण्डहर, ठूंठ, गर्म पकौड़ी आदि में प्रसाद के प्रतीकों जैसी मधुरता कोमलता और करुणता नहीं आ पाई ।

१- निराला : परिमल (भिक्षुक) पृ० १२५

<u>कलापरक प्रतीक</u> : संस्कृति का सौन्दर्य-विधायक पक्ष कला है । इससे मानवता के उत्कर्ष का बोध होता है । भर्तृहरि ने साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य को बिना पूंछ और सींग के पशु के समान माना है । कला से मानव सभ्यता का बोध होता है । यूं भी कवि-हृदय कला-प्रेमी होता है क्योंकि कविता स्वयं एक कला है । प्रसाद और निराला के काव्य में कलापरक प्रतीक-

> प्रसन्नता से नाच उठा मन नूतनता का जोगी ।[१]
> संगीत मनोहर उठता मुरली बजती जीवन की ।[२]
>
> तुम चित्रकार, घन-पटल-श्याम, मैं तड़ित्तूलिका रचना ।
> तुम रणताण्डव उन्माद नृत्य, मैं मुखर मधुर नूपुर ध्वनि ।[3]

उपर्युक्त उद्धरणों में 'नाच उठा' उल्लासमयी स्थिति का, 'मुरली' आनन्द का, 'चित्रकार' और 'ताण्डव नृत्य' पुरुष का तथा 'तड़ित्तूलिका रचना' व 'मधुर नूपुर ध्वनि' नारीत्व के बोध का प्रतीक हैं । यहाँ पर प्रयुक्त तड़ित्तूलिका के अतिरिक्त समस्त प्रतीक परंपरागत हैं किन्तु प्रसाद और निराला ने उनमें नूतन अर्थवत्ता को समाविष्ट कर अपनी अद्भुत काव्यकला का परिचय दिया है ।

<u>ऐतिहासिक - पौराणिक प्रतीक</u> : समाज की स्थितियों एवं जीवन-व्यापारों को सुरक्षित रखने का एक मात्र माध्यम है - इतिहास । इतिहास अपने संकुचित अर्थ में युद्ध, समाज, धर्म और संस्कृति एवं सभ्यता का क्रमबद्ध संग्रह होता है किन्तु व्यापक अर्थ में वह आदि से अंत तक की प्रत्येक स्थितियों का समुचित संकलन है । जिसमें पौराणिक तथ्यों का समावेश भी हो जाता है । प्रसाद और निराला ने अपने काव्य में ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों का कलात्मक विधान किया है, यथा -

> अरी रण - रंगिनी !
> सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी ।
> कंपिता हुई थी लाल तेरा पानी मानकर ।

१- प्रसाद : कामायनी (कर्म-सर्ग) पृ० १२३
२- वही (आनन्द सर्ग) पृ० ३०१
३- निराला : परिमल (तुम और मैं) पृ० ८२

--- --- --- ---

हरी कर तेरी रही अन्तिम जलन था ?
जो पंजेन सौंथे खड़ी देखी थी आग है
चिलियान वाला में ।[1]

यहाँ रण रंगिनी शौर्य और वीरता की प्रतीक है । जिसे सम्बोधित कर शेरसिंह अपना आक्रोश प्रकट करते हैं । अभिशप्त हुई छाया तेरा पानी पान करे पंजिक अफगानिस्तान में हरीसिंह के विजय की प्रतीक है । " चिलियानवाला " शब्द चिलियानवाला नामक स्थान में सिक्ख और अंग्रेजों के युद्ध में कृपाण द्वारा अंग्रेजों के छक्के छुड़ा देने का प्रतीक है । इस प्रकार ऐतिहासिक प्रतीकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास को जीवंत रूप प्रदान किया है । इन कवियों ने पौराणिक प्रतीकों की भी रचना की है, यथा -

आह सर्ग के अग्रदूत ! तुम
असफल हुए, विलीन हुए ।[2]

" पावक-सरोवर में अवभृथ स्नान था
आत्म सम्मान -यज्ञ की व पूर्णाहुति
सुना-जिस दिन पद्मिनी का जल मरना "[3]

यहाँ सर्ग के अग्रदूत " का आशय देवों से है जिसकी पौराणिकता में सन्देह नहीं । इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में " अवभृथ स्नान " ; यज्ञ ", " पूर्णाहुति आदि शब्द भी सर्वथा पौराणिक हैं । इन पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से कवि ने ऐतिहासिक तथ्य-पद्मिनी के जलमरने को, स्पष्ट किया है । प्रसाद की " कामायनी " में पौराणिक प्रतीकों की भरमार है । यथाप्रसंग निराला ने भी ऐसे प्रतीकों का आश्रय लिया है जैसे -

तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं मनोमोहिनी माया ।

--- --- ---

१- प्रसाद : लहर (शेरसिंह का शस्त्र समर्पण) पृ० ५८
२- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १५
३- ,, : लहर , पृ० ६६

तुम मदन पंच-शर-हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान ।

--- --- ---

तुम नाद-वेद-ओंकार-सार मैं कवि-श्रृंगार-शिरोमणि ।[1]

यहाँ पर कवि ने ‘सच्चिदानन्द ब्रह्म’, ‘मदन-पंच-शर हस्त और वेद ओंकार’ जैसे पौराणिक प्रतीकों को ब्रह्म के लिए प्रयुक्त किया है । साथ ही जीव के लिए माया प्रतीक भी पुराणों से ही गृहीत है । इस प्रकार प्रसाद और निराला के काव्य में कथ्य को संप्रेषणीय बनाने के लिए पौराणिक प्रतीकों का विधान भी हुआ है ।

धार्मिक- दार्शनिक प्रतीक : धर्म समाज की सुचिंतित क्रियाओं एवं व्यवहारों को स्पष्ट रूप से प्रोद्भासित करते हैं । धर्म का सामान्य अर्थ है ‘धारण करना’ और दर्शन का ‘देखना’ । किन्तु इस का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि यहाँ कुछ धारण करना या देखना धर्म तथा दर्शन है । वास्तविक धर्म संस्कारगत कर्मों एवं नैतिक मूल्यों के औचित्य में निहित है और दर्शन जड़ एवं चेतन के तात्विक संबंध को उद्घाटित करने की चेष्टा है । धर्म एवं चिन्तन के आधार पर प्रसाद और निराला ने अपने-अपने काव्य में धार्मिक एवं दार्शनिक प्रतीकों की रचना की है -

क्या कहती हो ठहरो नारी ! संकल्प अश्रु-जल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने से सपने ।[2]

यहाँ पर कवि ने नैतिक मूल्य के प्रतिष्ठापन हेतु ‘संकल्प’ और ‘दान’ शब्दों को चित्रांकित किया है । संकल्प और दान भारतीय धर्म के प्रचलित अवयव हैं । नारी के उत्सर्ग और त्याग को कवि ने इन प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है । निराला जी ने इस वस्तु को बहुत ही पैनी दृष्टि से देखा है, जिससे उन्होंने ‘दान’ को प्रतीक रूप में यथार्थ की पृष्ठभूमि पर निरूपित किया है । उनकी ‘दान’ कविता[3] में प्रतीक के माध्यम से विषय-वस्तु के औचित्य

१- निराला : अपरा, पृ० ६८-७० ।
२- प्रसाद : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० ११४
३- निराला : अनामिका, पृ० २२ ।

पर प्रकाश डाला गया है ।

समस्त चराचर जगत में व्याप्त उस असीम शक्ति को निरखनेवाले कवि प्रसाद और निराला ने अपने काव्य में दार्शनिक प्रतीकों को भी प्रस्तुत किया है । प्रसाद जी ने संसार को भोग्य माना है । यह काम मंगल है मंडित एक श्रेय वस्तु है, यथा -

> कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
> विश्व का उन्मीलन अभिराम इसी में सब होते अनुरक्त ।
> काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
> तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम ।[१]

यहाँ पर कवि ने 'महाचिति', 'विश्व का उन्मीलन अभिराम' 'काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग', 'इच्छा का परिणाम' आदि शब्दों से मालूम है इस संसार के भोग पर बल दिया है । परम शिव की इच्छा से निर्मित यह संसार सुन्दर है । जो श्रेय है, त्याज्य नहीं । महाचिति की लीला भूमि होने से यह आनन्दमय है। प्रसाद जी की यह दार्शनिक भावना शैवागमों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित है । शैवागमों ने भी जगत को मिथ्या या भ्रमात्मक मानकर त्याज्य नहीं बताया, उसे परमशिव का प्रतिबिम्ब होने से उतना ही निर्मल माना है जितना परमशिव को ।[२]

प्रसाद जी ने 'कामायनी' के अन्तिम तीन सर्गों में 'दर्शन', 'रहस्य' और 'आनन्द' जैसे दार्शनिक तत्वों का विवेचन किया है । 'त्रिलोक', 'मानसरोवर', 'वृषभ', 'डमरु', 'कामकला', 'नाद', 'कैलाश' आदि दार्शनिक प्रतीकों के विधान द्वारा कवि ने दार्शनिक भावों को व्यक्त किया है । कामायनी के अतिरिक्त प्रसाद जी ने अन्य काव्य संग्रहों में भी दार्शनिक तत्वान्वेषण किया है -

> तुम कौन हो और मैं क्या हूँ इसमें क्या है धरा सुनो
> मानस-जलधि रहे चिरचुम्बित मेरे क्षितिज उदार बनो ।[३]

यहाँ पर कवि ने तुम और मैं की अभिन्नता तथा एकत्व पर बल दिया है । इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने काव्य में आत्मा और परमात्मा जैसे गूढ़ तत्वों को भी प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है ।

दृश्य में अदृश्य को देखनेवाले कवि निराला ने काव्य में ऐसे प्रतीकों को प्रस्तुत किया है जो जगत तथा जगत-नियन्ता के स्वरूप को व्यंजित करते हैं । शंकर के

१- प्रसाद : कामायनी (श्रद्धा सर्ग) पृ० ६१
२- मद्रूपेवभाति विश्वं दर्पण इव निर्मले ।। परमार्थसार ,पृ० ६७
३- प्रसाद : लहर,पृ०४

प्रतीक है। कवि ने माया-पाश से रहित जीव की ब्रह्म में लीन होने की स्थिति का वर्णन किया है। जीव और ब्रह्म को लेकर कवि ने 'जुही की कली', 'शेफालिका'[1], 'प्रेयसी'[2] 'मौन रही हार',[3] आदि कविताओं की रचना की है। इन रचनाओं में प्रतीकों के माध्यम से कवि ने जीव की अज्ञानता, जीवन की क्षणभंगुरता, प्रियतम ब्रह्म की अनुरक्ति तथा ब्रह्मलीन-स्थिति का वर्णन किया है।

प्रसाद और निराला ने अपने प्रतिपाद्य विषय को सजीव, प्रेषणीय तथा प्रभविष्णु बनाने के हेतु पारम्परिक तथा नव्य प्रतीकों की रचना की है। प्रसाद और निराला ने सांस्कृतिक प्रतीकों से विशाल भाव राशि एवं गूढ़ विषय को वाक्बद्ध किया है। उन्होंने दार्शनिक एवं भौतिक विषय के प्रस्तुतीकरण में जिन प्रतीकों की रचना की है वे अत्यधिक कलात्मक एवं अर्थगर्भित हैं।

(३) मनोवैज्ञानिक प्रतीक :

मानव-मन की सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के निरूपण की प्रणाली मनोवैज्ञानिक होती है जिसमें चिन्तन तत्व तथा संवेदनशीलता की प्रधानता अनिवार्य है। अमूर्त एवं सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त करनेवाले शब्द ही मनोवैज्ञानिक प्रतीक की संज्ञा से अभिहित हुए। प्रसाद और निराला के काव्य में मानव-मन:स्थिति का जो रूप प्रस्तुत किया गया उसमें पारम्परिक प्रतीकों के साथ ही नूतन प्रतीकों का विधान दृष्टव्य है, यथा-

हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ जल-माया की चल रेखा।[4]

यहाँ पर कवि ने चिन्ता जैसी अमूर्त भावना को 'अभाव की चपल बालिके', 'ललाट की खल लेखा', 'दौड़धूप' तथा 'जल-माया की चल रेखा' आदि प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। इसी प्रकार कवि ने रूप मदोन्मत्त रानी कमला के विनष्ट अभिमान को, चिंतन के आधार पर बहुत ही कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है -

कृष्णागुरुवर्तिका
जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में

१- निराला : परिमल, पृ० १७२, १७५
२- ,, : अनामिका, पृ० १-६
३- ,, : गीतिका, पृ० ८
४- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १३

एक धूम-रेखा मात्र शेष थी,
उस निस्पन्द रंग मन्दिर के व्योम में,
क्षीण- गन्ध निरवलम्ब ।[१]

रूप की ज्वाला में भस्मीभूत रानी के लिए " कृष्णागुरुवर्तिका " प्रतीक अत्यधिक सटीक है । कवि ने रूपगर्विता रानी कमला की नष्ट प्राय मान मर्यादा के बाद प्राप्त राजरानी पद की स्थिति को " कृष्णागुरुवर्तिका की एक धूम रेखा मात्र " कहकर स्पष्ट कर दिया है ।

प्रसाद जी के मनोवैज्ञानिक प्रतीक उनकी अन्तरतम भावना को व्यक्त करने में पूर्णतः सफल हुए हैं ; जैसे - लेकर कहीं भुलावा देकर मेरे नाविक ! धीरे-धीरे-[२] प्रगीत उनकी आत्म विस्मृति का प्रतीक है । ऐसे ही " उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर "[३] रचना उनकी शुष्क कोमल भावनाओं के पुनः रसमग्न होने का प्रतीक है ।

प्रसाद की " कामायनी " पूर्णतः मनोवैज्ञानिक काव्य है जिसमें कवि ने अमूर्त, अदृश्य तथा अशरीरी भावों को, जो मनुष्य की सहज मनोवृत्ति मात्र है, प्रतीकों के माध्यम से सहज ग्राह्य बनाया है । कवि ने प्रगाढ़ चिन्तन एवं मनन के पश्चात् चिंता, लज्जा, काम, वासना आदि वृत्तियों को काव्य में स्थापित किया है । कामायनी के समस्त पात्र प्रतीकात्मक है । कवि को मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर कामायनी को प्रस्तुत करने में अद्वितीय सफलता मिली है ।

प्रसाद की तुलना में निराला के मनोवैज्ञानिक प्रतीक किसी भी भांति कम नहीं है । निराला ने भी अपने प्रबंध काव्यों की रचना प्रतीक शैली के आधार पर की है । " राम की शक्ति पूजा " तथा " तुलसीदास " में कवि ने पारंपरिक प्रतीकों के साथ ही मौलिक प्रतीकों की उद्भावना भी की है । " राम की शक्तिपूजा " तामसी वृत्ति पर सात्विक वृत्ति के विजय की प्रतीक है । इस काव्य के पात्र "रामचन्द्र" सत्य और सात्विक भाव के तथा " रावण " और उनकी सेना " आसुरी वृत्ति एवं

१- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ८२
२- ,, : ,, पृ० १०
३- ,, : ,, पृ० १

असत्य के प्रतीक है । काव्य का आरम्भ " रवि हुआ अस्त " अर्थात् सर्वत्र अंधकार एवं तामसी वातावरण का और समापन " होगी जय होगी जय , हे पुरुषोत्तम नवीन " अर्थात् प्रकाश एवं सात्विकी वातावरण के आच्छादित होने का प्रतीक है ।[1] " अणिमा " युग-चेतना और व्यक्ति-चेतना को लेकर निर्मित है जिसमें स्थान-स्थान पर मानव-मन की सुकोमल एवं उदात्त मनोवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रांकन हुआ है ।

" तुलसीदास " में भी कवि ने पारम्परिक तथा स्वनिर्मित प्रतीकों की रचना की है । इस काव्य के नायक " तुलसीदास " सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक है और नायिका " रत्नावली " प्रेरणादायी श्री शीवसना शारदा की प्रतीक है । जिनके लौकिक एवं प्रस्तुत कथा में मानव मन में उठनेवाले भावों का मनोवैज्ञानिक वर्णन हुआ है -

बिखरी छूटी शफरी अलकें,
निष्पात नयन- नीरज- पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता ;
नि:संबल केवल ध्यान-मग्न ,
जागी योगिनी अरूप-लग्न,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय- भाव-मग्न निरुपमिता ।[2]

यहाँ पर कवि ने रत्नावली के हृदय को उद्वेलित करनेवाले भावों को " बिखरी शफरी अलकें " , " निष्पात नयन " , " भावातुर ... उपशमिता " , " ध्यान-मग्न " , " अरूप-लग्न योगिनी " , " प्रिय-भाव-मग्न निरुपमिता " आदि प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है । जिस प्रकार रत्नावली अनाहूत मेहमान को देखकर व्यग्र एवं खिन्न हो उठती है । उसे कवि ने प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

१- निराला : अनामिका , पृ० १४८,१६५
२-निराला : तुलसीदास, पृ० ४४

तुलसीदास काव्य का आरंभ " भारत के नभ का ---- अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य" तथा अंत "प्राची दिगन्त उर में पुष्कल रवि - रेखा" से हुआ है, जो भारतीय संस्कृति के अस्त एवं उदय का प्रतीक है। इन प्रतीकों की निर्मिति कवि के सूक्ष्म वैचारिक भावों की पृष्ठभूमि पर हुई है जिससे इनमें मनोवैज्ञानिकता स्वत: अन्तर्भुक्त है।

निराला ने सामाजिक वातावरण और स्थितियों के आधार पर भी वैचारिक प्रतीकों " रानी-कानी ", " दान ", " भिक्षुक ", विधवा " आदि की रचना की है। मानव-मन की कोमल एवं उदात्त भावनाओं को कवि ने " प्रिया के प्रति " " प्रेयसी " मानवीकृत " जुही की कली " तथा " शेफालिका " आदि में प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है।

युग की विषमताओं एवं कुरूपताओं से त्रस्त दोनों कवियों ने अपनी भावाभिव्यक्ति को प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रतीकों के माध्यम से मूर्त किया है। इनके प्रतीक अतिरंजना तथा अतिन्द्रियता से दबे न होकर चेतन सौन्दर्य की स्वच्छंद पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत हुए हैं। प्रसाद और निराला ने देश तथा व्यक्ति की पराभूत दशा में उत्पीड़ित हो उसे काव्यबद्ध करने के लिए पारम्परिक तथा नव्य प्रतीकों का विधान किया है। युगीन परिस्थितियों से अनुप्राणित हो विशुद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में मानव-विकास के लिए प्रसाद ने " कामायनी " तथा निराला ने " तुलसीदास " और " राम की शक्ति पूजा " जैसे प्रतीकात्मक प्रबन्धों की रचना कर डाली। प्रसाद के काव्य में मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का नव्य रूप सराहनीय है। सूक्ष्म भावांकन में दोनों कवियों को सफलता मिली है। इस प्रकार, प्रसाद और निराला ने अपने गहन चिंतन तीव्र मनोवेग, अन्तर्द्वन्द्व तथा अमूर्त मनोवृत्तियों के प्राकट्य के लिए जिन प्रतीकों की रचना की है वे गूढ़ होते हुए भी अस्पष्ट तथा बोझिल नहीं प्रतीत होते, उनमें भावाभिव्यक्ति की सहज क्षमता निहित है।

गुण, रीति और वृत्ति

संस्कृत आचार्यों ने काव्य की सुनियोजित पदावली का सौन्दर्यपूर्ण संघटन, रीति और वृत्ति पर आधारित माना है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में रीति को

काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार करते हुए विशिष्ट पद रचना रीति[१] कहा गया और इस विशिष्टता को गुणों पर आश्रित बताते हुए उसे 'विशेषोगुणात्मा'[२] उद्घोषित किया। ध्वनिकार ने गुण को रस का नित्य धर्म मानकर रीति (गुण की आत्मा) को रस से भी संबंधित कर दिया।[३] इससे काव्य में गुण और रीति की स्थिति और भी महत्वपूर्ण हो गई।

गुण, रीति और वृत्ति का पारस्परिक सम्बन्ध होते हुए भी आलोच्य कवियों की रचनाओं की अर्थ व्यंजकता सुग्राह्य बनाने के लिए उनको एक साथ विवेचित नहीं किया जा सकता, क्योंकि गुण की स्थिति रीति और वृत्ति से कुछ पृथक है। 'गुण अपने सूक्ष्म रूप में चित्तवृत्ति रूप है और स्थूल अथवा मूर्त रूप में वर्णगुम्फ तथा शब्द संघटन रूप है ----------।[४] जबकि रीति और वृत्ति केवल पदसंघटनागत सौन्दर्य मात्र है। अतएव, ये एक दूसरे पर आश्रित होते हुए भी अभिन्न नहीं है।

गुण

आचार्य भरत ने काव्य-दोष के विपर्यय को गुण कहा है।[५] अतएव, काव्य के शोभाकारी आकर्षक धर्म ही गुण है।[६] इस प्रकार शब्द और अर्थ के शोभाकारी धर्म गुण की महत्ता काव्य में स्वतः सिद्ध है। भरत ने इन गुणों की संख्या दस मानी थी।[७] किन्तु वामन ने गुण के शब्दार्थगत चमत्कार को महत्ता देते हुए श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता

१- वामन : काव्यालंकारसूत्र वृत्ति, १।२।७ ।।

२- वही, १।२।८ ।।

३- 'ता संघटना रसादीन् व्यनक्ति गुणानाश्रित्य तिष्ठन्तीति' ध्वन्यालोकलोचन ३।५।।

४- डा० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० ६१।

५- 'एत एव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः' : नाट्यशास्त्र १७।९५।।

६- 'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मागुणाः' : काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ३।१।१ ।।

७- श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ।।
नाट्यशास्त्र १७।९६

[illegible] गुणों को शब्दगत और अर्थगत रूप में अलग-अलग विभाजित कर दिया ।[1] क्योंकि इससे काव्य में आधिक्य चमत्कार की ही नहीं, अर्थव्यक्तता की भी पुष्टि होती है । इसी प्रकार आचार्य मम्मट ने गुण को रस का धर्म रूप मानते हुए[2] दस गुणों का अन्तर्भाव माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुणों में ही कर दिया ।

<u>माधुर्यगुण :</u>

आचार्य भरत ने इसकी विशेषता श्रुतिमधुरता बताई है ।[3] वामन ने शब्द गुण के रूप में इसकी पुष्टि पृथक्पदत्व[4] अर्थात् समास राहित्य और अर्थ गुण के रूप में उक्तिवैचित्र्य[5] मानी है । मम्मट के अनुसार आह्लादकता और शृंगार रस में द्रवित करने की विशेषता माधुर्य है ।[6] इस प्रकार श्रुतिमधुरता, समास-रहितता, उक्तिवैचित्र्य, भावमग्नता, आह्लादकता तथा चित्त को द्रवित करने की क्षमता ही माधुर्य गुण है । माधुर्यगुण के विधान में ट, ठ, ड, ढ वर्णों का निषेध होता है ।[7] आलोच्य कवियों ने सुकुमार तथा चित्त को द्रवित करनेवाले मधुर एवं रसार्द्र भावों की अभिव्यक्ति के लिए समास रहित पदों की सृष्टि की है -

> नील निरीक्ष में कलिका सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
> कोमल बाहें फैलाये सी आलिंगन का जादू पढ़ती ।[8]

> बीती विभावरी जाग री !
> अधरों में राग अमन्द पिये, अलकों में मलयज बन्द किये
> तू अब तक सोई है आली ! आँखों में भरे विहाग री ।[9]

१- हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ३।१।४ ।।

२- काव्य प्रकाश , ८।६६ ।।

३- नाट्यशास्त्र १७।१०१ ।।

४- हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ३।१।२१ ।।

५- वही , ३।२।११ ।

६- काव्य प्रकाश ८।६८ ।।

७- साहित्य दर्पण, विश्वनाथ ८।१,३ ।।

८- प्रसाद, कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १०५ ।

९- प्रसाद : लहर , पृ० १६ ।

इन उद्धरणों में कवि ने लघु एवं सरस पदों की योजना द्वारा जिस उक्ति वैचित्र्य की सृष्टि की है वह सहृदय के चित्त को आकर्षित करने में पूर्णतः सफल है । इन पदों की मनोरम वर्णयोजना तथा श्रुतिमधुरता माधुर्य गुण के साथ ही सौकुमार्य गुण की सृष्टि में भी सहायक हुई है । छायावादी कवियों में यह गुण प्रसाद के काव्य में अपेक्षाकृत अधिक मिलता है ।

निराला ने भी प्रेम और सौन्दर्य विषयक मधुर एवं कोमल प्रसंगों में माधुर्य-गुण-सान्वित पदावली की सृष्टि की है । निराला के लिए इस गुण की उपेक्षा कर सकना संभव नहीं था -

निर्निमेष नैनों में छाया, किस विस्मृति-मदिरा का राग,
जो कर रहा मुकलित पलकों से ढलक रहा का विपुल सुहाग ?[1]

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना- कविता ,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका ।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों में माधुर्य गुण का सुन्दर संयोजन हुआ है । प्रेमभाव की अभिव्यक्ति में अन्तर्निहित सरसता एवं कोमलता सहृदय को द्रवित करती है । निर्निमेष नैनों से छलकनेवाला मदिरा का राग सहृदय को अभिभूत कर देता है । यहाँ श्रृंगारिक वर्णन में चिंता, दैन्य, विफलता एवं जड़ता आदि संचारी भावों को जीवंत किया गया है । दूसरे उद्धरण में प्रिय के प्रति जो भाव व्यक्त हैं । उनमें आह्लादकारी माधुर्य गुण की योजना हुई है वे समासहीन पदावली में रचित होने के साथ ही अपने उक्ति वैचित्र्य से अर्थव्यंजकता की सृष्टि भी करते हैं ।

<u>ओजगुण :</u>

काव्य में अर्थ गाम्भीर्य की वह शैली जो सहृदय में उत्साह, वीरता, आवेग तथा उदात्त भावों को जाग्रत करे, ओजगुण माना जाता है । वामन के अनुसार ' गाढ़बंधत्वमोजः ' अर्थात् रचना का गाढ़त्व ओज है ।[3] अतः अक्षर विन्यास का

१- निराला : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ४५

२- ,, : अनामिका, पृ० ४२

३- हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ३।१।५ ।।

और उद्धतत्व, संयुक्ताक्षरों एवं रेफयुक्त वर्णों के संयोग से ओज गुण की सृष्टि होती है। वामन ने ओज गुण के रूप में शब्द प्रौढ़ि और अर्थ की प्रौढ़ता को ओजगुण का लक्षण माना है।[1] इस प्रकार संयुक्त तथा समासयुक्त शब्दों में अभिव्यक्ति भाव तथा अर्थ की सन्निहिति ओज गुण की विशेषता है। इसके लिए वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों से संयुक्ताक्षरों, ट, ठ, ड, ढ, ण आदि का प्रयोग, दीर्घ समास और उद्धत संघटना आवश्यक होती है।[2]

आलोच्य कवियों में पन्त, सुकुमार एवं मधुर भावाभिव्यंजक रचनाओं के होने का आकर्षण है अर्थ-प्रौढ़ि की भी रचना की है। इस कोटि की रचनाओं में निराला का एकाधिकार है, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि प्रसाद का काव्य ओज गुण रचनाओं से रिक्त है। प्रसाद के काव्य में ओजगुण -

> हिमाद्रि-तुंग-शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती --
> स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती --
>
> अमर्त्य वीर-पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
> प्रशस्त पुण्य पंथ है - बढ़े चलो, बढ़े चलो।
> असंख्य कीर्ति- रश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाह-सी,
> सपूत मातृभूमि के- रुको न शूर साहसी !
> अराति सैन्य सिंधु में, सुवाड़वाग्नि से जलो,
> प्रवीर हो जयी बनो-- बढ़े चलो, बढ़े चलो ![3]

इस गीत की सभी पंक्तियाँ अदम्य साहस तथा वीर भावना की अभिव्यक्ति में सफल है। संयुक्त शब्दों में अर्थ प्रौढ़ि की पूर्ण क्षमता निहित है। समुज्ज्वला, दिव्यदाह तथा सुवाड़वाग्नि आदि संधिज शब्दों के विधान से ओजगुण की सृष्टि में कवि को सफलता मिली है। सामासिक तथा संधिज पदावली में ट

१- हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ३।२।२ ।।
२- साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ, ८।४, ६ ।।
३- प्रसाद : प्रसाद संगीत (चन्द्रगुप्त) पृ० ११७ ।

[illegible] के वर्णों की आवृत्ति स्वाभाविकता को आकर्षक बनाने में सहायक हुई है । इस प्रकार कोमल और मधुर भावों के प्रेमी कवि प्रसाद ने भी ओज गुण प्रधान प्रसंगों को वर्णित किया है । फिर भी, इसका जो भव्य एवं विराट रूप निराला ने प्रस्तुत किया है । वह तद्युगीन अन्य कवि नहीं कर सके । निराला की रचनाओं में ओजगुण का पूर्ण सन्निवेश हुआ है, यथा -

> ऐ अट्टालिका पर टूट टूट पड़नेवाले - उन्माद ।
> विश्व-विभव को लूट-लूट लड़नेवाले- अपवाद ।
> श्री बिखेर, मुख- फेर कली के निष्ठुर पीड़न ।
> छिन्न-भिन्न कर पत्र- पुष्प -पादप-वन-उपवन,
> वज्र- घोष से ऐ प्रचण्ड !
> आतंक जमानेवाले ![1]

समासयुक्त भाषा के आधार पर बादल के ओजपूर्ण स्वभाव का वर्णन करने पर कवि को अभीष्ट रहा है । पद रचना में बादल को 'टूट पड़नेवाले - उन्माद', 'लूट-लूट लड़नेवाले- अपवाद', 'कली के निष्ठुर पीड़न', 'वज्र-घोष से ऐ प्रचण्ड' तथा 'आतंक जमानेवाले' कहकर कवि ने बन्धगाढ़त्व के साथ ही अर्थ प्रौढ़ि का भी समावेश किया है । इस पद में शास्त्रीय ओज गुण के अनिवार्य लक्षणों का स्वत: समावेश हुआ है । बादल के प्रचण्ड रूप के वर्णन में निराला को पूर्ण सफलता मिली है ।

निराला ने दीर्घ समास युक्त भाषा के आधार पर राम और रावण के अपराजेय समर का जो वर्णन शक्तिपूजा[2] में किया है उसमें तत्सम शब्दों के सन्धिज एवं सामासिक प्रयोग में बंधगाढत्व के साथ ही अर्थप्रौढ़ि का भी समावेश हुआ, जो शास्त्रिक 'ओज' गुण की पुष्टि में सहायक है । निराला ने युद्धादि के ओजस्वी प्रसंगों के अतिरिक्त माधुर्य भाव प्रधान श्रृंगारी रचनाओं में भी इसे समाविष्ट किया है यथा -

---

१- निराला : परिमल (बादलराग) पृ० १६२
२- ,, : अनामिका, पृ० १५० ।

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल[1]

इस प्रकार की ओज गुण प्रधान रचनाएँ निराला के काव्य की विशिष्ट विशेषता है। उन्होंने जिस पौरुष तथा उद्दाम कल्पना को काव्य में स्थापित किया है, उसी आधार पर ओज गुण-प्रधान-रचनाओं में निराला की एकरूपता का पूर्णाभिव्यक्ति परिलक्षित है।

<u>प्रसाद गुण :</u>

शब्दों की सरलता, सरसता, स्वच्छता तथा अर्थ की निर्मलता एवं सद्यग्राह्यता इसकी प्रमुख विशेषता है। वामन के अनुसार इसमें शैथिल्य होता है, जो बन्धगाढ़त्व रूप ओज गुण का विरोधी है।[2] प्रसाद गुण की यह शिथिलता दोष न होकर ओजगुण का विपरीतार्थ है।[3] आलोच्य कवियों के काव्य में अन्य गुणों की अपेक्षा इस गुण का विन्यास कम हुआ है। कारण भाषा के अलंकरण तथा रूप सौष्ठव के विधान में यह गुण अनुपयुक्त सिद्ध होता। फिर भी, जहाँ कहीं इन कवियों ने काव्य-भाषा को सर्वसामान्य की भाषा बनाना चाहा है वहाँ इसका सम्यक् पालन हो गया है यथा -

नारी यह भ्रम तेरा जीवित अभिशाप है,
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं।[4]

माँ - फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी।[5]

१- निराला : परिमल (जुही की कली) पृ० १७२
२- काव्यालंकार सूत्र वृत्ति ३।१।६ ।।
३- वही , ३।२।३ ।।
४- प्रसाद ; लहर , पृ० ८६ ।
५- प्रसाद : कामायनी (स्वप्न सर्ग) पृ० १८७ ।

यहाँ पर कवि ने सरल शब्दों के माध्यम से भाव को व्यक्त किया है । जो संस्कृत के तत्सम तथा संधिज शब्द आए भी हैं वो प्रसाद गुण की विशेषता में बाधक नहीं पड़ते । निराला के काव्य में भी इस गुण का सहज सन्निवेश हुआ है यथा -

लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुनकर
सम्पादक के गुण, यथाभ्यास
पास की नोचता हुआ घास ।[1]

प्रसाद और निराला ने अत्यन्त सुन्दर कोमलकान्त तथा रमणीय शब्दों के कलात्मक विन्यास से अपनी वर्णनात्मकता को पुष्ट किया है । अर्थगाम्भीर्य तथा अभिव्यंजनागत सौन्दर्य को द्विगुणित करनेवाले उपर्युक्त तीन प्रमुख गुणों के अतिरिक्त वामन सम्मत दस शब्दगत तथा अर्थगत काव्य गुणों का भी स्वस्थ भावन इनके काव्य में हुआ है । आचार्य वामन का कथन है कि जिस प्रकार चित्रफलक में निपुण चित्रकार चित्र में समस्त सौन्दर्योत्पादक आवश्यक गुणों से युक्त रेखा को अत्यन्त कौशल से खींचता है, उसी प्रकार बुद्धिमान कवि अपनी वाणी को समस्त गुणों से गुम्फित करते हैं ।"[2] इस कथन को हम आलोच्य कवियों के काव्य में अक्षरशः चरितार्थ कर सकते हैं । भाषा पर विशेषाधिकार होने से प्रसाद और निराला अपने रम्याद्भुत एवं व्यंजक काव्य में समस्त गुणों का समाहार कर, उसे नवल दीप्ति से उद्भासित कर सके हैं ।

रीति और वृत्ति :

रीति और वृत्ति को लेकर भारतीय काव्यशास्त्र में कुछ मत-वैभिन्न्य है । आनन्दवर्धन ने " व्यवहारो हि वृत्तिरित्युच्यते " कहकर रीति और वृत्ति की अभिन्नता उद्घोषित की[3] और उद्भट ने वृत्ति को वर्ण व्यवहार के आधार

१- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १२२
२- हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, पृ० १३६
३- हिन्दी ध्वन्यालोक ३।३३ ।।

पर अनुप्रास के अन्तर्गत मानते हुए रीति से भिन्न माना है ।[१] रीति और वृत्ति का पारस्परिक सम्बन्ध अन्योन्याश्रित होते हुए भी अभिन्न नहीं है । रीति का स्वरूप शब्द विन्यास, वर्ण संयोजन के सामासिक विधान से निर्मित होता है और वृत्ति का अनुप्रास की सीमा में बाबद्ध वर्णगुम्फन मात्र है।वृत्ति रीति का एक अंग है । रीति की अपेक्षा अधिक क्षेत्र संकुचित है ।

रीति का सर्वप्रथम विभाजन आचार्यों ने देश या प्रांत के आधार पर वैदर्भी, गौणी और पांचाली के नाम से किया । इनके अतिरिक्त रुद्रट ने लाटी नामक एक और भेद किया । किन्तु कुन्तक ने काव्यगुण तथा कवि स्वभाव के आधार पर जो सुकुमार, विचित्र और मध्यम नामक भेद किये वो भौगोलिक आधार पर किये गये विभाजन की अपेक्षा अधिक तर्कपूर्ण तथा वैज्ञानिक है ।

मम्मट तथा अन्य परवर्ती आचार्यों ने वृत्ति को वर्ण व्यवहार पर आश्रित मानकर रीति के अन्तर्गत स्वीकार किया और दोनों को एक रूप माना । यहाँ पर प्रसाद और निराला के अभिव्यंजना कौशल की परख कुन्तक द्वारा विभाजित रीतियों तथा प्रचलित उपनागरिका, परुषा और कोमला काव्य वृत्तियों के आधार पर करेंगे ।

<u>सुकुमार मार्ग (वैदर्भी रीति) उपनागरिका वृत्ति :</u>

वामन ने इसे समस्त गुणों से युक्त माना है, साथ ही वह इसको वीणा के स्वर के समान श्रुतिमधुर तथा विलक्षण कान्ति से युक्त मानते हैं ।[२] कुन्तक ने माधुर्य गुण (समास रहित मनोहारी पद-विन्यास) को इसकी मुख्य विशेषता बताया है । इसके अतिरिक्त, उन्होंने श्रुतिमधुर शब्दावली, लावण्य तथा आभिजात्य गुणों को भी इसके लिए अनिवार्य माना ।[३] मम्मट ने इसी रीति को उपनागरिका वृत्ति कहा है ।[४] इसमें ट वर्ग को छोड़कर अन्य समस्त व्यंजनों का प्रयोग होता है ।

१- काव्यालंकार संग्रह , पृ० ४-५ ।
२- हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति १।२।११।।
३- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, १।३०-३३ ।।
४- काव्य प्रकाश, ८।१०८ ।।

प्रसाद और निराला के काव्य में इस रीति तथा वृत्ति का प्रयोग हुआ है, विशेषतः प्रसाद जी के काव्य में इसका प्रचुर विन्यास मिलता है -

कोमल कुसुमों की मधुर रात !
शशि-शतदल का यह सुख विकास
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी सांसों का मलय वात ।[1]

प्रस्तुत उद्धरण की समास विहीन लालित्यपूर्ण पदावली मन की सुकुमार भावनाओं की मधुर व्यंजना में सहायक है। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण को आधार बनाकर व्यंजित भाव सहृदय को तत्क्षण आकर्षित कर लेते हैं। शब्दों का लालित्य एवं माधुर्य आन्तरिक संगीत की सृष्टि करता है। इस पद में अतिपेशलता, सुकुमारता, आह्लादकता तथा कान्तिमत्ता का सहज समावेश हुआ है। प्रसाद के काव्य में इस रीति की प्रधानता है किन्तु परुषा वृत्ति - प्रधान काव्य के रचयिता कवि निराला के काव्य में भी इसके सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य हैं -

उगा नव आशा का संसार
चकित छिप जाती थी उस पार !
पवन में सिहर उठा प्रतिपल,
पल्लवों में भर मृदुल हिलोर,
पुन कलियों के मुद्रित दल
पल-छिद्रों में गा निशि-भोर ।[2]

इस उद्धरण में समाविष्ट मधुरता तथा लालित्य का आधार सुकुमार, सरल और असमास शब्दों का कलात्मक संगुम्फन है। संसार, पार, हिलोर, भोर, प्रतिपल , दल, पाश, प्रवाह आदि शब्दों के अन्तिम ह्रस्व स्वर "अ" के विन्यास से मधुर संगीत की सृष्टि हुई है जो निराला के काव्य का उत्कर्ष विधायक गुण है ।

विचित्र मार्ग (गौड़ीया रीति) परुषा वृत्ति :

वामन ने मधुरता और सुकुमारता के अभाव में रचित उग्र और समास बहुला ओज कान्तिमयी शैली को गौड़ीया रीति कहा है ।[3] आचार्य विश्वनाथ

१- प्रसाद : लहर,पृ० २३ (२) निराला : परिमल,पृ० १०७ (३) काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १।२।१२।।

ने ओज गुण को स्पष्ट करते हुए बताया कि ओजगुण प्रकाशक वर्णों से युक्त रचना, जिसमें समास और विकटतापूर्ण पदों का अधिक प्रयोग हो, वहाँ गौड़ी रीति है।[1] इसी को मम्मट ने परुषा वृत्ति कहा है। आलोच्य कवियों ने यदि साहित्य में कोमल मधुर्यगुण शब्दों का विन्यास किया है तो महाप्राण कठोर वर्णों एवं दीर्घ समासों वाली शैली को भी बहुत कम उत्कटता से प्रयुक्त किया है। इस प्रकार की शैली में निराला को विशेष सफलता मिली है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्रसाद का काव्य ऐसे उग्र एवं ओज प्रधान शब्दों के विन्यास से रिक्त है।

> ऊर्मिल रक्त और उमंग भरा जल था
> जिन युवकों के धमनियों में पर्वत बल
> उत्साह भरा था
> जो उच्छल ऊर्मियों की।
> गोले जिनके थे गेंद
> अग्निमयी क्रीड़ा थी
> रक्त की नदी में सिर ऊँचा छाती सीधी कर
> तैरते थे।[2]

इन पंक्तियों में उदात्तता तथा उग्रता का उद्दाम वेग है। यद्यपि कवि ने कठोरोदात्त महाप्राण वर्णों का विशेष प्रयोग नहीं किया, फिर भी ओज प्रधान शैली का विन्यास इसमें हुआ है। प्रसाद ने "कामायनी" के चिंता तथा संघर्ष सर्ग में भी इसी शैली का आश्रय लिया है किन्तु, उसमें वह दीर्घ सामासिकता, कठोर वर्ण विन्यास तथा महाप्राण शब्दों का संयोजन नहीं मिलता जो तद्युगीन कवि निराला के काव्य में उपलब्ध है, यथा -

> उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,
> अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव,
> विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव,
> रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल,
> --- --- --- ---

१- साहित्य दर्पण ९- ३,४ ।।

२- प्रसाद : लहर, पृ० ९० ।

गर्जित प्रत्याशा -क्षुब्ध-स्तुमत-फेनज-प्रदीप,
उद्गीरित-वन्हि-भीम पर्वत-कंपि चतुः प्रहर --[1]

यहाँ पर कवि ने महाप्राण कठोरोदात्त वर्णों के माध्यम से युद्ध की कौतोदीप्त क्रियाओं का वर्णन किया है । यह पाश्चात्य शैली के अनुरूप है । पाश्चात्य आलोचक इस शैली के प्रशंसक हैं । डायोनीसियस के अनुसार "इसमें शब्द स्तम्भों की भांति दृढ़ता से नियोजित रहते हैं । यह शैली ध्वनियों के प्रयोग से अनिष्ट भी नहीं कतराती --- । इसकी प्रवृत्ति कभी (प्रायः) समासांत के माध्यम से विस्तार की ओर रहती है । ---- इसमें वाक्य रचना में प्रधान रूपों का प्रयोग होता है । --- इसमें रचना में चिर चमत्कार नहीं है । इसमें एक प्रकार का प्राचीनतात्त्व तथा प्रकृत मुग्धता होती है और किसी प्रकार की पॉलिश नहीं होती ।"[2] इस निकष पर निराला की अनेक प्राचीन रचनाएं खरी उतरती हैं । समास तथा संश्लिष्ट शब्द प्रयोग से कठोर ध्वनि की संयोजना उपर्युक्त पंक्तियों की विशेषता है । "उद्धत लंकापति मर्षित कपिदल बल" पंक्ति उग्र एवं कठोर भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतः सफल है । इस कोटि की रचनाओं में निराला के समक्ष समयुगीन कवि प्रसाद तो क्या आधुनिक युग के अन्य किसी कवि को भी नहीं लाया जा सकता । पंत ने इस दिशा में अवश्य सराहनीय प्रयास किया है किंतु निराला के सम्मुख वे भी नहीं ठहर पाते ।

<u>मध्यम मार्ग (पांचाली रीति) कोमला वृत्ति :</u>

वामन के अनुसार असंगठित ,भावशिथिल,छायायुक्त, मधुर एवं सुकुमार गुणों से युक्त शैली पांचाली रीति है ।[3] कुन्तक ने थोड़ा स्पष्ट रूप से बताया कि वैचित्र्य और सौकुमार्य का मिश्र रूप मध्यम मार्ग है ।[4] मम्मट ने इसमें ही कोमला वृत्ति का अन्तर्भावन किया है । प्रकारान्तर से इस काव्य रीति से अभिप्राय उस सरस, सरल तथा सामान्य शैली से लिया गया जो सामान्यतः प्रसाद गुण से युक्त हो । शब्द-विन्यास से नूतन तत्व उत्पन्न करनेवाले कवि प्रसाद और निराला ने इस सरल शैली को काव्य में विशेष महत्व नहीं दिया । यह मृदु सरल एवं सरस शैली उनके काव्य से बहिष्कृत तो नहीं है पर विशेष रूप से प्रयुक्त भी नहीं है । प्रसाद के काव्य में मध्यम मार्ग का प्रयोग -

१- निराला : अनामिका,पृ० १४८ (२) डा० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० १०४ (३) काव्यालंकार सूत्र वृत्ति १।२।३ (४) हिंदी वक्रोक्तिजीवित १।५१,५२

करने का उद्देश्य अंकित चमत्कार नहीं, भाव संप्रेषण मात्र है। इनमें भाषा का सुसंस्कृत तथा व्यावहारिक रूप अन्तर्मुक्त है।

नूतनता के सम्पोषक कवि प्रसाद और निराला ने जहाँ अपनी सूक्ष्म विधायनी अन्तर्दृष्टि से अभि० शिल्प के नूतन प्रसाधनों को उद्घाटित किया है वहीं अपनी भावप्रवणता वश एक ही पद में दो तीन मुहावरों को विजड़ित कर दिया है जैसे -

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना।[१]

घास खड़ी-खड़ी हाथ मलती है
तभी लगी-लगी दाल गलती है।[२]

साथ कभी न छोड़ा, आगे कदम बढ़ाये।
पट्टी पढ़ी जब उनकी, फन्दे में हम जब आये ?[३]

मुहावरों के यथारूप विधान के अतिरिक्त कहीं-कहीं पर आलोच्य कवियों ने अपने भावानुरूप भी उन्हें काव्य में प्रयुक्त किया है जैसे -

बहुत दिनों पर एक बार तो सुख की बीन बजाऊँ।[४]
कब तक मैं देखूं जीकर यह घूंट लहू की पीऊँ।[५]
पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय[६]
कुछ ही दिन को हूं फूल-झूम
छू लूं पद फिर कह देना तुम।[७]

१- प्रसाद : आंसू, पृ० ७
२- निराला : अर्चना, पृ० ६१
३- ,, : बेला, पृ० ६७
४- प्रसाद : कामायनी (कर्म सर्ग) पृ० १२०
५- वही, पृ० १२६
६- निराला : नये पत्ते (महंगू महंगा रहा) पृ० १०७
७- ,, : तुलसीदास, पृ० ३५

यहाँ पर कवि ने चैन की वंशी को " सुख की बीन " और खून का घूंट पीना को " घूंट लहू की पीऊँ " के रूप में प्रयुक्त किया है । इसी प्रकार निराला ने भी पैर के नीचे से धरती खिसकना मुहावरे को पैरों की धरती, आकाश को भी चली जाय और कनेर का फूल होना को " धूं धूल-धूम " कहकर अपने काव्य में प्रस्तुत किया है ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य कवियों ने अपनी काव्यभाषा को संवेदनशील तथा कलात्मक चारुता से सम्पृक्त करने के हेतु मुहावरों का प्रयोग किया है । भाषा में अर्थ गाम्भीर्य की दृष्टि में ये सहायक हुए हैं । मुहावरों की तुलना में लोकोक्तियों का प्रयोग इनके काव्य में अत्यल्प ही हुआ है । फिर भी, सूक्तियों से उनका काव्य रिक्त नहीं है यथा -

यह तीव्र हृदय की मदिरा जी भर कर- छक कर मेरी
अब लाल आँख दिखलाकर मुझको ही, तुमने फेरी ।[1]

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घन-माला में,
सौदामिनी- संधि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में ।[2]

पूजा में भी प्रतिरोध अनल जलता है ।[3]

भक्ति -योग-कर्म-ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं ।[4]
जो करे गंध मधु का वर्जन वह नहीं भ्रमर ।[5]

इस प्रकार प्रसाद और निराला के काव्य में सूक्तियों का विधान भी मिलता है । दोनों कवियों की रचनाओं में प्राप्त मुहावरे तथा लोकोक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका प्रयोग प्रयासजन्य न होकर स्वत:पूर्ण है ।

१- प्रसाद : आँसू , पृ० ३५
२- ,, : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० २६
३- निराला : तुलसीदास, पृ० १५
४- ,, : परिमल (पंचवटी प्रसंग) पृ० २३६
५- ,, : अनामिका, पृ० १८

जहाँ कहीं पर प्रयत्नपूर्वक इनका काव्य में भावन भी हुआ है तो वहाँ पर भाषा को सरल, गंभीर, जीवंत तथा लोक प्रचलित रूप देने के ध्येय से ही हुआ है । दोनों कवियों के काव्य में प्रयुक्त मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ भाषा की अर्थ व्यंजकता की समृद्धि में सहायक हुए हैं । प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में ये अधिक मिलते हैं । कारण, निराला ने जनभाषा में भी अधिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और बोलचाल की भाषा को काव्यबद्ध करने में अनायास ही इनका समावेश हो गया है । प्रसाद और निराला ने मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग भावों को सहज ढंग से सम्प्रेषित करने, विषयवस्तु को रोचक बनाने, सहृदय को आनन्दाभिभूत करने तथा भाषा को अर्थव्यंजक बनाने के उद्देश्य से किया है, काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने की दृष्टि से नहीं ।

हिन्दी साहित्य में युगान्तर उपस्थित करनेवाले प्रमुख कवि प्रसाद और निराला ने अपनी अभीप्सित भाव-व्यंजना के अनुरूप विशिष्ट शैली की रचना की है । इन कवियों का विचार था कि काव्य में सम्यक् अभिव्यक्ति भावानुभूति को स्थायित्व प्रदान करती है और इसके लिए काव्य भाषा को भावानुसारिणी होनी चाहिए । दोनों कवियों की काव्यभाषा में गंभीरता, उदात्तता, मधुरता, सरलता, व्यापकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता , चित्रमयता एवं सांकेतिकता आदि की समानता होने पर भी भिन्नता है। कारण दो कवियों की भावाभिव्यक्ति का ढंग कभी एक समान नहीं हो सकता । द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा के रूप सौष्ठव, साजसज्जा एवं अलंकरण तथा अर्थव्यंजकता को बढ़ाने में दोनों कवियों का योगदान समान ही रहा है । आधुनिक युग में काव्यभाषा के रूप में जब ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली को प्रयुक्त किया गया उस समय उसका शब्द-भण्डार बहुत ही सीमित था । जिसे समृद्ध तथा व्यापक बनाने के लिए आलोच्य कवियों ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग तो किया ही साथ ही उनमें प्रत्यय आदि के विनियोग से शब्दों का अभिनव रूप भी प्रस्तुत किया । तत्सम शब्दों का सामासिक तथा संधिज प्रयोग और अन्य भाषाओं से गृहीत नूतन शब्दों की गरिमा दोनों कवियों की काव्य भाषा को नवीन कांति से दीप्त करने के लिए यथेष्ट है । काव्य में प्रयुक्त शब्दों के नवक्रम संयोजन तथा नूतन भंगिमा द्वारा नवीन-अर्थ एवं चमत्कृति की उत्पत्ति पर बल

देते हुए स्वयं प्रसाद जी ने कहा है कि " सूक्ष्म आभ्यंतर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही । उसके लिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था । हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी।[१] भाषा में अर्थगाम्भीर्य की पुष्टि के लिए इन कवियों ने अभिधा से भिन्न लक्षणा और व्यंजना शक्ति का आश्रय लिया । सांकेतिक शब्दों के माध्यम से गूढ़ार्थ की कुशल योजना तथा भावोपम चित्रमयता द्वारा अभिव्यंजना शक्ति के संवर्द्धन में दोनों कवियों के काव्य की सार्थकता तथा औचित्य निहित है । प्रचलित शब्दों के नवीन प्रयोग द्वारा नवीन अर्थकांति उत्पन्न करने के साथ ही इन कवियों ने काव्यभाषा का जो साज-शृंगार तथा कलात्मक रूप विन्यास किया वह उनकी शिल्प-प्रौढ़ि की ओर इंगित करते हैं ।

प्रसाद और निराला की काव्यभाषा के मूल में निहित विचारधाराएँ नितान्त समान हैं, फिर भी भाषा प्रयोग के विविध आयामों में कुछ वैषम्य आ गया है । कारण, काव्य-क्षेत्र में दोनों कवियों के अभ्युदय काल में कुछ समय का अंतर तथा परंपरा से प्राप्त अभिव्यंजना प्रणाली को ग्रहण करने की भिन्नता और भावाभिव्यक्ति का अपना मौलिक ढंग है । प्रसाद की भाषा कालिदास और भवभूति की भाषा से प्रभावित होने के कारण माधुर्य तथा प्रसाद गुण व्यंजक है और निराला की भाषा जयदेव के दन्त्य प्रयोगों तथा तुलसी की विनय पत्रिका की सामासिकता एवं रामचरितमानस की सरलता और तरलता से युक्त है । निराला की भाषा जयदेव और तुलसीदास से प्रभावित होने के साथ ही रवीन्द्रनाथ की सांगीतिक ध्वनियों से भी मुखरित है ।[२] यही कारण है कि एक ही युग की समान धाराओं को लेकर चलनेवाले दोनों कवि एक विशिष्ट अभिव्यंजना प्रणाली में पूर्णतः आबद्ध नहीं हो सके और दोनों की भाषा में एक-रस-वर्षण संभव नहीं हो पाया । प्रसाद की अपेक्षा निराला की भाषा में विविधता है । उसमें कहीं समास बहुला-क्लिष्ट भाषा का जटिल प्रयोग मिलता है तो कहीं सहज एवं सरल प्रसाद गुण की प्रधानता मिलती है । निराला विरचित ' शक्तिपूजा ' के प्रारंभ की १७-१८ पंक्तियां एक ही वाक्य के अन्तर्गत आती हैं । यह सामासिक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रसाद के काव्य में इस प्रकार की भाषा का अत्यल्प प्रयोग मिलता है । निराला की भाषा कठोर, दुरूह तथा परुष है और प्रसाद की भाषा लालित्य, माधुर्य तथा कोमल

१- प्रसाद : काव्यकला तथा अन्य निबन्ध,पृ० १४३
२- नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ८७-८६

भावाभिव्यंजक है । निराला की भाषा में अर्थगौरव अधिक है, प्रसाद की भाषा में अर्थ विस्तार । किन्तु इसका यह आशय नहीं कि प्रसाद और निराला की भाषा में यदि कुछ तत्व प्रबल हैं तो अन्य दूसरे तत्वों का अभाव है । दोनों कवियों ने भावानुकूल मधुर, मसृण एवं परुष भाषा का विन्यास किया है जिससे उनका काव्य समस्त भाषागत तत्वों से युक्त है ।

प्रसाद और निराला ने खड़ीबोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों को नूतन संदर्भ में प्रस्तुत कर उसमें अर्थ विस्तार की अद्भुत क्षमता का समावेश किया । भाषा के कलात्मक विन्यास द्वारा मानस पटल पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को मूर्तिमन्त करने में भी ये कवि सफल हुए । इन कवियों की भाषा के आधार पर ही शुक्ल जी ने यह स्वीकार किया कि छायावाद की शाखा के भीतर ---- भावावेश की आकुल व्यंजना , लाक्षणिक-वैचित्र्य , मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि का स्वरूप संघटित करनेवाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी ।"[१] अत: प्रसाद और निराला की वह विशिष्ट पद-योजना जो अर्थगौरव की सृष्टि के लिए अभिनव सौन्दर्यपरक दृष्टि रखती थी साहित्य में विशेषत: मान्य हुई । दोनों कवियों की भाषा एक दूसरे से समान होते हुए भी अपने निजत्व की रक्षा में समर्थ है ।

१- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६०२

अ ध्या य - ६ : अभिव्यंजना के प्रसाधन

(१) अप्रस्तुत-योजना

(२) बिम्ब- विधान

(३) वक्रताएँ

अभिव्यंजना के प्रसाधन :

(१) अप्रस्तुत-योजना :

(क) तात्विक विवेचन : काव्य में प्रस्तुत पक्ष के उन्नयन के लिए अप्रस्तुत की योजना की जाती है। प्रस्तुत से इतर समस्त व्यापार अप्रस्तुत है। जब काव्य में कोई प्रस्तुत अवयव होना आवश्यक ठहरा तब इसके अतिरिक्त और जो कुछ रूप विधान होगा वह अप्रस्तुत होगा।[१] अप्रस्तुत काव्य का वह सशक्त पक्ष है- जो समस्त प्रस्तुत विधान को उद्दीप्त कर इसमें प्रभविष्णुता, संवेदनीयता, रसार्द्रता तथा प्रेषणीयता का सन्निवेश करता है। वास्तव में, काव्य-निर्मिति में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का ही योग समान रूप से अपेक्षित है।

आचार्य कुन्तक के अनुसार अलंकार और अलंकार्य (शब्द या अर्थ) को अलग-अलग करके, उनकी विवेचना उस (काव्य की व्युत्पत्ति) का उपाय होने से ही की जाती है। वास्तव में तो अलंकार सहित शब्द और अर्थ अर्थात् तीनों की समष्टि काव्य है। अत: तीनों की अलग-अलग विवेचन उचित नहीं है फिर भी उस अलग-अलग विवेचन से काव्य-सौन्दर्य को ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त होती है।[२] इसी कारण कुन्तक प्रस्तुत-अप्रस्तुत को तत्वत: एक मानते हुए भी व्यवहारत: भिन्न मानते हैं।

पाश्चात्य विचारक क्रोचे का मत भी कुन्तक जैसा ही है। वे उक्ति की अखण्डता को स्वीकारते हुए प्रस्तुत और अप्रस्तुत को अभिन्न मानते हैं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति से अभिन्न होने के कारण अभिव्यंजना अखण्ड है - रीति अलंकार आदि में उसका विभाजन नहीं हो सकता।[३] क्रोचे ने उक्ति (प्रस्तुत) और अलंकार (अप्रस्तुत) में अभेद माना है। उन्होंने ही यह प्रश्न उठाया कि उक्ति से अलंकार को किस प्रकार सम्बद्ध किया जाय ? यदि बाहर से, तो वह उक्ति से भिन्न हो जाएगा और यदि भीतर से, तो

१- रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा, पृ० ३३८ ।

२- अलंकृतिरलंकार्यमपोद्धृत्य विविच्यते । तदुपायतया तत्त्वं सालंकारस्य काव्यता ।।
प्रथमोन्मेष , हिन्दी वक्रोक्तिजीवित ।

३- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० १२७ ।

उस स्थिति में वह उक्ति की सहायता न करके बाधा ही उपस्थित करेगा या फिर उसका अंग बनकर अलंकार से परे हो जाएगा ।[१] इस प्रकार उक्ति और अलंकार एक दूसरे के पूरक होते हुए भी अभिन्न हैं ।[१] किन्तु निष्पक्ष रूप से क्रोचे के मत की विवेचना की जाय तो यह स्पष्ट है कि उनका मत एकांगी है । उन्होंने काव्यास्वादन के हेतु प्रस्तुत और अप्रस्तुत पर विचार नहीं किया ।

आचार्य शुक्ल का मत क्रोचे की विचारधारा से सर्वथा विलग है । वे प्रस्तुत - अप्रस्तुत में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से भेद रखते हैं । उनके अनुसार अलंकार और अलंकार्य का भेद नहीं मिट सकता । ----- उक्ति चाहे कितनी ही कल्पनामयी हो, उसकी तह में कोई प्रस्तुत अर्थ अवश्य होना चाहिए । इस अर्थ से या तो किसी तथ्य की या भाव की व्यंजना होगी । इस अर्थ का पता लगाकर इस बात का निर्णय होगा कि व्यंजना ठीक हुई या नहीं । अलंकारों (अर्थालंकारों) के भीतर भी कोई न कोई अर्थ व्यंग्य रहता है, चाहे उसे गौण ही कहिए ।[२] शुक्ल जी का यह विचार समीचीन होते हुए भी अपने में पूर्ण नहीं है । उन्होंने दोनों दृष्टियों से इनमें भिन्नता मानकर प्रस्तुत-अप्रस्तुत के निगूढ़ एवं सूक्ष्म संबंध को विच्छिन्न कर दिया है ।

डा० नगेन्द्र का मत इस विषय में अत्यधिक महत्वपूर्ण है । उनके अनुसार ये नाम निरपेक्ष नहीं हैं किन्तु स्वरूप भेद के लिए उनकी अपनी उपयोगिता है ---- । दोनों तत्वत: एक है परन्तु प्रत्यक्षत: दो है ही । व्यवहार रूप में इस भेद को अनर्गल कहकर उड़ा देने से समस्त शास्त्र विवेचन ही व्यर्थ हो जाता है ; अलंकार-शास्त्र ही नहीं, दर्शनशास्त्र का भी अस्तित्व नहीं रह जाता ।[३]

---

1. Here for instance, it may be as-ked how an ornament can be joined to expression. Externally ? In that case it is alwaysseparated from the expression.Intenally? in that case, either it does not assist the expression and mars it;or it does form part of it and is not an ornament, but a contituent element of the expression, indivisible and indistinguisable in its unity. - AESTHETIC. B.Croce , p.69.

२-. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि (भाग -२) पृ० १८६-६० ।

३- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित : सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० १३२ ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि काव्य में प्रस्तुत अर्थ की व्याप्ति तथा प्रस्तुत के भावोद्दीप्त के लिए अप्रस्तुत की योजना अनिवार्य है। वास्तव में ये दोनों एक होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से दो हैं। इस सन्दर्भ में व्यक्त कुन्तक और डा० नगेन्द्र का मत ही अधिक तर्कसंगत है। क्रोचे और शुक्ल जी का विचार पूर्णत: एकांगी है। काव्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत की स्थिति अभिन्न होते हुए भी भेद रहित नहीं है।

अप्रस्तुत के स्वरूप -बोध के सन्दर्भ में उसके विस्तार एवं परिधि से भी अवगत हो लेना अनिवार्य है। आचार्य शुक्ल ने एक स्थल पर प्रस्तुत वस्तु और आलंकारिक वस्तु में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव मानकर[1] इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया है। किन्तु दूसरी ओर वे प्रस्तुत से इतर सब कुछ अप्रस्तुत बताकर[2] इसकी परिधि को व्यापक भी बना देते हैं। वास्तव में अप्रस्तुत का क्षेत्र असीमित है। वह अलंकार मात्र न होकर काव्य में अभिव्यंजित समस्त साम्यजन्य विधानों का समग्ररूप है जो कवि की कल्पना को सहृदय के लिए आस्वाद्य बनाता है। अप्रस्तुत योजना बाहर से लायी जानेवाली सारी वस्तुओं को ग्रहण करती है चाहे अप्रस्तुत का कैसा ही रूप क्यों न हो। अप्रस्तुत विशेष्य हो, विशेषण हो, क्रिया हो, मुहावरा हो, चाहे और कुछ हो इसके भीतर सब समा जाते हैं।[3] अतएव अप्रस्तुत विधान काव्य का वह सर्वांगी पक्ष है जिसमें उपमान के अतिरिक्त प्रतीक, बिम्ब आदि भी समाविष्ट हो जाते हैं।

निष्कर्षत: अप्रस्तुत योजना से अभिप्राय काव्य में अभिव्यंजना के उन समग्र उपकरणों से है जो साम्य पर आधृत अप्रस्तुत को अपने ढंग से व्यंजित करते हैं। किन्तु कला के परिप्रेक्ष्य में अप्रस्तुत -विधान के अन्तर्गत साम्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त प्रभविष्णुता तथा अर्थ संप्रेषण की शक्तिवाले चमत्कारजन्य वैषम्यमूलक अलंकार भी आते हैं, जो अभिव्यंजना में भावनैपुण्य की समृद्धि के साथ-साथ उक्तिवैचित्र्य को समाहित करने में सहायक होते हैं। काव्य में भाव संवर्द्धक इन अप्रस्तुतों का विशेष महत्व है। यद्यपि रसवादी तथा ध्वनिवादी आचार्यों ने इसे कटक-कुण्डल के समान माना है किन्तु

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा (अप्रस्तुत रूप विधान) पृ० ३६२।

२- वही, पृ० ३३८।

३- पं० रामदहिन मिश्र : काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृ० ४।

आधुनिक आलोचनाशास्त्र में अलंकार या अप्रस्तुत विधान अथवा बिम्ब योजना का महत्त्व केवल केयूर या भुजबन्ध के समान नहीं है, जिसे यथावसर उतार कर रख दिया जा सके ।[१] अत: यह काव्य का अनिवार्य एवं नित्य लक्षण है । अप्रस्तुत विधान केवल काव्यरस के संवर्द्धक ही नहीं अपितु रसाभिव्यक्ति के अनिवार्य माध्यम भी है। इस दृष्टि से भी काव्य में अप्रस्तुत योजना का महत्त्व अक्षुण्ण है।

(ख) प्रसाद और निराला की अप्रस्तुत-योजना

महाकवि प्रसाद और निराला ने स्वानुभूति की अभिव्यक्ति तथा अभीष्ट अर्थ की व्यंजना के लिए काव्य में प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का विधान तो किया किन्तु साध्य न बनाकर साधन रूप में ही । दोनों कवियों के काव्य में संस्कृत आचार्यों द्वारा परिगणित अलंकार के त्रिभेद शब्दालंकार तथा अर्थालंकार के अनेकानेक भेद उपलब्ध हैं । शब्दालंकारों की तुलना में इन कवियों ने भाव संवाहक अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक किया है । प्रसाद और निराला ने अभीप्सित अर्थ की व्यंजना के लिए साम्याश्रित अप्रस्तुतों के साथ ही वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों की भी रचना की । साम्य एवं वैषम्य मूलक अप्रस्तुतों के अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य अप्रस्तुतों का विधान भी इनके काव्य में हुआ है । अतएव विवेचन की सुविधा के लिए आलोच्य कवियों के अप्रस्तुत विधान को तीन प्रमुख श्रेणियों में बाँटा जा सकता है जिसके अन्तर्गत उनके द्वारा प्रयुक्त समस्त शब्द एवं अर्थगत अलंकारों का सहज समावेश संभव है ।

(१) साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना
(२) वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना
(३) सर्जनात्मकता के अन्य रूप

(१) साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना

काव्य में प्रयुक्त अप्रस्तुतों का सर्वाधिक अंश साम्याश्रित होता है । साहित्य में प्रारंभ से ही साम्य पर आधारित अप्रस्तुतओं का विधान होता रहा है।

१- डा० नगेन्द्र : रस सिद्धान्त, पृ० ३३४ ।

अभिव्यंजनावाद के प्रसंग में शुक्ल जी ने ऐसे अप्रस्तुतों के तीन प्रमुख रूपों की चर्चा की है - (१) सादृश्य (रूप की समानता) (२) साधर्म्य (धर्म अर्थात् गुण क्रिया आदि की समानता) तथा (३) शब्द साम्य (केवल शब्द या नाम के आधार पर समानता)।[१] इनमें से शुक्ल जी ने " शब्द-साम्य " को चमत्कारवादियों का काम कहकर उसके प्रति उपेक्षा-भाव व्यक्त किया है और एक तीसरे महत्वपूर्ण आधार की ओर ध्यान आकृष्ट किया है -" सादृश्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी केवल प्रभाव-साम्य का हल्का सा संकेत लेकर ही अप्रस्तुत की बेधड़क योजना कर दी जाती है ।[२] अत: साम्यमूलक अप्रस्तुतों के तीन प्रमुख आधार हैं - सादृश्य, साधर्म्य तथा प्रभाव साम्य । साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना के अन्तर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक जैसे प्रमुख अप्रस्तुतों के अतिरिक्त संदेह, भ्रम, स्मरण, दृष्टांत तथा रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों की गणना की जा सकती है ।

उपमा : प्रसाद और निराला ने परम्परानिहित अलंकार- उपमा का सर्वाधिक प्रयोग किया है । उपमा के विधान में इन कवियों ने नूतन अप्रस्तुतों का कलात्मक संयोजन किया है । मूर्त को अमूर्तोपमा और अमूर्त को मूर्तोपमा प्रदान करने की विशिष्ट प्रणाली ने प्रसाद और निराला को पूर्ववर्ती कवियों से सर्वथा विलग कर दिया । दोनों कवियों ने अपने काव्य में अल्प सादृश्य या सादृश्य लोप होने पर भी प्रभाव-साम्य के आधार पर अप्रस्तुतों की रचना की है, जो इनकी अपनी मौलिक विशिष्टता मानी जाती है । प्रसाद और निराला के काव्य में सादृश्यगर्भ अप्रस्तुतों का विधान द्रष्टव्य है-

> तारक-हीरक हार पहन कर चन्द्रमुख
> दिखलाती, उतरी आती थी चाँदनी
> (ऊँची महलों के ऊँचे मीनार से)
> जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका ।[३]

१- रामचन्द्र शुक्ल ? चिंतामणि (भाग -२) पृ० २२० ।

२- वही, पृ० २२१।

३- प्रसाद : महाराणा का महत्व, पृ० ३८ ।

ज्योतिर्मयि - ला-सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु तन ।[1]

प्रथम उद्धरण में प्रसाद जी ने रूप तथा धर्म की समानता के आधार पर अप्रस्तुत की रचना की है । यहाँ पर प्रभाव-साम्य का भी विधान हुआ है । कारण यदि सादृश्य और साधर्म्य प्रभाव- विस्तारक नहीं तो वह उपमान निर्जीव है इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में सादृश्य को आधार बना कर कवि निराला ने कथन को कलात्मक रूप प्रदान किया है। किन्तु इन सूक्ष्म दृष्टा कवियों ने अप्रस्तुत की रचना में स्थूल वर्णन की सादृश्य धर्म प्रणाली को अधिक महत्व न देकर धर्म तथा गुणाश्रित सूक्ष्म अप्रस्तुतों के विधान पर अधिक बल दिया , यथा -

चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी ।[2]

जीवन की जटिल समस्या है बढ़ी जटा सी कैसी ।[3]

मन्द पवन के झोंकों से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल ।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों में चन्द्रिका पर्व तथा उस पावन तन की शोभा और जीवन की समस्या है बढ़ी जटा सी में धर्म तथा गुण की समानता है । इसी प्रकार गुण के आधार पर निराला ने मूर्त के लिए अमूर्त (मृदुल कल्पना के-से जाल) उपमान की रचना की है ।

प्रसाद और निराला ने उपमान संयोजन में सूक्ष्म भावाभिव्यंजक प्रभावकारी अप्रस्तुतों को अधिक प्रश्रय दिया है । छायावाद ने अपना ध्यान प्रभाव साम्य पर विशेष केन्द्रित किया, जबकि पुराने कवि आकार साम्य की ओर अधिक दौड़ते थे । --------- इस तरह छायावाद ने औपम्य-विधान की एक नई परिपाटी

१- निराला : नामिका (प्रेयसी) पृ० १. ।
२- प्रसाद : आँसू, पृ० २० ।
३- वही, पृ० १० ।
४- निराला : परिमल (उसकी स्मृति) पृ० ११५।

स्थापित कर दी ।[1] प्रसाद और निराला के अप्रस्तुतों की यह महती विशेषता है कि वस्तु स्थिति का जैसा प्रभाव उनके मनोमस्तिष्क पर पड़ा उसके अनुरूप ही उपमानों की रचना कर डाली, यथा -

जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये ।[2]

कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार
प्राण सत्ता में मनोहर भेद सी सुकुमार ।[3]

जीवन प्रात - समीरण सा लघु
विचरण- निरत करो ।[4]

क्षुब्ध एक कम्पन- सा निद्रित
सरोवर में ।[5]

प्रथम एवं द्वितीय उद्धरण में कवि ने "कौतूहल" "कुहुक" तथा "मनोहर भेद" जैसे अप्रस्तुतों के विधान में हृदय पर पड़नेवाले प्रभाव पर बल दिया है । इन अप्रस्तुतों में साम्य का आधार धुंधला होते हुए भी प्रभावजन्य है । इसी प्रकार तृतीय तथा चतुर्थ उद्धरण में "समीरण सा" तथा "कम्पन-सा" उपमान प्रयुक्त हुआ है इन अप्रस्तुतों के विधान में कवि की सूक्ष्म कल्पना शक्ति तथा सर्जनात्मक प्रतिभा का स्पष्ट बोध होता है किन्तु ऐसी योजनाएं साम्य के धुंधले आधार पर ही की जाती है, पर बड़ी ही मार्मिक और हृदयाकर्षक होती है । कहीं-कहीं पर तो साम्य इतना सूक्ष्म होता है कि उसे हृदयंगम करना कठिन हो जाता है[6] यथा -

मतवाली सुन्दरता पग में नूपुर सी लिपट मनाती हूं ।[7]

१- डा० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० ८९-९० ।
२- प्रसाद : आंसू, पृ० १५ ।
३- प्रसाद : कामायनी (वासना सर्ग) पृ० ९८ ।
४- निराला ? परिमल (प्रार्थना) पृ० ३४ ।
५- निराला : परिमल (जागृति में सुप्ति थी) पृ० १७३ ।
६- पं० रामदहिन मिश्र : काव्य में अप्रस्तुत-योजना, पृ० ९५-९६ ।
७- प्रसाद : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १११ ।

कुंचित अलकों सी घुंघराली मन की मरोर बनकर जगती ।[1]

यहां पर कवि ने लज्जा जैसे अमूर्तभाव को मूर्त करने के लिए सूक्ष्म अप्रस्तुतों की रचना की है । जो उनकी विशिष्ट काव्य-कला की परिचायक है ।

कथन की प्रभविष्णुता तथा संप्रेषणीयता के लिए कहीं-कहीं पर इन कवियों ने उपमानों की झड़ी सी लगा दी है । दोनों कवियों के काव्य में मालोपमा के कलात्मक उदाहरण मिलते हैं -

घन में सुन्दर बिजली-सी बिजली में चपल चमक-सी
आंखों में काली पुतली पुतली में श्याम झलक सी ।[2]

मृदु सुगंध - सी कोमल दल फूलों की,
शशि- किरणों की-सी वह प्यारी मुसकान ।
स्वच्छंद गगन -सी मुक्त, वायु सी चंचल ;
सोई स्मृति की फिर लाई-सी पहचान ।[3]

आलोच्य कवियों ने भाव को सौन्दर्यपूर्ण ढंग से व्यक्त करने के लिए उपर्युक्त उद्धरणों में अनेक उपमानों की सृष्टि कर डाली है । उनके काव्य में लुप्तोपमा के भी उदाहरण मिलते हैं -

अभिलाषा के मानस में सरसिज सी आंखें खोलो ।[4]

आंखें अलियों-सी किस मधु की गलियों में फंसी ।[5]

यहां पर दोनों उद्धरणों में उपमेय, उपमान और वाचक का प्रयोग तो हुआ है किन्तु धर्म का लोप हो गया है । जिससे यह लुप्तोपमा का सुन्दर उदाहरण बन पड़ा है । प्रसाद और निराला के काव्य में पूर्णोपमा-

---

१- प्रसाद : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १११ ।
२- प्रसाद : आंसू , पृ० १५ ।
३- निराला : परिमल (उसकी स्मृति), पृ० ११५ ।
४- प्रसाद : आंसू, पृ० ६१ ।
५- निराला : अपरा (जागो फिर एक बार) पृ० १६ ।

मकरन्द मेघ-माला सी वह स्मृति मदमाती आती ।[1]

वह दीप -शिखा सी शान्त, भाव में लीन,[2]

इस प्रकार प्रसाद और निराला के काव्य में साम्याश्रित अप्रस्तुतों का सुनियोजित विधान मिलता है । दोनों कवियों ने काव्य में उपमा को प्रस्तुत करने के लिए साधर्म्य, सादृश्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य पर अधिक बल दिया है । प्रसाद और निराला ने साम्याश्रित उपमानों के माध्यम से मसृण एवं कोमल तथा भव्य एवं उदात्त भावों को सहृदय में जाग्रत करने का जो प्रयास किया है वह उनके काव्य-शिल्प की महती विशेषता है ।

उत्प्रेक्षा : सादृश्य के आधार पर उपमेय में उपमान की संभावना दिखाना उत्प्रेक्षा अलंकार है। प्रसाद और निराला ने अपने काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार की कलात्मक सृष्टि की है ।

बार-बार उस भीषण रव से कंपती धरती देख विशेष
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष ।[3]

नेत्र निमीलन करती मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने ।[4]

उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानो हंसी हिमालय की है फूट चली करती कलगान ।[5]

प्रथम उद्धरण में आलिंगन के हेतु उतरा हुआ नील व्योम अहेतु होते हुए भी हेतु रूप में चित्रित हुआ है जिससे यहाँ पर हेतुत्प्रेक्षा होगी । द्वितीय उद्धरण में नेत्र निमीलन के बाद प्रबुद्ध होना रूपी फल सिद्ध है किन्तु यह फल उपमेय पृथ्वी के लिए अफल है । क्योंकि धरती के नेत्र नहीं होते फिर उनका निमीलन करना और प्रबुद्ध होना तो उसका धर्म ही नहीं है । अतएव यहाँ

१- प्रसाद : आँसू, पृ० ३१ ।

२- निराला : परिमल (विधवा) पृ० ११६।

३- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० २२ ।
४- ,, ,, (आशासर्ग) पृ० ३१ ।
५- ,, ,, (,,) पृ० ३७ ।

पर अकाल में फल की जो कामना की गई है उसके कारण फलोत्प्रेक्षा की सृष्टि हुई है । तृतीय उद्धरण में मुस्कयान (उपमेय) में कलगान (उपमान) की संभावना की जाने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार का विधान हुआ है । प्रसाद की तुलना में निराला ने इस अलंकार का कम प्रयोग किया है । उनके काव्य में उत्प्रेक्षा का उदाहरण दृष्टव्य है -

> उसके खिले कुसुम सम्भार
> विटप के गर्वोन्नित वक्ष:स्थल पर सुकुमार
> मोतियों की मानो है लड़ी
> विजय के वीर हृदय पर पड़ी ।[१]

रूपक — काव्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के अभेद आरोप से रूपक अलंकार की सृष्टि होती है । प्रसाद और निराला ने अपने काव्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत की अनुरूपता तथा प्रभाव की समानता के आधार पर रूपक अलंकार की रचना की है-

> अम्बर पनघट में डुबो रही - तारा-घट ऊषा नागरी ।[२]

> तिरती है समीर - सागर पर
> अस्थिर सुख पर दुख की छाया ।[३]

यहाँ पर प्रभाव साम्य पर आवृत रूपक अलंकार की सृष्टि हुई है । प्रथम उद्धरण में पनघट, तारा-घट और ऊषा-नागरी शब्दों का रूपकमय विधान प्रसाद के शिल्प विन्यास की अतिरिक्त विशेषता है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में निराला ने समीर-सागर का जो रूपक बाँधा है वह अत्यधिक कलात्मक बन पड़ा है । प्रसाद और निराला के काव्य में रूपक के प्रभेद दृष्टव्य है -

> बाड़व-ज्वाला सोती थी इस प्रणय-सिन्धु के तल में ।[४]

> बता तो सही किन्तु वह कौन घेरनेवाली
> बाहु-वल्लियों से मुझको है एक कल्पना-लता ?[५]

१- निराला : कविश्री (जुही) पृ० २१ ।
२- प्रसाद : लहर , पृ० १६ ।
३- निराला : परिमल (बादलराग) पृ० १६६ ।
४- प्रसाद : आँसू,पृ० ६ ।
५- निराला : अनामिका (प्रलाप) पृ० २६ ।

प्रथम उद्धरण में प्रधान रूपक 'प्रणय सिन्धु' को 'बाड़व-ज्वाला' जैसे रूपक के माध्यम से स्पष्ट किया गया है । और द्वितीय उद्धरण में बाहु पर बल्लियों के आरोपण की कल्पना भी लता द्वारा स्पष्ट किया गया है जिससे इन पदों में परम्परित रूपक की पुष्टि हुई है ।

ओ चिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की व्याली ;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कंप सी मतवाली ।[1]

नील-सरोज नयन, सिन्धु-तट जिस युवती के अति सुकुमार ,
उमड़ रहा जिसकी आँखों पर मृदु भावों का पारावार ।[2]

आकुल जीवन का मन - मधुकर,
खुलती उस दृग-छवि में बंधकर,[3]

उपर्युक्त प्रथम एवं द्वितीय उद्धरण निरंग रूपक और तृतीय उद्धरण उपमान की संपूर्णता के कारण सांगरूपक की कोटि में आता है । प्रसाद और निराला के काव्य में रूपक के सभी रूप उपलब्ध हैं ।

सादृश्य पर आधृत उपर्युक्त प्रमुख अलंकारों के अतिरिक्त प्रसाद और निराला के काव्य में स्मरण , व्यतिरेक, काव्यलिंग, संदेह, उदाहरण, तुल्ययोगिता आदि अलंकारों का विधान भी हुआ है, यथा -

स्मरण : वे फूल और वह हँसी रही वह सौरभ, वह निश्वास छना
वह कलरव, वह संगीत अरे वह कोलाहल एकांत बना ।[4]

याद भी आई, एक दिन जब शान्त
वायु थी, आकाश हो रहा था क्लान्त,
ढल रहे थे म्लान-मुख रवि, मुख-किरण
पत्र-पत्र पर थी, रहा अकमन्द्र वन,
देखती वह छवि खड़ी मैं, साथ वे
कह रहे थे -------------------।[5]

१- प्रसाद : कामायनी (चिंतासर्ग) पृ० १३ ।
२- निराला : नायिका (नाचे उस पार श्यामा) पृ० १०७ ।
३- ,, : तुलसीदास,पृ० २२ ।
४- प्रसाद : कामायनी (कामसर्ग) पृ० ७२ ।
५- निराला : अपरा (शेष) पृ० २६ ।

सदृश वस्तु अर्थात् वातावरण को देखकर यहां पर जिस पूर्वानुभूत स्थितियों की स्मृति सजग हो उठी है वह स्मरण अलंकार की पुष्टि में सहायक है । निराला की अपेक्षा प्रसाद के काव्य में इस अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है ।

व्यतिरेक : लावण्य-शैल राई सा जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की सुषमा थी प्यारी-प्यारी ।[१]

देखते राम का जित-सरोज -मुख-श्याम-देश ।[२]

यहां पर कवि ने प्रथम उद्धरण में उपमेय को उपमान से अधिक बताया है प्रियतम की सुषमा एवं कमनीयता के समक्ष लावण्य -शैल भी राई के समान है- जिससे व्यतिरेक अलंकार की पुष्टि हुई है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में उपमेय " मुख " को सरोज से से श्रेष्ठ बताकर निराला जी ने व्यतिरेक अलंकार की रचना की है ।

काव्य-लिंग : मैं स्वयं सतत आराध्य आत्म मंगल उपासना में विभोर
उल्लासशील मैं शक्ति केन्द्र, किसकी खोजू फिर शरण और[३]

जलद नहीं-जीवनद, जिलाया
जबकि जगज्जीवन्मृत को ;
तपन- ताप- संतप्त तृषातुर
तरुण- तमाल - तलाश्रित को ।[४]

प्रथम उद्धरण में " किसकी खोजू फिर शरण और "की पुष्टि " में स्वयं सतत आराध्य " हेतु द्वारा हुई है, जिससे काव्य-लिंग अलंकार है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में " तपन-ताप-संतप्त तृषातुर " की पुष्टि के हेतु रूप "जीवनद, जिलाया जब जगज्जीवनमृत " पंक्ति की रचना हुई है जो काव्य-लिंग का

१- प्रसाद : आंसू, पृ० १६ ।
२- निराला : अनामिका (शक्तिपूजा) पृ० १५० ।
३- प्रसाद : कामायनी (रहस्य सर्ग) पृ० १६६ ।
४- निराला : परिमल (जलद के प्रति) पृ० ७८ ।

सुन्दर उदाहरण है । इसके साथ ... उदाहरण में जीवनद का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार भी है । " ज " और " त " की आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास की अनुपम छटा भी दृष्टव्य है ।

संदेह : थी किस अनंग के धनुष की वह शिथिल शिंजनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या तनु छवि-सर की नव लहरी ।[1]

मदभरे ये नलिन-नयन मलीन है,
अल्पजल में या विकल लघुमीन है ।
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन है ।[2]

प्रथम उद्धरण में प्रसाद ने बाहुलता " में अनंग की दुहरी शिंजनी के साथ " छवि-सर की नव लहरी " के सादृश्य पर संदेह व्यक्त कर संदेहालंकार की सृष्टि की है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में निराला ने " मलीन नलिन-नयन " में " विकल लघुमीन " तथा प्रतीक्षारत दीन शर्वरी के सादृश्य को लेकर जिस अनिश्चय को व्यक्त किया है वह संदेह अलंकार का सफल उदाहरण है ।

उदाहरण : अभिशाप प्रतिध्वनि हुई लीन
नभ सागर के अन्तस्तल में जैसे छिप जाता महामीन ।[3]

हाथ आ गया प्रिय के कर में, कह किसका वह कर सुकुमार
विटप-विहग ज्यों फिरा नीड़ में सहम तमिस्त्र देख संसार ।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों में वाचक पद द्वारा दो वाक्यों में समता दिखाई गई है । प्रथम में प्रतिध्वनि हुई लीन जैसे छिप जाता महामीन तथा द्वितीय में प्रिय के कर में उन सुकुमार करों का कम्प की आ जाना जैसे तमिस्त्र संसार को

१- प्रसाद : आँसू, पृ० २० ।
२- निराला : परिमल (नयन) पृ० ७५ ।
३- प्रसाद : कामायनी (श्रद्धासर्ग) पृ० १७५ ।
४- निराला : अपरा (यमुना के प्रति) पृ० ६८ ।

देखकर विहग का नीड़ में आना - वाक्य को वाचक पद के आधार पर मिलाया गया है जिससे सादृश्य आश्रित उदाहरण अलंकार की पुष्टि हुई है ।

तुल्य- योगिता : उषा ज्योत्स्ना सा, यौवन स्मित,
मधुप सदृश निश्चिंत विहार ।[१]

नित्य अनित्य हो रहे हैं, यों
त्रिविध-विश्व-दर्शन-प्रणयन ये ।[२]

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रिया के द्वारा दो उपमेयों के एक समान धर्म को लाया गया है जिससे तुल्ययोगिता अलंकार की पुष्टि हुई है ।

अप्रस्तुत प्रशंसा : उठ उठ री लघु लघु लोल लहर !
करुणा की नव अँगड़ाई-सी,
मलयानिल की परछाईं-सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर ।[३]

हाँ उस कानन के खिले हुए तुम फूल अकेले
चूम रहे थे भूम-भूम ऊषा के स्वर्ण कपोल
अठखेलियाँ तुम्हारी प्यारी-प्यारी
व्यक्त इशारे से हो सारे बोल मधुर अनमोल[४]

प्रथम पद में प्रसाद ने उपमान (लहर) के कथन द्वारा उपमेय (अन्तर्निहित भावना) को और द्वितीय पद में निराला ने अप्रस्तुत के माध्यम से जिस प्रकार प्रस्तुत को व्यक्त किया है वह अप्रस्तुत प्रशंसा का सफल उदाहरण है।

प्रसाद और निराला ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के कारण साम्यजनित उपर्युक्त शास्त्रीय अप्रस्तुतों का कलात्मक विधान किया है । दोनों कवियों

१- प्रसाद : कामायनी (चिन्ता सर्ग) पृ० १७ ।
२- निराला : अपरा (फुल्लनयन) पृ० ७५ ।
३- प्रसाद : लहर, पृ० १ ।
४- निराला : परिमल (पहचाना) पृ० १२२ ।

ने साम्य पर आधृत अप्रस्तुतों के माध्यम से जीवन और जगत के अनेक तथ्यों को व्यक्त किया है । दोनों कवियों ने अप्रस्तुतों के विधान में सादृश्य और साधर्म्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य पर अधिक बल दिया, जिससे उनके साम्यमूलक अप्रस्तुत मानव मन की सुकोमल भावनाओं को जाग्रत करने में पूर्णतः सफल है । साम्य का आरोप निःसंदेह एक बड़ा विशाल सिद्धान्त लेकर काव्य में चलता है कि जगत के अनन्त रूपों या व्यापारों के बीच फैले उन मोटे, महीन सम्बन्ध सूत्रों की झलक सी दिखाकर नीरसता के सूनेपन का भाव दूर करता है ; अखिल जगत से एकत्व की आनंदमयी भावना जगाकर हमारे हृदय का बंधन खोलता है ।[1] शुक्ल जी का यह कथन प्रसाद और निराला के विषय में व्यक्तिगत रूप से भी सटीक बैठता है ।

(२) वैषम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना

रूप, रंग के प्रतीयमान विरोधों के माध्यम से वैषम्य पर आधृत भावाभिव्यंजना को प्रभविष्णु रूप देना ही वैषम्यमूलक अप्रस्तुत योजना है । प्रसाद और निराला की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि ने साम्य के अतिरिक्त वैषम्य पर आधृत अलंकारों की भी सृष्टि की । दोनों कवियों ने वैषम्यमूलक अलंकारों में सब से अधिक विरोधाभास की रचना की है ।

विरोधाभास - नूतनता के आग्रही कवि प्रसाद और निराला ने विरोधाभास अलंकार की रचना पाश्चात्य अलंकरण पद्धति से प्रभावित होकर की है । अंग्रेजी के आक्सीमारन (Oxymoron) तथा पैराडाक्स (Paradox) के समीपस्थ इस अलंकार का प्रयोग दोनों कवियों ने बहुतायत से किया है ।

पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप ।[1]

अरी आधि मधुमय अभिशाप ।[2]

तू मधुर व्यथा - सा शून्य चीर ।[3]

शीतल ज्वाला जलती है ।[4]

१-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४६ ।
१- प्रसाद : कामायनी (चिंतासर्ग) पृ० १३ ।
२- वही, पृ० १३ ।
३- प्रसाद : लहर, पृ० ३७ ।
४- ,, : आँसू, पृ० ६ ।

यहाँ पर प्रसाद ने सुन्दर पाप, मधुमय अभिशाप, मधुर व्यथा तथा शीतल ज्वाला जैसे शब्दों के कलात्मक विधान से विरोधाभास को प्रस्तुत किया है। निराला ने भी ऐसे अप्रस्तुत की रचना की है, यथा -

मुक्त ज्यों बंधा मैं, हुआ त्रस्त।[१]

किस विनोद की तृषित गोद में।[२]

"पी कहाँ" पपीहा-प्रिया मधुर विष गई छहर।[३]

उपर्युक्त पंक्तियों में "मुक्त ज्यों बंधा", तृषित गोद", मधुर विष " में स्पष्ट विरोध परिलक्षित हो रहा है। कवि ने कथन में रोचकता एवं अर्थ.गाम्भीर्य के हेतु विरोधाभास की सृष्टि की है। आलोच्य कवियों के काव्य में इस प्रकार के अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

विषम अलंकार -

आह यह पशु और इतना सरल सुन्दर स्नेह।[४]

कहाँ अंधेरे का प्रिय-परिचय, कहाँ दिवस की अपनी लाज।[५]

यहाँ पर प्रथम उदाहरण में पशु और सरल सुन्दर स्नेह में समानता नहीं है। इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण में भी दो असमान घटनाओं का वर्णन हुआ है जिससे इनमें विषम अलंकार है।

असंगति अलंकार -

मेरे जीवन की उलझन बिखरी थी उनकी अलकें।[६]

यहाँ पर कवि ने मेरे जीवन की उलझन के सर्वथा विपरीत उनकी अलकों का बिखरना बताकर असंगति अलंकार की सृष्टि की है।

इस प्रकार आलोच्य कवियों ने वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों द्वारा

१- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५८।
२- ,, : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ४४।
३- ,, : अपरा (बनबेला) पृ० ६५।
४- प्रसाद : कामायनी (वासनासर्ग) पृ० ६२।
५- निराला : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ४६।
६-प्रसाद : आंसू, पृ० २१।

विषय-वस्तु तथा अभिव्यंजना शैली को संवेदनीय तथा प्रभविष्णु बनाने का गुरुतर कार्य संपन्न किया है । इस कोटि के अलंकार विधान के मूल में उनकी अर्थव्यंजकता तथा संप्रेषणीयता की भावना ही निहित है, चमत्कारोत्पादन की नहीं ।

(३) सर्जनात्मकता के अन्य रूप -

प्रसाद और निराला जैसे मेधावी काव्य शिल्पियों ने भावाभिव्यक्ति को कलात्मक रूप प्रदान करने के लिए साम्य तथा वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों के अतिरिक्त कुछ अन्य पारम्परिक, नूतन तथा पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित अलंकारों की भी सृष्टि की है ।

उल्लेख - कौन हो तुम विश्वमाया कुहुक सी साकार,
प्राणसत्ता में मनोहर भेद सी सुकुमार,
हृदय जिसकी कांत काया में लिये निश्वास
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश ।[१]

मेरे इस जीवन की तू सरल भावना कलिका,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका ;
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल-कामिनी,
मेरे कुंज-कुटीर-द्वार की कोमल चरणगामिनी ;[२]

उपर्युक्त उद्धरणों में एक ही विषय का एक ही व्यक्ति द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन होने के कारण उल्लेख अलंकार होगा । काव्य की पुष्टि के हेतु आलोच्य कवियों ने काव्य में इन अलंकारों की भी सृष्टि की है ।

विभावना - बीच नदी में नाव किनारे लग गई
उस मोहन मुख का दर्शन होने लगा ।[३]

वह कली सदा को चली गई दुनिया से
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त ।[४]

१- प्रसाद : कामायनी (वासना सर्ग) पृ० ६८ ।
२- निराला : अनामिका (प्रिया से) पृ० ४२ ।
३- प्रसाद : झरना (दर्शन) पृ० ५५ ।
४- निराला : परिमल (उसकी स्मृति) पृ० ११६।

उपर्युक्त उद्धरणों में कथन की विचित्रता के साथ बिना कारण के कार्य सम्पन्न होने से विभावना अलंकार है ।

अपह्नुति - गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु[1]

यहाँ प्रस्तुत का प्रतिषेध कर कवि ने अप्रस्तुत की स्थापना कर अपह्नुति अलंकार की सृष्टि की है ।

अतिशयोक्ति - बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ।[2]

जल गए व्यंग्य से सकल अंग
चमकी चल-दृग ज्वाला-तरंग[3]

प्रथम उद्धरण में उपमानों के द्वारा उपमेय मुख और काली लटों का कथन किया गया है जिससे रूपकातिशयोक्ति है । दूसरे उद्धरण में निराला ने संबंध से असंबंध का प्रदर्शन किया है जिससे संबंधातिशयोक्ति की सृष्टि हुई है।

परिकर - ताल तान गायेगी बाँकी
पागल-सी इस पथ निरवधि में ।[4]

यहाँ पर निरवधि शब्द प्रकृत अर्थ (साधना पथ की कोई अवधि नहीं होती) के प्रतिपादन के लिए साभिप्राय प्रयोग हुआ है । अतः साभिप्राय विशेषण प्रयोग होने से परिकर अलंकार है ।

परिकरांकुर - गजगामिनि, वह पथ तेरा संकीर्ण,
कंटकाकीर्ण, कैसे होगी उससे पार ?[5]

क्रिया (पार करना) को प्रकाशित करने के लिए साभिप्राय विशेष्य (गजगामिनि) का प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार की सृष्टि हुई है ।

१- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १६१।
२- प्रसाद : आँसू , पृ० १७ ।
३- निराला : तुलसीदास, पृ० ४१।
४- प्रसाद : लहर , पृ० २५।
५- निराला : अनामिका (प्रगल्भ प्रेम) पृ० ३४ ।

व्याजस्तुति - मानती हूँ शक्तिशाली तुम सुलतान हो
और मैं हूँ बन्दिनी ।[1]

ऐसे शिव से गिरजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह ।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों में स्तुति में निंदा हुई है जिससे व्याज स्तुति अलंकार होगा ।

विशेषोक्ति - छल छुटता नहीं कुछाये रँग गया हृदय है ऐसा
आँसू से धुला निखरता यह रँग अनोखा कैसा[3]

यहाँ पर कारण (धुलना) के उपस्थित होते हुए भी कार्य (रँग छूटना) की उत्पत्ति न होने के कारण विशेषोक्ति अलंकार है ।

अत्युक्ति - लावण्य शैल राई-सा जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की सुषमा थी प्यारी प्यारी[4]

वन्य-लावण्य-लुब्ध संसार,
देखता कवि रुक बारंबार[5]

वास्तविक तथ्य को रोचक ढंग से बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करने के कारण यहाँ अत्युक्ति अलंकार है ।

सम्बोधन - निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप आओगे
इतना सजग कुतूहल । ठहरो, यह न कभी बन पाओगे ।[6]

मेरे अन्तर में आते हो देव निरन्तर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु
बार-बार कर-कंज बढ़ाकर ।[7]

१- प्रसाद : लहर, पृ० ७७ ।
२- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १३० ।
३- प्रसाद : आँसू, पृ० ३३ ।
४- वही, पृ० १६ ।
५- निराला : परिमल, पृ० ६४ ।
६- प्रसाद : लहर , पृ० ३ ।
७- निराला : परिमल (भर देते हो) पृ० १११ ।

यहाँ पर अनुपस्थित व्यक्ति को सम्बोधित कर इस प्रकार कथन को व्यक्त किया गया है जैसे वह उपस्थित हो । अतएव सम्बोधन अलंकार है ।

आलोच्य कवियों के काव्य में प्रयास करने पर अधिकाधिक अर्थाभि-व्यंजक अलंकारों को प्राप्त किया जा सकता है यद्यपि इन अलंकारों का भाजन उनके काव्य में स्वतः हुआ है प्रयासजन्य नहीं । .

प्रसाद और निराला ने मूर्तामूर्त अप्रस्तुतों का कलात्मक विधान किया है उनके काव्य में इसके विभिन्न रूप उपलब्ध हैं -

(क) मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत

> घन में सुन्दर बिजली-सी बिजली में चपल चमक सी
> आँखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक सी ।[1]
> थे चमक रहे दो खुले नयन, ज्यों शिलालग्न अनगढ़े रतन ।[2]

प्रसाद जी ने यहाँ पर आँखों मेंकाली पुतली और पुतली में झलकता हुआ श्यामल बिन्दु को मूर्त अप्रस्तुत बादल में सुन्दर बिजली, बिजली में चपल चमक के समान बताकर अपनी नवोन्मेषशालिनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है इसी प्रकार अन्तिम उद्धरण में नेत्रों को शिलालग्न अनगढ़े मूर्त अप्रस्तुत से उपमित किया है । यह विशेषता निराला के काव्य में भी दृष्टव्य है -

> वह टूटे तरु की छुटी लता -सी दीन ।[3]
> युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल ,
> देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल ; ।[4]

निराला जी ने दीन विधवा को टूटे तरु की छुटी लता बताकर साहित्य को एक नवीन उपमान प्रदान किया है । प्रभाव साम्य पर आधृत यह पंक्ति अत्यधिक प्रभविष्णु है। इसी प्रकार उन्होंने राम के अश्रु युगल

१- प्रसाद : आँसू, पृ० १५ ।
२- ,, : कामायनी (दर्शन सर्ग) पृ० २५५ ।
३- निराला : परिमल (विधवा) पृ० ११६ ।
४- ,, : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५२।

को आकाश के तारादल जैसे मूर्त अप्रस्तुतों के समान बताकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

(ख) मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत -

उठ उठ री लघु-लघु लोल लहर
करुणा की नव अंगराई-सी, मलयानिल की परछाई-सी ।[१]

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया, उन्मुक्त,
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त[२]

मन्द पवन के झोंकों से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल [३]

उपर्युक्त उद्धरणों में प्रसाद जी ने लहर के लिए अमूर्त अप्रस्तुत करुणा की नव अंगराई तथा मलयानिल की परछाई और उन्मुक्त काया के पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल प्रयुक्त किया है । इसी प्रकार निराला ने भी तदुज्जन्य प्रभाव की सृष्टि के लिए लहराते काले बालों को कल्पना के से जाल बताकर अमूर्त अप्रस्तुत की सृष्टि की है ।

(ग) अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत

अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी ! अरी आधि, मधुमय अभिशाप ![४]

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई ।[५]

मिली ज्योति-छवि से तुम्हारी
ज्योति-छवि मेरी,
नीलिमा ज्यों शून्य से[६]

१- प्रसाद : लहर, पृ० १।
२- ,, : कामायनी (श्रद्धासर्ग) पृ० ५४ ।
३- निराला : परिमल (उसकी स्मृति) पृ० ११४ ।
४- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १३ ।
५- ,, : आंसू, पृ० १० ।
६- निराला : अनामिका (प्रेयसी) पृ० ४ ।

उपर्युक्त उद्धरणों में प्रसाद और निराला ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के आधार अमूर्त चिन्ता तथा स्मृति के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों की रचना की है । इसी प्रकार निराला ने भी ज्योति-छवि जैसे अमूर्तत्व को नीलिमा और शून्य जैसे अप्रस्तुतों के माध्यम से व्यक्त किया है ।

(घ) अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत -

जीवन की जटिल समस्या है बढ़ी जटा सी कैसी[1]

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में नूपुर सी लिपट मनाती हूँ ।[2]

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने अपने सूक्ष्म कल्पना दृष्टि एवं अद्भुत शिल्प-विन्यास से काव्य में पारम्परिक अप्रस्तुत-विधान का नवीनीकरण किया है । अमूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों के कलात्मक विधान में निराला की अपेक्षा प्रसाद अधिक सफल हुए हैं । मूर्तामूर्त विधान द्वारा भावाभिव्यक्ति में निराला को भी अभूतपूर्व सफलता मिली है । अप्रस्तुत-विधान की इस शैली ब में दोनों कवियों की मौलिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है ।

प्रसाद और निराला की अप्रतिम काव्य प्रतिभा के फलस्वरूप उनके काव्य में पाश्चात्य साहित्य के अलंकारों का भी अन्तर्भाव हुआ है यथा -
मानवीकरण -

साहित्य में प्रकृति तथा अमूर्त भावों के मानवीकरण की प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है किन्तु उसका अलंकरण रूप में प्रयोग आधुनिक हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य साहित्य के परसॉनिफिकेशन (Personification) के प्रभाववश हुआ है । आधुनिक काव्यधारा में प्रयुक्त मानवीकरण का लक्ष्य अभिव्यंजना में चित्रमयता, बोधगम्यता तथा इन्द्रियग्राह्यता का समावेश करना रहा है । मानवीकरण से काव्य में नाटकीय प्रभाव की वृद्धि होती है इस प्रकार उसकी व्यंजना-शक्ति और प्रभावशीलता बढ़ जाती है ।[3] प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध

१- प्रसाद : आँसू, पृ० १० ।
२- ,, : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १११ ।
३- रामकुमार वर्मा : साहित्य-शास्त्र, पृ० ६६ ।

मानवीकरण अलंकार के दो प्रमुख प्रकार हैं - एक प्रकृति का मानवीकरण और दूसरा अमूर्त भाव व्यापारों का मानवीकरण ।

(१) प्रकृति का मानवीकरण -

बीती विभावरी जागरी
अम्बर पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी[१]

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी ;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए-सी ऐंठी सी ।[२]

यहां पर प्रसाद जी ने 'ऊषा' को सौन्दर्यमयी सुशीला भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है और दूसरे उद्धरण में 'धरा' को संकोचमयी नव वधू के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कवि ने प्राकृतिक उपादानों को भी सजीव रूपाकार प्रदान किया है । मानवीकरण अलंकार का कलात्मक विधान निराला के काव्य में भी हुआ है -

(प्रिय) यामिनी जागी !
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-तरुण-अनुरागी ।[३]

किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला- मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?[४]

प्रकृति को मानवीकृत रूप प्रदान करना, प्रसाद और निराला के काव्य की मुख्य विशेषता है। उपर्युक्त उद्धरणों में 'यामिनी' और 'तरंगों' का मानवीकरण हुआ है । इस प्रकार के अलंकारों से दोनों कवियों का काव्य भरा पड़ा है ।

१- प्रसाद : लहर, पृ० १६ ।
२- ,, : कामायनी (आशा सर्ग) पृ० ३२ ।
३- निराला : गीतिका, पृ० ४ ।
४- ,, : अपरा (तरंगों के प्रति) पृ० ७२ ।

अमूर्त भाव-व्यापारों का मानवीकरण -

वेदना विकल फिर आई मेरी चौदहों भुवन में
सुख कहीं न दिया दिखाई विश्राम कहाँ जीवन में ?[1]

चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली[2]

उपर्युक्त उदाहरण में प्रसाद जी ने वेदना और लज्जा जैसी अशरीरी भावना में भी आकार प्रदान किया है । प्रसाद जी ने अमूर्त वृत्तियों का जो व्यापक मानवीकरण कामायनी महाकाव्य में किया है चिंता, आशा, काम, वासना तथा लज्जा आदि अमूर्त भावों को मानवीकृत करने में उन्हें अद्वितीय सफलता मिली है । निराला ने भी अमूर्त तत्वों को मानवीकृत किया है, यथा -

जटिल जीवन-नद में तिर-तिर डूब जाती हो तुम चुपचाप
सतत द्रुति गति मयि अति फिर-फिर उमड़ करती हो प्रेमालाप[3]

सृष्टि के अन्तःकरण में तू आती है किसी के भोग श्रम की भावना
या कि जैसा सिद्ध तू आगे खड़ी त्यागियों के त्याग की आराधना[4]

कवि ने प्रथम उदाहरण में 'स्मृति' तथा द्वितीय उदाहरण में 'माया' जैसे अमूर्त भाव को मानवीकृत किया है जिससे मानवीकरण अलंकार की सृष्टि हुई है । मानवीकरण अलंकार प्रसाद और निराला का प्रिय अलंकार रहा है ।

विशेषण - विपर्यय

आधुनिक साहित्य में प्रचलित यह नूतन अलंकार पाश्चात्य ट्रान्सफर्ड एपिथेट (Transferred epithet) का पर्याय है । वैसे हिन्दी में प्रयुक्त विशेषण विपर्यय के आधार पर हम इसे कुन्तक के विशेषण

१- प्रसाद : आँसू, पृ० ४६ ।
२- ,, : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १११ ।
३- निराला : परिमल (स्मृति) पृ० १०२ ।
४- ,, : परिमल (माया) पृ० ६३ ।

वक्रता का सुन्दर रूप भी देख सकते हैं। विशेषण विपर्यय में विशेषण का प्रयोग वास्तविक विशेष्य के साथ न होकर उससे सम्बद्ध किसी अन्य इकाई के साथ किया जाता है, यथा -

> सुनकर क्या तुम भला करोगे - मेरी भोली आत्म कथा ?[1]
>
> झू[illegible] रहा है फिर आता है जीवन में पुलकित प्रणय सदृश ।[2]
>
> उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत ।[3]

उपर्युक्त उद्धरणों में 'भोली', 'पुलकित', 'मधुमय', आदि विशेषणों का वास्तविक विशेष्य से हटाकर दूसरी सम्बद्ध इकाइयों के साथ प्रयोग हुआ है। इस प्रकार की रचना निराला-काव्य में भी उपलब्ध है, यथा -

> किस विनोद की तृषित गोद में आज पोंछती वे दृग-नीर ।[4]
>
> [illegible]त के खिन्न दिवस के ताप ! किसके अनिमेष नयन ।[5]
>
> उत्सुक, किस अभिसार-निशा में, गई कौन स्वप्निल पर मार ।[6]

यहाँ पर 'तृषित', 'खिन्न', 'अनिमेष', 'अभिसार' आदि विशेषणों का विपर्यय हुआ है। प्रसाद और निराला ने गहन एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को संक्षिप्त रूप से थोड़े शब्दों में व्यक्त करने के लिए विशेषण विपर्यय का प्रयोग किया है। दोनों कवियों के काव्य में लक्षणाश्रित गंभीर अर्थ व्यंजक यह अलंकार प्रचुर मात्रा में मिलता है।

ध्वन्यर्थ- व्यंजना

काव्य में शब्दों को इस ढंग से प्रयुक्त करना कि उससे प्रकट

१- प्रसाद : लहर, पृ० ६ ।

२- ,, : झरना, पृ० २७ ।

३- ,, : कामायनी (चिन्ता सर्ग) पृ० १२ ।

४- निराला : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ४४ ।

५- ,, : ,, (बादल राग) पृ० १६२।

६- ,, : ,, (यमुना के प्रति) पृ० ४६ ।

" सहचारी के भेद - (i) जब हम किसी चिन्ह, प्रतीक अथवा सहचारी तत्व का नाम लें --- । (ii) कभी-कभी कार्य के स्थान पर कारण का नाम ले लिया जाता है ------ । (iii) आधेय के लिए आधार का कथन -------- । (iv) कारण के लिए कार्य का कथन ----- (v) निर्मिति या कृति के लिए निर्माता का कथन ------ (vi) चित्तवृत्ति के आलम्बन की जगह चित्तवृत्ति का ही कहना ----- ।"[1] यद्यपि सहचारी के ये सभी प्रभेद काव्य की लक्षणा शक्ति के अन्तर्गत ही आ जाते हैं । भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर प्रसाद और निराला के काव्य में इस पाश्चात्य अलंकार की भी उपलब्धि है, यथा -

लहरों में मलयज बन्द किये ।[2]

प्रथम वसन्त में गुच्छ- गुच्छ ।[3]

[illegible] आज हुआ कलिंग ।[4]

उठती जब नग्न तलवार है स्वतंत्रता की ।[5]

यहाँ पर प्रथम एवं द्वितीय उद्धरण में प्रयुक्त मलयज शब्द सुगंधि का और " प्रथम वसन्त " शब्द नवयौवन का प्रतीक एवं चिन्ह है । तृतीय एवं चतुर्थ उद्धरण में " कलिंग " शब्द कलिंगवासियों तथा उठती तलवार शब्द तलवार चलाने वाले के अर्थ को स्पष्ट करता है । अतएव आधेय के लिए आधार का कथन होने से यह मेटोनिमी का सुन्दर उदाहरण है ।

प्रसाद और निराला ने इस प्रकार नूतन अप्रस्तुतों की रचना कर हिन्दी के शिल्प-विधान को समृद्ध बनाया है । जहाँ एक ओर दोनों कवियों ने पारम्परिक अलंकारों की सृष्टि की है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य अलंकारों को गृहीत कर हिन्दी के अलंकार विधान को नई गति प्रदान की है ।

१- डा० राममूर्ति त्रिपाठी - साहित्य शास्त्र के प्रमुख पक्ष, पृ० १८३ ।
२- प्रसाद : लहर, पृ० १६ ।
३- निराला : अनामिका (प्रेयसी) पृ० १ ।
४- प्रसाद : लहर, पृ० ५३ ।
५- निराला : परिमल (शिवाजी का पत्र) पृ० २०७ ।

आलोच्य कवियों ने भावाभिव्यक्ति को कलात्मक रूप प्रदान करने के लिए प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य अलंकारों की सृष्टि की है । इन अलंकारों के विधान के मूल में सूक्ष्माभिसूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति, अमूर्त को मूर्त करने की भावना, अर्थगाम्भीर्य की सृष्टि , तथ्य में रोचकता के सन्निवेश की आकांक्षा तथा भावों को संवेद्य बनाने की तीव्र अभिलाषा निहित है । प्रसाद और निराला ने काव्य में भावाभिव्यक्ति की कुशल अभिव्यंजना के लिए जिन अलंकारों की रचना की है, उनमें सहृदय पर प्रभाव डालने की अपूर्व क्षमता निहित है । निराला की अपेक्षा प्रसाद ने पारंपरिक अलंकारों की अधिक सृष्टि की । इसका यह आशय कदापि नहीं कि निराला का काव्य ऐसे प्रयोगों से रिक्त है । उपमा अलंकार के विधान में दोनों कवियों की अद्भुत शिल्प कला का परिचय मिलता है । अप्रस्तुत योजना में दोनों कवियों की सफलता असंदिग्ध है।

(२) बिम्ब-विधान

(क) स्वरूप एवं परिभाषा : साहित्य में प्रचलित ' बिम्ब' शब्द अंग्रेजी इमेज' के हिन्दी रूपान्तर के रूप में प्रयुक्त होने के कारण अत्याधुनिक प्रयोग माना जाता है । यद्यपि इसकी मान्यता प्राचीन साहित्य में भी रही है । काव्य-शिल्प के संदर्भ में' बिम्ब' शब्द का प्रचलन आधुनिक युग की उपज है जो प्रसाद और निराला के काव्यगत वैशिष्ट्य का द्योतक है। बिम्ब (इमेज) का कोषगत अर्थ है - मूर्तरूप, चित्रांकन, प्रतिच्छाया आदि । अतएव किसी पदार्थ या वस्तु का मानसिक चित्र या मानसी प्रतिकृति ही बिम्ब है ।[१] मनोविज्ञान में' इमेज' से अभिप्राय किसी ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव की स्मृति से है, जिसका परवर्ती अनुभव के द्वारा रूपांतर हो जाता है और जिसमें अंतर्मनोवैज्ञानिक तथा बहिर्मनोवैज्ञानिक उद्दीपन द्वारा उद्बुद्ध बौद्धिक एवं रागात्मक तत्व अंतर्भुक्त रहते हैं । वह संग्राहक यंत्र पर अंकित उद्दीपक पदार्थ की प्रतिच्छवि का पर्याय है ।[२] इस प्रकार इमेज के सौन्दर्यशास्त्रीय एवं कलात्मक अर्थ जहां उसके गुण, विधान, प्रयोजन आदि को महत्व देते हुए सौन्दर्यमय कलात्मक विच्छित्ति को व्याख्यायित करते हैं वहीं मनोवैज्ञानिक अर्थ बिम्ब के मूल प्रेरक अथवा उद्दीपक तत्वों को उद्घाटित कर बिम्ब

१- शार्टर आक्सफर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, भाग प्रथम, पृ० ९५८ (के अनुसार) ।
२- वैब्सटर्स थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी ।

विधान की अवधारणाओं को निरूपित करते हैं। पाश्चात्य साहित्य से गृहीत काव्यात्मक बिम्ब के स्वरूप को समझने के लिए पाश्चात्य विचारकों की अवधारणाएं ही अधिक उपयुक्त सिद्ध होंगी।

काव्य-बिम्ब एक प्रकार का शब्द-चित्र है।[१]

बिम्ब अदृश्य भावों एवं विचारों की पुनर्रचना है।[२]

बिम्ब वस्तुओं की सादृश्यता पर आश्रित आंतरिक सादृय की अभिव्यक्ति है।[३]

बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक तथा तर्कमूलक बौद्धिक सत्य तक पहुंचने का मार्ग है।[४]

बिम्ब परस्पर दो विरोधी अनुभूतियों तथा संवेदनों का आन्तरिक तनाव है।[५]

बिम्ब विषयक उपर्युक्त सभी परिभाषाएं अपने में अपूर्ण हैं। किसी भी परिभाषा को बिम्ब विषयक अंतिम धारणा कह सकना नितान्त असंभव है। बिम्ब एक शब्द चित्र है जो अमूर्त भावों की मूर्तरचना है, इतना मात्र मान लेने से बिम्ब का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। क्योंकि बिम्ब शब्द-चित्र और मानसिक भावों का प्रत्यक्ष रूप होने के साथ ही संवेगजन्य भावस्थिति से इतर कुछ और भी है। इसी प्रकार सादृश्य पर आश्रित आंतरिक सादृय की बात भी बिम्ब के एक अंश औपम्य को सिद्ध करती है। बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक तथ्य से अवगत कराता है। यह बात तो उचित प्रतीत होती है किन्तु इसके माध्यम से तार्किक सत्य तक पहुंचने की बात सर्वथा काव्यात्मक गुणों के प्रतिकूल ठहरती है। अंतिम परिभाषा में आधुनिक युग के परवर्ती काव्यों को ध्यान में रखा गया है क्योंकि परवर्ती कवियों

१- सी०डे०लीविस : द पोइटिक इमेज, पृ० १६।

२- जार्ज व्हाइली : पोइटिक प्रासेज, पृ० १४५।

३- टी० ई० हुल्मे : स्पेकुलेशंस, पृ० २८१।

४- सूजेन लैंगर : प्राब्लम्स आफ आर्ट, पृ० १३२।

५- एलेन टेट : सिलेक्टेड एसेज, पृ० ८३।

ने विरोधजन्य वस्तुओं के आश्रय से बिम्ब-विधान की काव्योचित चेष्टा की है। इन परिभाषाओं के पश्चात् रिचर्ड्स के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि बिम्ब वास्तव में एक मूर्त चित्र, संवेगों की अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार या दो विभिन्न भावानुभूतियों के तनाव से संयुक्त भाव स्थिति आदि कुछ भी हो सकता है।[1] इस प्रकार बिम्ब काव्य-शिल्प का वह महत्वपूर्ण उपकरण है जिसके अभाव में प्रभावकारी-भूमिगत शब्द संयुक्त-काव्य की रचना असंभव है। बिम्ब भाषा के संक्षिप्तीकरण तथा केन्द्रीकरण का द्योतक है। बिम्ब अपनी सांकेतिकता एवं ध्वनि संयोजना से काव्यभाषा को संगठित कर अभिधा और लक्षणा के माध्यम से कथ्य को सवेद्य बनाने में सहायक होता है।

बिम्ब-विधान का मूल प्रेरक तत्व या कारण बौद्धिक एवं भावात्मक मनोग्रंथि है।[2] बिम्ब की रचना में भाव सर्वप्रमुख है उसके संस्पर्श के बिना काव्य-बिम्ब की सृष्टि असंभव है। भावात्मक मनोग्रंथि के मूल में ऐन्द्रियता विद्यमान होती है। इन्द्रियों तथा भावनाओं के द्वारा जो प्रत्यक्षीकरण कवि के मानस में होता है उसी से वह बिम्ब विधान की प्रेरणा ग्रहण करता है और काव्य में उसे रूपायित करने के लिए कल्पना और स्मृति का अवलम्ब भी लेता है[3]। इस प्रकार बिम्ब-विधान में सर्जनात्मक कल्पना तथा ऐन्द्रियानुभव का बराबर योग रहता है बल्कि ऐन्द्रियानुभव को हम प्रमुखता भी प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि बिम्ब-विधान अधिकतर मूर्त तत्व पर आश्रित होता है जो चक्षु, इन्द्रिय का ही विषय है। काव्य-सृजन में ये बिम्ब किसी वस्तु अथवा भाव के बोधक बनकर प्रयुक्त होते हैं किंतु आगे चलकर किसी रूढ़ अर्थ में आबद्ध हो जाते हैं वे प्रतीक बन जाते हैं। कवि के लिए बिम्ब निर्माण तो सहज होता है किन्तु सहृदय के लिए अस्थिर, जटिल तथा व्यापक पृष्ठभूमि पर निर्मित अमूर्त भावों के बोधक इन बिम्बों का ग्रहण दुस्तर हो जाता है। इसी से आचार्य शुक्ल ने इस तथ्य पर बल दिया है कि वस्तुओं के रूप और आस-पास की परिस्थिति का ब्योरा जितना स्पष्ट और स्फुट होगा, उतना ही पूर्ण बिम्ब ग्रहण

१- आई० ए० रिचर्ड्स : कालरिज ऑन इमैजिनेशन, पृ० ३४।
२- लिटरेरी एसेज आफ एजरा पाउंड : सं० टी० एस० इलियट, भाग १, पृ०४।
३- आर्थर लाकेट : इमैजिनेशन एण्ड इट्स वण्डर, पृ० १६।

होगा और उतना ही अच्छा दृश्य चित्रण कहा जायेगा ।[१]

कवि अपने अभीप्सित लक्ष्य की पूर्ति के हेतु काव्य में बिम्ब-विधान को महत्व देता है । कारण, इसके माध्यम से प्रतिभा संपन्न कवि भावसंकुल सूक्ष्म वैचारिक तथ्यों को मूर्तरूप प्रदान करने में सफल होता है । बिम्ब काल की तात्कालिकता में बौद्धिक और भावात्मक संतुष्टि को उपस्थित करने में सहायक बनता है । अतएव काव्य में बिम्ब द्वारा ही भावानुभूति, मन:स्थिति, विचार आदि को अनुभवगम्य बनाया जाता है और इससे काव्य में बिम्ब की अवस्थिति अबाध्य रूप से अनिवार्य हो जाती है ।" बिम्ब शब्द मानस प्रतिमा का पर्याय है। ------- यह नूतन प्रतिमा निर्माण या बिम्ब-विधान समस्त काव्य, कला संगीत और नव-निर्माण का मूलाधार है ।[२] अत: बिम्ब मानस-चित्र को रूपांकित करनेवाला महत्वपूर्ण उपकरण है । आधुनिक विद्वानों ने बिम्ब-विधान को चित्र विधान का पर्यायवाची मानते हुए बताया कि " कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है ---- जिनका भाव-संगीत विद्युद्धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके, जिनका सौरभ सूंघते ही सांसों द्वारा अन्दर पैठकर हृदयाकाश में समा जाय ; जिसका रस मदिरा की फेन राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारों ओर मोतियों की झालर की तरह झूलने लगे, छत्ते में न समाकर मधु की तरह टपकने लगे ।[३] अतएव कवि की संवेदनाओं को ही नहीं अपितु संवेदनाओं से सम्बद्ध वस्तुएँ अथवा व्यापारों को चित्रवत् रूप में प्रस्तुत करनेवाले बिम्ब का काव्य में महत्व स्वत: सिद्ध है ।

(ख) बिम्ब के भेद

साहित्य में विवेचन की सुविधा के लिए बिम्ब के अनेक भेद किये गए । ये समस्त भेद किसी न किसी आधार पर ही किये गए हैं जैसे -(१) उद्भव के आधार पर (क) ऐन्द्रिय जन्य बिम्ब- दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य, आस्वाद्य आदि। इसके अतिरिक्त जेम्स ड्रूवर ने तापेन्द्रिय और गतिबोधकेन्द्रिय की ओर चर्चा की है । (ख) स्मृति जन्य बिम्ब (ग) कल्पनाजन्य अथवा स्वरचित बिम्ब ।(२) अनुभूति के

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि - भाग २, पृ० २ ।

२- हिन्दी साहित्य कोश (भाग १) पृ० ५५८ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव (प्रवेश)

आधार पर - सरल, मिश्र, जटिल, पूर्ण, खण्डित, विकीर्ण, तात्कालिक, अमूर्त आदि। (३) रचना विधि के आधार पर - सांकेतिक, प्रतीकात्मक, रूपकात्मक, अभिज्ञानात्मक, विकल्पात्मक तथा प्रारम्भिक, माध्यमिक और व्युत्पन्न आदि। (४) स्वरूप के आधार पर संदिग्ध, अनिबद्ध, संश्लिष्ट आदि। (५) काव्य-दृष्टि के आधार पर -वस्तुपरक तथा स्वच्छंद आदि। पाश्चात्य तथा भारतीय आलोचनाशास्त्र में परिगणित बिम्ब के ये सभी भेद अपने में पूर्ण होते हुए भी एक दूसरे की सीमा रेखा में प्रविष्ट कर जाते हैं अत: इन्हें अधिक तर्कसंगत नहीं माना जा सकता।

(ग) प्रसाद और निराला का बिम्ब-विधान

आलोच्य कवियों ने अपनी अद्भुत शिल्प-विधायनी शक्ति तथा कल्पनाशीलता से रूप, रस, गन्ध तथा वर्ण आदि का आश्रय लेकर विषय-वस्तु को सविष बनाने का जो प्रयास किया वह उनके समग्र युग का वैशिष्ट्य बन गया। प्रसाद और निराला के बिम्ब-विधान को विवेचित करने के लिए कुछ प्रमुख भेदों में बाट लेना अधिक समीचीन होगा, यथा -

(१) ऐन्द्रिय जन्य स्थूल बिम्ब
(२) मानस जन्य सूक्ष्म बिम्ब
(३) अभिव्यंजना के अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त जन्य बिम्ब

(१) ऐन्द्रियजन्य स्थूल बिम्ब

(क) दृश्य या चाक्षुष बिम्ब : इनका सम्बन्ध चक्षुरैन्द्रिय से होता है। ये बिम्ब आकारवत् होते हैं, दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि ये प्रत्यक्ष होते हैं। जो सहृदय के मनोमस्तिष्क में सहजता से समायित हो जाते हैं। दृश्य विषयों में रमणीयता प्रभविष्णुता तथा जीवंतता को समाविष्ट करने के हेतु प्रसाद और निराला ने चाक्षुष बिम्बों की कलात्मक रचना की है, यथा -

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग,
\+ \+ \+ \+
अरुण शिशु के मुख पर सविलास सुनहली लट घुंघराली कांत।[१]

१- झरना : प्रसाद, पृ० २८।

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच, गुलाबी रंग ।[१]

उपर्युक्त उद्धरणों में किरण तथा नायिका के कांतिमय रूप का बिम्बात्मक वर्णन हुआ है । प्रथम उद्धरण में किरण को जीवंतता प्रदान करते हुए विशिष्ट बिम्ब का निर्माण किया गया है । द्वितीय उद्धरण में श्रद्धा के अधखुले अंग का कलात्मक वर्णन हुआ है । बिजली का फूल तथा मेघवन कहकर कवि ने संश्लिष्ट बिम्ब का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है । संश्लिष्ट बिम्ब का निम्न लिखित उदाहरण भी अत्यधिक कलात्मक बन पड़ा है -

तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली
काला-पानी बेला सी है अंजन रेखा काली ।[२]

निराला ने भी चाक्षुष बिम्बों की रचना की है । उनकी भिक्षुक, तोड़ती पत्थर आदि रचनाएं बिम्बात्मक हैं । निराला के बिम्बविधान की प्रमुख विशेषता यह मानी जाती है कि उन्होंने स्थिर बिम्बों की अपेक्षा गत्यात्मक बिम्बों का अधिक कलात्मक रूप प्रस्तुत किया है, यथा -

पलकों के नीड़ से
सोने के नभ में
उड़ जाते थे नयन, वे
चूम कर असीम को
लौटते आनन्द भर ।[३]

वन्य-लावण्य-लुब्ध संसार,
देखता कवि रूप बारंबार,
सहज ही नयन सहस्र अजान
रूप-विधु का करते मधु-पान,[४]

१- प्रसाद : कामायनी (श्रद्धा सर्ग) पृ० ५४ ।
२- ,, : आंसू, पृ० १८ ।
३- निराला : परिमल (स्मृति चुम्बन) पृ० १६७ ।
४- ,, : (भ्रमरगीत) पृ० ६४ ।

प्रथम उद्धरण गतिशील बिम्ब का और दूसरा उद्धरण स्थिर बिम्ब का सफल उदाहरण है। दोनों कवियों ने नेत्रेन्द्रिय के विषय में अपनी कल्पना शक्ति से वर्ण्य के विभिन्न तथ्यों को जिस प्रकार समाविष्ट किया है वह विषय को सहजग्राह्य बनाने में सहायक हुआ है। प्रसाद और निराला के इस कोटि के बिम्ब प्रभावोत्पादक होने के साथ ही कलात्मक भी हैं।

(ख) श्रव्य या नादात्मक बिम्ब : ऐसे बिम्बों का संबंध कर्णेन्द्रियों से है। प्रतिभा सम्पन्न कवि सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों को ध्वनिमय शब्दों के माध्यम से सजीव बनाता है। वस्तुत: नादात्मक बिम्बों की सृष्टि अनुप्रास, ध्वनिचित्र अलंकार, वर्ण विन्यास तुकांत योजना आदि के माध्यम से संभव होती है। श्रव्य बिम्बों का एक भाग प्रतीकाश्रित भी होता है जैसे - वीणा, मृदंग, कोकिल आदि के ध्वनि-आश्रित बिम्बों की योजना। प्रसाद और निराला के काव्य में नादात्मक बिम्बों का विधान दृष्टव्य है -

> नूपुरों की झनकार घुली-मिली जाती थी
> चरण अलक्तक की लाली से।[१]

> स्वप्न का मधु निस्वन रन्ध्रों में
> जैसे कुछ दूर बजे बंसी।[२]

यहाँ प्रसाद ने अलक्तक की लाली से युक्त कोमलांगी नारी के चरणों में बंधे नूपुरों की मधुर झनकार को शब्दबद्ध कर सजीव बना दिया है। दूसरा उद्धरण भी श्रव्य बिम्ब का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। कवि ने वातावरण में व्याप्त अनुगूंज को दूर बजती हुई बंसी की ध्वनि में जिस प्रकार बांधा है वह उनकी अद्वितीय काव्य-कला की परिचायक है।

श्रव्य बिम्बों का विधान प्रसाद की अपेक्षा निराला के काव्य में अधिक मिलता है। शब्दों के अन्त: संगीत का अद्भुत ज्ञान होने से निराला को नादात्मक बिम्बों की सृष्टि में अद्भुत सफलता मिली है, यथा -

---

१- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ६७।
२- ,, : कामायनी (काम-सर्ग) पृ० ७६।

झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर -
राग अमर अम्बर में भर निज रोर । [१]

यहाँ पर कवि ने शब्दों के भण्डार में व्याप्त नाद तत्व को महत्व देते हुए अम्बर के अमर राग को ध्वनित किया है । निराला ने नाद के साथ ही ध्वन्यात्मक बिम्बों की भी कलात्मक सृष्टि की है -

यहाँ भी जग का क्रन्दन -
स्वच्छता में सुस्पन्दित प्राण
अहंकृति में झंकृति आभा । [२]

यहाँ पर कवि ने जगत और जीवन की मूढ़ता को अहंकृति में झंकृति कहकर जिस प्रकार व्याख्यायित किया है वह सस्वर शब्दों का कलात्मक विधान मात्र है । शब्दों के कुशल पारखी होने के कारण निराला नादात्मक बिम्बों के अन्यतम शिल्पी माने जाते हैं ।

(ग) स्पृश्य बिम्ब : बिम्ब का यह रूप स्पर्शेन्द्रिय से सम्बद्ध है । स्पर्शजनित बिम्बों का सुनियोजित विधान प्रसाद और निराला के काव्य में हुआ है । त्वचा स्पर्शी बिम्बों का कलात्मक विधान प्रसाद के काव्य में दृष्टव्य है -

स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदंब सा था भरा गदगद बोल । [३]

छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं ;
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं । [४]

इन उदाहरणों में कवि ने कर्ण कपोल पर लज्जा के स्पर्श तथा छूने में हिचक कहकर स्पृश्य संवेदना को मूर्तिमन्त किया है । ये बिम्ब सहृदय में वैसे ही भाव संवलित चित्रों को जाग्रत करते हैं । प्रसाद की तुलना में ऐसे बिम्बों का विधान-

---

१- निराला : परिमल (बादल राग) पृ० १६० ।
२- ,, : ,, (स्मृति) पृ० २०६ ।
३- प्रसाद : कामायनी (वासना सर्ग) पृ० १०२ ।
४- ,, : ,, (लज्जा सर्ग) पृ० १०७ ।

निराला ने कम किया है फिर भी, उनका काव्य स्पर्शीय बिम्बों से रिक्त नहीं है। निराला ने जलतत्व से गृहीत बिम्बों की रचना अधिक की है। वर्षा, बादल, निर्झर, सरिता, यमुना, नदी आदि को उन्होंने बिम्बात्मक रूप प्रदान किया है, यथा-

> लहर रही शशि किरण चूम निर्मल यमुना जल,
> चूम सरित की सलिल राशि खिल रहे कुमुद दल,
> कुमुदों के स्मिति मन्द खुले वे अधर चूमकर
> बही वायु स्वच्छन्द, सकल पथ घूम घूम कर,[१]

यहां पर यमुना जल को शशि किरणों का चूमना और सरिता को चूमकर कुमुद दलों का खिलना आदि ऐन्द्रिय जन्य बिम्बों के कलात्मक रूप कहे जा सकते हैं। इनमें ऐन्द्रियता के साथ ही नवीनता भी है। स्पर्शीय बिम्ब का सुन्दर रूप जुही की कली में दृष्टव्य है -

> कि झोंकों की झड़ियों से
> सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
> मसल दिए गोरे कपोल गोल ;
> चौंक पड़ी युवती -[२]

इस प्रकार आलोच्य कवियों ने स्पृश्य संवेदना को बिम्ब विधान के द्वारा मूर्तिमन्त किया है। यद्यपि प्रसाद और निराला ने इस कोटि के बिम्बों की रचना अधिक नहीं की है फिर भी, जितना कुछ किया है वह स्पर्शजनित विषयों को प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल है।

(घ) घ्रातव्य बिम्ब : मनुष्य की घ्राणेन्द्रिय से संबंधित यह बिम्ब अनुभूतिगम्य होता है। प्रसाद और निराला ने काव्य में गंध को भी रूपायित किया है। दोनों कवियों को काव्य में घ्रातव्य बिम्बों का वस्तुगत वर्णन मात्र ही अभीष्ट नहीं रहा है अपितु उसके प्रति जाग्रत अनुभूतियों को रूपायित करना भी रहा है। प्रसाद की अपेक्षा

१- निराला : अनामिका, पृ० ४७।
२- ,, : परिमल (जुही की कली) पृ० १७२।

निराला में गंध संवेदना अधिक है । दोनों कवियों ने इस कोटि के बिम्बों की रचना अपेक्षा कृत कम की है । घ्रातव्य बिम्ब का कलात्मकआलोच्य कवियों के काव्य में दृष्टव्य है, यथा -

शत शतदलों की
मुद्रित मधुर गन्ध भीनी -भीनी रोम में
बहाती लावण्य-धारा ।[1]

बही हवा नर्गिस की, मन्द छा गयी सुगन्ध
धन्य स्वर्ग यही, कह किये मैंने दृग बन्द ।[2]

पुष्प-मन्जरी के उर की प्रिय
गन्ध मन्द गति ले आओ ।[3]

आलोच्य कवियों के काव्य में प्राप्त गंध विषयक बिम्ब अधिकतर पुष्प आदि से ही संबंधित हैं कारण, प्रकृति प्रेम इनके युग की विशेषता है । उपर्युक्त तीनों उद्धरणों में पुष्प की ही सुगन्ध को बिम्बात्मक रूप प्रदान किया गया है । एक स्थल पर पुष्प की भीनी सुगन्ध को कवि निराला ने प्रेयसी के अलक से आती ज्यों स्निग्ध गंध "[4] कहकर संवेदनीय बनाया है । इस प्रकार घ्रातव्य बिम्बों का कलात्मक विन्यास दोनों कवियों के काव्य में मिलता है ।

(ड०) आस्वाद्य बिम्ब : इस कोटि के बिम्बों का संबंध रसनेन्द्रिय से होता है । हिंदी साहित्य में अन्य ऐन्द्रियजन्य बिम्बों की तुलना में आस्वाद्य बिम्ब की रचना बहुत कम हुई है । जो हुई भी है वह अधिकाधिक परंपरागत है । वास्तव में यह अत्यधिक स्थूल तथा साधारण इन्द्रिय का विषय है । हो सकता है, इसी से आलोच्य कवियों ने इस प्रकार के बिम्ब निर्माण को अधिक महत्व नहीं दिया । प्रसाद और निराला के काव्य में यत्र-तत्र ऐसे बिम्बों की रचना भी हुई है, यथा -

---

१- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ६८ ।
२- निराला : अनामिका (नर्गिस),पृ० १८८ ।
३- ,, : परिमल (वसन्त समीर) पृ० ८६ ।
४- ,, : अनामिका (वनबेला) पृ० ८७ ।

पवन पी रहा था शब्दों को,
निर्जनता की उखड़ी सांस [१]

लेकिन, तुम्हारे चितवन से, पीते वज्र जैसे पानी लगा । [२]

(च) ऐन्द्रिय बिम्बों का मिश्र रूप : आलोच्य कवियों के काव्य में ऐन्द्रियजन्य बिम्बों का पृथक्-पृथक् विधान तो हुआ ही है, कहीं-कहीं पर उनका मिश्र विधान भी मिलता है, यथा -

इस मुस्क्यान के, पद्मराग - उद्गम से
बहता सुगन्ध की सुधा का सोता मन्द मन्द । [3]

मेरी अंगड़ाइयों की लहरों में ।
पीते मकरन्द थे -
मेरे इस अधखिले आनन सरोज का ।
कितना सोहाग था, कैसा अनुराग था ?
खिली स्वर्ण मल्लिका की सुरभित बल्लरी-सी
गुर्जर के थाले में मरन्द वर्षा करती मैं । [४]

उपर्युक्त उद्धरणों में दृश्य, गंध, रस्य, स्पर्श आदि का मिश्र प्रयोग हुआ है । इस प्रकार के बिम्ब प्रसाद के काव्य में ही अधिक मिलते हैं । अपवाद स्वरूप निराला-काव्य में भी ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं ।

(२) मानसजन्य सूक्ष्म बिम्ब

आधुनिक काव्य में केवल स्थूल चाक्षुष बिम्बों की ही रचना नहीं हुई बल्कि सूक्ष्म भावों की व्यंजना करनेवाले बिम्बों का विधान भी हुआ । प्रसाद और निराला ने स्थूल भावाभिव्यंजक बिम्बों के अतिरिक्त जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म

१- प्रसाद : कामायनी (चिन्ता सर्ग) पृ० २७ ।
२- निराला : अणिमा (माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी के प्रति) पृ० ४० ।
३- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ८३ ।
४- वही, पृ० ६८-६९ ।

तत्वों को व्यंजित करनेवाले बिम्बों की भी रचना की है। काव्य में ऐसे बिम्बों को प्रस्तुत करने के मूल में इन कवियों की मानसी अनुभूति को सवेद्य बनाने तथा कथन में प्रभावान्विति की क्षमता लाने की भावना ही निहित थी । इस शिल्प कला में प्रसाद को निराला की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है यथा -

कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी ;
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी ।[1]

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल[2]

उपर्युक्त उद्धरण में कवि ने लज्जा का जो छायाचित्र खींचा है वह लज्जा के स्वरूप को सवेद्य बनाने में सहायक हुआ है । इसी प्रकार द्वितीय उदाहरण में बुद्धि स्वरूपा इड़ा का बिम्बात्मक रूप तर्क जाल में दृष्टिगोचर होता है।

निराला के काव्य में सूक्ष्म बिम्बों का कलात्मक विधान हुआ है किन्तु उनमें प्रसाद की तरह ऐन्द्रियता और मांसलता नहीं है और न बिम्बों की स्करसता ही है, जैसे -

वीक्षण अराल :
बज रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छन्द, ताल मौन में मन्द्र,
ये दीपक जिसके सूर्य-चन्द्र,
बंध रहा जहाँ दिग्देशकाल,
सम्राट ! उसी स्पर्श से खिली
प्रणय के प्रियंगु की डाल-डाल ।[3]

यहाँ पर कवि 'वीक्षण अराल' की व्यंजना करते करते

१- प्रसाद : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १०५ ।
२- ,, : ,, (इड़ा सर्ग) पृ० १७६ ।
३- निराला : अनामिका , पृ० १८ ।

स्थूल ऐन्द्रियगत दीपक और सूर्य-चन्द्र के सादृश्य विषय पर उतर आया है। भावों के उतार-चढ़ाव के अनुकूल ही निराला की अभिव्यंजना शैली का रूप भी बदलता रहता है। उपर्युक्त उद्धरण में कवि ने अमूर्त भाव की व्यंजना के साथ ही सादृश्य को भी निरूपित किया है। इसी प्रकार निराला ने स्नेह जैसे अदृश्य भाव को चित्रित करते समय अन्य ऐन्द्रिय बिम्बों का भी चित्रण कर डाला है यथा-

स्नेह निर्झर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है -" अब यहां पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति में वह हूं लिखी
नहीं जिसका अर्थ- जीवन दह गया है।"[1]

यहां कवि ने जीवन में स्नेह शक्ति के अन्त होने से उसकी महत्वहीनता को विभिन्न बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है। शुष्क बालुकाराशि शुष्क आम्रवृक्ष की डाल, लिखी हुई अर्थहीन पंक्ति कहकर स्नेहहीन अमूर्त जीवन को मूर्तिमित किया है।

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को बिम्बात्मक रूप प्रदान किया है। अमूर्त भावों को संश्लिष्ट ढंग से व्यंजित करने में निराला की अपेक्षा प्रसाद अधिक सफल हुए हैं। दोनों कवियों के इस कोटि के बिम्ब प्रभविष्णु तथा संवेदनीय हैं।

(३) अभिव्यंजना के हेतु प्रयुक्त अन्य बिम्ब

(क) शृंगारिक बिम्ब : काव्य में प्रयुक्त इस कोटि के बिम्ब अपेक्षा बदलकर [illegible] शोभा विधायक धर्म बनकर उपस्थित होते हैं। ऐसे बिम्ब संवेदनाजन्य न होकर अलंकरण मात्र होते हैं। अधिकांशत: ये बिम्ब साम्यमूलक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि के मध्य मिलते हैं, यथा -

---

१- निराला : अणिमा, पृ० ४३।

बांधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?[1]

उतर रहा अब किस अरण्य पर दिन मणि-हीन अस्त आकाश ।[2]

यहां प्रथम उद्धरण में कवि ने प्रियतम के मुख और काली अलकों को आलंकारिक बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में दिन मणिहीन आकाश का जो विशेषण गर्भित बिम्बात्मक रूप निराला ने प्रस्तुत किया है वह भाव तथा भाषा की सज्जा में सहायक सिद्ध हुआ है ।

(ख) छायात्मक बिम्ब : अस्पष्ट तथा धूमिल मानसिक एवं भावात्मक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करनेवाले बिम्बों को छायात्मक बिम्ब की श्रेणी में रखा जा सकता है इस प्रकार के बिम्ब विधान में प्रसाद की रुचि अधिक रमी है, यथा -

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया, उन्मुक्त ।[3]

ले चल वहां भुलावा देकर मेरे नाविक ! धीरे-धीरे ।
जिस निर्जन में सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी-
निश्छल-प्रेम-कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे ।[4]

उपर्युक्त उद्धरणों में हृदय की अनुकृति बाह्य उदार तथा सागर लहरी का अम्बर के कानों में प्रेम कथा कहना आदि छायात्मक चित्र-विधान है जिसमें प्रसाद जी को निराला की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है ।

(ग) उदात्त बिम्ब : इस कोटि के बिम्ब भव्यातिभव्य विषय को रूपायित करते हैं । अधिकांशतः उदात्त बिम्बों की रचना प्रबन्धकाव्य की भव्य शैली में ही संभव होती है किन्तु निराला जैसे ओज एवं उदात्त गुण प्रधान कवि के काव्य में प्रगीतों के मध्य भी ऐसे बिम्बों का विधान मिलता है । 'बादल राग' 'तरंगों के प्रति' आदि प्रगीतों में निराला ने उदात्त बिम्बों की सृष्टि की है और प्रबन्ध काव्य में

१- प्रसाद : आंसू, पृ० १७ ।
२- निराला : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ५० ।
३- प्रसाद : कामायनी (श्रद्धा सर्ग) पृ० ५४ ।
४- ,, : लहर , पृ० १० ।

तो इसका कुशल सन्निवेश हुआ ही है, यथा -

> दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
> फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
> उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
> चमकती दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार ।[१]

निराला के काव्य में ऐसे उदात्त बिम्बों का अधिकाधिक विन्यास हुआ है किन्तु इसका यह आशय नहीं कि प्रसाद का काव्य इस कोटि के बिम्बों से रिक्त है । प्रसाद के काव्य में उदात्त बिम्ब का कलात्मक रूप द्रष्टव्य है-

> रात्रि घनी कालिमा पटों में दबी-लुकी सी,
> रह रह होती प्रगट मेघ की ज्योति झुकी सी ।[२]

(घ) प्रतीकात्मक बिम्ब : अभिव्यंजनागत सौष्ठव की वृद्धि हेतु आलोच्य कवियों ने प्रतीकात्मक बिम्बों की भी सृष्टि की है । इन बिम्बों का लक्ष्य कवि की सूक्ष्म कल्पना दृष्टि को मूर्तिमन्त करना मात्र न होकर प्रभावसाम्य पर आधृत संकेतात्मक ढंग से भावाभिव्यक्ति को प्रकट करना होता है । इस कोटि के बिम्बों के विधान में निराला की अपेक्षा प्रसाद अधिक सफल हुए हैं -

> कृष्णागुरु वर्तिका
> जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में
> एक धूम रेखा मात्र शेष थी ;[३]

यहां पर प्रयुक्त बिम्ब रानी कमला के गर्व शमन की प्रतीकात्मक व्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण है । स्वर्णपात्र के दर्प में चूर कृष्णा-गुरुवर्तिका की जली हुई धूम रेखा मानस पटल पर जो चित्र अंकित करती है वह सांकेतिक अर्थ की व्यंजना में भी समर्थ है । निराला के काव्य में ऐसे बिम्बों का अभाव तो नहीं पर आधिक्य भी नहीं है । प्रयास करने पर प्रतीकात्मक बिम्ब उनके काव्य में भी उपलब्ध हो जाते हैं यथा -

---

१- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १४६ ।
२- प्रसाद : कामायनी (संघर्ष सर्ग) पृ० १६७ ।
३- ,, : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ८२ ।

मैं सुरधु मैं उड़ता हूं तब,
उसी गगन पर, मुक्त- पंखर,
धरा छोड़कर ।[1]

(ड०) लाक्षणिक बिम्ब : प्रत्येक बिम्ब सूक्ष्म भावांकन के लिए लक्षणा शक्ति पर आश्रित होता है । किन्तु लाक्षणिक बिम्बों से अभिप्राय विशेषतया उन बिम्बों से है जो प्रभावसाम्य पर आधृत आभ्यन्तर चित्रों को मूर्तिमन्त करने के साथ ही लक्षणाश्रित अर्थों को भी व्यंजित करते हैं । आलोच्य कवियों ने इस कोटि के बिम्बों की सृष्टि कर काव्य में अर्थ व्यंजकता की वृद्धि की है । दोनों कवियों में, प्रसाद ने लाक्षणिक बिम्बों के विधान में अधिक रुचि दिखायी है । कारण, वे उपचार की वक्रता अर्थात लाक्षणिकता को युग-विशेषता के रूप में स्वीकार कर चुके थे । प्रसाद के काव्य में लाक्षणिक बिम्ब -

किंजल्क जाल हैं बिखरे उड़ता पराग है रूखा[2]

मकरन्द मेघ-माला सी वह स्मृति मदमाती आती
इस हृदय विपिन की कलिका जिसको रस से मुस्क्याती ।[3]

उपर्युक्त उद्धरण में" किंजल्क जाल हैं बिखरे " कहकर कवि ने नायक के नीरस हृदय की स्थिति को स्पष्ट किया है जो पराग का उड़ना नायक की शुष्कता को ध्वनित करता है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में स्मृति को मकरन्द मेघमाला सी मदमाती हुई आना, कहकर कवि ने लाक्षणिक चित्र की सृष्टि की है । संक्षिप्त शब्दों में अनुपम भावों को समाविष्ट कर मूर्तिमन्त करने में लाक्षणिक बिम्ब विशेष सहायक होते हैं । निराला ने अर्थगर्भित भावों के चित्रोपम रूप प्रदान करने के लिए ऐसे बिम्बों की रचना की है । निराला ने भी शिशिर धौत पुष्प ज्यों प्रात में एकटक किरण कुमारी को देखता है कहकर निरलस दृष्टि का बिम्बात्मक रूप प्रस्तुत किया है जिसका लक्ष्यार्थ नायक-नायिका के स्नेहातिरेक को ध्वनित करता है, यथा-

---

१- निराला : अणिमा (तुम और मैं) पृ० १५ ।
२- प्रसाद : आंसू, पृ० २४ ।
३- वही, पृ० ३१ ।

प्रणय के प्रलय में सीमा सब खो गई

\- - -   - - -   - - - ,

कैसी निरलस दृष्टि
सजल शिशिर-धौत पुष्प ज्यों प्रात में ,
देखता है एकटक किरण-कुमारी को ।[१]

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने शब्दों के नव क्रमायोजन तथा अर्थव्यंजकता के द्वारा बिम्ब विधान को व्यापक फलकाधार प्रदान किया है । दोनों कवियों ने स्थूल बिम्ब की अपेक्षा प्रभाव साम्य पर आधृत सूक्ष्म बिम्बों की अधिक रचना की है । प्रसाद और निराला के बिम्ब -रचना की प्रमुख विशेषता उनका संश्लिष्टत्व है । प्रसाद के काव्य में तो यदा-कदा विश्लिष्ट बिम्ब का रूप उपलब्ध भी हो जाता है किन्तु निराला का काव्य ऐसे बिम्बों से रिक्त है । दूसरे निराला ने गतिशील बिम्बों की रचना कर शिल्प-विधान को एक नयी दिशा भी प्रदान की है । दोनों कवियों के बिम्ब-विधान में ऐन्द्रिय प्रत्यक्षता है किन्तु निराला की तुलना में यहां पर प्रसाद पीछे रह जाते हैं । प्रसाद के बिम्बों में वर्ण बोध तथा अतीत के सुनिश्चित रंगों का उभार अधिक पाया जाता है उनकी अन्तिम कृति कामायनी में बिम्ब की यह विशेषता उभरकर सामने आयी है। प्रसाद के बिम्ब सुमधुर भावाभिव्यंजक है और निराला के विराट एवं उदात्त तत्व पोषक हैं । उन्होंने काव्य में प्रकृति के जिन रूपों को प्रस्तुत किया है वे भी सान्द्र तथा ओजस्वी है । इसी से निराला के बिम्ब चाक्षुष अधिक प्रतीत होते हैं । प्रसाद के काव्य में धुंधले, अस्पष्ट तथा अमूर्त विषयों को लेकर मानसी बिम्बों की सृष्टि सर्वाधिक हुई है । उनके बिम्ब मानव मन की सूक्ष्म मनोवृत्तियों को चित्रांकित करने में अधिक सफलीभूत हुए हैं ।

आलोच्य कवियों ने अनुभूतियों तथा काल्पनिक तथ्यों को चित्रवत् प्रस्तुत करने के लिए नाटकीय तत्व पर आधारित बिम्बों की भी रचना की है।

१- निराला : अनामिका (प्रेयसी) पृ० ४-६ ।

कामायनी में मनु के मन में उठनेवाले स्मृति जन्य बिम्ब दीर्घ स्वगत भाषण के रूप में व्यक्त हुए हैं। इसी से चिंता सर्ग में संश्लिष्ट बिम्बों का सुन्दर विधान भी संभव हो पाया है। काव्य में ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता और सौन्दर्यमय प्रतीक विधान आदि के पक्षपाती कवि प्रसाद के काव्य में डेकोरेटिव इमेजेज अर्थात् श्रृंगारिक बिम्बों की अधिक सृष्टि हुई है और भाषा की सहजता तथा अकृत्रिमता के समर्थक कवि निराला के काव्य में ऐसे बिम्बों का स्वाभाविक अभाव है। इस प्रकार प्रसाद ने जहाँ प्रतीकात्मक, लाक्षणिक, छायात्मक आदि बिम्बों का सुरुचिपूर्ण विधान किया है वहीं निराला ने नाद व्यंजक, स्वराघातपूर्ण, क्रियापदों तथा शब्दावृत्ति के आश्रय से उदात्त तथा सान्द्र बिम्बों की कलात्मक सृष्टि की है।

प्रसाद और निराला के बिम्ब सार्वभौमिक है। निराला के बिम्बों में समसामयिकता का विशेष आग्रह है और प्रसाद में स्वर्णिम भावनाओं का। निराला के बिम्ब निर्माण का फलकाधार व्यापक है। उनके प्राकृतिक बिम्ब इसके ज्वलंत उदाहरण है। एक ओर उन्होंने हरे-भरे लुभावने कानन का चित्रण किया है तो दूसरी ओर "ठूँठ यह है आज गयी इसकी कला" या "आम की वह डाल जो सूखी दिखी, आदि शुष्क बिम्बों को भी प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक बिम्बों की सृष्टि कर अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का बोध कराया है। इस प्रकार दोनों कवियों के बिम्ब विधान में समानता के साथ ही असमानता भी है जो उनकी अपनी वैयक्तिक प्रवृत्ति की परिचायक है। काव्य के क्षेत्र में बिम्ब विधान की इस नूतन प्रगति ने प्रसाद और निराला के अतिशय योगदान को सदा-सर्वदा के लिए अविस्मरणीय बना दिया है।

(३) वक्रताएँ

(क) स्वरूप एवं परिभाषा : वक्रता अभिव्यंजना शिल्प का अनिवार्य तत्व है। वक्रता से अभिप्राय कथन भंगिमा से है। वर्ण्य विषय को ऐसे कौशलपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाना जो सरस और वक्रगामी हो अर्थात् शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता से युक्त हो, काव्यगत वक्रता है। प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध उक्तिवैचित्र्य (वक्रता) का मूल रूप कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त पर आधृत है।

काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य भामह ने किया है। उनके अनुसार केवल नितान्त आदि शब्दों के प्रयोग से वाणी में सौन्दर्य नहीं आता। शब्द और अर्थ में वक्रता होनी चाहिए जो वाणी का अलंकार है।[1] भामह का यही विचार आगे चलकर कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त में विस्तृत रूप धारण कर काव्य का जीवित माना गया। भामह ने अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति को समस्त अलंकारों का मूल माना है और कहा है कि इनके योग के बिना किसी भी अर्थ में विभावन की क्षमता ही नहीं आ सकती।[2]

भामह के उपरान्त दण्डी ने भी यह स्वीकार किया कि वक्रोक्ति में सहज वर्णन न होकर वक्र अर्थात् चमत्कारपूर्ण वर्णन होता है और उपमादि अन्य अलंकार भी वक्रोक्ति के प्रकार हैं।[3] दण्डी ने वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को तो अभिन्न माना है किन्तु स्वाभावोक्ति को उससे भिन्न बताया।[4] भामह की भाँति ये स्वाभावोक्ति अलंकार के मूल में वक्रोक्ति की स्थिति न मानकर अन्य (उपमा से संसृष्टि पर्यन्त) अलंकारों में ही वक्रोक्ति को मूल मानना चाहते हैं। फलतः भामह की अपेक्षा इनकी वक्रोक्ति की व्याप्ति कुछ कम हो जाती है।[4]

वक्रोक्ति की परिधि को संकुचित करते हुए सर्वप्रथम आचार्य वामन ने उसे अलंकार विशेष के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने सादृश्य लक्षणा को

१- न नितान्तादि मात्रेण जायते चारुतागिराम।
  वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृति। १।३६, काव्यालंकार

२-साहित्य शास्त्र के प्रमुख पक्ष : डा० राममूर्ति त्रिपाठी, पृ० २२३।

३- हिन्दी काव्यादर्श, व्याख्याकार : रामचन्द्र मिश्र, पृ० २१६।

४- साहित्य शास्त्र के प्रमुख पक्ष : डा० राममूर्ति त्रिपाठी, पृ० २२४।

वक्रोक्ति माना है । अर्थात् लक्षणा के बहुत से निबन्ध होते हैं जिनमें असादृश्य लक्षणा वक्रोक्ति न होकर सादृश्य निबन्धना लक्षणा ही वक्रोक्ति होती है ।[१] इस प्रकार वामन ने इसे सामान्य अलंकार न मानकर विशिष्ट रूप में सादृश्यमूलक अर्थालंकार के उपमादि के समान माना है ।

आचार्य रुद्रट ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार का केवल एक विभेद मात्र माना है तथा इसके दो भेद भी किये । काकु वक्रोक्ति और भंगश्लेष वक्रोक्ति ।[२] अतएव यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि रुद्रट ने वक्रोक्ति की परिधि को सीमित बना दिया । रुद्रट के बाद आनन्दवर्द्धन[३], राजशेखर[४], अग्निपुराणकार[५] आदि ने भी प्रसंगवश रुद्रट के काकु वक्रोक्ति का समर्थन किया है । इन आचार्यों की अवधारणाओं के आधार पर वक्रोक्ति के वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं हो पाता।

ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के शक्तिहीन स्वरूप को सम्बल प्रदान करते हुए उसे काव्य के जीवित के रूप में स्वीकार किया । कुन्तक ने इसको वैदग्ध्य भंगीभणिति माना है,[६] जो प्रसिद्ध अभिधान का अतिक्रमण करनेवाली अर्थात् प्रसिद्ध अमोपिगत अर्थ से भिन्न काव्यात्मक अर्थ की सृष्टि करनेवाली विचित्रैवाभिधा है ।[७] कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धांत के मूल में यही विदग्धभंगी अथवा विचित्र अभिधा निहित है । कुंतक की यह वक्रता काव्य के वर्ण से लेकर वर्ण समुदाय से निर्मित प्रकरण एवं प्रबन्ध तक व्याप्त है । कुन्तक के शब्दों में उज्जवला छायातिशय रमणीयता वक्रता की उद्भाविनी है । अतः कुन्तक की वक्रता से तात्पर्य शास्त्रादि में प्रसिद्ध शब्द और अर्थ के उपनिबन्धन से भिन्न अभिप्राय युक्त शब्दार्थमयी उक्ति से है ।[८] और यह वैचित्र्यपूर्ण कथन भंगिमा आह्लादकारिणी भी होती है । साथ ही यह कविनिष्ठ कल्पनाश्रित भी है इसका समस्त काव्योचित सौन्दर्य कवि-व्यापार

१- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित - सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० ६ ।

२- काव्यालंकार २।१४-१६ ।

३- ध्वन्यालोक लोचन, पूर्वाद्ध पृ० ४७ ।

४- काव्य मीमांसा (परिषद् प्रकाशन) पृ० ७५ ।

५- अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (रामलाल वर्मा शास्त्री)पृ० ६०-६१

६- वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भंगीभणिति रुच्यते, १।१०
हिन्दी वक्रोक्तिजीवित

७- वक्रोक्ति प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा
वही पृ० ११

८- वक्रोयो इति शास्त्रादि प्रसिद्ध शब्दार्थोपनिबन्धव्यतिरेकि
वही पृ० ३६

गत है ।[1] यह कवि की प्रौढ़ि है - जो उसकी रुचि से परिचालित होकर लोकोत्तर चमत्कार कारी वैचित्र्य की सृष्टि करती है ।[2]

इस प्रकार वक्रोक्ति एक विशेष प्रकार की अभिव्यंजना प्रणाली है जो सामान्य कथन से भिन्न उक्ति के वैचित्र्य या विशिष्टता से युक्त है । कुन्तक ने इसे विचित्र अभिधा कहा है । यह सिद्धान्त कवि निष्ठ कल्पना पर आधारित है, ध्वनि सिद्धांत की तरह सहृदय निष्ठ नहीं है ।[3] वक्रता काव्य का अनिवार्य माध्यम है यह सत्य है परन्तु वह उसका जीवित या प्राणतत्व है यह विवादास्पद है। कुंतक के समकालीन कवि भोज ने इसकी प्रतिष्ठा का प्रयास किया किन्तु बाद के मम्मट, रुय्यक, विद्यानाथ तथा अप्पय दीक्षित आदि ने इसे अपने-अपने ढंग से शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का एक भेद माना । आचार्य विश्वनाथ ने तो कुंतक के संपूर्ण सिद्धांत को वक्रोक्तेरलंकार विशेष रूपत्वात् में अन्तर्भुक्त कर दिया ।[4] इस प्रकार अंत में वक्रोक्ति केवल वाणी के सौन्दर्य रूप में मान्य हुआ । अपने उत्थान और पतन के बाद आधुनिक युग के प्रमुख चरण में इसकी पुनर्स्थापना हुई । प्रसाद आदि कवियों ने वक्रता को अभिव्यंजना का प्रमुख प्रसाधन माना ।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य अरस्तू ने भी उक्ति वैचित्र्य को महत्व दिया है । उनके अनुसार वह असाधारण शब्दावली जो काव्य में गरिमा की सृष्टि करती है दूसरी भाषाओं से गृहीत शब्द, लाक्षणिक प्रयोग विस्तारित पद तथा प्रचलित शब्दावली से भिन्न अन्य सभी प्रकार के वैचित्र्य पूर्ण प्रयोगों पर आश्रित होती है ।[5] अतएव अरस्तू ने भी कथन भंगिमा की असाधारणता को स्वीकार किया है ।

यूनानी आचार्य लांजाइनस ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उदात्त भावना

१- शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापारशालिनि
   बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणी । १।७ वही
२- साहित्यशास्त्र के प्रमुख पक्ष : डा० राममूर्ति त्रिपाठी, पृ० २२६ ।
३- भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका (भाग २) डा० नगेन्द्र, पृ० ४६४ ।
४- हिंदी साहित्य दर्पण : डा० सत्यव्रत सिंह, पृ० २३ ।
५- The virtue of language is to be clear without being low. Language formed of standard words in clearest ,but it is low.... out-of-the-way usages gi e dignity and transform the common speech. By out-of-the-way, I mean loan-words metaphors, extended words and all departures from the standard.
   Aristotle on the art of fiction : An english translation of the poetics, p.48.

में वक्रोक्ति का सन्निवेश किया है ।" उदात्त भावना एक प्रकार का अभिव्यंजनागत चमत्कार अथवा विशिष्ट गुण है । --- वह श्रोता के मन में प्रवृत्ति मात्र जगाकर नहीं रह जाता वह तो आह्लाद का उद्रेक करता है ।[1]

कुन्तक के वक्रोक्तिवाद की वास्तविक परिणति क्रोचे के अभिव्यंजनावाद में हुई है । आचार्य शुक्ल ने तो यहां तक कह डाला कि क्रोचे का अभिव्यंजनावाद भारतीय वक्रोक्तिवाद का ही विदेशी उत्थान है । दोनों ने अपने " वाद" में कला की प्रधानता दी है । " क्रोचे और कुंतक दोनों ही अभिव्यंजना तथा उक्ति को मूलत: अखण्ड, अविभाज्य और अद्वितीय मानते हैं । क्रोचे की भांति कुंतक ने भी कहा है कि तत्व दृष्टि से उक्ति अखण्ड है उसमें अलंकार और अलंकार्य का भेद नहीं हो सकता - इस प्रसंग में दोनों की उक्ति तक मिल जाती है ।[2]

कुन्तक के प्रसिद्ध कथन कि शरीर ही यदि अलंकार हो जाय तो वह दूसरे किसको अलंकृत करेगा की पुष्टि रिचर्ड्स ने यह कहकर की है कि विषय वस्तु को लाक्षणिक ढंग से व्यक्त करना ही काव्य का अभिप्रेत है। उसे काव्य का शोभातिशायी गुण या काव्य से पृथक देखना सर्वथा त्रुटिपूर्ण है ।[3]

हिन्दी के आधुनिक युग में कविता में वक्रता की अवस्थिति का पूर्णत: समर्थन किया गया । आधुनिक समालोचकों तथा कवियों ने अपने-अपने ढंग से कविता में चमत्कार की दृष्टि पर बल दिया । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी यह स्वीकार किया कि " विज्ञ कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परम आवश्यक है यदि कविता में चमत्कार नहीं, कोई विलक्षणता नहीं तो इससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती ।[4]" क्योंकि काव्य चाहे कैसा ही निर्दोष क्यों न हो, उसके सुवर्ण चाहे कैसे मनोहर ही क्यों न हो - यदि उसमें अनमोल रत्न के समान कोई चमत्कारपूर्ण पद न हुआ, तो वह स्त्रियों के लावण्यहीन यौवन के समान चित्त

१- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित : सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० २४० ।

२- वही, पृ० २४४ ।

3- Throughout the history of Rhetoric, Metaphor has been treated as a sort of happy extra trick with words, an apportunity to explioitthe accidents of their versality something in place occassionally put requiring unsual skill and caution. In brief a grace or ornaments or added power of language, xaot its consitutive form.
The Philosophy of Rhetoric :Paper Back edition, 1965, p.90.

४- महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ रंजन, पृ० ३६।

पर चलता है ।[1] इस कथन की पुष्टि में उन्होंने संस्कृत का एक श्लोक भी उद्धृत किया है ।[2] एक प्रकार से द्विवेदी जी ने यह कहकर कि " जो बात एक असाधारण और निराले ढंग से शब्दों के द्वारा इस तरह प्रकट की जाये कि सुननेवाले पर उसका कुछ न कुछ असर जरूर पड़े, उसी का नाम कविता है "[3] कुन्तक की वक्रोक्ति का समर्थन किया है । किन्तु द्विवेदी जी के इस संपूर्ण सैद्धांतिक कथन एवं व्यावहारिक क्रिया में पर्याप्त अंतर है जिसका ज्वलंत उदाहरण छायावादी कविता के बीजारोपक होते हुए भी उसका घुर और विरोध है ।

हिन्दी साहित्य के प्रमुख समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल वक्रोक्तिवाद के विरोधी होते हुए भी उसके समर्थक कहे जा सकते हैं । उन्होंने कुन्तक के वक्रोक्ति के मूलतत्व को पहचानते हुए यह बताया कि " वचन की जो वक्रता भाव प्रेरित होती है वही काव्य होती है । वक्रोक्तिर्जीवितम् से यही वक्रता अभिप्रेत है वक्रोक्ति अलंकार नहीं ।[4] अतः शुक्ल जी भावना से उद्भूत वक्रता के पक्षपाती हैं उनके अनुसार " उमड़ते हुए भाव की प्रेरणा से अक्सर कथन के ढंग में कुछ वक्रता आ जाती है । ऐसी वक्रता काव्य की प्रक्रिया के भीतर रहती है । उसका अनूठा-पन भाव-विधान के बाहर की वस्तु नहीं ।[5] इस प्रकार शुक्ल जी वक्रता के उस विशिष्ट रूप के समर्थक हैं जो भावप्रेरित होते हुए काव्य में अनूठेपन की सृष्टि करे । वे भावों को गोचर और सजीव रूप देने के लिए तथा भाव की विमुक्ति और स्वच्छंद गति के लिए कविता में वैचित्र्य अथवा वक्रता को पूर्णतः महत्व देते हैं ।[6]

हिन्दी के उत्कर्ष काल में प्रसाद और निराला आदि कवियों के प्रयत्न स्वरूप साहित्य में एक बार पुनः वक्रोक्ति का प्रभुत्व सर्वमान्य हुआ । छायावाद के प्रवर्तक कवि प्रसाद का वक्रता के प्रति बढ़ता हुआ मोह देखकर

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ रंजन, पृ० ३६।

२- स्वैर कैन चिन्तयमाणि प्रमेण
काव्यं चमत्कृति पदेन विना सुवर्णम्
निर्दोषशैलमपि रोहति कं यचिते
लावण्यहीनमिव यौवन मंगनानाम् ।

३- महावीर प्रसाद द्विवेदी : रसज्ञरंजन, पृ० ५८।

४- भ्रमरगीतसार (भूमिका भाग) पृ० ७१ ।

५- चिन्तामणि (भाग १) पृ० २३६ ।
६- ,, (भाग २) पृ० २१३ ।

शुक्ल जी जैसे समालोचक को भी वक्रोक्ति को अभिव्यंजना शिल्प का एक प्रकार मानना पड़ा । प्रसाद जी ने तद्युगीन (छायावादी) काव्य का सर्वस्व स्वानुभूति की विवृत्ति को माना है जिसकी सूक्ष्म एवं गहन विवेचना आचार्य कुन्तक ने की थी । प्रसाद जी ने स्पष्टत: बताया कि मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था । कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवित में कहा है ------- शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और कान्ति का सृजन करती है । इस वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है । वैदग्ध्य भंगी भणिति में शब्द की वक्रता और अर्थ की वक्रता लोकोत्तीर्ण रूप से व्यवस्थित होती है।[1] इस प्रकार प्रसाद जी ने स्वानुभूति से वक्रता का संबंध जोड़ते हुए काव्य में उसकी उपादेयता पर बल दिया उनके अनुसार ------ वे अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य जगत के लिए अत्यन्त आवश्यक थे । काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी । बाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी ।[2] अतएव प्रसाद जी ने भी भावप्रेरक अर्थात् स्वानुभूति की विवृत्ति को काव्य संरचना में महत्वपूर्ण माना । उन्होंने जहाँ सैद्धान्तिक रूप से वक्रता की अनिवार्यता को विवेचित किया वहीं व्यावहारिक रूप से उसे काव्य में रूपायित किया । जो उनके युग की प्रमुख विशेषता सिद्ध हुई ।

आलोच्य कवि निराला का यह कथन कि " एक ही शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्द होते हैं। उनमें से किस शब्द का प्रयोग उचित होगा , किस शब्द से कविता में भाव की व्यंजना अधिक होगी, इसका भी ज्ञान कवियों को रखना पड़ता है ।[3] - अपरोक्ष रूप से वक्रोक्ति का समर्थक माना जा सकता है । कुन्तक का यह विचार कि काव्य में भंगीभणिति के अनेक पर्यायवाची शब्दों में किसी विवक्षित शब्द का प्रयोग ही उपयुक्त होता है । निराला के कथन से अक्षरश: साम्य रखता है । व्यावहारिक रूप से निराला ने भी अपने काव्य में वक्रोक्ति विधान किया है ।

१- जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ४४-४५ ।

२- वही, पृ० ४७ ।

३- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " : रवीन्द्र कविता कानन, पृ० १९८ ।

प्रसाद और निराला के काव्य में वक्रोक्ति की चरम परिणति हुई है। दोनों कवियों ने इसके भावप्रेरक कलात्मक विधान का पूर्ण प्रयास किया है। आलोच्य कवियों के काव्य में चारुत्व और विदग्धता का गुण अपने उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। वास्तव में छायावाद का कोष इतना समृद्ध है कि कुन्तक की वक्रता के नाना रूपों के जितने प्रचुर उदाहरण इस एक दशक की कविता में अनायास ही उपलब्ध हो जाते हैं उतने शताब्दियों तक की काव्यधारा में नहीं मिलते।[१]

(ख) वक्रोक्ति के भेद :

वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया जिससे उसकी परिधि विस्तृत हो गई। वक्रोक्ति का क्षेत्र वर्ण विन्यास से लेकर प्रबन्ध कल्पना तक और उधर उपसर्ग, प्रत्यय आदि पदावयवों से लेकर महाकाव्य तक प्रसरित है। इसे कुन्तक ने ६ भेदों में बाँटा है -

(क) वर्ण विन्यास वक्रता

(ख) पदपूर्वार्द्ध वक्रता

(ग) पदपरार्द्ध वक्रता

(घ) वाक्य वक्रता

(ङ०) प्रकरण वक्रता

(च) प्रबंध वक्रता

कुंतक ने इन भेदों के भी प्रभेद किये हैं जिसमें वर्ण से लेकर वाक्य तथा मुक्तक से प्रबंध तक के समस्त रूप अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। यहाँ पर प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध प्रभेदों की विवेचना ही उचित होगी।

(ग) प्रसाद और निराला के काव्य में वक्रताएँ

(क) वर्ण विन्यास वक्रता -

काव्य-संरचना का सर्वप्रथम सोपान वर्ण मैत्री है। यह वर्ण

१- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २७४।

शब्द व्यंजन का पर्याय है। इसे कुन्तक ने वक्रोक्ति के भेदों में सर्वप्रथम गिनाया है। "जिसमें एक दो या बहुत से वर्ण थोड़े-थोड़े अन्तर से बार-बार (उसी रूप में) ग्रथित होते हैं, वह वर्ण-विन्यास वक्रता अर्थात् वर्ण रचना की वक्रता कहलाती है।"[1] यह वर्ण-विन्यास वक्रता प्राचीन शास्त्रों में अनुप्रास के नाम से प्रसिद्ध है।[2] कुन्तक ने इसके कई भेदों की चर्चा की है, जैसे - (१) वर्गान्त से युक्त स्पर्श वर्ण (२) त-ल-नादय: अर्थात् तकार, लकार और नकार का काव्य में द्वित्व प्रयोग (३) दोनों प्रकारों में वर्णित वर्णों के अतिरिक्त शेष व्यंजन संज्ञक वर्ण रेफ आदि से युक्त होकर जब बार-बार काव्य में प्रयुक्त हो तो इस वर्ण-भेद की रचना होती है।[3] इनके अतिरिक्त कुन्तक ने एक अन्य प्रकार की भी चर्चा की है जिसमें बिना व्यवधान के एक या एकाधिक व्यंजनों का विन्यास होता है।[4] इसके अन्तर्गत ही उन्होंने उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्तियों का अन्तर्भाव किया है। आगे चलकर कुन्तक ने पाँचवें प्रकार की चर्चा करते हुए बताया कि समान वर्ण वाले किन्तु भिन्नार्थक, प्रसाद गुण-युक्त श्रुतिमधुर, औचित्य से युक्त आदि (मध्य तथा अन्त) स्थानों पर शोभित होनेवाला जो यमक नामक प्रकार है वह भी उसी का भेद है।[5] वर्ण विन्यास की विच्छित्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह (वर्ण-विन्यास वक्रता) अत्यन्त आग्रह

१- एको द्वौ बहवो वर्णा: बध्यमाना: पुन: पुन:
स्वल्पान्तरास्त्रिधा सोक्ता वर्ण विन्यासवक्रता। ३।१
हिन्दी वक्रोक्ति जीवित

२- एतदेव वर्ण विन्यासवक्रत्वं चिरन्तनैरनुप्रास इति प्रसिद्धम्।
वही, प्रथमोन्मेष, पृ० ६६।

३- वर्गान्त योगिन: स्पर्शा द्विरुक्तास्त-ल-नादय:
शिष्टाश्च रादि संयुक्ता: प्रस्तुतौचित्य शोभिन:। २।२ वही

४- क्वचिद्व्यवधानेऽपि मनोहारिनिबन्धना
सा स्वराणामसारूप्यात् परां पुष्णाति वक्रताम्। २।३ वही

५- समान वर्ण मन्यार्थं प्रसादि श्रुतिपेशलम्।
औचित्य युक्त माद्यादि नियतस्थान शोभियत्।।
यमकं नाम कोऽप्यस्या: प्रकार: परिदृश्यते।
संतु शोभान्त रा भावादिह नाति प्रतन्यते।। २।६-७, वही

पूर्वक विरचित न हो और न असुन्दर (प्रकृत -रस-विरोधी) वर्णों से भूषित हो अर्थात् पेशलता का परित्याग आवश्यक बताया साथ ही पूर्व आवृत्त (यमक) को छोड़कर नवीन (वर्णों के यमक) के पुनरावर्तन से मनोहर होना चाहिए ।[1]

आलोच्य कवि प्रसाद और निराला के काव्य में वर्ण-विन्यास वक्रता के समस्त भेदों को उपलब्ध किया जा सकता है जो कुन्तक के प्रतिबन्धों के अनुरूप ही रचित है । निराला ने अपनी अनुभूति और वर्ण-विन्यास के योग से जिस विशिष्ट नाद व्यंजक वक्रता की सृष्टि की है वह उनके काव्य की ही नहीं अपितु समग्र युग की विशिष्टता उद्घोषित हुई । कुन्तक द्वारा परिगणित वर्ण विन्यास वक्रता के भेदों को हम प्रसाद और निराला के भाषागत विवेचन के सन्दर्भ में विवेचित कर चुके हैं यहां पर उन्हें पुन: लिखना व्यर्थ में कार्य-भार बढ़ाना मात्र होगा ।

(ख) पदपूर्वार्द्ध वक्रता

प्रकृति और प्रत्यय के योग से निर्मित कुछ वर्णों का समुदाय पद है । प्रकृति पद का पूर्वार्द्ध अंश है और प्रत्यय परार्द्ध अंश इसी को आधार बनाकर पदगत् वक्रता के दो भेद किये गए एक पद पूर्वार्द्ध वक्रता , दूसरा पद परार्द्धवक्रता । पद के प्रथम अंश अर्थात् प्रकृति में वक्रता का योग होने से पदपूर्वार्द्ध वक्रता की सृष्टि होती है। इसके मुख्य ८ भेदों की चर्चा हुई है । (१) रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता (२) पर्यायवक्रता (३) उपचार वक्रता (४) विशेषण वक्रता (५) संवृत्ति वक्रता (६) वृत्ति वक्रता (७) लिंग वैचित्र्य वक्रता (८) क्रिया वैचित्र्य वक्रता । प्रसाद और निराला के काव्य में वक्रता के इन समस्त भेदों का विधान उपलब्ध है किन्तु प्रमुखता पर्यायवक्रता, उपचार वक्रता और विशेषण वक्रता की ही है ।

(१) रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता : जहां लोकोत्तर तिरस्कार अथवा प्रशंसा का कथन करने के अभिप्राय से वाच्य अर्थ की रूढ़ि से असंभव अर्थ का अध्यारोप अथवा उसम धर्म के अतिशय को आरोपगर्भित रूप में कहा जाता है, वह कोई अपूर्व सौन्दर्य विधायक रूढ़िवैचित्र्य वक्रता कही जाती है ।[2] प्रसाद और निराला के काव्य में इस प्रकार की वक्रता का अभाव नहीं है, यथा -

---

१- वही, २।४

२- यत्रर्रूढ़ेर सम्भाव्य धर्माध्यारोपगर्भता
सद्धर्मातिशयारोपगर्भत्वं वा प्रतीयते ।
लोकोत्तर तिरस्कार श्लाघ्योत्कर्षाभिधित्सया
वाच्यस्य सोच्यते कापि रूढ़िवैचित्र्य वक्रता । २।८-९ हिंदी वक्रोक्तिजीवित ।

अंध विश्वास दिलाते वे,
इसी में बनते हैं विद्वान ।[1]

फूलों की सेज पर मोर हो ।[2]

प्रथम उद्धरण में विद्वान की व्यंजना लोकोत्तर तिरस्कार को ध्वनित करती है । विद्वान का कार्य भाव एवं विचार का संवर्द्धन कराना है न कि अंध विश्वास को उत्पन्न कराना । इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में वाच्यार्थ तिरस्कृत है जिसमें यहां पर रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता की सृष्टि हुई है ।

(२) पर्याय वक्रता : यह पर्याय के आश्रित है पर्याय समानार्थक संज्ञा को कहते हैं । पर्यायवक्रता वह है जिसमें वस्तु का अनेक शब्दों से कथन संभव होने पर (भी) प्रकरण के अनुरूप होने से कोई (सर्वातिशायी) विशेष पद (ही) प्रयुक्त किया जाता है ।[3] इसके लिए आवश्यक निर्देश देते हुए कुन्तक ने कहा कि पर्याय अपने वाच्य अर्थ का अंतरतम होता है अर्थात् अभिधेय से इसका निकटतम संपर्क होता है । पर्याय अपने में स्वत: पूर्ण होता है । विशेषण के योग से मनोहर होकर वह (पर्याय) असंभव अर्थ की व्यंजना में समर्थ हो जाता है । पर्याय अलंकार संस्कृत भी होता है अलंकरण का साधन भी बनता है । यह ऐसा महत्वपूर्ण तत्व है जिसे काव्य का शोभातिशायी धर्म भी माना जा सकता है ।[4] प्रसाद और निराला के काव्य में वक्रता के इस प्रकार का आधिक्य है, यथा -

तिमिर का हरने को दु:ख भार,
तेज अमिताभ अलौकिक कान्त ।[5]

क्या कहती हो ठहरो नारी संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने से सपने ।[6]

१- प्रसाद : झरना, पृ० ७७ ।
२- निराला : परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र) पृ० १८२।
३- यत्रानेकशब्दाभिधेयत्वे वस्तुन: किमपि पर्यायपद प्रस्तुतानुगुणत्वेन प्रयुज्यते "
वक्रोक्तिजीवित २।१२ पृ० ६६ ।
४- वही, २।१०-११-१२,
५- प्रसाद : लहर, पृ० ८ ।
६- ,, : कामायनी (लज्जा सर्ग(पृ० ११४ ।

बोले रमणी तुम नहीं आह ! जिसके मन में हो रही चाह ,[1]

प्रथम पद में प्रसाद जी ने तिमिर,(अज्ञान) के हरण की जिससे प्रार्थना की है उसे अमिताभ बताया है । क्योंकि तिमिर हरण का कार्य भगवान अमिताभ (बुद्ध भगवान) के ही वश का है । द्वितीय और तृतीय उद्धरण में प्रयुक्त नारी तथा रमणी शब्द भी साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है इन स्थलों पर नारी के पर्याय स्त्री, अबला, देवी, कान्ता तथा वनिता आदि से कार्य नहीं चल सकता था । नारी शब्द में उसके आत्मोत्सर्ग, बलिदान, दृढ़ता , विश्वास आदि का बोध होता है । इसी प्रकार रमणी शब्द को प्रयुक्त कर, प्रसंगानुकूल नारी में अन्तर्निहित रमण शक्ति का कलात्मक परिचय दिया गया है । प्रसाद जी का ध्यान शब्द-विन्यास पर अधिक रहा है उनका यह स्पष्ट मत था कि शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतन्त्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है - - - - - - - शब्द शास्त्र में पर्यायवाची तथा अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण हैं ।[2]

काव्य में पर्यायवाची शब्दों का अर्थगर्भित तथा कलात्मक प्रयोग निराला ने भी किया है, यथा -

बोले - " सम्बरो देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह - नहीं हुआ शृंगार - युग्म-गत, महावीर,[3]

प्रिय) यामिनी जागी ।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-तरुण-अनुरागी ।[4]

शब्दों के अन्तरतम के अन्यतम् पारखी कवि निराला ने हनुमान के शौर्य और पराक्रम को व्यक्त करने के लिए " महावीर " शब्द को प्रयुक्त किया है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में " यामिनी ", " पंकज ", " अरुण " और " अनुरागी " शब्द

१- प्रसाद : कामायनी (दर्शन सर्ग) पृ० २५६ ।
२- ,, : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १४४ ।
३- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५४ ।
४- ,, : गीतिका, पृ० ४ ।

पर्यायवक्रता के सुन्दर उदाहरण माने जा सकते हैं । 'यामिनी' शब्द रात्रि का बोधक है जिसे कवि ने मानवीकृत किया है यामिनी के जागने के पश्चात् उसके पंकज-दृग अरुण तथा अलस हो रहे हैं । उसके अश्रुसिक्त नेत्रों के लिए पंकज शब्द ही उपयुक्त है यहाँ कमल, अरविन्द आदि से वह भाव नहीं व्यक्त हो सकता था जो पंकज शब्द से स्पष्ट होता है । इसी प्रकार अरुण मुख और तरुण-अनुरागी शब्द भी है । नायिका के रक्तिम मुख के लिए यदि कवि अरुण शब्द के स्थान पर अन्य शब्द प्रयुक्त करता तो भाव की कुशल व्यंजना न हो पाती । 'अनुरागी' शब्द प्रेम विह्वल भाव को व्यंजित करता है ।

इस प्रकार अर्थ-विवेक छायावादी कवियों में इतना अधिक था कि उन्होंने पर्याय शब्दों में भी अर्थ-भेद का पता लगाकर प्रसंग के अनुकूल उनका प्रयोग किया है जैसे लहर, तरंग, वीचि, उर्म्मि हिल्लोल आदि तथाकथित पर्यायवाची शब्दों में भी भिन्न अर्थच्छायाएं हैं । इन अर्थच्छायाओं का छायावाद में पूरा प्रयोग किया गया है ।[१] अतएव प्रसाद और निराला जैसे मेधावी युग कवियों के काव्य में अनेकार्थवाची शब्दों का प्रसंगानुकूल प्रयोग ही हुआ है ।

(३) उपचार-वक्रता : कुंतक के शब्दों में उप अर्थात् सादृश्यवश गौण चारण अर्थात् व्यवहार को उपचार कहते हैं । + + + किसी अन्य वस्तु के सामान्य धर्म का लेशमात्र संबंध से भी दूरान्तर वस्तु पर आरोप उपचार कहलाता है ।[२] वस्तुत: उपचार वक्रता की यह विशिष्टता गौणी लक्षणा तथा रूपकादि अलंकारों का भी मूलाधार है ।[३] कुन्तक ने यह बताया कि सत्कवियों की श्रेणी में इसके सहस्त्रश: भेद संभव हैं ।[४] जिनमें से दूरान्तर शब्द को निरूपित करते हुए उन्होंने प्रस्तुत और अप्रस्तुत को लेकर कुछ विशिष्ट प्रकारों का वर्णन किया , यथा - अमूर्त पर मूर्त का आरोप, अचेतन पर चेतन का आरोप तथा घनपदार्थ पर द्रव पदार्थ का आरोप आदि । इस प्रकार उपचार वक्रता और लक्षणा के अन्तरालवर्ती तत्व मूलत: एक हैं । उपचार-वक्रता

१- डा० नामवर सिंह : छायावादयुग, पृ० १०८ ।

२- यत्र दूरान्तरेऽन्यस्मात् सामान्यमुपचर्यते ।
लेशेनापि भवत् काञ्चिद वक्तुमुद्रिक्तवृत्तिताम् ।। २।१३ । वक्रोक्तिजीवितम्

३- यन्मूला सरसोल्लेखा रूपकादिरलंकृति: २।१४

४- सोऽयमुपचारवक्रताप्रकार: सत्कवि प्रवाहे सहस्त्रश: सम्भवतीति सहृदयै: स्वयमेवो-त्प्रेक्षणीय:।द्वितीयोन्मेष,कारिका,१३,पृ०२२६ वही।

और पाश्चात्य अलंकार मानवीकरण विशेषण विपर्यय आदि में भी पर्याप्त साम्य है। हिन्दी के आधुनिक युग में प्रसाद और निराला के काव्य में वक्रता के इस प्रकार की विशेष समृद्धि हुई। प्रसाद और निराला के काव्य में इसके सुनियोजित उद्धरण उपलब्ध है यथा -

अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना।[१]

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे,[२]

प्रथम उद्धरण में अमूर्ततत्व अभिलाषा के लिए लेशमात्र साम्य के आधार पर करवट लेना तथा जगना बताया गया है जो केवल मूर्त प्राणी के लिए ही संभव है। इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से प्रसाद की कामायनी भरी पड़ी है। अमूर्त या अचेतन पर दूरान्तर साम्य के आधार पर भी आलोच्य कवियों ने भाव व्यक्त किया है। संध्यासुन्दरी का परी सा धीरे-धीरे उतरना उपचारवक्रता का सुन्दर उदाहरण है।

उपचार वक्रता के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करना यहां पर उन्हें व्यर्थ में दुहराना मात्र होगा। भाषा के अध्याय में हम इन्हें विवेचित कर चुके हैं।

(४) विशेषण-वक्रता : जहां कारक या क्रिया के माहात्म्य या प्रभाव से वाक्य का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है वहां विशेषण वक्रता होती है।[३] अत: कुंतक के विशेषण से अभिप्राय कारक अथवा क्रिया के भेदक धर्म से है जो यथावसर कारक अथवा क्रिया के वैशिष्ट्य का संपादन करता है। यह वैशिष्ट्य अथवा विशेषण दो प्रकार से अपना महात्म्य सिद्ध करता है - एक तो विशेष्य के स्वाभाविक सौन्दर्य को

१- प्रसाद : आंसू, पृ० ७।
२- निराला : परिमल, पृ० १२६।
३- विशेषणस्य माहात्म्यात् क्रियायाः कारकस्य वा
यत्रोल्लसति लावण्यं सा विशेषण वक्रता। २।१५। वक्रोक्तिजीवित।

प्रकाशित कर और दूसरे अलंकार के सौन्दर्य को परिवृद्ध कर । अन्य भेदों की भांति इस भेद के विषय में भी कुन्तक औचित्य पर बल देते हैं ।[१] वास्तव में पाश्चात्य साहित्य में मान्य विशेषण विपर्यय और भारतीय काव्यशास्त्र में परिगणित परिकरालंकार से कुन्तक का विशेषण विपर्यय भिन्न नहीं । भाषागत अध्ययन के सन्दर्भ में हम इसका विवेचन कर आए हैं । उदाहरणार्थ यहां कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है-

उधर उपेदामय यौवन का बढ़ता भीतर मधुमय प्रीत ।[२]

-------- पुंज-तारुण्य सुघर
आई, लावण्य-भार थर-थर
कांपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर: ।[३]

प्रथम उद्धरण में कवि ने यौवन को उपेदामय और प्रीत को मधुमय बताकर अपने कथन में अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि की है साभिप्राय विशेषण का प्रयोग कर प्रसाद जी ने अर्थ गांभीर्य की सुनियोजित योजना की है । इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में महाकवि निराला ने पुत्री सरोज के निष्कलुष एवं पवित्र तारुण्य को विशेषण की वक्रता के माध्यम से व्यक्त किया है । प्रसाद और निराला के काव्य में वक्रता के इस विभेद का प्रचुर प्रयोग हुआ है ।

(५) संवृत्ति वक्रता : यह कला का उत्कर्ष विधायक तत्व है । इसमें संकेत की महत्ता होने से कथन प्रभावकारी बन जाता है । जहां वैचित्र्य कथन की इच्छा से किन्हीं सर्वनाम आदि के द्वारा वस्तु का संवरण (गोपन) किया जाता है वहां संवृत्ति-वक्रता होती है ।[४] कुन्तक के अनुसार स्पष्ट कथन की अपेक्षा सांकेतिक सर्वनाम आदि के द्वारा उक्ति में कहीं अधिक चारुता आ जाती है ।[५]

१- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित(भूमिका) पृ० ६४ ।
२- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १२ ।
३- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १२६ ।
४- यत्र संव्रियते वस्तु वैचित्र्यस्य विवक्षया
 सर्वनामादिभि : कश्चित् सोक्ता संवृत्तिवक्रता । २।१६ ।
५- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, सं० डा० नगेन्द्र हिन्दी वक्रोक्तिजीवित (भूमिका) पृ० १४५ ।

कथन को प्रभावकारी बनाने के हेतु प्रसाद और निराला ने इस वक्रता का प्रयोग किया है। प्रसाद जी ने तो स्पष्टत: स्वीकार किया है कि " कभी-कभी स्वानुभव संवेदनीय वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए सर्वनामादिकों का सुन्दर प्रयोग इस छायामयी वक्रता का कारण होता है,[१] यथा -

चिंता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की उस सुख की[२]

यह अंचल कितना हल्का सा कितने सौरभ से सना हुआ[३]

यहाँ पर प्रथम उद्धरण में कवि ने " उस " शब्द का प्रयोग कर देवयुग अथवा देवसुख की ओर संकेत किया है जो प्राय: लुप्त होते हुए भी चमत्कारजन्य अर्थ की उत्पत्ति में सहायक हुआ है। इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में " कितनी " और " कितने " जैसे सर्वनाम वाचक शब्द अपरिमित गुणों को व्यंजित करते हैं प्रसाद के अतिरिक्त निराला ने भी इस कोटि की वक्रता की सृष्टि की है, यथा -

खड़ी दूर सारस की सुन्दर जोड़ी
क्या जाने क्या-क्या कहकर दोनों ने ग्रीवा मोड़ी[४]

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।[५]

प्रथम उद्धरण में क्या-क्या कहकर दोनों ने ग्रीवा मोड़ी " शब्द कथन में कौतूहल को समाविष्ट करते हैं जो काव्य की कलात्मक विच्छित्ति में पूर्णत: सहायक है। इसी प्रकार द्वितीय उद्धरण में " क्या कहूँ आज " शब्द कवि के क्षोभित हृदय की ओर बड़ी ही सशक्तता से संकेत करते हैं। संवृत्ति वक्रता का यह समस्त व्यापार व्यंजनाश्रित है जिससे प्रसाद और निराला का काव्य भरा पड़ा है।

१- प्रसाद : काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १४५।

२- ,, : कामायनी (चिन्ता सर्ग) पृ० १४।

३- ,, : ,, (लज्जा सर्ग) पृ० १०६।

४- निराला : अनामिका (तट पर) पृ० ४६।

५- ,, : ,, (सरोज स्मृति) पृ० १३४।

(६) वृत्तिवक्रता : जिसमें अव्ययी भाव आदि (समास, तद्धित कृत आदि) वृत्तियों का सौन्दर्य प्रकाशित होता है उसको वृत्ति वैचित्र्य वक्रता समझना चाहिए।[१] आलोच्य कवियों के काव्य में समास आश्रित वृत्ति वक्रता का कुछ विधान उपलब्ध है। इस समास वक्रता का प्रयोग डा० नगेन्द्र के अनुसार दो प्रकार से होता है एक तो चमत्कारपूर्ण कतिपय पृथक शब्दों के समास से ऐसे नवीन शब्दों का निर्माण जो वैचित्र्यपूर्ण हो, दूसरे वह जो समास के पद रचना पर ही आश्रित हो।[२] जैसे -

[illegible] का वीक्षण-शर-विधृत-क्षिप्रकर, वेग-प्रखर,

--- --- ---

विच्छुरितवन्हि - राजीवनयन-हतलक्ष्य-बाण
लोहित लोचन-रावण-मद-मोचन-महीयान ।[३]

शक्ति पूजा में निराला ने सामासिक पदावली का जो विधान किया है वह अद्वितीय तथा बेजोड़ है। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने अन्य रचनाओं में वृत्ति वक्रता का कलात्मक विन्यास किया है, यथा -

सौन्दर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में -
धीर वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में -
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में -
क्षिति में - जल में - नभ में - अनिल - अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा "चुप-चुप-चुप"
है गूंज रहा सब कहीं ।[४]

वृत्तिवक्रता का कलात्मक विधान निराला ने ही अधिक किया है। यद्यपि प्रसाद का काव्य ऐसे प्रयोग से रिक्त नहीं है फिर भी, निराला की तुलना में यहां पर वो पीछे रह जाते हैं।

१- अव्ययीभावमुख्यानां वृत्तीनां रमणीयता ।
यत्रोल्लसति सा ज्ञेया वृत्ति वैचित्र्यवक्रता । २।१६ - वक्रोक्तिजीवित ।

२- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० ७९ ।

३- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५८ ।

४- ,, : परिमल (संध्या सुन्दरी) पृ० १२७ ।

(७) लिंग वैचित्र्य वक्रता : जिस (वक्रता) में भिन्न लिंगों (भिन्न लिंगवाले शब्दों) के समानाधिकरण्य (समानविभक्त्यन्त) रूप में प्रयोग से कुछ अपूर्व शोभा उत्पन्न हो जाती है वह लिंग वैचित्र्य वक्रता कहलाती है ।[१] अतः जहाँ लिंग के चमत्कारपूर्ण प्रयोग से सौन्दर्य की पुष्टि होती है वहाँ लिंग वैचित्र्य वक्रता होती है । इसके कई रूप हैं जैसे - (१) विभिन्न लिंगों का सामानाधिकरण्य (२) अन्य लिंग संभव होने पर भी कोमलता या सौन्दर्यता के हेतु स्त्रीलिंग का प्रयोग, (३) अन्य समस्त लिंगों के संभव होने पर भी किसी एक विशेष लिंग का प्रयोग होना ।[२]

आलोच्य कवि प्रसाद और निराला के काव्य में लिंग वैचित्र्य वक्रता का कलात्मक विन्यास दृष्टव्य है, यथा -

> कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी
> न वह मकरंद रहा ।[३]

यहाँ कामायनी और कुसुम शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग होकर एक साथ प्रयुक्त हुए हैं जो कुंतक के भिन्न लिंगों के प्रयोग से उत्पन्न चमत्कार की पुष्टि करते हैं । आलोच्य कवियों ने कोमलता एवं सौन्दर्यता के हेतु स्त्रीलिंग का प्रयोग अधिकता से किया है यथा -

> सुना यह मनु ने मधु गुंजार मधुकरी का सा जब सानन्द[४]
>
> वह चली अब अलि, शिशिर-समीर ।[५]

प्रथम उदाहरण में रस की पेशलता के हेतु प्रसाद जी ने मधुकर से मधुकरी कर दिया है पुल्लिंग को स्त्रीलिंग बना दिया । इसी प्रकार द्वितीय

१- भिन्नयोर्लिंगयोर्यस्यां सामानाधिकरण्यतः
कापि शोभाभ्युदेत्येषा लिंग वैचित्र्यवक्रता । २।२१ - हिंदी वक्रोक्तिजीवित

२- वही, २।२१-२२-२३ ।

३- प्रसाद : कामायनी (स्वप्न सर्ग) पृ० १८३ ।

४- ,, : ,, (श्रद्धासर्ग) पृ० ५३ ।

५- निराला : गीतिका, पृ० १० ।

उदाहरण में निराला ने समीर को स्त्री रूप प्रदान कर वह चली कह दिया ।

अन्य लिंग के संभव होने पर भी प्रसाद जी ने अर्थ के औचित्य तथा वक्रता की पुष्टि के हेतु विशिष्ट लिंग का सभिप्राय प्रयोग किया है, यथा -

लगा कहने आगन्तुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष ;
दे रहा हो कोकिल सानन्द सुमन को ज्यों मधुमय संदेश ।[१]

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने काव्य में अपूर्व शोभा के उत्पादन हेतु लिंगों की विचित्रता को महत्व दिया है यद्यपि इसे विद्वानों ने व्याकरणसम्मत नहीं माना है जैसा भाषा के अध्याय में देख चुके हैं फिर भी काव्य में कलात्मक विच्छित्तिकी पुष्टि होने से यह वक्रता का महत्वपूर्ण विधान माना जाना चाहिए ।

(८) क्रिया वैचित्र्य वक्रता : काव्य में क्रिया के वैचित्र्य पूर्ण प्रयोग से सौन्दर्य का उद्घाटन होना ही क्रिया वैचित्र्य वक्रता है । इसके पांच प्रमुख रूप हैं - (१) क्रिया का कर्ता के अत्यन्त अंतरंग भूत होना (२) कर्ता की अन्य कर्ताओं से विचित्रता (३) क्रिया के विशेषण का वैचित्र्य (४) उपचार मनोज्ञता तथा (५) कर्मादि-संवृत्ति ।[२] प्रसाद और निराला के काव्य में इस वक्रता के सभी रूप उपलब्ध हैं ।

क्रिया का कर्ता के अत्यन्त अंतरंगभूत होने से क्रिया वैचित्र्य वक्रता -

बालक की चकित पुकारें
श्यामा-ध्वनि सरल रसीली ।[३]

यहाँ 'चकित' क्रिया 'पुकार' कर्ता से अत्यन्त घनिष्ठ प्रतीत होती है ।

कर्ता की अन्य कर्ताओं से विचित्रता -

अचपल ध्वनि की चमकी चपला
बल की महिमा बोली अबला ।[४]

१- प्रसाद : कामायनी (श्रद्धासर्ग) पृ० ५८ ।
२- कर्तुरत्यन्तरङ्गत्वं कर्त्रन्तरविचित्रता
स्वविशेषणवैचित्र्य मुपचार मनोज्ञता २।२४।
कर्मादि संवृत्तिः पंच प्रस्तुतौचित्यचारवः
क्रिया वैचित्र्यवक्रत्व प्रकारास्त इमे स्मृताः २।२५ । हिंदी वक्रोक्तिजीवित
३- प्रसाद : आंसू, पृ० ६ (४) निराला : तुलसीदास, पृ० ४५ ।

यहाँ "चपल ध्वनि" तथा "जल की महिमा" का अन्य कर्ता "चमकी चपला" तथा "बोली अबला" से संयोग स्थापित होने से जिस अर्थ वैचित्र्य की पुष्टि होती है वह क्रिया वैचित्र्य वक्रता का सफल उदाहरण है।

क्रिया के विशेषण का वैचित्र्य -

हरी-भरी सी दौड़-धूप , ओ[1]

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर[2]

प्रथम उदाहरण में "दौड़ धूप" क्रिया के लिए हरी-भरी विशेषण का प्रयोग किया है और द्वितीय उदाहरण में "गरज" क्रिया के लिए "झूम-झूम" विशेषण शब्द प्रयुक्त हुआ है जो वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग होने से क्रिया वैचित्र्य वक्रता की कोटि में आता है।

उपचार मनोज्ञता -

चेतना बही जाती थी हो मंत्रमुग्ध माया में[3]

कलियों की मुद्रित पलकों में सिसक रही जो गंध अधीर[4]

यहाँ पर सादृश्य के आधार पर एक वस्तु पर दूसरे वस्तु के धर्म का आरोप किया गया है। प्रथमपद में "बही जाती" क्रिया चैतन्यता का बोधक है जिसे प्रसाद जी ने चेतना जैसी वृत्ति के लिए प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार द्वितीय पद में निराला जी ने गंध जैसे अमूर्त तत्व के लिए सिसक रही क्रिया का प्रयोग किया है, जो उपचार मनोज्ञता का सफल उदाहरण है।

कर्मादि संवृत्ति -

श्रद्धा कुछ-कुछ मुस्कुरा उठी[5]

१- प्रसाद : कामायनी (चिन्ता सर्ग) पृ० १३।

२- निराला : परिमल (बादल राग) पृ० १६० ।

३- प्रसाद : आँसू ,पृ० १४ ।

४- निराला : परिमल (यमुना के प्रति) पृ० ४७ ।

५- प्रसाद : कामायनी (ईर्ष्या सर्ग) पृ० १५१ ।

यहाँ पर " मुस्कराना " क्रिया में कुछ-कुछ " कर्म के योग से अद्वितीय भाव की सृष्टि होती है जो कर्मादि संवृति द्वारा ही संभव है । वैसे क्रिया वक्रता का यह रूप संवृत्ति वक्रता का ही प्रतिरूप है ।

(ग) पद परार्द्ध वक्रता -

पद के पूर्वार्द्ध अर्थात् प्रातिपदिक की ही भाँति पद के उत्तरार्द्ध अर्थात् सुप के विचित्र या वक्र प्रयोग से कविता में जो चमत्कार उत्पन्न होता है वही पद परार्द्ध वक्रता है । आचार्य कुन्तक ने उसके छः प्रमुख प्रकारों की चर्चा की है-
(१) काल वैचित्र्य वक्रता,(२) कारक वक्रता,(३) संख्या वक्रता या वचन वक्रता,
(४) पुरुष वक्रता , (५) उपग्रह वक्रता, (६) प्रत्यय वक्रता ।

(१) काल वैचित्र्य वक्रता : जहाँ औचित्य के अनुरूप काल रमणीयता को प्राप्त हो जाता है, वहाँ काल-वैचित्र्य वक्रता होती है ।[१] यथा -

वह दुपहरी थी
लू से झुलसानेवाली ; प्यास से जलानेवाली
थके सो रहे थे तरुछाया में हम दोनों
तुर्कों का एक दल आया झंझावात-सा ।[२]

याद है दिवस की प्रथम धूप
थी पड़ी हुई तुझ पर सुरूप,
खेलती हुई तू परी चपल

प्रथम उद्धरण में प्रसाद जी ने " वह दुपहरी थी " जैसे भूतकालीन प्रयोग के विषय को रोचक बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है उन्हें रानी कमला को अपने अतीत में पुनः लौटा लाने में पूर्ण सफलता मिली है। द्वितीय उद्धरण में कवि निराला के मन में सरोज की स्मृति जन्य अतीत भावनाएँ उस प्रकार जाग्रत

१- औचित्यान्तरतम्येन समयो रमणीयताम्
 याति यत्र भवत्येषा काल वैचित्र्यवक्रता २।२६ । हिन्दी वक्रोक्तिजीवित

२- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ७२-७३।

३- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० १२२ ।

होती है जो सहृदय के समक्ष सजीव प्रतीत होती हैं। भूतकालीन क्रिया से उद्बुद्ध वर्तमान को सजीव बनानेवाली ये पंक्तियाँ काल वैचित्र्य वक्रता का सुन्दर उदाहरण है।

(२) कारक वक्रता : सामान्य कारक का मुख्य रूप से और मुख्य का सामान्य रूप से कथन कर, तथा कारकों का विपर्यय कर अर्थात् कर्ता को कर्म या करण का रूप और कर्म या करण को कर्ता का रूप देकर प्रतिभावान कवि अपनी उक्ति में एक अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर देता है। यही कारक वैचित्र्य वक्रता है।[1] आलोच्य कवियों के काव्य में वक्रता का यह प्रकार दृष्टव्य है।

छोटी सी कुटिया में रच दूं,
नई व्यथा साथिन को।[2]

यहाँ प्रसाद जी ने चमत्कार की सृष्टि के लिए मुख्य सम्प्रदान अर्थात् चतुर्थी विभक्ति के चिह्न के लिए का लोप कर उसके स्थान पर अन्य कर्मकारक अर्थात द्वितीया विभक्ति के चिह्न 'को' का प्रयोग किया है। जिससे यह कारक वक्रता का वैचित्र्य पूर्ण प्रयोग कहा जा सकता है।

(३) संख्या वक्रता : काव्य में वैचित्र्य की उत्पत्ति के हेतु जब कविजन संख्या अर्थात् वचन का विपर्यय करते हैं तब संख्या वक्रता की सृष्टि होती है।[3] वस्तु तत्व को कलात्मक रूप प्रदान करने के हेतु प्रसाद और निराला ने भी संख्या वक्रता का कुशल विधान किया है, यथा -

---

१- यत्र कारक सामान्यं प्राधान्येन निबध्यते
तत्त्वाध्यारोपणान्मुख्यगुण भावाभिधानतः। २।२७।
परिपोषयितुं काञ्चिद् भंगीभणितिरम्यताम्
कारकाणां विपर्यासः सोक्ता कारक वक्रता। २।२८
हिन्दी वक्रोक्तिजीवित

२- प्रसाद : लहर, पृ० ४४।

३- कुर्वन्ति काव्यवैचित्र्य विवक्षापरतन्त्रिताः।
यत्र संख्याविपर्यासं तां संख्यावक्रता विदुः। २।२९।
हिन्दी वक्रोक्तिजीवित

श्रम-सीकर सदृश नखत से अम्बर पट भींगा होता ।[१]

किसके स्वर से आज मिला दोगी वर्णों का गान ।[२]

प्रथम एवं द्वितीय उद्धरण में नखत तथा वर्णों का गान जैसे एकवचन का प्रयोग कथन में रमणीयता की पुष्टि के लिए किया गया है अन्यथा नक्षत्रों आदि बहुवचन का प्रयोग भी किया जा सकता था ।

(४) पुरुष वक्रता : जहाँ सौन्दर्य की रचना के लिए उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष का विपरीत रूप से प्रयोग किया जाता है वहाँ पुरुष वक्रता होती है ।[३] आलोच्य कवियों के काव्य में ऐसे अनेक उद्धरण मिलते हैं, यथा -

कामायनि ! तू हृदय कड़ा कर धीरे-धीरे सब सह ले ।[४]

जाना तो अर्थागमोपाय पर रहा सदा संकुचित काय ।[५]

प्रथम उद्धरण में श्रद्धा अपने ही लिए अन्य पुरुष का प्रयोग कर रही है जिससे उसके कथन में अपूर्व सौन्दर्य की पुष्टि हुई है । इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में भी पुरुष का विपरीत प्रयोग हुआ है । कवि ने संकुचित काय जैसे अन्य पुरुष का प्रयोग अपने लिए किया है ।

(५) उपग्रह-वक्रता : उपग्रह का अर्थ है धातु-पद । संस्कृत में धातुओं के दो पद होते हैं - परस्मैपद और आत्मने पद । जहाँ काव्य की शोभा के लिए (परस्मैपद और आत्मनेपद) दोनों पदों में से औचित्य के कारण किसी एक का प्रयोग किया जाता है उसी को उपग्रह वक्रता कहते हैं ।[६] कुंतक द्वारा निर्दिष्ट उपग्रह वक्रता की

१- प्रसाद : आँसू, पृ० २३ ।
२- निराला : परिमल (तारों के प्रति) पृ० ७७ ।
३- प्रत्यक्तापर भावश्च विपर्यासेन योज्यते
   यत्र विच्छित्तये सैषा ज्ञेया पुरुषवक्रता । २।३० । - हिंदी वक्रोक्तिजीवित
४- प्रसाद : कामायनी (स्वप्न सर्ग) पृ० १८५ ।
५- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति) पृ० ११८ ।
६- पदयोरुभयोरेक मौचित्याद्विनियुज्यते
   शोभायै यत्र जल्पन्ति तामुपग्रहवक्रताम् । २।३१ । - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित

विशेषताएँ हिन्दी साहित्य में पूर्णत: संभव नहीं हो सकती फिर भी आधुनिक युग में प्रचलित कर्मकर्तृवाच्य के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोगों को उपग्रह वक्रता के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है, यथा -

मैं अभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ ।[1]

हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त [2]

प्रथम उदाहरण में प्रसाद जी ने क्रिया का जो फल दूसरे पर घटित होना चाहिए था उसे श्रद्धा पर ही घटित कर दिया । वह तोलना अन्य पुरुष को चाहती है किन्तु स्वयं तुल जाती है अत: यह कर्म कर्तृ वाच्य का सफल प्रयोग है । इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में उठा हस्त अर्थात् हाथ का स्वयं उठना कर्म का जो रूप कवि ने प्रस्तुत किया है वह उपग्रह वक्रता के ही अन्तर्गत आयेगा ।

(६) प्रत्यय वक्रता : पदपरार्द्ध वक्रता के समस्त प्रकार प्रत्यय वक्रता के चमत्कार के ही अन्तर्गत आते हैं किन्तु कुन्तक ने इसे विलग से पदपरार्द्ध वक्रता का एक भेद मानते हुए बताया कि जहाँ एक प्रत्यय में दूसरा प्रत्यय लगाकर अपूर्व सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है वहाँ प्रत्यय वक्रता होती है । यह प्रत्यय वक्रता तिङ्० आदि प्रत्यय से विहित अन्य प्रत्यय के सौन्दर्य में देखी जा सकती है ।[3] प्रसाद और निराला के काव्य वक्रता के इस प्रकार का कलात्मक रूप दृष्टव्य है -

खिंच गया सहसा
पश्चिम-जलधि कूल का वह सुरम्य चित्र
मेरी इन दुखिया अँखड़ियों के सामने ।[4]

देखो आज राजलक्ष्मी
प्रखर से प्रखरतर- प्रखरतम दीखती ।[5]

१- प्रसाद : कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १६३ ।
२- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५१ ।
३- विहित: प्रत्ययादन्य: प्रत्यय: कमनीयताम्
यत्र कामपि पुष्णाति सान्या प्रत्ययवक्रता । २।२२। - हिंदी वक्रोक्तिजीवित
४- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ७६ ।
५- निराला : परिमल (छत्रपति शिवाजी का पत्र)पृ० २०० ।

प्रथम उद्धरण में आँख में 'इ' प्रत्यय को जोड़कर दुखी आँख की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। द्वितीय उद्धरण में प्रखर में 'तरप्' और 'तमप्' लगाकर प्रखरतर और प्रखरतम शब्दों की रचना की गई है जो भावाभिव्यंजक पदों में अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं।

उपर्युक्त पदवक्रता के दो प्रमुख भेद - प्रकृति अर्थात धातु रूप पूर्वार्द्ध और प्रत्यय रूप परार्द्ध की चर्चा के पश्चात् भी पद के दो अन्य भेदों की विवेचना शेष रह जाती है। संस्कृत व्याकरण में पद के चार रूप माने गए हैं (१) नाम, (२) आख्यात, (३) उपसर्ग और (४) निपात। इनमें से नाम (पूर्वार्द्ध वक्रता) और आख्यात (परार्द्धवक्रता) की चर्चा हो चुकी है उपसर्ग और निपात की जो अव्यय रहित हैं उनकी विवेचना भी अनिवार्य है। अव्युत्पन्न होने के कारण कुंतक ने इन पर अलग से विचार किया है।[१]

<u>उपसर्ग वक्रता</u> : जहाँ उपसर्गों का प्रयोग किसी रमणीय अर्थ के द्योतन में समर्थ होता है वहाँ उपसर्ग वक्रता होती है। इसका मूलाधार उपसर्ग का चमत्कारपूर्ण प्रयोग है। जो प्रसाद और निराला के काव्य में सहज प्राप्य है यथा -

सघन गगन में भीम <u>प्रकंपन</u>,[२]

स्वयं प्रभा <u>समुज्ज्वला</u> स्वतंत्रता पुकारती[३]

दिवस-द्युति छवि <u>निरलस</u> अंधकार[४]

एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो <u>दुराक्रान्त</u>[५]

१- रसादि द्योतनं यस्यामुपसर्ग निपात यो :
वाक्यैक जीवितत्वेन सापरा पदवक्रता २।३३। हिन्दी वक्रोक्तिजीवित

२- प्रसाद : कामायनी (चिन्ता सर्ग) पृ० २१।

३- प्रसाद संगीत(चन्द्रगुप्त) पृ० ११७।

४- निराला : अपरा (स्तुति) पृ० १०७।

५- ,, : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५०।

निपात वक्रता : निपात से अभिप्राय पद के उस रूप से है जो अव्यय रहित अव्युत्पन्न पद होते हैं । काव्य में कुशल कवि उनका कलात्मक प्रयोग रसोत्कर्ष के लिए करता है । निपात अर्थ के द्योतक ही होते हैं वाचक नहीं ।" द्योतका प्रादयो येन निपाताश्चादयो यथा" निपात का यही कुशल उपयोग-निपात वक्रता के नाम से संबोधित किया जाता है ।[1] प्रसाद और निराला के काव्य में निपात वक्रता के उदाहरण दृष्टव्य हैं -

> आह ! सर्ग के अग्रदूत । तुम असफल हुए, विलीन हुए ।[2]
>
> बहुत दिनों पर एक बार तो सुख की बीन बजाऊं ।[3]
>
> जानकी हाय ! उद्धार प्रिया न हो सका[4]
>
> दलित भारत की ही विधवा है ।[5]

इस प्रकार आलोच्य कवियों ने आह, तो, हाय ही आदि निपात बोधक अवयवों का प्रयोग कर काव्य में विलक्षणता की उद्भावना की है।

प्रसाद और निराला के काव्य में पदवक्रता के समस्त भेदों का अन्तर्भाव हुआ है अपनी शिल्प चातुरी से दोनों कवियों ने पद वक्रता का कलात्मक विन्यास किया है ।

(घ) वाक्य वक्रता

वाक्य की वक्रता सामान्यत: पदार्थ अथवा अर्थ की वक्रता है । कुन्तक के अनुसार वस्तु का उत्कर्ष युक्त स्वभाव से सुन्दर रूप में केवल शब्दों द्वारा वर्णन अर्थ अथवा वाच्य की वक्रता कहलाती है ।[6] उन्होंने तृतीयोन्मेष के आरंभ में ही

१- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित : सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० ८३ ।
२- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १५ ।
३- ,, : ,, (कर्म सर्ग) पृ० १२० ।
४- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १६३ ।
५- ,, : परिमल (विधवा) पृ० ११७ ।
६- उदारस्वपरिस्पन्दसुन्दरत्वेन वर्णनम्
वस्तुनो वक्र शब्दैक गोचरत्वेन वक्रता । ३।११। - हिंदी वक्रोक्तिजीवित ।

यह भी बताया कि वाक्य, वाच्य तथा वस्तु की वक्रता सामान्यतः एक ही बात है अतएव वाक्य वक्रता का ही दूसरा नाम वस्तु वक्रता अथवा वाच्य वक्रता है। कुन्तक ने इसके दो प्रमुख विभेदों की चर्चा की है एक, सहजा और दूसरा, आहार्या।[1]

(१) सहजा : इसके अन्तर्गत वस्तु का प्रकृत वर्णन आता है। सहज का अर्थ अर्थ ही है स्वाभाविक क्रम से उत्पन्न वस्तु। जिसे आलंकारिकों ने स्वाभावोक्ति अलंकार भी कहा है किन्तु कुन्तक ने उसे अलंकार्य ही माना है।[2] कुन्तक के अनुसार प्रत्येक वस्तुओं के कुछ स्वाभाविक धर्म या सहजात विशेषताएँ होती हैं जिनका यथावत् उत्कर्षमय स्वाभाविक विधान कर देना ही कवि कर्म है।[3] प्रसाद और निराला के काव्य में वाक्य वक्रता का सहजा रूप भी उपलब्ध है यथा -

> रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुणा-कहानी
> तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी।[4]

यहाँ कवि ने रुदन की जिस स्थिति का वर्णन किया है वह बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है। सिसक-सिसक कर मन की बात कहना और सुननेवाले निष्ठुर प्रेमी का अनसुनापन करना काव्य में उत्कर्ष विधायक प्रतीत होता है वाच्य की यह वक्रता प्रसाद के अतिरिक्त निराला के काव्य में भी प्राप्य है यथा -

> वह आता,
> दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
> पेट- पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
> चल रहा लकुटिया टेक,
> मुट्ठीभर दाने को - भूख मिटाने को
> मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता।[5]

१- सैषा सहजाहार्यभेदभिन्ना वर्णनीयस्य वस्तुनो द्विप्रकारा वक्रता।
वही, तृतीयोन्मेष की कारिका २ की वृत्ति,
२- वही, तृतीयोन्मेष की कारिका १ की वृत्ति।
३- यस्मादत्यन्त रमणीय स्वाभाविक धर्मयुक्त वर्णनीयवस्तु परिग्रहणीयम्,
वही, तृतीयोन्मेष की कारिका १ की वृत्ति।
४- प्रसाद : आँसू, पृ० ११।
५- निराला : परिमल (भिक्षुक) पृ० १२५।

कवि ने अपने उत्कर्षयुक्त कर्म कौशल से भिक्षुक की दयनीय दशा को सहज रूप में व्यक्त किया है। निराला का काव्य ऐसे वर्णनों से भरा पड़ा है। प्रसाद की अपेक्षा निराला उस क्षेत्र में अधिक सफल रहे हैं।

(२) आहार्य : इसका रूप सहजा से भिन्न है कारण, सहजा में प्रकृत तथा स्वाभाविकता की प्रधानता होती है और आहार्य में कवि नैपुण्य तथा अभ्यास। कुंतक के अनुसार कवि अपने कौशल के द्वारा उसमें कुछ अलौकिक शोभातिशय की उद्भावना या आधान कर देता है जिससे उसका सत्ता मात्र से प्रतीत होनेवाला मूलरूप आच्छादित हो जाता है और वह लोकोत्तर सौन्दर्य से संपन्न एक नया ही रूप धारण कर लेता है।[1] आहार्य की चर्चा में कुन्तक ने यह भी स्वीकार किया है कि प्रस्तुत सौन्दर्य रूपिणी होने पर भी यह अर्थालंकार का ही दूसरा नाम है।[2] अतएव यहां पर इसे लेकर प्रसाद और निराला के काव्य का विवेचन करना विषय को पुनः दुहराना है क्योंकि अप्रस्तुत विधान के प्रसंग में अर्थालंकारों की चर्चा कर चुके हैं।

(ड०,च) प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता

इन दोनों में आचार्य कुंतक ने वस्तुत: प्रबंध काव्य के कथानक के स्वरूप तथा विधान की ही चर्चा की है। उन्होंने प्रबंध के एक देश अथवा कथा के एक प्रसंग को प्रकरण कहा है।[3] कुंतक द्वारा उद्घोषित प्रबन्धवक्रता संपूर्ण कलाओं से युक्त प्रबन्ध कौशल का ही दूसरा नाम है। उनके अनुसार जहां इतिहास में अन्य प्रकार से दिखलाए हुए रस की सम्पत्ति की उपेक्षा करके किसी अन्य रस से कथा की समाप्ति की जाए वहां प्रबन्ध वक्रता होती है।[4] कुन्तक ने विस्तार से इसकी विशेषताओं का भी वर्णन किया है।

१- हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० ८७।

२- तदेवमाहार्या येयं सा प्रस्तुतविच्छित्तिविधायकालंकारव्यतिरेकेण नान्या काचिदुपपद्यते। वही, तृतीयोन्मेष कारिका २ की वृत्ति।

३- प्रबन्धस्यैक देशानां ४।५। - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित।

४- इतिवृत्तान्यथावृत्त रस सम्पदुपेक्षया
रसान्तरेण रम्येण यत्र निर्वहणं भवेत।
तस्या एवं कथामूर्तेरामूलोन्मीलितश्रिय:
विनेयानन्द निष्पत्त्यै: सा प्रबन्धस्यवक्रता। ४।१६-१७।- हिंदी वक्रोक्तिजीवित।

कुंतक द्वारा विभाजित वक्रोक्ति के इन अंतिम दो प्रकारों के संदर्भ में प्रसाद और निराला के काव्य का विवेचन करना विषय का पुनरावर्तन मात्र होगा कारण, काव्यरूप के अध्याय में प्रबन्ध-शिल्प के अन्तर्गत इन्हें भी आधार बनाकर इनके काव्य रूपों की विवेचना कर चुके हैं ।

प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध वक्रोक्ति के समस्त प्रभेदों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में कुंतक के वक्रोक्तिवाद का पुन: समर्थन किया गया है । दोनों कवियों ने काव्य में रमणीयता तथा सरसता की पुष्टि के लिए उक्ति वैचित्र्य पर विशेष बल दिया है। प्रसाद ने तो सैद्धांतिक रूप से अपने निबन्ध में "वैदग्ध भंगीभणिति" की महत्ता को स्वीकार किया है । निराला ने प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं किन्तु अप्रत्यक्षत: कथनभंगिमा को स्वीकार किया है । कथन में अर्थ गांभीर्य की पुष्टि तथा प्रभविष्णुता लाने के हेतु आलोच्य कवियों ने वक्रता को अनिवार्य माध्यम माना है । द्विवेदीयुगीन शुष्क तथा गद्यवत नीरस काव्यभाषा में सरसता, रमणीयता लाने के लिए वक्रोक्ति का समर्थन आवश्यक भी था ।

प्रसाद और निराला के काव्य शिल्प का प्रमुख भाग वक्रोक्तिमूलक है । इसके आश्रय से दोनों कवियों ने अपने भावाभिव्यंजना को सजाया , संवारा तथा सुदृढ़ बनाया है । वक्रोक्ति के विधान में दोनों कवि जहां समान दिखाई देते हैं वहीं अपनी वैयक्तिकता तथा कुन्तक के शब्दों में कवि-कर्म के आधार पर एक दूसरे से भिन्न भी हो गए हैं । वर्ण विन्यास वक्रता में यदि निराला सफल हुए हैं तो प्रबन्ध वक्रता में प्रसाद । जहां तक पद पूर्वार्द्ध और परार्द्धवक्रता में सफलता-असफलता का प्रश्न है दोनों कवि समान हैं । वाक्य वक्रता का भी कुशल विन्यास इनके काव्य में हुआ है । काव्य के क्षेत्र में दोनों कवियों ने मिलकर जो नूतन उद्-भावनाएं की हैं उनमें से एक वाक्यगत वक्रताएं भी हैं जो कालकवलित होकर समय के चक्र में दब गयी थी । आलोच्य कवियों ने अपने ढंग से काव्य में उन्हें पुनर्जीवित किया ।

प्रतिभा संपन्न कवि प्रसाद और निराला के काव्य का शिल्प पक्ष विविध उपकरणों के कलात्मक विधान से गुम्फित है जो उनके अथक प्रयास का

परिणाम मात्र कहा जा सकता है । दोनों कवियों ने अपने अभिव्यंजना प्रणाली में भारतीय एवं पाश्चात्य शैल्पिक तत्वों को महत्व देने के साथ ही स्वानुभूत शिल्प उपकरणों को भी प्रस्तुत किया है। काव्यशास्त्र के किसी भी निश्चित नियम में आबद्ध न होने के कारण दोनों कवि अनेक स्थलों पर समानता रखते हुए भी भिन्न प्रतीत होते हैं । काव्य विधान में वैयक्तिकता तथा स्वतंत्रता के पोषक कवि प्रसाद और निराला शिल्प पक्ष के एक ही उपकरण को व्यक्त करने में परस्पर विलग हो गए हैं किन्तु इससे काव्य विधान को हानि नहीं बल्कि लाभ ही हुआ है। विषय को सरस, रमणीय, प्रभावोत्पादक, कलात्मक तथा अर्थव्यंजक बनाने के लिए दोनों कवियों ने जिन अभिव्यंजना तत्वों को ग्रहण कर प्रस्तुत किया उसकी अन्तरात्मा का इन्हें पूर्ण ज्ञान था और इसी से आलोच्य कवियों का काव्य आस्वाद्य सिद्ध हुआ ।

प्रसाद और निराला ने अपनी गहन एवं गंभीर अनुभूतियों को संवेदनीय बनाने के लिए अप्रस्तुतों का भी आश्रय लिया । काव्य में शास्त्रीय अप्रस्तुतों को अपने व्यक्तिगत विशेषताओं से निमज्जित कर प्रस्तुत करने में दोनों कवि सफल रहे । कहीं-कहीं पर इन कवियों ने मूलतः मौलिक अप्रस्तुतों को ही व्यक्त किया है जो इनकी ही नहीं इनके समस्त युग की विशेषता मान्य हुई । प्रसाद और निराला ने अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा अरूप भावनाओं को व्यक्त करने में जिन अप्रस्तुतों की रचना की वह उनके कला प्रवणता के द्योतक हैं । दोनों कवियों ने अलंकारवादी आचार्यों द्वारा उद्घोषित शब्दालंकार तथा अर्थालंकार को अपने काव्य में प्रसंगानुकूल प्रयुक्त किया है किन्तु शब्द एवं वर्ण-मैत्री पर आधृत वह अनुप्रास योजना जो संगीतात्मकता की सृष्टि कर काव्य-विधायक गुण के रूप में प्रतिष्ठित हुई महाकवि निराला के अथक प्रयास का प्रतिफलन है। अर्चनात्मकता का वह पक्ष जहां अमूर्त भावों को व्यक्त किया गया है कवि प्रसाद का योगदान सराहनीय है । अप्रस्तुत विधान में प्रसाद और निराला की समता विषमता को यहां पुनः दुहराना विषय का पुनरावर्तन मात्र होगा ।

भावाभिव्यंजना को प्रस्तुत करनेवाले सूक्ष्म उपकरण 'बिम्ब' के विधान में आलोच्य कवियों को अद्भुत सफलता मिली है । दोनों कवियों की सूक्ष्म कल्पना विधायनी शक्ति ने काव्य में जिस संवेदनीयता तथा प्रभविष्णुता की सृष्टि की है वह उनके युग की प्रमुख विशेषता सिद्ध हुई है । दोनों कवियों के काव्य में स्थूल

बिम्बों की अपेक्षा सूक्ष्मातिसूक्ष्म बिम्बों का विधान अधिक हुआ है। काव्य को चित्रमयता तथा बोधगम्यता प्रदान करने के हेतु शब्दों में नूतन अर्थ प्रदीपण का जो दुस्तर कार्य आलोच्य कवियों द्वारा संपन्न हुआ वह अन्यत्र असंभव था । प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प का महत्व पक्ष बिम्ब प्रधान है, प्रतीक, लक्षणा, व्यंजना अप्रस्तुत विधान आदि उसके उपधर्मी प्रतीत होते हैं । कथन में नव्यता तथा अर्थ गांभीर्य की सृष्टि करने में बिम्ब का जो आश्रय आलोच्य कवियों ने लिया उसे कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में वो पूर्णतः सफल हुए।

प्रसाद और निराला के काव्य-विधान का एक महत्वपूर्ण पक्ष शब्द और अर्थ के वक्र प्रयोग पर निर्भर है । कुंतक के वक्रोक्तिवाद को दोनों कवियों ने अपने काव्य में प्रयुक्त कर उसे पुनः जीवंत रूप प्रदान किया। वर्ण, पद, वाक्य, विषय, प्रकरण व प्रबन्ध के विन्यास में जिस काव्यगत सौन्दर्य तथा चारुत्व की सृष्टि हुई है उसके मूल में वैदग्ध्य भंगी भणिति की चमत्कारी लीला निहित है। शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता से काव्य में इन कवियों ने जिस विच्छित्ति और नूतन कांति का सृजन किया वह उनके काव्य की नहीं उनके समस्त युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि उद्घोषित हुई । वास्तव में नवीन कविता में भावना का प्राधान्य हुआ जो आन्तरिक स्पर्श से पुलकित थी । आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा से बाह्य स्थूल आकार में भी विचित्रता उत्पन्न हो गई और हिंदी में नवीन शब्दों की भंगिमा का प्रयोग होने लगा ।----- शास्त्रीय प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील प्रसाद की शोधप्रिय दृष्टि वक्रोक्तिजीवितम पर भी पड़ी और उन्होंने कुन्तक का प्रमाण देकर छायावाद की आप्तता सिद्ध की ।[१] इस प्रकार प्रसाद ने वक्रोक्ति को युग विशेष की महत्वपूर्ण आवश्यकता बताई। किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में प्रसाद ने उसे साध्य न मानकर साधन ही माना है। आलोच्य कवि निराला ने भी इसे साधन रूप में ही स्वीकारा है । फिर भी काव्य के अलंकरण तथा सज्जा में वक्रोक्ति को प्रमुख स्थान दिया है ।

१- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित : सं० डा० नगेन्द्र (भूमिका) पृ० २७३ ।

प्रसाद और निराला ने अपनी अप्रतिम काव्य प्रतिभा से अभिव्यंजना के इन समस्त नूतन प्रतिमानों में अद्भुत कौशल दिखाया है। काव्य के कलात्मक पक्ष में सौन्दर्य की सृष्टि के साथ ही दोनों कवियों ने अर्थ क्षमता की परिधि को भी विस्तार प्रदान किया है। काव्य विन्यास में भावों को गोचर और सजीव रूप प्रदान करने में प्रयत्नशील कवि प्रसाद और निराला ने अभिव्यंजना की नूतनता तथा अर्थव्यंजकता को विशेष महत्व दिया।

अध्याय - ७ : छन्द

(क) स्वरूप एवं प्रकृति

(ख) प्रसाद और निराला का छन्द-विधान

छन्द

<u>स्वरूप एवं परिभाषा</u> : व्याश्रित छन्द-बद्ध भाषा के प्रतिफलस्वरूप ही कवि के मनोमस्तिष्क से नि:सृत भाव एवं विचार अभिव्यक्त होकर काव्य की साकार स्थिति को प्राप्त होते हैं। छन्द काव्य-शिल्प का वह अनिवार्य उपकरण है जो कवि के भावों तथा विचारों को लयबद्ध कर प्रभविष्णु, अन्वित, रसस्निग्ध, संवेदनीय तथा प्रेषणीय बनाने के महत् उपक्रम में सहायक होता है। अतएव कुशल काव्य-शिल्पी अपने सम्पूर्ण कृति में प्राण प्रतिष्ठा एवं काव्यगत वैशिष्ट्य की रक्षा के हेतु अभिव्यंजना के विविध प्रसाधनों में से छन्द का भी आश्रय लेता है जो काव्य के रूप-विन्यास, रस सिक्तता तथा सौन्दर्यबोध के लिए परमावश्यक है।

आरंभ में छन्द का अर्थ महर्षि पाणिनि ने आह्लादन लगाया और छन्द शब्द की व्युत्पत्ति 'चदि' धातु से माना।[1] किन्तु यास्क ने निरुक्त में छन्द का अर्थ आच्छादन लगाया[2] और उसको लय का आच्छादन मात्र घोषित किया। यहाँ पर छन्द के अर्थ मूलक उक्त दोनों मत मिलकर उसे जीवंतता प्रदान करते हैं। प्रथम अर्थ उसके अन्तर (आत्मा) और द्वितीय अर्थ बाह्य (रूप) को पुष्ट करता है।

श्री मस्त्यकालाचार्य के अनुसार छन्द अक्षर संख्या का परिमाण है।[3]

आचार्य भरत ने छन्द को नानार्थ संयुक्त, चारपद और वर्णों से विभूषित वृत्त कहा है[4] और आगे उसी शास्त्र में अन्यत्र उन्होंने छन्द को

१- चदि आह्लादने दीप्तौ च।
पाणिनीय धातुपाठ, भ्वादिगण।

२- मन्त्रा: मननात् छन्दांसि छादनात्।
यास्क कृत निरुक्त, दैवतकांड ७।१२ ।

३- छन्द: शब्देनाक्षरसंख्यावच्छेदकमभिधीयते,
पिंगल छन्द: सूत्रम्, अ० २, कारिका १, हलायुधटीका।

४- एवं नानार्थसंयुक्तै: पदैर्वर्णविभूषितै:
चतुर्भिस्तु भवेद्युक्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत्।
आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र १४।४२

नियत अक्षर, यति और ताल के अवरोह से युक्त पद कहा है।[1] अत: भरत के दोनों मतों को क्रमानुसार रखकर यह कहा जा सकता है कि नाना अर्थ से युक्त चार पद और वर्णों से विभूषित वृत्त को जो नियत अक्षर, यति और ताल के अवरोध में बंधकर नि:सृत हो, वही छन्द है। तब छन्द विषयक यह अवधारणा अपने में पूर्ण कही जायगी।

आचार्य विश्वनाथ ने "छन्दोबद्ध पदं पद्यं" कहा है। अतएव इन्होंने छन्दोबद्ध (छन्द के समस्त लक्षणों से युक्त) पद को पद्य कहा है।[2]

छंद: प्रभाकर में छंद की जो परिभाषा मिलती है वह अपने में पूर्ण तथा छन्द के समस्त लक्षणों से युक्त है। भानु के अनुसार "जिस पद रचना में मात्रा, वर्ण, यति-गति नियमानुसार हो और अन्त में अन्त्यानुप्रास नियोजन हो वही छन्द है।[3] भानु की यह परिभाषा मुक्त और अतुकांत छन्दों को छोड़कर अन्य निश्चित नियमों में आबद्ध छन्दों की दृष्टि से वैज्ञानिक तथा पूर्ण है।

इस प्रकार साहित्य में छन्द केवल लय का आच्छादन मात्र बनकर प्रविष्ट हुआ किन्तु धीरे-धीरे लय का निर्मम बंधक बन बैठा। जहाँ पाणिनि और यास्क की छन्द विषयक मान्यताएं उसकी उन्मुक्तता का द्योतन करती हैं वहीं भानु की परिभाषा उसके नियम बद्धता की सूचक है।

अंग्रेजी-भाषा में छन्द के लिए मीटर (Metre) शब्द प्रयुक्त होता है जो लैटिन के Mete धातु से बना है। यह Mete to Measure है जिसका अर्थ शब्दों के माप या पैमाने से लिया जाता है। इसी भाँति पंक्ति या पाद के लिए अंग्रेजी में वर्स (Versus) जैसा ग्रीक शब्द प्रचलित है जो लयात्मक वर्णों से युक्त

१- नियताक्षरसम्बन्धं छन्दोयतिसमन्वितम्
निबद्धन्तु पदं ज्ञेयं सतालपतनात्मकम्। वही ३२। २९

२- साहित्यदर्पण, ६। ३१४

३- मत्त वरण यति गति नियम अन्तहिं समता बन्द।
जा पद रचना में मिलै भानु भनत सोई छन्द।
जगन्नाथ प्रसाद भानु, छन्द प्रभाकर, पृ० १।

यति-गति में बंटे होने का द्योतक है।[1] अतएव अंग्रेजी में भी यति गति में विभक्त लयात्मक पंक्तियों को छन्द कहा गया है। वहां पर भी स्वराघात के द्वारा ध्वनि और गति की व्यवस्था को छन्द का आधार माना गया। यह स्वराघात कालावधि तथा लय निपात के रूप में हो सकता है।[2] अरस्तू ने छन्द को लय का रूपविधायक अनिवार्य अंग माना है।[3] एबरक्राम्बी ने भी पंक्तियों की निश्चित लयात्मक आवृत्ति को छन्द कहा है।[4] अत: लय और छन्द अभिन्न हैं। यह लय ही शब्दों के निश्चित क्रम में आबद्ध होकर छन्द का रूप ग्रहण करती है और इस प्रकार लय-अमूर्त होते हुए भी इन्द्रिय संवेद्य है। इस लय का छन्द विधान में महत्वपूर्ण योग है। वास्तव में छन्द ही वह कला है जो कविता की भाषा को गद्य की भाषा से विलग करती है। लीहंट ने कविता के लिए छन्द की अनिवार्यता को सिद्ध करते हुए बताया है कि कविता के लिए छन्द इसलिए अनिवार्य है कि काव्यात्मा की पूर्णता इसकी मांग करती है, उसकी स्फूर्ति, सौन्दर्य और शक्ति का वृत्त छन्द के अभाव में पूर्ण नहीं होता।[5]

निष्कर्षत: पाश्चात्य साहित्य में लय एवं राग को छन्द का प्राण माना गया है और गद्य तथा पद्य की भाषा के मध्य छन्द को एक विभाजक रेखा उद्घोषित किया गया है। पाश्चात्य साहित्यिकों ने कविता और छन्द को परस्पर सहयोगी तथा अविच्छिन्न मानते हुए कविता के लिए छन्द को अनिवार्य बताया है।

हिन्दी में आधुनिक युग के पदार्पण से जहां साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन हुए वहीं कविता को रूपाकार प्रदान करनेवाले प्रमुख तत्व-छन्द में भी

१- इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, भाग २३, पृ० ८६।

२- चेम्बर्स इनसाइक्लोपीडिया, भाग ११, पृ० ६७८।

3- ......meters, clearly, are constituent part of rhythms.
Aristotle's Poetics, Introduction and translation by T.A.Moxom. p. 21.

4- Metre is the modulated repetition of a rhythmical pattern.
Principles of English prosody.By.Lascells Abercrombie.p.42.

5- ...... and the reason why verse is necessary to the form of poetry is that the perfection of the poetical spirit demands it - that the circle of its enthusiasm , beauty and power is incomplete without it.
Leigh Hunt, 'Imagination and Fancy' Quoted in An Introduction to the study of Literature by W.H.Hudson,p.68.

मनोवांछित परिवर्तन हुए । इस युग में छन्द के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विवेचन में दार्शनिकता का स्थान भावात्मकता ने ले लिया और छन्द की परिकल्पना उसके सजीव रूप में की जाने लगी, अब यह निश्चित हो गया कि छन्द के स्पर्शमात्र से कविता प्रवाहमान तथा जीवंत हो उठती है। वास्तव में छन्द कविता की आत्मा है। बिना छन्द के कविता का रूप निर्माण हो सकना असंभव है । कविता में उत्पन्न उन्मुक्तता अथवा आंदोलन को व्यवस्थित करना छन्द का कार्य है । छन्द कविता का वह अनिवार्य तत्व है जो उसे संतुलित रूपाकार प्रदान करने में सहायक होता है । "जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते - जिनके बिना वह अपनी ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है - उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल , सजल , कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं । वाणी की अनियमित सांसें नियंत्रित हो जातीं, तालयुक्त हो जातीं, उसके स्वर में प्राणायाम, रोवों में स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध झंकारें एक वृत्त में बंध जातीं, उनमें पूर्णता आ जाती है । छन्दबद्ध शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती, लौहचूर्ण की तरह , अपने चारों ओर एक आकर्षण क्षेत्र (Magnetic Field) तैयार कर लेते, उनमें एक प्रकार का सामंजस्य , एक रूप, एक विन्यास आ जाता, उनमें राग की विद्युत धारा बहने लगती, उनके स्पर्श में एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है ।"[1]

आधुनिक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छन्द को साधन और अभिव्यंजना का उपकरण मानते हुए बताया कि "छन्द भावों का वाहन है"[2] जो एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तों में अनायास संचरित करने वाला महान साधन है ।"[3] द्विवेदी जी ने काव्य को रूपायित करनेवाले इस महत् उपकरण की उत्पत्ति अर्थमयी भाषा और संगीत के सम्मिलन से माना है ।[4] इस प्रकार उन्होंने छन्द के समग्र पक्ष को ध्यान में रखते हुए उसकी उत्पत्ति, महत्ता और कार्य की महत्वपूर्ण विवेचना की है ।

कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है ।[5] इस प्रकार छन्द और काव्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है । रागातिरेक की अवस्था

१- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव (प्रवेश) पृ० २१ ।
२- हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का मर्म , पृ० ४१ ।
३- वही, पृ० ४६ । (४) वही, पृ० ४१ ।
५- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव (प्रवेश) पृ० २१ ।

में कवि की मन:स्थिति से नि:सृत व्यवस्थित अथवा अव्यवस्थित भावखण्ड को लयात्मक भाषा में संतुलित कर गतिमय एवं स्फूर्तिदायक बनाने की प्रक्रिया ही छंद है। छंद और कविता के सम्बन्ध की उपेक्षा करनेवाले विचारों को पाश्चात्य विचारक लीहंट ने गद्यात्मक त्रुटि (Prosaical mistake) कहा है।[1] अतएव छन्द वह महत्वपूर्ण उपकरण है जिसके अभाव में काव्य का अस्तित्व संभव नहीं । यह निश्चित है कि कविता छन्दविहीन नहीं होती। जहाँ तक मुक्त छन्द में रचित पद्यात्मक साहित्य की बात है वह भी छन्दविहीन नहीं होता। क्योंकि मुक्तछन्द से आशय छन्द से मुक्ति न होकर छन्द के शास्त्रीय नियमों से मुक्त होना है। छन्द ही लयावेष्ठित भाषा को सरस तथा प्रभावोत्पादक बनाकर उसे काव्य-गरिमा से मण्डित करता है। वास्तव में,छंदोबद्ध कविता कवि के तीव्र अनुभूति, भावावेग, हृदय तारल्य, तथा संवेदना तथा शब्दाश्रित लयान्विति के समन्वित प्रभाव का प्रतिफलन मात्र है।

हिन्दी के आधुनिक युग में पूर्व प्रचलित छन्दों के प्रयोग के साथ ही नूतन छन्दों का भी आविर्भाव साहित्य में हुआ। इस युग के कवियों ने अपनी स्वेच्छा से परम्परित छन्दों की यति-गति ,विराम और अन्त्यक्रम के लिए निर्दिष्ट गुरु-लघु-नियम में कुछ परिवर्तन कर उनका नव रूपान्तरण भी किया। कहीं कहीं पर दो प्रचलित शास्त्रीय छन्दों का मिश्रित प्रयोग भी मिलता है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य तथा बंगला काव्य-साहित्य में प्रचलित छन्दों से प्रभावित होकर हिन्दी में अतुकान्त तथा मुक्त छन्दों की उद्भावना भी हुई जो साहित्य में अभिनव प्रयोग की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

प्रसाद और निराला का छन्द-विधान :

काव्य-शिल्प के विशिष्ट अवयव- छंद के क्षेत्र में प्रसाद और निराला की उपलब्धि अद्भुत काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। उन कवियों की छंद-योजना व्यापक तथा समृद्ध है। कथ्य को रमणीय ढंग से प्रस्तुत करने में आलोच्य कवियों

---

1. Leigh Hunt , Imagination and Fancy Quoted in An Introduction to the study of Literature by W.H.Hudson, p. 68.

ने पारम्परिक छन्दों के अतिरिक्त अतुकांत तथा मुक्त छन्द का प्रयोग भी किया है । महाकवि निराला के उन्मुक्त एवं स्वच्छंद व्यक्तित्व के लिए यह कदापि संभव न था कि वो रूढ़िग्रस्त छन्द-विधान को लेकर काव्य संरचना में प्रवृत्त होते । उन्होंने अभिव्यंजना के अन्य उपकरणों की भांति इस विशिष्ट तत्व में भी अभिनव प्रयोग कर दिखाया । यही कारण है कि प्रसाद और निराला की छन्दयोजना में पर्याप्त विषमता परिलक्षित होती है । प्रसाद का काव्य जहाँ शास्त्रीय छन्द पर आधृत तथा अतुकान्त छन्द के प्रयोग से युक्त है वहीं निराला का काव्य अतुकान्त तथा मुक्त छन्दों का पूर्णत: समर्थक है, समर्थक ही नहीं अपितु मुक्त छन्द का प्रवर्तक है । सर्वप्रथम निराला ने ही काव्य-साहित्य में मुक्त छन्द को प्रस्तुत किया है । इस आधार पर प्रसाद और निराला के काव्य में प्रयुक्त छन्दों को विवेचन की सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्गों के मध्य विभाजित करना अधिक समीचीन होगा ।

१- शास्त्रीय छन्द-विधान

२- नूतन छन्द-विधान

(१) शास्त्रीय छन्द-विधान

प्रसाद और निराला के काव्य में पिंगलशास्त्रीय नियमों का यथावत निर्वाह हुआ है, यह कहना कठिन है क्योंकि शास्त्रीय छन्दों के प्रयोग में भी इन कवियों ने गुरु लघु तथा यति-गति आदि छान्दसिक नियमों के प्रति अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया है । यही कारण है कि शास्त्रीय छन्दों के प्रयोग में ये कवि बहुत सफल नहीं हुए ।

(क) वर्णिक छन्द

आलोच्य कवियों के काव्य में वर्णिक छन्दों का अल्प संख्यक प्रयोग हुआ है । दोनों कवियों में से प्रसाद, शास्त्रीय छन्दों की ओर अधिक झुके । जिससे उनके काव्य में वर्णिक छन्दों के कुछ रूप यदा-कदा उपलब्ध हो जाते हैं । कवित्त छन्द का सुनियोजित रूप उनके काव्य में द्रष्टव्य है -

कवित्त -   फेरि हँस जात ही कहाँ को प्रिय नैन हूते
चितै चैन देहु लेहु सुधि आली तो ।
अमल कमल दिय प्रेम बिन्दु सींचित है
आसन सु बैठि कै प्रसाद सरसाली तो । [1]

--- --- ---

जीवन जगत के, विकास विश्ववेद के हो,
परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्ण काम हो ।
विधि के विरोध हो, निषेध की अवस्था तुम
भेद भय रहित, अभेद, अभिराम हो । [2]

प्रसाद जी ने ३१ वर्णों से युक्त कवित्त घनाक्षरी छन्द का प्रयोग ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के काव्य साहित्य में मधुरता, कोमलता तथा स्निग्धता को समाविष्ट करने के हेतु किया है । इन छन्दों के विधान में कवि ने अन्त्यानुप्रास का निर्वाह भी किया है ।

सवैया -   गई लाज सरूप सुधा चखिकै, पलकी न लगी कुटिलाई गई
गई खोजत ठौर ही ठौर, तुम्हें, अखियाँ अब तो हरजाई भई । [3]

गति- यति और गुरु- लघु के नियम में आबद्ध दुर्मिल सवैया का उपर्युक्त प्रयोग प्रसाद जी के शास्त्रानुमोदन का प्रत्यक्ष प्रमाण है । यह छन्द आठ सगण (IIS) से रचित है और इसमें रेखांकित अक्षर लघु ही हैं । २४ अक्षरों से युक्त यह छन्द प्रसाद को पूर्ववर्ती कवियों की श्रेणी में खींच लाता है ।

कवित्त और सवैया के अतिरिक्त कुछ अन्य वर्णिक छन्दों का भी प्रयोग प्रसाद जी ने किया है । यथा -

---

१- प्रसाद : चित्राधार (मकरन्द बिन्दु) पृ० १७४ ।

२- ,, : झरना (तुम) पृ० ६३ ।

३- ,, : चित्राधार, पृ० १८३ ।

मालिनी - यह सब फिर क्या है, ध्यान से देखिये तो
यह विरह पुराना हो रहा जाँचिये तो
हम अलग हुए हैं पूर्ण से व्यक्त होके
वह स्मृति जाती है प्रेम की नींद खोके।[1]

नगण, नगण, मगण, यगण, यगण (III III SSS ISS ISS) से निर्मित इस मालिनी छन्द की रचना में प्रसाद जी ने सातवें और आठवें वर्ण पर यति व्यवस्था का विधान भी किया है।

द्रुतविलम्बित - यदि कहो घन पावस-काल का
प्रलय में वही क्षण काल का
यह नहीं मिलना कहला सके
मिलन तो मन का मन से सही।[2]

नगण, भगण, भगण तथा अन्तिम रगण (III SII SII SIS) से युक्त प्रसाद रचित यह छन्द द्रुतविलम्बित का सफल उदाहरण है।

वसन्ततिलका - दैसे तिन्हें पतित लोग सबै सराहीं
प्राची दिशा शशि मिले सौती सराही।

तगण, भगण, जगण, जगण और अन्तिम दो गुरु (SSI SII ISIS ISISS) के योग से निर्मित १४ वर्णोंवाले इस छन्द का प्रयोग भी प्रसाद जी ने किया है। शास्त्रीय छन्दों के विधान में प्रसाद जी ने निराला की अपेक्षा अधिक रुचि दिखाई है।

शास्त्रीय वर्णिक छन्दों का प्रयोग आलोच्य कवियों के काव्य में न्यूनाधिक रूप में ही हुआ है। कारण " हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है। वर्णवृत्तों की नहरों में उसकी धारा

१- प्रसाद : काननकुसुम (विरह) पृ० ६६।
२- ,, : ,, (गंगा सागर) पृ० ७५।
३- ,, : चित्राधार (सज्जन), पृ० २०१।

अपना चंचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता कल-कल, छल-छल तथा अपनी क्रीड़ा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ खो, खो बैठती है।"[1] अतः हिन्दी और संस्कृत की विपरीत प्रवृत्ति के कारण ही प्रसाद और निराला ने वर्णवृत्तों का प्रयोग अधिकता से नहीं किया। दूसरे ये कवि वर्णिक छन्दों से युक्त द्विवेदीयुगीन रचनाओं की असफलता को देखकर सचेत भी हो गए थे। अतएव इनकी प्रारंभिक रचनाओं में ही यदा-कदा वर्णिक छन्दों का प्रयोग मिल जाता है अन्यथा बाद की रचनाओं में भावानुकूल धारा प्रवाही मात्रिक छन्दों को ही अपनाया गया है। अप्रतिम काव्य प्रतिभा से संपन्न इन कवियों के काव्य में वर्ण वृत्तों की प्राप्ति कर सकना असंभव तो नहीं किन्तु दुस्तर अवश्य है। ऐसे प्रयोग विरल ही मिलते हैं।

(ख) मात्रिक छन्द

प्रसाद और निराला की काव्य-भाषा मात्रिक छन्दों को आत्मसात् करने में अधिक सफल हुई। फिर भी, इन कवियों ने मात्रिक छन्दों को यथावत् रूप में न ग्रहण कर अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के अनुकूल उसके यति-गति, गुरु लघु आदि नियमों में परिवर्तन कर प्रस्तुत करना अधिक उपयुक्त समझा।

(१) सममात्रिक छन्द

ताटंक, यह १६ और १४ पर यति विधान से युक्त ३० मात्राओं का सममात्रिक छन्द है। इसके अन्त में तीन गुरु अर्थात् मगण का होना आवश्यक है। ताटंक छन्द में कुछ मात्रा या अन्त्यक्रम में परिवर्तन आने से उसके विविध रूप हो जाते हैं।

यह विडम्बना ! अरी सरलते / तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं।
भूलें अपनी या प्रवंचना / औरों की दिखलाऊँ मैं।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ / मधुर चाँदनी रातों की
अरे खिलखिलाकर हँसते / होने वाली उन बातों की।[2]

इसके चरणान्त में तीन गुरु का विधान हुआ है जो शास्त्रानुमोदित है। इन पंक्तियों के प्रथम चरण में १४ मात्राओं के बाद यति होने से इसे

१- सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव की भूमिका, पृ० २६।
२- प्रसाद : लहर, पृ० ५।

रुचिरा छन्द भी कहा जा सकता है । इसी प्रकार यदि ताटंक के चारों चरणान्तों में दो गुरु आएँ तो कुकुभ छन्द हो जाता है, यथा -

तब भी कहते हो- कह डालूँ | दुर्बलता अपनी बीती
तुम सुनकर सुख पाओगे, दे|खोगे यह गागर रीती
किन्तु कहीं ऐसा न हो कि तुम | ही खाली करने वाले
अपने को समझो मेरा रस | ले अपनी भरने वाले ।[1]

छन्दशास्त्रियों ने ताटंक छन्द के अन्त में एक लघु मात्रा के बढ़ जाने पर उसे वीर छन्द मान लिया है । ताटंक और वीर छन्द का ऐसा प्रयोग भी प्रसाद जी के काव्य में मिलता है यथा -

मधुप गुनगुना कर कह जाता | कौन कहानी यह अपनी, १६-१४ = ३०
मुरझा कर गिर रही पत्तियाँ | देखो कितनी आज घनी । १६-१४ = [illegible]
इस गम्भीर अनन्त नीलिमा | में असंख्य जीवन इतिहास । १६-१५ = ३१
यह लो, करते ही रहते हैं | अपना व्यंग्य-मलिन उपहास ।[2] १६-१५ = ३१

ताटंक एवं वीर छन्द के मिले जुले प्रयोग के विषय में डा० पुत्तूलाल का मत है कि "आजकल ताटंक छन्द के साथ ही वीर छन्द का भी प्रयोग होता है चूंकि ताटंक के अन्त में लघु बढ़ा देने से वीर छन्द बन जाता है, इसलिए दोनों की लय में कोई भेद नहीं उपस्थित होता, केवल निपात में थोड़ा अन्तर हो जाता है । यद्यपि लक्षण के हिसाब से ऐसे चरण वीर छन्द ही माने जाएंगे, पर प्रयोग में उन्हें ताटंक का अपवाद ही मानना चाहिए, क्योंकि बहुत से ताटंक चरणों के बीच में ऐसे प्रयोग आते हैं ।"[3] इस प्रकार का छान्दसिक प्रयोग प्रसाद के काव्यों में अधिकता से मिलता है । कामायनी के प्रथम सर्ग में वीर तथा ताटंक छन्द का सुनियोजित रूप मिलता है । इसके अतिरिक्त आशा, स्वप्न तथा निर्वेद सर्ग की रचना भी ताटंक छन्द में हुई है । प्रसाद जी को यह छन्द अत्यधिक प्रिय था ।

१- प्रसाद : लहर, पृ० ५ ।
२- वही, पृ० ५ ।
३- डा० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० ३०४ ।

लावनी में इस छन्द का विशेष प्रयोग हुआ है[1] जिसका सफल उदाहरण निराला के काव्य में द्रष्टव्य है -

जलद नहीं जीवनद जिलाया जबकि जातजीवन्मृत को
तपन ताप-संतप्त तृष्णातुर तरुण तमाल तटाश्रित को
घन-पीयूष-पूर्ण पानी से भरा प्रीति का प्याला है
नव वन, नव जन, नव तन, नव मन, नव धन। न्याय निराला है।[2]

१६ और १४ मात्रा पर यति-विधान होने से इसको लावनी लयाधार पर निर्मित ताटंक छन्द का सुन्दर उदाहरण कहा जाएगा। इस प्रकार ताटंक छन्द के विविध रूप प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध होते हैं।

हरिगीतिका : २८ मात्राओं के इस छन्द में १६-१२ पर यति विधान होता है। इसका चरणांत लघु और गुरु से होता है। इसकी पांचवी, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्रा सदैव लघु होती है।

दुख के सभी साथी दिखाते हैं कहीं संसार में
हो डूबता उसको बचाने कौन जाता धार में।[3]

इस छन्द में कवि ने हरिगीतिका के समस्त नियमों का पालन करते हुए भी यति-व्यवस्था में स्वतंत्रता बरती है।

सार : २८ मात्राओं का यह छन्द १६-१२ की यति-व्यवस्था से निर्मित होता है इसके चरणांत में दो गुरु होना आवश्यक है। किंतु लय प्रवाह एवं माधुर्य की पुष्टि हेतु कहीं-कहीं दो लघु एक गुरु (IIS) या एक गुरु दो लघु (SII) भी मिल जाता है।

कर्मयज्ञ से जीवन के
सपनों का स्वर्ग मिलेगा
इसी विपिन में मानस की
आशा का कुसुम खिलेगा।[4]

१- डा० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० ३०३।
२- निराला : परिमल (जलद के प्रति) पृ० ७८।
३- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० २८।
४- ,, : कामायनी, पृ० १२१।

यहाँ पर कवि ने दो गुरु से अन्त्यक्रम का निर्वाह तो किया है पर १६ मात्रा के स्थान पर, १३ मात्रा पर यति-विधान कर अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय भी दिया है। जो तद्युगीन छन्द योजना की प्रमुख विशेषता है।

गीतिका : इसमें २६ मात्राएं होती हैं। १४-१२ पर यतिक्रम तथा लघु और गुरु से चरणांत की निर्मिति ही इस छन्द की विशेषता है।

शैल क्रीड़ा से बनाया/है मनोहर काम ने
सुधा कण से सिक्त गिरि/श्रेणी खड़ी है सामने
प्रकृति का मन मुग्धकारी / गूँजता सा गान है
शैल भी सिर को उठाकर / खड़ा हरिण समान है।[१]

इसकी पहली, तीसरी तथा चौथी पंक्ति के यति तथा चरणांत में कवि ने शास्त्रानुमोदन किया है किन्तु दूसरी पंक्ति के यति क्रम में मात्राओं को स्थानान्तरित (१२ मात्रा पर ही यति व्यवस्था) कर दिया है फिर भी इसका चरणांत लघु और गुरु से ही हुआ है।

रोला : इसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएं होती हैं ११-१३ पर यति-व्यवस्था होती है। चरणांत में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है, हाँ यदि अन्त में दो गुरु हों तो अति उत्तम माना जाता है। रोला छन्द का शास्त्र सम्मत प्रयोग प्रसाद की ब्रजभाषा की रचनाओं में मिलता है यथा -

बिनवों तुम सों नेकु / कृपा करिकै सुनि लीजै।
समुझि सिखावन भलो / चित्त में ठाँव सु दीजै।।
चंचलता तजि देहु / कछू अपनी विचारि कै।
मंजु मंजरी पाई / भार पीजै सम्भारि कै।।[२]

इस छन्द का प्रयोग कवि ने खड़ीबोली की रचनाओं में भी किया है। काननकुसुम के अतिरिक्त कामायनी के संघर्ष सर्ग की रचना भी उसी छन्द में हुई है।

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० ४२।
२- ,, : चित्राधार, पृ० १५८।

तुम्हें तृप्तिकर सुख के साधन सकल बताये,
मैंने ही श्रम भाग किया फिर वर्ग बनाये;
अत्याचार प्रकृति कृत हम सब जो सहते हैं,
करते कुछ प्रतिकार न अब हम चुप रहते हैं।[१]

संघर्ष सर्ग के कुछ छन्दों के चारों चरणों में ११ वीं मात्रा लघु भी मिलती है जो डा० पुत्तूलाल के अनुसार 'काव्य' छन्द है[२] किन्तु कुछ विद्वान इन दोनों को पृथक न मानकर एक ही छन्द मानते हैं। उनके अनुसार इस परिवर्तन के साथ ही छायावादी कवियों ने रोला छन्द को पुनर्जीवित किया है।[३]

प्रसाद के अतिरिक्त निराला ने भी अपनी रचनाओं में रोला छन्द को प्रयुक्त किया है। यह छन्द आलोच्य कवियों का प्रिय छन्द रहा है। निराला ने आचार्य शुक्ल के प्रति, प्रसाद जी के प्रति, भगवान बुद्ध के प्रति, विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति आदि रचनाओं को इसी छन्द में संग्रथित किया है।

हिन्दी के जीवन हे, दूर गगन के दुस्तर
ज्योतिर्मय तारा- से उतरे तुम पृथ्वी पर,
अन्धकार कारा यह बन्दी हुए मुक्ति घन
भरने को प्रकाश करने को जनमन चेतन ?[४]

निराला के काव्य में रोला का असीम रूप भी द्रष्टव्य है -

अमरण रणमय मृदु पदरव
विद्युत घन चुम्बन
निर्विरोध प्रतिहत भी
अप्रतिहत आलिंगन ।[५]

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० २०७ ।
२- डा० पुत्तूलाल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० २८७ ।
३- डा० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० १२० ।
४- निराला : अणिमा, पृ० ९८ ।
५- ,, : परिमल, पृ० ७१ ।

रूपमाला : २४ मात्राओं से युक्त इस छन्द में १४-१० पर यति-व्यवस्था होती है। छन्द के चरणांत में गुरु और लघु (SI) का होना अनिवार्य होता है। इसकी तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होती है। रूपमाला और रोला में मात्रा की समानता से भ्रम होने की आशंका रहती है फिर भी इसकी लय एवं गति रोला छन्द से भिन्न है। प्रसाद जी ने कामायनी महाकाव्य के वासना सर्ग की रचना इसी छन्द में की है, यथा -

गिर रहा निस्तेज गोलक | जलधि में असहाय ;
घन पटल में डूबता था | किरण का समुदाय ।
कर्म का अवसाद दिन से | कर रहा छल छंद ;
मधुकरी का सुरस संचय | हो चला अब बंद ।[1]

यहां पर तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्राएं शास्त्रानुसार लघु हैं। १४ मात्रा पर यति- व्यवस्था है। और चरणांत भी गुरु लघु (SI) से हुआ है। इसमें अन्त्यानुप्रास का युग्मक रूप दृष्टव्य है।

कुण्डल : १२-१० मात्राओं के बाद यति और दो गुरु (SS) से चरणांत होनेवाला यह छन्द २२ मात्राओं का होता है। इस छन्द-विधान की विशेषता षाष्ठक की तीन आवृत्तियों और एक चतुष्कल के योग निर्मित होना है। निराला जी ने इस छन्द का प्रयोग किया है -

जननि, जनक - | जननि- जननि |
जन्म-भूमि | भाषे |
जागो, नव | अम्बर भर |
ज्योति-स्तर | वासे ।[2]

संगीत के अधिक समीप होने के कारण यह छन्द निराला को बहुत प्रिय हुआ। गीतिका और अपरा के अनेक गीतों की रचना इसी छन्द में हुई है।

प्लवंगम : ८वीं और १३वीं मात्रा पर यति-व्यवस्था से युक्त यह छन्द २१ मात्राओं का होता है। इसके अंत में लघु गुरु लघु गुरु (IS IS) का होना

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० ६० ।

२- निराला : गीतिका, गीत सं० ७८ ।

आवश्यक होता है किन्तु आधुनिक युग में चरणान्त की यह मान्यता स्थिर न रह सकी और गुरु गुरु लघु (SSI) का भी प्रयोग होने लगा। इसी की समता पर एक दूसरा चन्द्रायण छन्द भी आता है जो २१ मात्राओं का है किन्तु इसमें ११ मात्राओं पर यति व्यवस्था होती है जो इसे प्लवंगम छन्द से पृथक करने के लिए पर्याप्त है। प्रसाद जी को प्लवंगम छन्द बहुत ही प्रिय था। उन्होंने इस छन्द का अक्रान्त प्रयोग ही किया है किन्तु कहीं-कहीं उसका कुकानुत रूप भी मिल जाता है यथा -

क्लांत हुआ सब अंग शिथिल क्यों वेष है
मुख पर श्रम-सीकर का भी उन्मेष है
भारी बोझा लाद लिया न संभार है
छल छालों से पैर छिले न उबार है।[1]

<u>पीयूषवर्ष</u> : इसमें १९ मात्राएं होती हैं। सप्तकल की दो आवृत्ति के बाद रगण का प्रस्तार जोड़ देने से इस छन्द का एक चरण निर्मित होता है। इसकी तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा लघु होती है। प्रसाद द्वारा रचित पीयूषवर्ष के दुरान्त प्रयोग की ओर इंगित करते हुए डा० पुत्तूलाल ने निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत किया है -

सब रंगों में फिर रही हैं बिजलियाँ
नील नीरद। क्या न बरसाओगे कभी
एक कणिका और मलयानिल बता
मृदु कलिका है खिली जाती अभी।[2]

शृंगार की ललित भावनाओं के अभिव्यक्ति में यह छन्द विशेष सफल रहा है। निराला-काव्य में भी यह छन्द प्रयुक्त हुआ है यथा -

मद-भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं।
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?[3]

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० १२।
२- ,, : [illegible], पृ० १२०।
३- निराला : परिमल (नयन) पृ० ७५।

यहाँ पर तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्राएँ लघु हैं। निराला ने इस छन्द के माध्यम से भावाभिव्यक्ति में विशेष सफलता पाई है।

अणिमा : ६ + ६ + ५ मात्राओं के क्रम से निर्मित यह छन्द १७ मात्राओं का होता है। चरणांत में रगण (S।S) आवश्यक होता है। निराला काव्य में इस छन्द का प्रयोग द्रष्टव्य है -

तार रश्मि । गात छुआ । ले गई,
नींद हुई । छुटी भाव । ना नई,
गई दूर । दृष्टि जो सु । दूरगा,
छिपे वे र । हस्य छिपे । नूतन।[1]

इस प्रकार के अतिरिक्त निराला ने अणिमा[2] तथा बेला[3] में गीतों की रचना भी दो षष्ठक और अन्तिम एक पंचक के क्रम से की है।

बाला : यह छन्द तीन पंचकों (रगणप्रस्तार) और गुरु के योग से निर्मित १७ मात्राओं का होता है। कभी-कभी इसका चरणांत दो लघु से भी होता है। प्रसाद जी ने इस छन्द का प्रयोग किया है, यथा -

जलमयी हो रही यह धरा है   ५+५+५+२ = १७ मा०
कण्ठ फिर भी न होता हरा है   ,,   ,,
(चाह में कह रहा   ५+५   ,,
पी कहाँ ? पी कहाँ ?)   ,,   ,,
प्यास कैसी तुम्हारी ? पपीहा   ५+५+५+२ = १७ मा०
कम न होकर बढ़ी जा रही है ?   ,,   ,,
(लो , वही कह रहा -   ५+५   ,,
पी कहाँ ? पी कहाँ ?)[4]

१- निराला : गीतिका, गीत सं० ६४।
२- ,, : अणिमा, ,, २३।
३- ,, : बेला ,, ४५।
४- प्रसाद : झरना (पी कहाँ) पृ० ५८।

शृंगार : आदि में त्रिकल, मध्य में लयप्रवाह तथा अन्त में गुरु लघु से युक्त यह छन्द १६ मात्राओं का होता है। शृंगारिक भावनाओं के प्रदर्शन में सक्षम इस छन्द को काव्य-शिल्प के कुशल चितेरे कवि प्रसाद ने कामायनी की रचना में बड़ी सहृदयता से ग्रहण किया है यथा -

> मेरा । था मन में नव उत्साह
> सीख । लूं ललित कला का । ज्ञान
> इधर । रह गंधर्वों के । देश
> पिता । की हूं प्यारी संतान [१]

यहाँ पर प्रत्येक चरण का आरंभ यदा त्रिकल और अंत गुरु-लघु के नियम से हुआ है। अन्त्यानुप्रास की योजना दूसरे और चौथे चरण में हुई है जिससे इसको शृंगार छन्द प्रयोग का सफल उदाहरण कहा जा सकता है।

पद्धरि : सममात्रिक लय से प्रारंभ होनेवाला यह छन्द १६ मात्राओं का होता है। आचार्य भानु ने इसके अन्त में जगण (।S।) का होना आवश्यक बताया है। किन्तु शृंगार से पृथक करने के लिए चरणांत की यह व्यवस्था अधिक उचित नहीं कही जा सकती क्योंकि शृंगार के चरणांत में जगण (।S।) का होना वर्जित नहीं माना गया है। अतएव १६ मात्राओं वाले शृंगार और पद्धरि छन्द के आरंभ की व्यवस्था अथवा नियम पर अधिक बल देना चाहिए क्योंकि शृंगार का आरंभ त्रिकल से और पद्धरि का आरंभ सममात्रिक लयाधार से होता है, जो दोनों के मध्य विभाजक रेखा खींचने के लिए पर्याप्त है। प्रसाद के काव्य में पद्धरि छन्द का प्रयोग -

> कोमल कुसुमों की मधुर रात
> शशि- शतदल का वह सुख विकास
> जिसमें निर्मल हो रहा हास
> उसकी सांसों का मलय वात। [२]

यहाँ पर पद्धरि छन्द की विशेषता - लयाधार का पूर्णतः पालन हुआ है। चरणांत भी गुरु लघु से हुआ है। इसी छन्द में निराला की यह रचना

१- प्रसाद : कामायनी, पृ० ५६।
२- ,, : लहर , पृ० २३ ।

द्रष्टव्य है -

> सिकता सिक्त कण से दल धन पात
> शीत में बह रहा अशांत
> कल्पनी सुमन सुरभि- भर प्रांत
> बढ़ाया था जिसका सम्मान ।[1]

इनकी समस्त पंक्तियाँ असमासिक व्याघात पर आवेष्ठित हैं। प्रारंभ की तीन पंक्तियों का अन्त जगण से न हो गुरु से है किन्तु अन्तिम पंक्ति का अपने पूर्व और बाद के चरणों से तुक मिलाने के लिए अन्त्यक्रम ऊपर की पंक्तियों से भिन्न हो गया है।

<u>पादाकुलक</u> : चार मात्राओं के चार चौकलों से निर्मित यह छन्द १६ मात्राओं का होता है। चौपाई की भाँति इसमें भी विषम मात्रिक शब्दों का प्रयोग वर्जित है अर्थात् त्रिकल द्वगण और पंचकल छगण का विधान इसमें नहीं होता, यथा-

> नील निशीथ में लतिका सी
> तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
> कोमल बाहें फैलाये सी
> आलिंगन का जादू पढ़ती ।[2]

चौपाई : १६ मात्राओं वाला यह सम्प्रवाही छन्द हिन्दी के छन्दों में सर्वाधिक प्रचलित है। इसके चरणान्त में जगण और तगण वर्जित है। यदि चरणान्त दो गुरु से हो तो अति उत्तम माना जाता है। वैसे सुविधानुसार भगण (SII), सगण (IIS) और रगण (SIS) भी अन्त्यक्रम में आ सकते हैं। इस छन्द का प्रयोग निराला के काव्य में द्रष्टव्य है -

> नील वसन शतदु-तन-उर्मिल
> किरण चुम्बित मुख अम्बुज रे खिल
> अन्तस्तल मधु, गंध अनामिका
> उर उर तर नव राग जागरण ।[3]

१- निराला : परिमल, पृ० ३५-३६ ।
२- प्रसाद : कामायनी, पृ० ७५ ।
३- निराला : गीतिका, गीत सं० ५० ।

मानव : आचार्य भानु ने १४ मात्राओं के उस विधान को जिसमें तीन चौकल एक साथ न आकर एक मध्यवर्ती त्रिकल के कारण विलग हो जाते हैं, हाकलि छन्द न कहकर मानव छन्द कहा है।[१] प्रसाद जी ने आँसू तथा कामायनी के आनन्द सर्ग की रचना इसी छन्द में की है। यद्यपि कुछ विद्वान आँसू तथा आनन्द सर्ग में प्रयुक्त छन्द को सखी छन्द मानते हैं।[२] किन्तु इस विषय में डा० पुत्तूलाल का मत ही अधिक समीचीन है कि आँसू का छन्द विधान मानव छन्द के अनुरूप है[३], यथा-

मेरी आँखों में जागी
पुलकित मैं सोने वाले
अधरों से सोते सोते
आँखों से रोने वाले।[४]

इस उद्धरण के चारों चरणों में कहीं भी तीन चौकल एक साथ नहीं आ पाया, मध्य में एक त्रिकल अवश्य आ गया है। अतः उसे मानव छन्द मानना ही अधिक तर्कसंगत है हालांकि आँसू काव्य की छन्द उत्कृष्टता को देखते हुए कतिपय विद्वानों ने इसके छन्दों को 'आँसू छन्द' की संज्ञा से अभिहित किया है किन्तु इसे आँसू नाम देना ठीक नहीं है, क्योंकि पहले से इसका नाम विद्यमान है।[५] यह बात और है कि प्रसाद जी ने उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करने के लिए इन छन्दों को मसृण, कोमल तथा करुणार्द्र रूप प्रदान किया है। इस छन्द के अभिव्यक्तिकरण में प्रसाद जी ने जिस कौशल का परिचय दिया है वह अन्य तद्युगीन कवियों की काव्यक्षमता से परे प्रतीत होता है। इसी छन्द का विधान आनन्द सर्ग में भी मिलता है, यथा-

वरदान बने फिर उसके
आँसू करते जग मंगल
सब ताप शांत होकर, बन
हो गया हरित सुख शीतल।[६]

१- जगन्नाथ प्रसाद भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ४६-४७।
२- डा० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० १२७।
३- डा० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० २५३।
४- प्रसाद : आँसू, पृ० ६१।
५- डा० पुत्तूलाल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० २५४।
६- प्रसाद : कामायनी, पृ० २८६।

यहाँ पर इस छन्द का सुनियोजित विधान हुआ है जिससे लयान्विति में कुछ प्रखरता आ गई है वायु की भाँति उस वर्ण के विधान में लय मन्द न होकर ओजोद्दीप्त हो उठी है। जिससे यह छन्द अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होता है।

लीला : चार त्रिकलों से निर्मित १२ मात्राओं वाला यह छन्द हिन्दी साहित्य में विशेष प्रचलित रहा है। इसमें कभी-कभी दो त्रिकलों को एक षट्कल के रूप में भी उपस्थित किया जाता है। लीला छन्द निराला की प्रवृत्ति के अधिक उपयुक्त सिद्ध होने के कारण उनके काव्य में अधिकता से मिलता है। यथा-

> भीतर उर में निखार
> तारक-दल-लोक-हार
> कवि में हुआ अपार
> अखिल कारुणिक मोल।[1]

दीप : १० मात्राओं का यह छन्द रगण के प्रस्तार से निर्मित होता है। कहीं-कहीं यह यगण (।SS) और तगण (SS।) के प्रस्तार से भी निर्मित पाया जाता है। कम मात्राओं वाले इस दैशिक जाति के छन्द का प्रयोग निराला ने भी किया है यद्यपि वे अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण अधिकतर: उसके नियम का पालन तो नहीं कर सके फिर भी इस सुगम एवं सरस छन्द के विधान में वे पीछे नहीं रहे -

> बीत रे गई निशि
> देश लख हँसी दिशि
> अखिल के कण्ठ की
> उठी आनन्द - ध्वनि।[2]

(२) अर्द्धसम मात्रिक छन्द

प्रसाद और निराला के काव्य में परम्परानुमोदित अर्द्धसम मात्रिक छन्दों का विधान भी हुआ है। प्रचलित अर्द्धसम मात्रिक छन्दों के परिवेश में आलोच्य कवियों के छन्द विधान को देखा जा सकता है।

दोहा : २४ मात्राओं वाले इस छन्द में १३-११ पर यति व्यवस्था होती है। इसका चरणांत गुरु लघु (S।) से होता है। प्रसाद जी ने अनेक स्थलों पर

१- निराला : गीतिका, गीत सं० ७३।
२- ,, : ,, ,, ६८।

इस छन्द की रचना की है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं -

भरे क्रोध जनु जलद युग, मिरत करत आघात
विज्जुलता सी असि युगल, लपटि लपटि छुटि जात।[1]

यति व्यवस्था तथा छन्दस्थान में नियोजित इस छन्द के अतिरिक्त प्रसाद जी ने नाटकों में भी दोहा का विन्यास किया है, यथा-

खिल रही है चाँदनी | छवि मतवाली रात
कहती कम्पित अधर से | बहकाने की बात।[2]

--- --- ---

पी ले प्रिय रस-माधुरी | सींचो जीवन बेल
जी लो सुख से आयु भर | यह माया का खेल।[3]

<u>दोहकीय :</u> यह छन्द दोहा में दो मात्राओं की वृद्धि हो जाने से निर्मित होता है। १३-१३ के विराम से यह २६ मात्राओं का छन्द बनता है। प्रसाद-काव्य में इसके कतिपय उद्धरण मिलते हैं, यथा-

धमनी की तंत्री बजी | तू रहा लगाये कान
बलिहारी मैं कौन तू | है मेरा नाम जीवन प्रान।[4]

<u>सोरठा :</u> यह छन्द दोहा के समान २४ मात्राओं का होता है किन्तु इसमें विषम चरण ११ और समचरण १३ का होता है अर्थात् सम और विषम-चरण की मात्रा दोहे के विपरीत होती है। इसका प्रयोग प्रसाद जी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में किया है। प्रसाद के अतिरिक्त तद्युगीन कवियों ने इस छन्द का प्रयोग नहीं किया। प्रसाद के काव्य में इसका उदाहरण -

अति ही सुन्दर सुरूप, राजत कोटि हु मार-छवि
मुख विधु को प्रतिरूप, मिश्रित वीर शृंगार रस।[5]

१- प्रसाद : चित्राधार (उर्वशी) पृ० १३।
२- ,, : चन्द्रगुप्त, पृ० १८६।
३- ,, : स्कन्दगुप्त, पृ० ५४।
४- ,, : ,, पृ० ४६।
५- ,, : चित्राधार (बभ्रुवाहन) पृ० २।

इस प्रकार यदा-कदा प्रसाद के काव्य में अर्द्धसम मात्रिक छन्दों का विधान भी हुआ है किन्तु निराला का काव्य तो ऐसे छन्द प्रयोगों से सर्वथा रिक्त है ।

(३) विषम मात्रिक छन्द

आलोच्य कवियों ने विषम मात्रिक छन्दों का प्रयोग भी अत्यल्प किया है । इनके काव्य में कुण्डलियां, अमृतध्वनि की अपेक्षा रोला और उल्लाला के मिश्रण से निर्मित ६ चरणों वाले छप्पय छन्द का विधान मिलता है, यथा-

जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मन्दिर में रंक नरेश समान रहा है
जिसके है आराम प्रकृति कानन ही सारे
जिस मन्दिर के दीप इन्दु दिनकर और तारे
उस मन्दिर के नाथ निरुपम निरमय स्वरूप को
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गृहस्थ को ।[१]

यहां पर प्रथम चार चरणों में २४ मात्राओं वाले रोला छन्द तथा अन्तिम दो चरणों में २८ मात्राओं वाले उल्लाला छन्द के मिश्र प्रयोग से छप्पय छन्द की निर्मिति हुई है । निराला के काव्य में भी यह छन्द प्रयुक्त हुआ है -

लहर रही शशि किरण चूम निर्मल यमुना जल
चूम सरित की सलिल राशि खिल रहे कुमुद दल,
कुमुदों के स्मित मन्द खुले वे अधर चूम कर
बही वायु स्वच्छन्द सकल पथ घूम घूम कर
है चूम रही इस रात को वही तुम्हारे मधु अधर
जिनमें है भाव भरे हुए सकल शोक सन्ताप हर ।[२]

प्रसाद और निराला के काव्य में उपलब्ध शास्त्रीय छन्दों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन कवियों ने अर्द्धसम तथा विषम मात्रिक छन्दों की अपेक्षा सममात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिकता से किया है । आलोच्य कवियों ने शास्त्रीय

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० ४ ।
२- निराला : अनामिका, पृ० ४७ ।

नियमों में आबद्ध छन्दों का विधान कम ही किया है और जो कुछ किया भी है उसमें वह अन्त:जनित सौन्दर्य नहीं आ पाया जो उनके पूर्ववर्ती साहित्य में उपलब्ध है। इन कवियों ने जहां कहीं शास्त्रीय छन्दों को प्रयुक्त किया है वहां उसके यति-गति, अन्त्यक्रम आदि में पूर्ण स्वतंत्रता बरती है जिससे उसके वास्तविक स्वरूप में कुछ संशय उत्पन्न होने लगता है।

(२) नूतन छन्द-विधान

प्रसाद और निराला के छन्द-विधान की विशिष्टता उसके अभिनव प्रयोग एवं प्राचीन छन्दों के नूतन विन्यास पर निर्भर करती है। स्वच्छंदतावादी कवि प्रसाद और निराला ने शास्त्रीय छन्दों की रचना अपने भावों के अनुरूप की है। यहां पर विवेचन की सुविधा के लिए इनके नूतन छन्दों को हम दो भागों में बांट सकते हैं -

(क) शास्त्रीय छन्दों का नव्य रूप विधान

(ख) अभिनव छन्द विधान

(क) शास्त्रीय छन्दों का नव्य रूप विधान : इस कोटि में प्रसाद और निराला के उन छन्दों को परिगणित किया जा सकता है जो शास्त्रीय आधार पर यति, गति, मात्रा, लय आदि के विपर्यय से नूतन क्रमायोजन में उपस्थित किये गए हैं। यहां पर सर्वप्रथम शास्त्रीय छन्दों के मिश्रण से उत्पन्न नूतन छन्दों की चर्चा करना अधिक समीचीन होगा।

१- मिश्रित छन्द : शास्त्रीय छन्दों का यह मिश्रण सम एवं अर्द्धसम छन्दों को लेकर किया है। इन कवियों को दो छन्दों के मिश्रण से एक नवीन छन्द की रचना करना अधिक रुचिकर लगा, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्राचीन सम एवं अर्द्धसम छन्दों के मिश्रित रूप इनके काव्य में उपलब्ध होते हैं।

गोपी और श्रृंगार : विषम चरण गोपी और सम चरण श्रृंगार छन्द को मिलाकर आलोच्य कवि ने एक नूतन छन्द की सृष्टि की है, उदाहरणार्थ -

नशीली आंखों सदृश कहो,	१५ मात्राएं	, गोपी
तुम्हारी ही, जिसमें है नशा ?	१६ ,,	, श्रृंगार
गुलाबी हल्का-सा बीते	१५ ,,	, गोपी
स्तब्ध हो रही मौन की निशा।[१]	१६ ,,	, श्रृंगार

१- प्रसाद : झरना, पृ० ५८।

श्रृंगार और गोपी : विषम चरण श्रृंगार और सम चरण गोपी छन्द का मिलाकर जिस छन्द की निर्मिति हुई उसे श्रृंगार-गोपी छन्द कहा गया । इस छन्द का सुनियोजित रूप प्रसाद के काव्य में द्रष्टव्य है -

धूल का खेल, लो खेलने ;	१६ मात्राएं-	श्रृंगारछन्द
किन्तु वह क्रीड़ा ही न रही ।	१५ ,,	गोपीछन्द
बोझ हो गया, सरल आनन्द ;	१६ ,,	श्रृंगारछन्द
मिलेगा फिर क्या कभी कहीं ।[1]	१५ ,,	गोपीछन्द

पद्धरि और चौपाई : प्रसाद जी ने १६ मात्राओंवाले पद्धरि और चौपाई छन्द के मिश्रण से एक नवीन छन्द की रचना की है, यथा -

यह प्रभापूर्ण तव मुख निहार)
मनु हत चेतन थे एक बार) १६ मात्राएं - पद्धरिछन्द

नारी माया ममता का बल,
वह शक्तिमयी छाया शीतल;
फिर कौन क्षमा कर दे निश्छल, ,, - चौपाईछन्द
जिससे यह धन्य बने भूतल ;

तुम क्षमा करोगी यह विचार
मैं छोड़ूं कैसे साधिकार ।[2] ,, - पद्धरिछन्द

यहां पर प्रथम दो और अन्तिम दो चरण सममात्रिक प्रवाह तथा अन्त में गुरु लघु होने से पद्धरि छन्द के हैं और मध्य के चार चरण चौपाई छन्द के हैं जिनका अन्त भगण अर्थात् गुरु लघु-लघु से हुआ है ।

पादाकुलक तथा पद्धरि : प्रसाद के काव्य में पादाकुलक तथा पद्धरि छन्द के योग से ३२ मात्राओंवाले एक नूतन छन्द का विधान द्रष्टव्य है -

अपनी मीठी रसना से वह	पादाकुलक छन्द
बोलेगा ऐसा मधुर बोल	पद्धरि छन्द
मेरी पीड़ा पर छिड़केगा	पादाकुलक छन्द
जो कुसुम धूलि मकरंद घोल[3]	पद्धरि छन्द

१- प्रसाद : झरना, पृ० ६० । २- प्रसाद : कामायनी, पृ० २४६ । ३- वही, पृ० ५८

इस उद्धरण की प्रथम और तृतीय पंक्ति चार-चार मात्राओं वाले चार चौकलों से युक्त (१६ मात्राओं) पादाकुलक छन्द में निर्मित है और द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्तियाँ समप्रवाही लय से प्रारंभ होनेवाले पद्धरि छन्द में रचित हैं। इस प्रकार दो छन्दों के योग से इस नूतन छन्द की उद्भावना हुई है।

शृंगार और उर्वशी :- शृंगार और उर्वशी छन्द के मिश्रण से निर्मित नूतन छन्द का उदाहरण द्रष्टव्य है -

तुम्हारी करुणा ने प्राणेश)
बना कर नवमनमोहन वेश) १६ मात्राएं - शृंगार छन्द

दीनता को बढ़ाया)
उसी से स्नेह बढ़ाया) १३ ,, - उर्वशी छन्द

लता अज्ञात बढ़ चली राग)[1]
मिला था करुणा का शुभ भाग) १६ ,, - शृंगार छन्द

इस पद के आरंभ की दो और अंत की दो पंक्तियाँ, त्रिकल से आरंभ तथा गुरु और लघु (S I) से अन्त होनेवाले शृंगार छन्द की हैं। मध्य की दो पंक्तियाँ १३ मात्राओं वाले उर्वशी छन्द की हैं जिनका चरणांत दो गुरु से हुआ है।

इन सम एवं अर्द्ध सम छन्दों के योग से निर्मित शास्त्रीय छन्दों पर आधारित नूतन-छन्दों के विधान के अतिरिक्त प्रसाद और निराला ने अनेक छन्दों के चरणों का विषम क्रम से भी मिश्रण किया है, यथा -

धिक ! धाए तुम यों अनाहूत)
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत) १६ मात्राएं - पज्झटिका छन्द
राम के नहीं काम के सुत कहलाए। २२ ,, - रास छन्द
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम)
वह नहीं और कुछ हाड़ चाम।) १६ ,, - पज्झटिका छन्द
कैसी शिक्षा कैसे विराम पर आए।[2] २२ ,, - रास छन्द

१- प्रसाद : झरना, पृ० ५८ ।
२- निराला : तुलसीदास, पृ० ५५ ।

यहाँ पर निराला जी ने प्रथम और द्वितीय तथा चतुर्थ एवं पंचम पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास युक्त १६ मात्राएं रखी हैं। तृतीय और षष्ठ पंक्तियों में २२ मात्राएं रखी हैं और दोनों में तुक का निर्वाह भी किया है। इसी प्रकार शृंगार और गोपी छन्द का विषम क्रम से मिश्रण निम्नलिखित गीत में मिलता है -

हमें जाना है जग के पार — १६ मात्राएं, शृंगार छन्द
जहाँ नयनों से नयन मिले — १५ ,, गोपीछन्द
ज्योति के रूप सहस्र खिले — १५ ,, ,,
सदा ही बहती नवरस धार — १६ ,, शृंगारछन्द
वहीं जाना, इस जग के पार[1] — १६ ,, ,,

इस गीत के प्रथम, चतुर्थ और पंचम चरण शृंगार छन्द के हैं तथा द्वितीय और तृतीय चरण गोपी छन्द के हैं। इस क्रम का परिवर्तन निराला ने आगे के अनुच्छेदों में पुनः किया है। आगे के द्वितीय, चतुर्थ और पंचम अनुच्छेद के पाँचों चरणों का विधान शृंगार छन्द के अनुकूल हुआ है। केवल बीच में तृतीय अनुच्छेद का विधान तीन चरण गोपी और दो चरण शृंगार छन्द का मिलाकर रचा गया है। किन्तु इसके बाद भी पूरे गीत में अन्तर्मुक्त ध्यात्मकता कहीं भी विशृंखलित नहीं हो पाई। कारण, कवि का शिल्पगत चातुर्य तो है ही साथ ही शृंगार और गोपी छन्द का अत्यल्प अंतर भी है।

विषमक्रम से निर्मित मिश्र छन्दों का सुन्दर उदाहरण निराला की 'प्रथम प्रभात' कविता है, यथा -

प्रथम चकित चुम्बन सी सिहर समीर — १६ मात्राएं - तमालछन्द
कैसा अलस अम्बर के छोर — १५ ,, - चौपाईछन्द
उठा लाज की सरस हिलोर — १५ ,, - ,,
ऊषा के अधरों में अरुण अधीर — १६ ,, - तमाल छन्द
भर मुग्धा की चितवन में अजान — १६ ,, - तमाल छन्द
तरुण-अरुण-यौवन-प्रभात अम्लान[2] — १६ ,, ,,

यहाँ पर निराला ने १६ मात्राओं वाले तमाल छन्द और १५ मात्राओं वाले चौपाई छन्द का विषम क्रम से मिश्रण किया है। इस प्रकार के मिश्रित छन्दों का विधान, निराला-काव्य की अतिरिक्त विशेषता है।

१- निराला : परिमल, पृष्ठ ६६। २- वही, पृ० ८८।

(२) सममात्रिक छन्दों का अर्धसम विधान : प्रसाद और निराला के नूतन छन्द विधान की कोटि में सममात्रिक छन्दों का अर्धसम प्रयोग भी आता है। शास्त्रीय छन्दों का परिवर्तन विधान इन कवियों की मौलिक उपज है। उदाहरण स्वरूप कुछ प्रमुख छन्दों का अर्धसम प्रयोग यहाँ पर देखें -

वीर -

ओ अमरता के चमकीले,	१६ मात्राएँ
पुतलो ! तेरे वे जयनाद;	१५ ,,
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि,	१६ ,,
बन कर मानो दीन विषाद।[1]	१५ ,,

इस उदाहरण में वीर छन्द का अर्धसम प्रयोग मिलता है १६ और १५ मात्राओं के दो चरणों में वीर छन्द के ३१ मात्राओं को गिना जा सकता है।

ताटंक -

इन्द्रनील मणि महाचषक था	१६ मात्राएँ
सोम रहित उलटा लटका	१४ ,,
आज पवन मृदु साँस ले रहा	१६ ,,
जैसे बीत गया खटका।[2]	१४ ,,

१६ और १४ मात्रा के क्रम से यहाँ ३० मात्राओं के ताटंक छन्द का निर्वाह किया गया है।

सार -

उच्च शैल शिखरों पर हँसती	१६ मात्राएँ
प्रकृति चंचला बाला	१२ ,,
धवल हँसी बिखराती अपनी	१६ ,,
फैला मधुर उजाला।[3]	१२ ,,

--- --- ---

युवक जनों की है जान	१३ ,,
खून की होली जो खेली	१५ ,,
पाया है लोगों से मान	१३ ,,
खून की होली जो खेली।[4]	१५ ,,

१- प्रसाद : कामायनी (चिन्तासर्ग) पृ० १५।
२- ,, : ,, (आशासर्ग) पृ० ३२।
३- ,, : ,, (कर्मसर्ग) पृ० १२७। ४- निराला : नये पत्ते (खून की होली) पृ० ६७।

प्रथम उद्धरण में प्रसाद जी ने २८ मात्राओंवाले सार छन्द का मात्रा, यति-गति तथा चरणांत में दो गुरु का निर्वाह करते हुए अर्द्धसम रूप उपस्थित किया है और द्वितीय उद्धरण में निराला जी ने गाथा और अन्त्यक्रम के साथ रूपी छन्द का प्रयोग किया है किन्तु यति-व्यवस्था में अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से काम लिया है।

रोला -	नयन मुँदे जब क्या देखे	१६ मात्राएँ
	फिर प्रिय दर्शन ?	८ ,,
	शत सहस्त्र जीवन प्लुत	१६ ,,
	ताराकर्षण ।[1]	८ ,,

इसमें कवि ने १६ और ८ मात्रा के क्रम से २४ मात्राओं वाले रोला छन्द का निर्वाह किया है।

रजनी -	फिर किधर को हम बढ़ें	१४ मात्राएँ
	तुम किधर होगे	९ ,,
	कौन जाने फिर सहारा	१४ ,,
	तुम किसे दोगे ।[2]	९ ,,

यहाँ पर निराला जी ने २३ मात्राओं वाले रजनी छन्द का अर्द्धसम प्रयोग किया है।

निश्चल -	काल-वायु से स्खलित न होंगे	१६ मात्राएँ
	कनक प्रसून	७ ,,
	क्या पलकों पर बिखरेंगे ही	१६ ,,
	यौवन कुसुम ।[3]	७ ,,

निराला जी ने १६ और ७ मात्राओं के यतिक्रम से अन्तिम गुरु लघु का पालन करते हुए २३ मात्राओं वाले निश्चल छन्द का अर्द्धसम रूप भी प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने शास्त्रीय छन्दों के अर्द्धसम प्रयोग द्वारा अद्वितीय कलात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है और हिन्दी साहित्य के छन्द विधान को समृद्ध बनाने में अपना विशेष योगदान दिया है।

१- निराला : परिमल, पृ० ६१।

२- वही, पृ० ३३।

३- वही, पृ० ६४।

(३) परम्परागत छन्दों के नवरूपान्तर की अन्य विधि का-प्रसाद और निराला ने प्रचलित शास्त्रीय छन्दों की परम्परा विहित संस्कारों से मुक्त कर विशिष्ट लयाधार एवं अन्त्यक्रम के विधान से नव्य रूप प्रदान किया। इन छन्दों में यति-गति तथा वर्ण संबंधी निर्दिष्ट विधानों पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, जैसे -

चौपाई - शीतल कोमल चिर कम्पन-सी — क
दुर्ललित हठीले बचपन-सी — क
तू लौट कहाँ जाती है री — ख
यह खेल खेल ले ठहर ठहर।[1] — ग

यहाँ पर कवि ने केवल चौपाई छन्द का आधार मात्र ग्रहण किया है अन्यथा इस पद के विन्यास में लय, अन्त्यक्रम, यति आदि में पूर्ण स्वतन्त्रता बरती है। चारों चरणों का विन्यास क, क, ख, ग के क्रम से हुआ है।

चौपाई का विशिष्ट अन्त्यक्रम से निर्मित रूप निराला की इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है -

नील वसन शतदल-तन उर्मिल — क
किरण चुम्बित मुख अम्बुज रे खिल — क
अन्तस्तल मधु गन्ध अनामिका — ख
उर उर तव नव राग जागरण।[2] — ग

पद्धरि - फैलाती है जब ऊषा राग — क
जग जाता है उसका विराग — क
वंचकता, पीड़ा, घृणा, मोह — ख
मिलकर बिखेरते अंधकार — ग
धीरे से वह उठता पुकार — ग
मुझको न मिला रे कभी प्यार।[3] — ग

यहाँ पर प्रसाद जी ने १६ मात्राओं का निर्वाह करते हुए भी पद्धरि छन्द के यति-गति तथा अन्त्यक्रम विधान में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

१- प्रसाद : लहर, पृ० १।
२- निराला : गीतिका, गीत सं० ५०।
३- प्रसाद : लहर, पृ० ३६।

पद्धरि छन्द के नियम में लेकर कवि ने यहाँ पर इन पंक्तियों की रचना नहीं की है। इसका अन्त्यक्रम भी क,क,ख,ग,ग,ग है जो सर्वथा अपने ढंग का नूतन विधान कहा जाएगा।

यथा: -

पतित जन पर करो करुणा। — क
दीनता पर उतर आये — ख
प्रभु, तुम्हारी शक्ति वरुणा। — क
हरे तन - मन प्रीति पावन, — ग
मधुर हो मुख मनोभावन, — ग
सहज चितवन पर तरंगित — घ
हो तुम्हारी किरण तरुणा।[1] — क

यहाँ पर कवि ने १४ मात्राओं के सखी छन्द का नवीन क्रमायोजन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की रचनाएं यह सिद्ध करती हैं कि आलोच्य कवि किसी बन्धन को लेकर काव्य संरचना में नहीं प्रवृत्त हुए।

आलोच्य कवियों ने प्रचलित शास्त्रीय छन्दों के मात्राओं के क्रमायोजन तथा लय-विधान में कुछ अन्तर लाकर इस भाँति प्रस्तुत किया है कि वे सर्वथा नूतन प्रतीत होते हैं जैसे -

पड़ीं मुख चुम्बी की कलियाँ — १५ मात्राएं
विटप-उर की अवलम्बित हार — १६ ,,
विजन वन मुदित सहेलरियाँ — १५ ,,
आज कुल-कुल गिरती असहाय — १६ ,,
विटप वक्षःस्थल से निरुपाय ?[2] — १६ ,,

यहाँ कवि ने १६ मात्राओं वाले शृंगार छन्द के अन्तिम लघु मात्रा को विलुप्त कर प्रथम तथा द्वितीय चरण की निर्मिति की है जिससे लय विधान में भेद आ गया है।

मात्राओं के क्रमायोजन से शास्त्रीय छन्दों के नवरूपान्तरण का एक अन्य उदाहरण -

तुम हो राधा के मनमोहन - १६ मात्राएं)
मैं उन अधरों की वेणु। - १२ ,,) २८ मात्राएं

१- निराला : अणिमा, पृ० ६।
२- ,, : परिमल, पृ० १०३।

तुम पथिक दूर के श्रान्त - १३ मात्राएँ)
और मैं बाट जोहती आशा - १७ ,,) ३० मात्राएँ

तुम भवसागर दुस्तर - १२ ,,)
पार जाने की मैं अभिलाषा।[1] १७ ,,) २९ ,,

यहाँ पर उक्त प्रत्येक पंक्तियाँ भिन्न-भिन्न मात्राओं में रचित हैं और सभी एक दूसरे से अलग प्रतीत होती हैं किन्तु उनके सम्मिलित रूप में शास्त्रीय छन्दों का स्पष्ट आभास होता है। प्रथम और द्वितीय १६ तथा १३ मात्राओं वाली पंक्तियाँ मिलकर २९ मात्राओं की बनती हैं ऐसे ही पाँचवीं तथा छठीं १२ और १७ मात्राओं की पंक्तियाँ मिलकर २९ मात्राओं की होती है जो लयाधार पर २७ मात्राओं वाले सरसी छन्द के प्रारम्भ में दो मात्राओं को जोड़ देने से बनी है। मध्य की तीसरी और चौथी पंक्ति १३ और १७ मात्राओं के सम्मिलित आधार पर ३० मात्राओंवाले छन्द की कोटि में परिगणित होगी जो सार छन्द के आरम्भ में दो मात्राओं की वृद्धि से निर्मित हुई है। इस प्रकार सरसी और सार छन्द में २ मात्राओं की वृद्धि से निर्मित यह छन्द निराला के काव्य कला का परिचायक है।

प्रचलित छन्दों के मिश्रण प्रयोग से अभिनव छन्द का विधान भी इन कवियों ने किया है। शृंगार छन्द का मिश्रण प्रयोग प्रसाद की रचनाओं में दृष्टव्य है -

वही है रक्त, वही है देश, । वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शान्ति, वही है शक्ति। वही हम दिव्य आर्य सन्तान।[2]

यही नहीं प्रसाद जी ने पद्धरि छन्द के मिश्रण प्रयोग से गीत की रचना भी कर डाली है। यथा -

जीवन निशीथ के अंधकार - १६ मात्राएँ
तू नील तुहिन जल निधि बनकर फैला है कितना वार-पार - ३२ ,,
कितनी चेतनता की किरणें हैं डूब रहीं ये निर्विकार - ३२ ,,
+ + + + +
रे चिर निवास विश्राम प्राण के मोह जलद छाया उदार - ३२ ,,
माया रानी के केशभार।[3] - १६ ,,

१- निराला : परिमल, पृ० ८१ ।
२- प्रसाद : स्कन्दगुप्त (पंचम अंक) पृ० १९५ ।
३- ,, : कामायनी (इड़ा सर्ग) पृ० १६७ ।

इस गीत की प्रथम और अन्तिम पंक्ति जो १६ मात्राओं में ही रचित है किन्तु मध्य की सातों पंक्तियों में पद्धरि का नित्य प्रयोग हुआ है।

प्रसिद्ध शास्त्रीय छन्दों का छन्दक रूप में प्रयोग निराला ने भी किया है। यथा -

मानो के डोरे डाल गुलाल भरे खेली होली । - २८ मात्राएं
जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति सनेह रंग घोली - ,,
दीपित दीप-प्रकाश, कंज छवि मंजु-मंजु हंस खोली - ,,
मली मुख चुम्बन रोली । [1] - १३ मात्राएं

यहां पर कवि ने छन्दक रूप में सार छन्द का विधान किया है। आगे के भी दोनों सम्पद चरण सार छन्द में रचित हैं किन्तु अन्तिम चरण में अपनी मौलिकता का सन्निवेश करते हुए कवि ने सार छन्द के द्वितीय अंश (१२ मात्राओं) के आदि में एक लघु मात्रा जोड़कर अन्य चरणों तथा छन्दक के साथ छन्दकानुबंध का निर्वाह कर दिया है। इस प्रकार की रचना में लय-निपात पर विशेष बल दिया गया है। वास्तव में निराला को छन्द की आत्मा का सहज ज्ञान था जिससे शास्त्रीय छन्दों के नवरूपान्तरण में उन्हें विशेष सफलता भी मिली।

छन्दक रूप में पद्धरि छन्द का प्रयोग प्रसाद के काव्य में द्रष्टव्य है -

जलता है यह जीवन पतंग १६ मात्राएं पद्धरि छन्द
वैभव की यह मधुशाला, १४ ,,
जो पागल होने वाला, १४ ,,
अब गिरा उठा मतवाला, १४ ,,
प्याले में फिर भी हाला, १४ ,,
यह क्षणिक चल रहा राग रंग। [2] १६ ,,

यहां पर प्रथम और अन्तिम चरण में लय निपात की समता है। मध्य की चार पंक्तियां उससे भिन्न लय निपात में निर्मित हैं। अतः छन्दक १६ मात्राओं का है और छन्दकानुबंध भी उसी अनुपात पर १६ मात्राओं में ही रचित है।

१- निराला : गीतिका, पृ० ७६।
२- प्रसाद : लहर, पृ० ५४।

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने शास्त्रीय छन्दों को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उनका वास्तविक रूप सर्वथा लुप्तप्राय सा हो गया है। शास्त्रीय छन्दों में नूतनता का समावेश करने का अभिप्राय छन्द को स्वच्छन्द गति प्रदान करना था। इस दिशा में मुक्तछन्द के प्रवर्तक कवि निराला को विशेष सफलता मिली है। दोनों कवियों ने प्रचलित छन्दों को भावानुरूप लयविधानों में ढाल कर हिन्दी के छन्द-विधान को नूतन दिशा प्रदान की है।

(ख) अभिनव छन्द विधान

आलोच्य-कवियों का काव्य-वैशिष्ट्य उनके अभिनव छन्द विधान पर आश्रित है। मात्रा, क्रम, यति-गति अन्त्यानुप्रास, पंक्ति-संख्या आदि छान्दसिक प्रतिमानों की दृष्टि से प्रसाद और निराला निर्मित कतिपय छन्द सर्वथा नूतन कहे जायेंगे। इस प्रकार के छन्दों को विवेचन की सुविधा के लिए दो भागों में बाँटकर समझा जा सकता है।

(१) स्वनिर्मित अभिनव छन्द

(२) अन्य भाषागत छन्दों से प्रभावित (अभिनव) छन्द

(१) इस कोटि के अन्तर्गत आलोच्य कवियों के वे मौलिक छन्द आते हैं जो उनकी भावप्रवणतावश निश्चित मात्रा एवं अन्त्यानुप्रास में स्वतः स्फुरित हो गए हैं यथा -

स्पर्श से लाज लगी	क	११ मात्राएँ
जल - पलक में लिपटी छुअन	ख	१४ ,,
उर से नव राग जगी।[1]	क	१२ ,,

इस नूतन छान्दसिक गीत की सृष्टि कवि ने लय साम्य के आधार पर की है। तीनों पंक्तियों की मात्राएँ अलग-अलग हैं किन्तु प्रथम और अन्तिम पंक्ति में लय साम्य है। इस अन्तिम पंक्ति का विधान तुकान्त रूप में किया गया है जिसका सभी अनुच्छेदों की अन्तिम पंक्ति से साम्य बिठाया गया है।

प्रसाद की मौलिकता का स्पष्ट बोध निम्नलिखित छन्द से होता है -

१- निराला : गीतिका, गीत सं० [illegible] ।

हृदय गुफा थी शून्य,	क	११ मात्राएं
रहा घर सूना ।	ख	६ ,,
इसे बसाऊँ शीघ्र,	ग	११ ,,
बढ़ा मन दूना ।[१]	ख	६ ,,

११ और ६ मात्राओं का संयोजन कवि ने क ख ग ख के क्रम से किया है। दूसरी और चौथी पंक्ति में गुरु-गुरु का अंतविधान अन्त्यानुप्रास के आधार पर हुआ है। निराला द्वारा रचित नूतन छन्द का एक और प्रयोग द्रष्टव्य है।

स्वप्न ज्यों सज जाय	क.	१० मात्राएं
यह तरी, यह सरित, यह तट	ख	१४ ,,
यह गगन समुदाय	क	१० ,,
कमल-वलयित सरल दृग-जल	ग	१४ ,,
हार का उपहार हो ।[२]	घ	१२ ,,

१२ मात्राओं की अन्तिम पंक्ति, छन्दक रूप में रचित है। पहली तथा तीसरी १० मात्राओं की और दूसरी तथा चौथी १४ मात्राओं की पंक्ति को रचकर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। यदि निराला जी ने १४ और १० के क्रम से रचना की होती तो संभव था कि रूपमाला छन्द की भलक इसमें मिल जाती। किन्तु १२ मात्राओं वाले छन्दक के साथ १० और १४ मात्राओं के क्रमायोजन से रचित ये पंक्तियां कवि के मौलिकता की द्योतक है।

निराला ने १२ मात्राओं का विधान नूतन ढंग से किया है जिसमें उनकी मौलिकता का स्पष्ट बोध होता है -

भीतर उर में निहार
तारक-शत-लोक-हार
छवि में हूला अपार
अखिल कारुणिक मोल ।[३]

१- प्रसाद : भरना (अतिथि) पृ० ८२ ।
२- निराला : अनामिका, पृ० ७८ ।
३- ,, : गीतिका, गीत सं० ७३ ।

यहाँ पर कवि ने १२ मात्राओं को विविध ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रथम पंक्ति एक चौकल दो त्रिकल और एक चौकल से निर्मित है। द्वितीय पंक्ति एक चौकल एक त्रिकल और दो त्रिकल से रचित है। तृतीय पंक्ति दो त्रिकल और दो चौकल से प्रस्तुत की गई है तथा चौथी अन्तिम पंक्ति दो त्रिकल और एक छकल से निर्मित है। इन सब पंक्तियों का अन्त्यक्रम क, क, क, ख के ढंग पर हुआ है। अन्तिम ख का गीत के छन्दक से साम्य बिठाया गया है। इस प्रकार कवि ने १२ मात्राओं का विधान अपने ढंग से किया है।

लयाधार पर विभिन्न मात्राओं का संयोजन कर निराला ने अपनी अद्वितीय कला का परिचय दिया है यथा-

जब कहीं पड़ जायगी वे	क	१४ मात्राएँ
कह न पाएगी	ख	६ ,,
वह हमारी मौन भाषा,	ग	१४ ,,
क्या सुनाएगी ?	ख	६ ,,
दाग जो मिट जायगा,	घ	१२ ,,
स्वप्न ही तो राग वह कहलायगा ?	घ	१६ ,,
फिर मिटेगा स्वप्न ही निर्मम	ड	१६ ,,
गगन- तम- सा प्रभा-पल में,	च	१४ ,,
तुम्हारे प्रेम अर्पण में।[१]	च	१४ ,,

आरम्भ की चार पंक्तियाँ १४-६ मात्राओं के क्रम से रचित हैं उसके बाद की पाँचवीं, छठी और सातवीं पंक्ति १२-१६-१६ मात्राओं से प्रस्तुत की गई हैं तथा अंत की दोनों आठवीं और नौवीं पंक्ति १४ मात्राओं से छन्दक के आधार पर निर्मित हैं। इसी क्रम से प्रस्तुत रचना का दूसरा अंश भी निर्मित है। दूसरे अंश में मात्राओं का ऐसा ही क्रम तथा चरणान्त में प्रयुक्त गुरु-लघु आदि मिलता है। अतएव छन्द-विधान की जो तीक्ष्ण दृष्टि निराला को प्राप्त थी वह अन्य कवियों को नहीं। नूतन छन्द का अन्यतम उदाहरण निम्नलिखित है -

ज्ञान रश्मि गात छू रे गई	क	१७ मात्राएँ
नवीं हुई छुटी भावना नई	क	,,

१- निराला : परिमल, पृ० ३२।

गई दूर दृष्टि जो सुखाश्रयी	क	१७ मात्राएं
छिपे वे रहस्य दिखे नूतन ।[1]	ख	१६ ,,

इसमें कवि ने आरम्भ की तीन पंक्तियों में चार त्रिकल और अन्त में एक पंचक का विधान किया है। और चौथी पंक्ति १६ मात्राओं की है जिसमें चार त्रिकल और एक चौकल है इस पंक्ति का छन्दक के साथ लय साम्य बिठाने के लिए ही ऐसा किया गया है।

१७ और ११ मात्राओं का सुनियोजित विधान भी निराला ने किया है जो हिन्दी साहित्य को उनकी मौलिक देन है -

मुझे भर लिया तुमने गोद में	क	१७ मात्राएं
कितने चुम्बन दिये	ख	११ ,,
मेरे मानव मनो विनोद में	क	१७ ,,
नैसर्गिकता लिये ।[2]	ख	११ ,,

यहां कवि ने १७ मात्राओं की प्रथम एवं तृतीय पंक्ति में तीन चौकल तथा एक पंचक का आश्रय लिया है और द्वितीय तथा चतुर्थ ११ मात्राओं की पंक्ति का विधान दो चौकल और एक त्रिकल से किया है। इसका अन्त्यक्रम क,ख,क,ख से हुआ है।

प्रसाद जी का निम्नलिखित नूतन छन्द प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, यथा -

किसी पर मरना । यही तो दुख है	९+९ = १८ मात्राएं
उपेक्षा करना । मुझे भी सुख है	९+९ = १८ ,,
यही प्रार्थना हमारी ।[3]	१३ ,,

यहां पर दो नवक के आश्रय से १८ मात्राओं वाले इस नूतन छन्द की रचना हुई है इसकी प्रथम और द्वितीय पंक्ति १८ मात्राओं की है तथा तृतीय पंक्ति जो छन्दक रूप में रचित है, १३ मात्राओं की है। इसका पूरे गीत की अन्तिम पंक्ति से लय एवं मात्रा में साम्य है।

१- निराला : गीतिका, पृ० ६६ ।

२- ,, : अनामिका, पृ० १४७ ।

३- प्रसाद : झरना, पृ० ८६ ।

निराला की एक प्रसिद्ध रचना 'राम की शक्ति पूजा' है जिसमें प्रयुक्त छन्द आधुनिक हिन्दी के छन्द विधान की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है। भाव प्रवाह तथा लय साम्य के हेतु अविष्कृत इस नूतन छन्द को कतिपय विद्वान 'शक्ति पूजा छन्द' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। तीन अष्टकों के आधार पर कवि ने इस २४ मात्राओं वाले शक्तिपूजा छन्द की निर्मिति की है। इस नूतन छन्द में निराला की अपूर्व सिद्धि प्रशंसनीय है। भावानुरूप यति-गति से युक्त अन्त्यानुप्रासपरक यह तीन अष्टकों वाला छन्द मानव मन की प्रतिक्रियाओं के चित्रण में पूर्णतः सफल रहा है, यथा -

सिहरा तन क्षण । भर भूला मन । लहरा समस्त
हर धनुर्भंग । को पुनर्वार । ज्यों उठा हस्त
फूटी स्मिति सीता - । ध्यान-लीन । राम के अधर
फिर विश्वविजय । - भावना हृदय । में आई भर,[1]

'शक्ति पूजा' छन्द मानव मन की कोमल भावनाओं के अभिव्यक्तिकरण के साथ ही साथ युद्ध के भीषण व तथा कठोर गर्जन वाले वीर रसोपयुक्त वर्णनों में भी सफल हुआ है। आगे चलकर पंत, दिनकर आदि ने भी इस छन्द का विधान किया है किन्तु वह भावानुरूपता तथा ओजस्विता उनके छन्दों में नहीं मिलती जो निराला द्वारा रचित इस छन्द में अन्तर्भुक्त है। 'शक्ति पूजा' छन्द का ओजस्वी रूप निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है।-

शतघूर्णावर्त, तरंग-भंग । उठते पहाड़
जल-राशि-राशि ।-जलधर चढ़ता । खाता पछाड़
तोड़ता बन्ध- । प्रतिसन्ध धरा । हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ । प्रतिपल समर्थ । बढ़ता समक्ष ।[2]

भाव-प्रवाह खण्डित न होने पावे, इस कारण कवि ने यति-गति में पूर्ण स्वतन्त्रता बरती है। कहीं कहीं एक ही पंक्ति में दो तीन विरामस्थल आ गए हैं और कहीं पर एक भी विराम स्थल नहीं आया। इसमें कवि ने अन्त्यानुप्रास

१- निराला : अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृ० १५१।

२- वही, पृ० १५३।

का आद्यन्त निर्वाह किया है। अपवाद स्वरूप यदि कहीं पर मध्यवर्ती तुक मिलता भी है तो वह भाव-प्रवाह को गति तथा वेग प्रदान करने के हेतु ही समाविष्ट किया गया है।

इस प्रकार विषय एवं भाव के अनुरूप यतिगति का स्वच्छन्द विधान तथा कहीं-कहीं पर मध्यवर्ती तुक एवं दूरान्तर-प्रवाही प्रयोग राम की शक्ति पूजा के छन्द की प्रमुख विशेषता है। निराला द्वारा आविष्कृत २४ मात्राओं वाला यह नूतन छन्द आधुनिक हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु है।

शास्त्रीय संगीत पर आधृत मधुर एवं मसृण शब्दों तथा कोमल वर्णों की मैत्री से उद्भूत शैलीगत तारल्य एवं प्रवाह से नियोजित १४-१४ मात्राओं के चार चरणोंवाले आँसू या आनन्द छन्द को, प्रसाद जी की नूतन उपलब्धि मानना चाहिए। इस छन्द की पंक्तियों का क्रम विधान तथा अन्त्यक्रम भी कवि ने अपने ढंग से किया है। इसकी लयान्विति भावपरक तथा प्रवाहपूर्ण है जिससे इसकी मौलिकता में संदेह नहीं रह जाता। फिर भी, जैसा कि पीछे हम बता आए हैं कि कतिपय विद्वान इसे शास्त्रीय (मानव या सखी) छन्द के आधार पर रचित मानते हैं और इसके शास्त्रीय होने के लिए उनके द्वारा दिये गए तर्क कुछ सीमा तक उचित भी हैं।

आलोच्य कवियों ने लय तथा संगीतमय प्रवाह को छन्द का प्राण तत्व मानते हुए शब्द तथा वर्ण की भावानुरूप मैत्री से अभिनव छन्दों की निर्मिति द्वारा हिन्दी साहित्य के छन्द विधान को समृद्ध बनाया है।

(२) प्रसाद और निराला ने अन्य भाषागत छन्दों से प्रभावित (अभिनव) छन्दों का विधान भी किया है। इन नूतन छन्दों की प्रभावक्षमता तथा लोकप्रियता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। इस कोटि में आलोच्य कवियों द्वारा रचित अतुकांत तथा मुक्त छन्द प्रमुख हैं -

<u>अतुकांत छन्द :</u> आधुनिक हिन्दी साहित्य के विषय और विधान में परिवर्तन की जो लहर आई, उससे हिन्दी का छन्द विधान भी नहीं बच सका और छन्दों का तुक-विहीन प्रयोग प्रारंभ हो गया। अब कविता के तुकान्त प्रयोगों को तुकबन्दी कहकर भाव प्रकाशन के लिए अनुपयुक्त बताया जाने लगा। आलोच्य कवियों ने अपनी रचनाओं में लय तथा प्रवाह को महत्व देते हुए भावाभिव्यंजक अतुकांत छन्दों की निर्मिति की।

वास्तव में हिन्दी का अतुकांत छन्द साहित्य के लिए नवीन वस्तु नहीं है कारण कि संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से जयदेव के 'गीत-गोविन्द' तक इस छन्द का विन्यास हुआ है। अंग्रेजी साहित्य में भी सरे तथा मॉलो से लेकर व्हिटमैन तक इस छन्द का प्रयोग हुआ है और बंगला साहित्य में नवीनचन्द्र सेन तथा माइकेल मधुसूदनदत्त आदि की रचनाओं में यही छन्द मिलता है। जिससे प्रभावित होकर आधुनिक हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम हरिऔध जी ने अपने काव्य में इसका प्रणयन किया और आगे चलकर प्रसाद तथा अन्य तद्युगीन कवियों द्वारा इसका कलात्मक निखार हुआ।

हिन्दी साहित्य में प्रचलित अतुकांत छन्द अंग्रेजी के ब्लैंक वर्स का पर्यायवाची है। किन्तु अंग्रेजी का ब्लैंक वर्स केवल गुरु और लघु के लयात्मक पंचक (Iambic Pentameter) तक ही सीमित होता है।[1] जबकि हिन्दी में वह इससे आगे तक प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी में समस्त प्रचलित छन्दों का अतुकांत प्रयोग किया जाता है और उसमें तुकान्त छन्दों की अपेक्षा अधिक प्रवाह तथा भावतारल्य भी मिलता है। इसमें कोई भी भाव अथवा विचार एक ही चरण में समाप्त न होकर कई चरणों तक प्रवाहमान रहता है और विरामचिह्न भी भावखण्ड की समाप्ति के बाद होता है। यह विरामचिह्न मध्य या अन्त में कहीं भी हो सकता है। अतुकांत छन्द की महत्ता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि मात्रा-क्रम, यति-गति के निर्वाह के साथ भी वह अन्त्यक्रम के नियमों में आबद्ध नहीं होता और भाव तथा वस्तु की अभिव्यंजना हेतु अपना स्वरूप निर्माण कर लेता है।

छायावाद युग में अतुकांत छन्द का प्रयोग सर्वप्रथम कवि प्रसाद ने किया है। छन्दों को अन्त्यानुप्रास के बंधन से स्वतन्त्र करने में प्रसाद जी पूर्णतः सफल हुए। प्रसाद कृत 'महाराणा का महत्व', 'करुणालय' तथा 'प्रेम पथिक', प्लवंगम छन्द के अतुकांत प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है। इसके अतिरिक्त 'प्रथम प्रभात' भावसागर, मिल जाओ गले, 'चित्रकूट' (खण्ड -४), शिल्प सौन्दर्य, 'वीर बालक',

---

1. Although verse described as 'blank' is strictly, no more than unrhymed the term is limited to unrhymed imabic pentameter.

Karl Beckson and Arther Gauz .

A Reader's Guide to Literary terms. p. 73.

'कृष्ण कान्ती' (काननकुसुम) तथा 'रूप', 'पावस-प्रभात', 'तर्क', 'स्वभाव', 'प्रत्याशा', 'स्वप्नलोक', 'दर्शन' (झरना) आदि कविताओं की रचना भी अतुकांत छन्द में हुई है, यथा -

> अहा, कौन यह वीर बालक निर्भीक है
> कहो भला भारतवासी ! हो जानते
> यही भरत वह बालक है जिस नाम से
> भारत संज्ञा पड़ी इसी वर भूमि की ।[१]

प्रसाद जी की यह रचना अतुकान्त छन्द का सफल उदाहरण है । इस छन्द का सर्वप्रथम प्रयोग कवि ने इसी 'भरत' कविता में किया है । प्लवंगम छन्द के अतुकांत प्रयोग का अन्यतम उदाहरण उनकी निम्नलिखित पंक्तियां हैं -

> घोर अंधेरे में उठती हैं लहर जो
> तुमुल घात प्रतिघात पवन का हो रहा
> भीमकाय जलराशि क्षुब्ध हो सामने
> कर्णधार रक्षित दृढ़ सुन्दर नाव को
> तोड़ डूबना तिनके सा अनायास है
> घोर सिन्धु में, क्या कुछ भय का काम है
> परम सत्य को छोड़ न हटते वीर हैं ।[२]

इस प्रकार प्रसाद जी ने प्लवंगम छन्द में अनेकों अतुकान्त रचनाएं की है जो सरस, हृदयस्पर्शी तथा भावाभिव्यंजक भी हैं । प्रसाद जी को यह छन्द बहुत ही प्रिय था ।

प्रसाद के अतिरिक्त निराला ने भी अपनी रचनाओं में छन्दों का अतुकान्त प्रयोग किया है । अष्टक की आवृत्तियों के आधार पर २४ मात्राओंवाले रोला छन्द का अतुकान्त प्रयोग यहां द्रष्टव्य है -

> छूटे शत-शत उत्स सरस मानवता-जल के
> यहां वहां पृथ्वी के सब देशों के छलके

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० १०६ ।

२- ,, : महाराणा का महत्त्व, पृ० ११-१२ ।

छलकी जल के पंकिल मौक्तिक रूप कर्षित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित।[1]

इसमें रोला छन्द का अतुकान्त पदान्त प्रवाही प्रयोग हुआ है। यहाँ एक ही चरण में भाव की समाप्ति नहीं हुई है, भावखण्ड की अभिव्यक्ति कई चरणों में पूर्ण हुई है। इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से सभी चरण अधूरे हैं।

३० मात्राओं वाले ताटंक छन्द का अतुकान्त पदान्तर प्रवाही प्रयोग भी आलोच्य कवियों के काव्य में मिलता है, यथा -

संध्या की हेमाभ तपन सी, किरणें जिसकी फूटी हैं
रंजित करती है जैसी जिस नई धमेली को गुद से
कौन जानता है कि उसी तम में जाकर छिपना होगा?
या फिर कोमल विधुकर उसकी मीठी नींद सुला देंगे।[2]

आलोच्य कवियों के काव्य में अतुकान्त छन्दों के विभिन्न रूप मिलते हैं। इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग निराला की अपेक्षा प्रसाद ने अधिक किया है। कारण, निराला छन्दों के बन्धन से मुक्त काव्य-रचना में संलग्न थे। वे छन्द विधान में व्यापकता के आग्रह को स्वीकार करने के पक्षपाती थे। उनके शास्त्रीय नियमों के प्रति उदासीन ही नहीं विरोधी भी थे। हो सकता है कि हिन्दी काव्य के लिए निराला ने छन्दों के शासन से अलग हो जाने की जो बात कही है उसकी प्रेरणा उन्हें अतुकांत छन्दों से ही मिली हो। आलोच्य कवियों ने वर्णिक छन्दों की भाँति अतुकांत छंदों का प्रयोग भी न्यूनाधिक मात्रा में किया है।

<u>मुक्त-छन्द :</u> आधुनिक हिन्दी साहित्य में महाकवि निराला ने तुक विहीन अतुकांत छंदों से परे रूढ़िगत नियमों की कारा से पूर्णतः मुक्त स्वच्छन्द (मुक्त) छन्द को अपनी रचनाओं में व्यवहृत किया। हिन्दी में मुक्तछन्द के अभ्युदय का श्रेय निराला को ही देना चाहिए। भावप्रवणता के अनुरूप संकुचित प्रसारित तथा अन्त्य बंधन से विनिर्मुक्त यह मुक्त छन्द हिन्दी साहित्य के लिए अवश्य नवीन है किन्तु भारतीय वैदिक साहित्य,

---

१- निराला : अपरा (भगवान बुद्ध के प्रति) पृ० १६२।
२- प्रसाद : प्रेम पथिक, पृ० १।

बंगला साहित्य तथा पाश्चात्य साहित्य में इसका मूल उत्स विद्यमान है। निराला ने स्वयं मुक्तछन्द का मूल वेदों में खोजते हुए गायत्री मंत्र को प्राचीन साहित्य की उन्मुक्त प्रवृत्ति का परिचायक बताया है।[1] मुक्तछन्द अंग्रेजी भाषा के 'फ्रीवर्स' (Free Verse) और फ्रांसीसी भाषा के वर्स लेब्रे (Verse Lebre) का प्रतिरूप है। पाश्चात्य साहित्य में गुस्टाव कान्स तथा वाल्टव्हिटमैन ने सर्वप्रथम इस छन्द का प्रयोग किया है। बंगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ टैगोर, माइकेल मधुसूदन दत्त तथा अन्य परवर्ती कवियों द्वारा भी यह छन्द प्रयुक्त हुआ है। किन्तु हिन्दी साहित्य में इसके सूत्रपात का श्रेय आधुनिक कवि निराला को ही मिला है। निराला द्वारा अविच्छिन्न छन्द रूढ़ियों से विरहित, भावना द्वारा अनुशासित तथा लयावेष्ठित इस नूतन छन्द पर 'फ्री वर्स' आदि का प्रभाव भले ही स्वीकार कर लिया जाय पर इसके भारतीय होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। यह वैदिक काल से प्रयुक्त होनेवाले मुक्त छन्द का ही विकसित तथा स्वच्छ रूप है।[2] इसके आधुनिक स्वरूप में आंशिक योग अंग्रेजी तथा बंगला छन्दों का भी है, यह मानने में विशेष आपत्ति न होनी चाहिए।

निराला के अनुसार 'मुक्त छन्द वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है। -------- मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है, उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति।'[3] अतएव मुक्त छन्द वह छन्द विशेष है जो छन्द की भूमि पर प्रतिष्ठित होते हुए भी मात्रा, गण, यति, गति, अन्त्यानुप्रास आदि समस्त छान्दसिक रूढ़ियों से मुक्त है और संगीतात्मक लय अथवा प्रवाह की सुदृढ़ नींव पर अपना स्वरूप निर्माण कर अन्तर्निहित माधुर्य और प्रवाह से सहृदय को अभिभूत करता है। इस प्रकार वह केवल प्रवाहमय संगीत के लयात्मक अनुबन्ध को स्वीकार करता है। वास्तव में मुक्त छन्द , छन्द से मुक्ति का द्योतक न होकर छन्द के नियम राहित्य का सूचक है। छन्द के नियमों से रहित मुक्त छन्द उतना ही सरस, आकर्षक और मर्मस्पर्शी होता है जितना कि पूर्व प्रचलित शास्त्रीय छन्द। छन्द भी जिस तरह कानून के अन्दर सीमा के सुख में आत्म-विस्मृत हो सुन्दर नृत्य करते, उच्चारण की शृंखला रखते हुए श्रवण-माधुर्य के साथ ही साथ श्रोताओं को सीमा के आनन्द में भुला रखते हैं। उसी तरह मुक्त छन्द भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है, जैसे एक ही अनन्त महासमुद्र के

१- निराला : परिमल (भूमिका) पृ० १२-१५।
२- वही, पृ० १२।
३- निराला : परिमल (भूमिका) पृ० १८।

हृदय की सब छोटी-बड़ी तरंगे हों, दूर-प्रसरित दृष्टि में एकाकार एक ही गति में उठती और गिरती हुई।[1]

हिन्दी साहित्य में मुक्तछन्द और अतुकांत छन्द को अभिन्न माननेवाली अवधारणा भी प्रचलित हुई। किन्तु ये दोनों छन्द अन्त्यानुप्रास के बंधन से स्वतन्त्र होते हुए भी एक नहीं हैं। कारण अतुकान्त छन्द अन्त्यानुप्रास मुक्त तथा लयानुकूल स्वरूप धारण करने के बाद भी शास्त्रीय नियमों से अनुशासित होता है। वह वर्णिक, मात्रिक तथा गणवृत्तों में रचा जाता है, जबकि मुक्त मुक्त छन्द अन्त्यानुप्रास मुक्त होने के साथ ही छन्द के शास्त्रीय नियमों - मात्रा-क्रम, यति-गति, गुरु-लघु, गण आदि से मुक्त होता है। वह भावानुप्रवाही होता है। उसकी गति स्वच्छन्द होती है और वह भावानुकूल गति विधान पर आधारित होता है। अतएव मुक्त छन्द, छन्द के समस्त नियमों से रहित होता है क्योंकि जहां मुक्ति रहती है वहां बंधन नहीं रहते। न मनुष्यों में, न कविता में -------- ऊपर जितने अतुकान्त काव्य के उदाहरण दिये गए हैं, सब एक सीमा में बंधे हुए हैं, एक-एक प्रधान नियम सब में पाया जाता है। गणवृत्तों में गण की श्रृंखला मात्रिक वृत्तों में मात्राओं का साम्य, वर्णवृत्तों में अक्षरों की समानता मिलती है। कहीं भी इस नियम का उलंघन नहीं किया गया। इस प्रकार के दृढ़ नियमों से बंधी हुई कविता कदापि मुक्त छन्द नहीं हो सकती।[2] निराला जी का यह कथन मुक्त छन्द और अतुकांत छन्द को एकरूप मानने वाली भ्रांति का निराकरण करने के लिए पर्याप्त है। हिन्दी में मुक्त छन्द का जन्म अतुकांत छन्द के पूर्ण विकसित हो जाने के बाद हुआ है। अतएव दोनों को अभिन्न मानना भ्रम है।

पश्चिमी साहित्य में मुक्त छन्द को व्यवहृत करने का जो महान् कार्य गुस्टाव कान तथा वाल्ट व्हिटमेन के द्वारा सम्पन्न हुआ वही जटिल कार्य हिन्दी में अनेक बाधाओं के अनन्तर निराला द्वारा हुआ। मुक्तछन्द की स्थापना का पूर्ण श्रेय महाकवि निराला को है। पंत ने 'पल्लव की भूमिका' में जिन कविताओं को मुक्तछन्द की श्रेणी में परिगणित किया था। उनकी भ्रांति का निराकरण निराला तथा अन्य

१- निराला : परिमल (भूमिका) पृ० १९।

२- वही, पृ० १९।

परवर्ती आचार्यों द्वारा प्रस्तुत किया जा चुका है जिसके परिप्रेक्ष्य में निराला को ही इसका प्रवर्तक मानना अधिक समीचीन होगा । पंत जी की परवर्ती रचनाएं अवश्य मुक्त छन्द में संग्रथित हैं किन्तु उससे पहले निराला द्वारा ' जुही की कली ' लिखी जा चुकी थी ।'

निराला ने मुक्तछन्द के आधार पर विश्लेषण करते हुए बताया कि ' हिन्दी में मुक्त-काव्य कवित्त छन्द की बुनियाद पर सफल हो सकता है ।[1] उन्होंने कवित्त व्याधार पर आवेष्ठित मुक्त छन्द में अन्तर्निहित प्रवाह के कारण उसमें ' आर्ट आफ़ रीडिंग ' के आनन्द को मानते हुए रंगमंच के लिए उसकी उपादेयता को सिद्ध किया है ।

प्रसाद और निराला द्वारा रचित मुक्तछन्द को मूल्यांकन की सुविधा के लिए वर्णिक तथा मात्रिक व्याधार में विभक्त करना अधिक समीचीन होगा ।

<u>वर्णिक व्याधार</u> : आलोच्य कवियों ने मुख्यतः वर्णिक व्याधार (कवित्त) पर ही मुक्त छन्दों की रचना की है । ३१ वर्णों वाले कवित्त या मनहारी छन्द का प्रथमांश १६ तथा द्वितीयांश १५ वर्ण का होता है । यह ८,८,८,७ के क्रम से चार वर्णात्म खण्डों में विभाजित होता है । इस छन्द में ३,४,७,८,११,१२,१५ तथा १६ वर्णों का विधान होता है और ५,६,९,१०,१३ तथा १४ वर्ण या अक्षर पूर्णतः वर्जित होते हैं । कवित्त व्याधार पर प्रसाद रचित कुछ पंक्तियाँ यहाँ पर उद्धरण रूप में प्रस्तुत की जा रही है-

मेरे उस यौवन के मालती मुकुल में — १५ वर्ण
रन्ध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें — १५ ,,
उसे उकसाने को - हंसाने को । — ११ ,,
पागल हुई मैं अपनी ही मृदुगन्ध से — १५ ,,
कस्तूरी मृग जैसी — ७ ,,
पश्चिम जलधि में — ७ ,,
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान — १६ ,,
लहरें उठती थी मानो चूमने को मुझको — १६ ,,
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर[2] — १५ ,,

१- निराला; परिमल (भूमिका) पृ० १९ ।

२- प्रसाद : लहर (प्रलय की छाया) पृ० ६५-६६ ।

इसमें कवि ने १५ और १६ वर्णों की यति से ३१ वर्णवाले कवित्त छन्द के रूप का निर्वाह किया है। सभी पंक्तियां वर्णिक रूप-निपात पर खरी उतरती हैं। इसी आधार पर उनकी दूसरी रचनाएं भी मिलती हैं -

अरुण करुण बिम्ब	८ वर्ण
वह निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिण्ड	१५ ,,
विकल विवर्तनों से	८ ,,
विरल प्रवर्तनों से	८ ,,
श्रमित नमित सा	७ ,,
पश्चिम व्योम में है आज निरवलम्ब सा	१५ ,,
आहुतियां विश्व की अजस्त्र लुटाता रहा	१६ ,,
सतत सहस्त्र कर माला से	११ ,,
तेज ओज बल जो वदान्यता कदम्ब सा	१५ ,,
पेशोला की उर्मियां हैं शान्त घनी छाया में	१५ ,,
तट तरु है चित्रित तरल चित्रसारी में	१५ ,,
झोपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के	१५ ,,
दग्ध अवसाद से	७ ,,
धूसर जलद खण्ड । भटक पड़े हैं	१४ ,,
जैसे । विजन अनन्त में ।[१]	६ ,,

इस उद्धरण की समस्त पंक्तियां, वर्णिक आधार के लिए निर्दिष्ट वर्ण खण्डों के अनुकूल हैं, केवल १४ और ६ वर्णवाली पंक्तियां अपवाद मानी जाएंगी। किन्तु उनमें यदि ६ वर्ण और २ वर्ण को एक खण्ड में मिला लिया जाय तो ८ वर्णों का एक खण्ड बन जाएगा और इस प्रकार अपवाद की निवृत्ति हो जाएगी। इस कोटि में प्रसाद की इन दो कविताओं के अतिरिक्त तीसरी लहर में संकलित 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' को भी परिगणित किया जाता है। मुक्त छन्द में प्रसाद जी ने लहर की अन्तिम तीन कविताएं रची हैं।

१- प्रसाद : लहर, पृ० ६२।

प्रसाद के सम्पूर्ण काव्य में जहाँ कुछ ही कविताएँ मुक्तछन्द में रचित मिलती हैं। वहीं निराला के काव्य का अधिकांश भाग मुक्त छन्दों में निर्मित हुआ है। कविता-वनिता के नैसर्गिक शृंगार एवं सौन्दर्य के पक्षपाती कवि निराला ने सन् १९१६ में सर्वप्रथम अनेक कठिनाइयों एवं विरोधों के उपरान्त भी छन्द के पाश से उन्मुक्त मुक्त छन्द में 'जुही की कली' को प्रस्तुत किया है।[1] कवि ने इस की रचना वर्णिक आधार पर करने के बाद भी मुक्त छन्द के मूल-तत्व प्रवाहमानता में पूर्ण स्वच्छन्दता बरती है।

निराला ने वर्णिक आधार पर अनेकों कविताएँ रची हैं जिनमें भावानुकूल गति तथा यति दृष्टव्य है -

बँधी हुईं युग से ही	८ वर्ण
देखने लगी मैं फिर	८ ,,
फिर प्रथम पृथ्वी को,	८ ,,
भाव बदला हुआ -	७ ,,
पहले की घन-घटा वर्षण बनी हुई	१५ ,,
कैसा निरंजन यै अंजन आ लग गया।[2]	१५ ,,

यहाँ पर समस्त वर्णों का विधान कवित्त छन्द के आधार पर हुआ है किन्तु इसी 'प्रेयसी' कविता की कुछ पंक्तियाँ अपवाद रूप में भिन्न-भिन्न वर्णों से नियोजित मिलती हैं। इसी छन्द के आधार पर निराला ने इस कविता की भी रचना की है, यथा -

हाय री सुहाग का	७ वर्ण
मान ले प्रारब्ध प्रिय-प्रणय निवेदन का	१६ ,,
मन्द हास मृदु वह	८ ,,
सवा-जागरण -सा	८ ,,
धावन वह चेतना की लालसी	१४ ,,
अरुण किरणों में समा गई।[3]	११ ,,

१- निराला : परिमल, पृ० २०१।
२- ,, : अपरा (प्रेयसी) पृ० १२५।
३- ,, : परिमल, पृ० २०३।

इस छन्द की पाँचवीं पंक्ति (१४ वर्ण) को छोड़कर अन्य सभी पंक्तियाँ कवित्त-लयाधार का समर्थन करती हैं।

मात्रिक लयाधार : वर्णिक पर्वों (लय खण्डों) की ही भाँति मात्रिक पर्व (लय खण्ड) भी गिनाए गए हैं। आचार्य भानु ने ६ मात्राओं (टगण) ५ मा०(ठगण) ४ मा० (डगण), ३ मा० (ढगण) तथा २ मा० (णगण) के द्वारा मात्रिक पर्वों का बोध कराया है। किन्तु छायावाद में मात्रिक लयाधार में अष्टक आठ मात्राओं वाले लय खण्डों का प्रयोग भी किया गया है। इस प्रकार २,३,४,५,६,७ तथा ८ मात्राओं के लय खण्डों को आधार बनाकर मुक्त छन्द की रचना की गई है। उदाहरणार्थ स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है -

मेरे अन्तर | मैं आते हो | देव निरंतर	८,८,८	मात्राक्रम
कर जाते हो | व्यथा भार लघु	८,८	,,
बार-बार कर | कंज करों पर	८,८	,,
अन्धकार में | मेरा रोदन	८,८	,,
सिक्त धरा के | अंचल को	८,६	,,
कर | ता है क्षण-क्षण	२,८	,,
कुसुम कपोलों | पर वे लोल शि|शिर कण	८,८,४	,,
तुम किरणों से | अश्रु पोंछ ले|ते हो	८,८,४	,,
नव प्रभात जी | वन में भर दे|ते हो |[१]	८,८,४	,,

यहाँ पर कवि ने अष्टमात्रिक पर्व-लय खण्ड का आश्रय लिया है। किन्हीं-किन्हीं पंक्तियों में अष्टक का आधा या चौथाई अंश भी आ गया है। प्रस्तुत उद्धरण में सममात्रिक चौपाई छन्द का स्पष्ट प्रवाह मिलता है।

निराला के मुक्त छन्द में सप्तमात्रिक पर्व (सप्तक) का लयाधार -

वह तोड़ती | पत्थर	(पूर्णांक) ७,४ मात्रा
देखा उसे | मैंने इला|हाबाद के पथ पर	(पू०) ७,७,७,४ ,,
वह तोड़ती | पत्थर |	७,४ ,,

१- निराला : परिमल (भर देते हो) पृ० १११।

नहीं छाया । दार	(पृ०) ७, ३ मात्रा
पेड़ वह जिस । के तले बैठी हुई स्वी । कार	,, ७, ७, ७, ३ ,,
श्याम तन, भर बँधा यौवन ।	७, ७ ,,
नत नयन, प्रिय । कर्म-रत मन ।	७, ७ ,,
गुरु हथौड़ा । हाथ[1]	७, ३ ,,

इस उद्धरण में कवि ने सप्तक का संयुक्त प्रयोग किया है । कवि ने ७ मात्राओं का विधान SSIS , SISS तथा ISSS के क्रम में अपनी स्वेच्छानुसार किया है । साथ ही इसकी प्रमुख विशेषता यह भी है प्रस्तुत कविता प्रवाहमान कम, पूर्णता ही अधिक है । इसमें अन्त्यानुप्रास की योजना भी मिलती है । इस कविता की अन्त्यानुप्रास योजना तथा प्रवाहमानता की मन्थर गति एक बार इसके मुक्त स्वरूप में बाधक लगती है किन्तु इसके अन्य समस्त विधान इसे मुक्त छन्द की ओर ही खींचते हैं ।

मुक्तछन्द में 'आर्ट आफ रीडिंग' को उपयोगित करनेवाले कवि की रचनाओं का मूल्यांकन 'आर्ट आफ रीडिंग' की पृष्ठभूमि पर करना अनिवार्य है । मुक्त छन्द लय-प्रधान है । लय तथा प्रवाह ही उसका नित्य धर्म है । मुक्त छन्द में भी वर्ण तथा अनुप्रास की अनुरूपता कभी-कभी मिल जाती है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि इसमें प्राप्त साम्य अथवा अनुरूपता नियमबद्ध हो । इस दृष्टि से निराला के मुक्त छन्द की पाठ्यकला निम्नलिखित कविता में द्रष्टव्य है :-

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी, स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल कोमल तनुतरुणी जुही की कली ।[2]

यहाँ पर प्रथम पंक्ति का लय साम्य तृतीय पंक्ति के पूर्वार्ध से है और द्वितीय पंक्ति के पूर्वार्ध - सोती थी सुहागभरी का साम्य तृतीय पंक्ति के अन्तिम अंश तरुणी जुही की कली से है । अतः ऐसे छन्दों का पाठ, लयसाम्य स्थापित कर उसके सुपाठ्यकला पर निर्भर करता है । अतः 'विजन वन वल्लरी पर' पंक्ति को

१- निराला : अनामिका (वह तोड़ती पत्थर) पृ० ७९ ।

२- ,, : परिमल, पृ० १७१ ।

कुछ रुक-रुककर उच्चरित करना होगा और इस पंक्ति में विजन का 'न' हलन्त पढ़ना होगा। विजन वन के बाद क्रमशः स्वल्प विराम होगा। फिर विजन वन वल्लरी में 'री' पर रुक देना होगा। इसके पश्चात् दूसरी पंक्ति में लय परिवर्तन होगा और इस पंक्ति की गति आहिस्ता-आहिस्ता होगी और तृतीय पंक्ति में पहुंच कर अमल का 'ल' हलन्त उच्चरित होगा और अमल के पश्चात् कोमल में 'लो' का उच्चारण कुछ जोर से होगा तथा अमल कोमल में 'ल' पर थोड़ा विश्राम और फिर 'अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली' चरण का पाठ मन्थर गति में पूर्ण होगा। लय-प्रवाह ठीक बनाए रखने के लिए मुक्तछन्द में सम तथा विषम चरणों का संयोग अनवरत बना रहता है। इसी से निराला जी ने मुक्तछन्द में 'आर्ट आफ रीडिंग' को महत्त्व प्रदान किया है और साथ ही उसे रंगमंच के उपयुक्त सिद्ध किया है।

निराला के अनुसार 'इसकी उपयोगिता रंगमंच पर सिद्ध होती है। इस मत के पोषक कवि ने अपनी रचनात्मक क्षेत्र में वर्णिक लयाधार पर 'पंचवटी प्रसंग' नाट्य गीति को प्रस्तुत किया। पाठ्यकला पर आश्रित इस रचना की महत्ता रंगमंच पर सिद्ध होती है यथा -

लौटे हैं घर की लघु सीमा में	११ वर्ण
बंधे हैं क्षुद्रभाव	७ ,,
यह सच है प्रिये	७ ,,
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है	१२ ,,
सदा ही निःसीम भू पर	९ ,,
प्रेम की महोर्मि-माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट	१६ ,,
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोभाव	१६ ,,
तृण सम बह जाते हैं।[1]	९ ,,

कवि ने इन पंक्तियों को सुपाठ्य बनाने तथा रंगमंच पर अभिनीत करने के ध्येय से कवित्त छन्द के लय-निपात तथा प्रवाहात्मकता का आश्रय लिया है। ये पंक्तियां यथावसर प्रवाह का सफल उदाहरण हैं। प्रवाह की रक्षा हेतु उच्चारण में पूर्ण स्वतन्त्रता बरती गई है।

१- निराला : परिमल, पृ० २२४।

इस प्रकार निराला द्वारा रचित इस कोटि की समग्र रचनाएं मुक्त छन्द की विशिष्टताओं से परिपूर्ण हैं। जहां तक मुक्त छन्द की रचना में सफलता का प्रश्न है वह निराला के पश्चात् प्रसाद जी को ही प्राप्त हुई है, भले इस छन्द में उनकी लहर में संकलित कुछ ही रचनाएं मिलती हों। मुक्त छन्द विशेषज्ञ कवि निराला की यह धारणा दृढ़ हो चुकी थी कि सहज व अकृत्रिम भावाभिव्यक्ति के लिए मुक्त छन्द ही उचित है और उसी के माध्यम से कविता का नैसर्गिक सौन्दर्य अक्षुण्ण रह सकता है।

उर्दू से प्रभावित छन्द-योजना

अतिन काव्य प्रतिभा से सम्पन्न आलोच्य कवि भी अपने चतुर्दिक वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। परिणामत: उनके छन्द-विधान पर उर्दू के गज़ल, ख्याल, रुबाई, मसनवी, कसीदा आदि का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उसे विस्तार से हम पिछले अध्याय में प्रगीत और गीत के प्रसंग में विवेचित कर चुके हैं। अपने पूर्व कथन की पुष्टि के लिए कुछ प्रमुख छन्दों का, जिनसे ये कवि विशेषत: प्रभावित हुए, विवेचन करेंगे। गज़ल और रुबाइयों के प्रति इन कवियों की रुचि अधिक मिलती है। दोनों कवियों ने उर्दू छन्दों को ग्रहण तो अवश्य किया किन्तु उसके प्रस्तुतीकरण में हिन्दी के पिंगलशास्त्र का भी अवलम्ब लिया है।

छन्द विधान में कवि कौशल का स्पष्ट आभास होता है। प्रसाद जी के इस कोटि के छन्दों में सरसता तथा गीतात्मकता है। उन्होंने उर्दू के वज़न पर मन्दिर महाक्रीड़ा, सरोज, पतित-पावन, मोहन आदि कविताओं की रचना की है।[१] गज़ल की छन्दयोजना पर आश्रित प्रसाद का यह गीत अत्यधिक सुन्दर बन पड़ा है यथा-

> विमल इन्दु की विशाल किरणें
> प्रकाश तेरा बता रही है
> अनादि तेरी अनंत माया
> जगत को लीला दिखा रही है।[२]

यहां पर उर्दू की बहर फऊल फाऊलुन फऊल फाऊलुन फऊल फाऊलुन फऊल फाऊलुन का आधार ग्रहण किया गया है फिर भी इस छन्द का प्रथम

१- प्रसाद : काननकुसुम, पृ० ५,६,३८,४५,७८।
२- वही, पृ० १।

चरण चार चौकलों में विभक्त है और दूसरा चरण अरिल्ल के (SS) मात्राक्रम से निर्मित है। इसका आशय यह है कि उर्दू छन्द को भी कवि ने पिंगल शास्त्रीय विधान के अनुरूप ही ढाल लिया है गज़ल के वज़न पर ही प्रसाद का यह गीत भी देखा जा सकता है -

स्वजन दीखता न विश्व में अब, न मित्र अपना दिखाय कोई
पड़ी अकेली विकल रो रही, न दुख में है सहाय कोई
पलट गये दिन सनेह वाले, नशा न अब तो रही न गर्मी
न नींद सुख की न रंगरलियाँ, न सेज उजली बिछाय कोई[1]

प्रसाद जी को गज़ल की रचना में विशेष सफलता मिली है और यह उर्दू का छन्द भी उन्हें प्रिय भी बहुत रहा है। इसके प्रथम दो चरण तो सममात्रिक एवं अन्त्यानुप्रास युक्त होते हैं और फिर बाद के चरण भिन्न तुकांत लिखे जाते हैं। गज़लों की योजना निराला -काव्य में भी अधिकता से उपलब्ध है। उदाहरण के लिए उनका निम्नलिखित गीत देखा जा सकता है -

किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं।
जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने
वही सूत तोड़े लिये जा रहे हैं।[2]

उर्दू छन्द शास्त्र की कसौटी पर यह गीत पूर्णतः खरा उतरा है इसमें वह की जगह 'व' का प्रयोग उर्दू के अनुकूल है इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में 'को' का उच्चारण दीर्घ न होकर ह्रस्व हुआ है जो उर्दू के अधिक नज़दीक का है। निराला जी ने उर्दू शैली के ग्रहण की बात को स्पष्टतः स्वीकार किया है नयी बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गज़लें भी हैं जिनमें उर्दू के छन्दःशास्त्र का निर्वाह किया गया है।[3] गज़लों के अतिरिक्त आलोच्य कवियों के काव्य में रुबाइयाँ भी मिलती हैं।

गज़ल की अपेक्षा रुबाइयों का विधान इन कवियों के काव्य में कम हुआ है। चार चरणों से निर्मित रुबाइयों का सुन्दर प्रयोग प्रसाद के काव्य में मिलता है।

१- प्रसाद : चन्द्रगुप्त (तृतीय अंक)   २- निराला : बेला ,पृ० ६८।
३- निराला : बेला (आवेदन)।

न छोड़ पागल मधुर प्रेम को
न तोड़ना और के नेम को
बचा विरह मौन के क्षेम को
कुचाल अपनी सुधार कीजिए[१]

'फ़ाइलुन फ़ेलुन' अरकान तरकीब से रचित यह छन्द उर्दू तथा हिन्दी कवियों को सर्वाधिक प्रिय रहा है। कभी-कभी कई रुबाइयाँ मिलकर मुक्तक काव्य की दशा को प्राप्त हो जाती हैं। ऐसी ही कई रुबाइयों का सम्मिलित रूप निराला के काव्य में भी मिलता है। उर्दू रुबाई की शैलीगत विशिष्टता से युक्त निराला की यह रचना द्रष्टव्य है -

मदभरे ये नयन मलीन हैं
अल्पजल में या विकल लघुमीन हैं
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं।[२]

इसके चार मिसरों में से प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ सानुप्रास तुकान्त हैं, वे एक ही क़ाफ़िये में रचित हैं और तीसरे मिसरे का काफ़िया फ़र्क़ है। रुबाइयों का प्रयोग निराला के 'बेला' काव्य संग्रह में अधिक मिलता है। यथा-

बदली जो आँखें, इरादा बदल गया।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया।
यह टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी, मगर
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया।[३]

इस प्रकार प्रसाद और निराला ने उर्दू छन्दों से प्रभावित होकर हिन्दी में नूतन छन्दों की रचना की है किन्तु ऐसे प्रयोग अत्यल्प ही हैं। उर्दू के वज़न पर रचित कविताओं के शब्द तथा छन्द दोनों ही उर्दू के अनुकूल मिलते हैं। किन्तु इन छन्दों में वह निखार तथा लय सौन्दर्य नहीं आ पाया जो उर्दू के वज़न में मिलता है। फिर भी हिन्दी कवियों द्वारा उर्दू छन्दों विधान का प्रयास सराहनीय है।

१- प्रसाद : स्कन्दगुप्त (प्रथम अंक) पृ० १५।
२- निराला : परिमल, पृ० ७५।
३- ,, : बेला, पृ० ६१।

प्रसाद और निराला के काव्य में प्रयुक्त छन्दों के परिशीलन से यह निश्चित हो जाता है कि उनका काव्य छन्द-शिल्प की प्रौढ़ता, नवीनता तथा प्रयोगों की विविधता से परिपूर्ण है। दोनों कवियों के काव्य में परम्परागत छन्दों के विधान से लेकर अधुनातन नूतन छन्दों के सुनियोजित रूप उपलब्ध होते हैं। यह तथ्य है कि महाकवि प्रसाद के काव्य में अभिनव मौलिक छन्दों की अपेक्षा उनकी अभिरुचि के अनुकूल शास्त्रीय छन्दों का यथावत या कुछ परिवर्तित प्रयोग अधिक मिलता है। इसके विपरीत नूतनता के आग्रही कवि निराला के काव्य में शास्त्रीय छन्दों की अपेक्षा नूतन मौलिक छन्दों का विधान अधिक मिलता है, किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं कि प्रसाद के काव्य में नूतन छन्दों का और निराला के काव्य में शास्त्रीय छन्दों का अभाव है। दोनों कवियों के काव्य में शास्त्रीय तथा नूतन छन्दों का विधान हुआ है। आलोच्य कवियों को शास्त्रीय छन्दों का अपूर्व ज्ञान था, उन्होंने पारम्परिक छन्दों की रचना भी की है किन्तु, विविध परिवर्तनों के साथ अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के अनुकूल। दोनों कवियों ने रूढ़िबद्ध वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। कारण यह छन्द उनकी काव्यभाषा के अनुकूल अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। मात्रिक छन्द के सम, अर्द्धसम तथा विषम छन्दों का विधान दोनों कवियों ने बहुतायत रूप में किया है। कहीं-कहीं अपवाद स्वरूप वर्णिक और मात्रिक छन्दों का यौगिक रूप भी इनके काव्य में मिलता है। जो मूलतः उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचायक है। यही कारण है कि प्रसाद तथा निराला के छन्द परम्परागत छन्दः शास्त्र की नियमबद्ध परिधि में पूर्णतः नहीं आ पाते और अपने मूल स्वरूप से थोड़ा भिन्न हो जाते हैं।

प्रसाद और निराला को छन्द की अन्तरात्मा 'लय' का पूर्ण ज्ञान था। अतएव लय एवं ताल तथा राग एवं भाव के अनुकूल छान्दसिक विधान करना इनके लिए अत्यधिक सहज तथा सरल था और यही इनके काव्य की अतिरिक्त विशिष्टता सिद्ध हुई। प्रसाद तथा निराला ने भावों के संकोच और विस्तार, उत्थान और पतन के अनुरूप जिस कुशलता से छन्द योजना की उसमें छन्दों की रूढ़िबद्धता स्वतः बहिष्कृत हो गई। इनका ध्यान केवल भाव और भाषा के सामंजस्य पर ही केन्द्रित था, विशेषतः महाकवि निराला जो मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति के आकांक्षी थे, छन्द के पाश खोलने में मनोमस्तिष्क से लग गए। उन्हें इस दिशा में अनेकों बाधाओं

से बावजूद सफलता भी मिली । उनके मात्रा-क्रम, यति-गति, अन्त्यक्रम की विनिर्मुक्ति से निर्मित इस प्रकार के छन्दों को मुक्त छन्द की संज्ञा से अभिहित किया गया । निराला जी का यह मुक्त छन्द संश्लिष्ट एवं आवेगपूर्ण भाव श्रृंखलाओं के प्राकट्य में विशेष सहायक हुआ । कारण यह छन्द की आत्मा 'प्रवाहमानता' को लेकर चला था । छन्द-शिल्प के क्षेत्र में निराला की यह अपूर्व सिद्धि केवल हिन्दी के आधुनिक युग की चरम उपलब्धि न होकर हिन्दी के सम्पूर्ण काव्य जगत के लिए प्रशंसा तथा गौरव की वस्तु है ।

कवि प्रसाद और निराला ने अपने गंभीर तथा तीव्र, कोमल तथा मसृण, संकुचित तथा प्रसरित भावों की अभिव्यक्ति के यथानुरूप प्राचीन शास्त्रीय छन्दों तथा नूतन मौलिक छन्दों का विधान किया है । इन कवियों ने वर्णिक मुक्तकों को गीत रूप प्रदान करने, सम छन्दों को अर्धसम रूप देने, नवीन सम तथा अर्धसम छन्दों के कुशल विन्यास, यति तथा अन्त्यक्रम विपर्यय, शास्त्रीय छन्दों के आधार पर नूतन छन्दों की रचन रचना, शास्त्रीय छन्दों का अतुकान्त प्रयोग, छन्द के बन्धनों से स्वतन्त्र नवीन मुक्त छन्द तथा उर्दू के गजल, रुबाइयां बहर आदि का सुसंस्कृत तथा परिमार्जित रूप प्रस्तुत करने का जो सफल प्रयास किया है वह हिन्दी साहित्य तथा काव्य रसिकों के लिए अविस्मरणीय है । प्रसाद और निराला के पूर्व द्विवेदी जी संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला तथा उर्दू की ही भांति हिन्दी काव्य में भी अभिनव कोटि के छन्दों के प्रवर्तन तथा प्रतिष्ठापन की आकांक्षा कर रहे थे[1] किन्तु उसकी पूर्ति प्रसाद तथा निराला आदि के द्वारा ही सम्भव हो सकी । इन कवियों ने काव्य-शिल्प के इस प्रमुख उपकरण में जो महत्वपूर्ण प्रयोग किये और नूतन उपलब्धियां कीं वे हिन्दी साहित्य में एक और अध्याय की वृद्धि करने के लिए पर्याप्त हैं ।

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी : रसज्ञ-रंजन (कवि कर्तव्य) पृ० १३-१७ ।

उ प सं हा र

उ प सं हा र

निष्कर्षत: काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति का समन्वित रूप है । कवि अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए जिन मूर्त उपकरणों का आश्रय लेता है वे काव्य-शिल्प के प्रमुख तत्त्व नाम हैं । अनुभूति के प्रकाशन का ढंग ही शिल्प है । काव्य-शिल्प विधान के प्रसंगगत तुलनात्मक विवेचन से निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि युग की प्रमुख प्रवृत्तियों से प्रभावित, सामयिक जीवन स्थितियों से अनुप्राणित तथा जीवन और जगत के शाश्वत सत्य से परिचित प्रसाद और निराला का काव्य युग-बोध, वैयक्तिकता, सौन्दर्य भावना, मानवता, वेदना, करुणा, आत्माभिव्यंजना तथा चिंतन से पूर्ण है । किंतु विषय के प्रस्तुतीकरण का ढंग आलोच्य कवियों की निजी विशिष्टताओं से उद्भूत है । फिर भी, इनके शिल्प-विधान में विरोध नहीं मिल पाता । कारण, दोनों ही कवि न तो केवल भावनावादी हैं और न केवल कलावादी । दोनों ही स्वानुभूति तथा वस्तु विशेष को कलात्मक भूमि पर प्रस्तुत करने के पक्षपाती थे । दोनों ही काव्य और कला के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों के पारखी थे । उनमें सहज तथा स्वाभाविक अन्तर्बोध होने से विषय तथा अभिव्यक्ति प्रकाशन की नवीनता, संतुलन, अर्थगाम्भीर्य तथा मर्यादित बहुरूपता मिलती है ।

प्रसाद और निराला की अद्भुत शिल्प क्षमता विविध काव्य-रूपों की संरचना में समर्थ रही है । दोनों कवियों ने प्रगीत, मुक्तक तथा प्रबंध शिल्प में अपनी जिस मौलिकता का परिचय दिया है वह उनके काव्य की ही नहीं वरन उनके समस्त युग की गौरवपूर्ण उपलब्धि घोषित हुई । प्रसाद और निराला का प्रदेय प्रगीत शिल्प में अविस्मरणीय है । दोनों कवियों के प्रगीतों में जहां स्वच्छंद कल्पना, संवेदनशीलता, प्रवाहात्मकता, भावान्विति, प्रभविष्णुता, संगीतात्मकता, लयानुमोदन, भाषा की कोमलता तथा छंद रचना में समानता मिलती है वहीं वैयक्तिक, संकुल भावों की अभिव्यक्ति में कुछ विषमता भी है । दोनों के प्रगीत में वैयक्तिकता का स्वर मुखरित है । किन्तु जहां प्रसाद में अंतर्द्वन्द्व

तथा अतीत को लेकर व्यंजित विषादमय चित्रण की प्रधानता है वहीं निराला में गंभीर भावोद्रेक के साथ ही स्वस्थ, उल्लासपूर्ण तथा उदात्त वर्णनों की प्रमुखता है। प्रसाद के गीत वैयक्तिकता, भावप्रवणता, लौकिकता तथा रागात्मकता से युक्त है जिससे उनमें सुपाठ्य तत्त्व प्रमुख हो गया है और निराला के गीत भावसबलता स्वस्थप्रेम, प्रसन्नता तथा जनजास्था प्रधान है अतएव उनमें गेय तत्त्व प्रमुख हो गया है। दोनों कवियों ने प्रगीत-विन्यास में अन्त: तथा बाह्य संगीत पर बल दिया है जिससे इनके गीत संगीत और शिल्प के योग से कलापरक बन पड़े हैं। इनके प्रगीतों में भाव तथा अर्थ को व्यंजित करने की सुरुचिपूर्ण कला निहित है। दोनों कवियों ने प्रगीत के कलाप्रधान प्रकारों (सम्बोध गीति, पत्र गीति, चतुर्दशपदी, शोकगीति तथा गीत) का स्वाभाविक विन्यास किया है। प्रगीत की एक विशेषता संगीतात्मकता है, जिसके योग के लिए दोनों कवियों ने शब्द-संगीत, लय-निपात स्वर मैत्री तथा छंद संगीत पर विशेष बल दिया है। किंतु इन तत्वों में प्रसाद की अपेक्षा निराला अधिक सफल हुए हैं। प्रसाद के प्रगीतों में प्राप्त सौन्दर्य-चित्र क्लिष्ट तथा गंभीर है जबकि निराला के चित्र उच्छृंखल तथा उदात्त हैं किंतु इससे उनके प्रगीतों की सहजता एवं स्वाभाविकता को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचती। काव्य रूपों के समस्त प्रकारों में से प्रसाद और निराला का सब से अधिक योगदान प्रगीत शिल्प में ही रहा है।

अन्य काव्य रूपों की अपेक्षा मुक्तक शिल्प की रचना प्रसाद और निराला ने कम की है। कारण, काव्य संरचना में खड़ीबोली की अवतारणा, नूतनता के प्रति मोह, प्रगीत शिल्प के प्रति रुचि है। निराला की तुलना में प्रसाद ने अधिक मुक्तकों की रचना की है। प्रसाद ने परंपरागत मुक्तक शैली भी अपनाई और कुछ मौलिक ढंग से भी मुक्तकों की रचना की। किन्तु निराला ने कुछेक गिने-चुने छंदों में मुक्तक की रचना के अतिरिक्त अतुकांत तथा मुक्त छंदों में ही मुक्तक की भी रचना की जिसके प्रतिफलन स्वरूप मुक्तक शिल्प में निराला प्रसाद से ही नहीं समस्त परवर्ती कवियों से भिन्न प्रतीत होते हैं। प्रसाद ने भी बहुत अधिक मुक्तकों की रचना तो नहीं की किन्तु जितनी भी की है, उनमें से अधिकांश मुक्तक काव्य के अनिवार्य तत्वों से अनुरंजित है।

प्रसाद और निराला ने काव्य की प्रबन्ध विधा में उर्ध्वगत परिवर्तन किया। उन्होंने प्रबंध के चिरपरिचित रूप खण्डकाव्य तथा महाकाव्य के शिल्प-विन्यास को नूतन मोड प्रदान करने के अतिरिक्त कुछ ऐसी रचनाओं को भी प्रस्तुत किया जो मूलत: प्रबन्ध न होते हुए भी उनकी मौलिक विशेषताओं से उद्भूत होने के कारण प्रबंध रूपों के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती है। कथात्मक प्रसंग की गहनता, विषय-वस्तु की मार्मिकी, वस्तु वर्णन की उत्कृष्टता, सुविन्यस्त भावाभिव्यक्ति तथा संक्षिप्त आकार वाले विभिन्न लघु आख्यानक प्रबंधों की रचना कर प्रसाद और निराला ने काव्य की इस विधा को समृद्ध बनाया है। इस दिशा में निराला की अपेक्षा प्रसाद का अधिक योगदान है। प्रसाद ने ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली में अनेकों लघु कथाएं प्रस्तुत की हैं जिनमें से अधिकांश चित्राधार तथा काननकुसुम में संग्रहीत हैं। इस कोटि में परिगणित प्रसाद विरचित, प्रेमपथिक तथा निराला कृत राम की शक्ति पूजा शिल्प की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रसाद जी ने स्वगत कथन (मोनोलॉग) की शैली में शोक की चिंता, प्रलय की छाया, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण तथा सामान्य वीरगीत की शैली में पेशोला की प्रतिध्वनि जैसी आख्यानक गीतियों की कथात्मक रचना की है। इन गीतियों में समाविष्ट संवर्ग अन्त:कथित से नाटकीय स्थितियां आन्तरिक भावों के स्पष्टीकरण में सहायक है। इनमें छायावादी कला का उन्मेषकारी रूप उपलब्ध है। गूढ़ भावों की व्यंजना तथा चित्रोपम वर्णनों में भाषा प्रतीकात्मक तथा बिम्ब प्रधान हो गई है। अलंकार तथा छंद विधान की कला के क्षेत्र में नूतन उपलब्धि की है।

प्रसाद कृत प्रेम पथिक प्रबन्ध शिल्प के अनिवार्य तत्त्व कार्यावस्था, नाटकीयता, रसोद्रेक की क्षमता, शैली, अलंकार एवं छंद आदि की दृष्टि से पूर्णत: सफल है। यह छोटी सी आख्यायिका प्रसाद जी के भावी महाकाव्य कामायनी का बीज रूप है। यह संक्षिप्त रचना अपने में पूर्ण है। इसका शिल्प-विन्यास भी उत्कृष्ट कोटि का है। प्रबन्ध कोटि में परिगणित निराला की शक्ति पूजा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। शक्तिपूजा वास्तव में एक गाथा काव्य ही है किन्तु कवि ने उसे एक कथा काव्य की भूमि से परे हटाकर जो महाकाव्योचित

गाम्भीर्य प्रदान करना चाहा है उसके फलस्वरूप इसका शिल्प-विन्यास छायावादी शैली का उत्कृष्टतम उदाहरण बन गया । निराला की इस महानतम् कृति के प्रशस्त मार्ग को महाकाव्य के कुछ रूढ़िगत मानदण्ड यदि अवरुद्ध न करें तो इसका कथानक, नाटकीय विधान, रसनिष्पत्ति, भव्य तथा उदात्त शैली, मूर्तिविधान, सुकोमल तथा विराट चित्रमयता, अप्रस्तुत विधान, भाषा आदि महाकाव्य के अनुकूल है । इस रचना की मूलभूत विशेषता छोटे से गाथाकाव्य में महाकाव्यत्व का सन्निवेश है ।

आलोच्य कवियों ने प्रबन्ध काव्य के एक अन्य प्रमुख रूप काव्यरूपक को भी कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । प्रसाद कृत 'महाराणा का महत्व' एक ऐसा काव्य है जो विषय वस्तु को पाठक की मन:स्थिति में अभिनेय नाटकों की भांति चित्रित कर देता है । प्रसाद जी की यह नाट्य कविता नाटक और कविता के अनिवार्य शिल्पगत उपकरणों से सुसज्जित है । इसके अतिरिक्त कवि ने नाटकीय तत्व द्वंद्व को आन्तरिक रूप प्रदान करते हुए गीति नाट्य 'करुणालय' की रचना की है । इसमें भावप्रवणता, कोमलता, सस्वर संगीत विधान की प्रधानता है किन्तु ये समस्त तत्व नाटकीय विशेषता - दृश्यमयता, कार्यव्यापार, संघर्ष, संवादयोजना आदि के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हुए हैं । प्रसाद जी द्वारा रचित करुणालय अपने ढंग की एक ही रचना है । उनका कवि एवं नाटककार का रूप एक साथ मिलकर इस कृति को अनुपम रूप प्रदान कर सका है । प्रबंध रचना की यह विशेषता केवल प्रसाद में ही नहीं, निराला में भी दृष्टव्य है । निराला की 'पंचवटी प्रसंग' नाट्य गीति प्रगीततत्व प्रधान नाटकीय शैली में प्रस्तुत अत्यधिक कलापरक तथा प्रभावजनित रचना है । रामायण की इस घटना-प्रधान संक्षिप्त कथा को कवि ने नाटक की संवाद शैली में व्यक्त किया है । रस, छंद, अलंकार तथा प्रगीतात्मक तत्त्व इसके उत्कर्ष-विधायक गुण बनकर प्रयुक्त हुए हैं । इस प्रकार काव्य रूपक के विविध प्रकारों को दोनों कवियों ने अपने-अपने ढंग से काव्य रूप प्रदान किया है ।

अपनी स्वच्छंद रचना प्रवृत्ति के फलस्वरूप आलोच्य कवियों ने खण्डकाव्य के शिल्प-विन्यास में भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है । प्रसाद जी की प्रमुख रचना आंसू खण्डकाव्य की दिशा में किया गया एक नूतन प्रयोग है । आंसू में कथान्विति का समग्र प्रभाव परिलक्षित होता है । भावों तथा विचारों

की एकरूपता तथा तारतम्यता एक ओर जहाँ उसे खण्डकाव्यत्व प्रदान करती है वहीं उसकी छंद रचना की विशृंखलता उसे मुक्तक तथा आत्माभिव्यंजना की प्रधानता मार्मिकता, संगीतमयता, प्रवहमानता आदि उसे प्रगीत काव्य का रूप प्रदान करती है। आँसू का यह इन्द्रधनुषी रूप उसके रस रूप को विवाद का विषय बना देता है। फिर भी उसके इन समस्त रूपों में उसका प्रबन्धत्व ही प्रबल है। जहाँ तक आँसू के शिल्प-विन्यास का प्रश्न है, वह उसके विविध रूपों को सुपुष्ट बनाने में सक्षम है। खण्डकाव्य की दिशा में किया गया निराला जी का प्रयत्न भी सराहनीय है। निराला कृत 'तुलसीदास' का कलेवर प्राचीन और आधुनिक नवीन है। कवि ने इसमें तुलसीदास तथा रत्नावली की मन:स्थितियों का जो सजीव चित्रण किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। समस्त काव्य प्रतीकात्मक है। इसका अभिव्यंजना पक्ष भी प्रबल है। जीवन की प्रमुख घटनाओं को लेकर रचित 'तुलसीदास' काव्य की सर्ग-विहीनता तथा कथा विन्यास के आधार पर इसके खण्डकाव्यत्व पर संदेह प्रकट किया जाता है। किन्तु इसके कारण उसके महाकाव्योचित विस्तार की उपेक्षा नहीं की जा सकती, और न उसके खण्डकाव्यत्व की अवहेलना ही की जा सकती है।

आधुनिक काव्य-शिल्प में अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रसाद जी ने महाकाव्य में किया। उनकी कामायनी इस दिशा में उठाया गया अनुकरणीय चरण है। प्रसाद जी की यह कृति महाकाव्य की परंपरागत मान्यताओं के निर्वाह में असफल रही है। फिर भी वह महाकाव्य के सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त है। युग के केन्द्रीय भाव एवं जीवंत विकास से प्रभावित तथा महाकाव्योचित औदात्य से युक्त कामायनी अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसकी प्रमुख विशेषता भारतीय तथा पाश्चात्य अभिव्यंजना शैली का कवि की मौलिकताओं से समन्वित होकर प्रस्तुत होना है। इसमें कवि ने द्वयर्थक कथा का सफल निर्वाह किया है। कामायनी मूल पौराणिक कथा के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कथा की दृष्टि से भी सजीव बन पड़ी है। इसी कारण यह एक उत्कृष्ट कोटि की रूपकात्मक रचना मानी गई है। कामायनी में बाह्य जगत की अपेक्षा भावजगत की आन्तरिक विभूति पर अधिक बल दिया गया है। कामायनीकार ने अपनी इस रचना में सामयिक परिवेश, यथार्थता

प्रसंगानुकूलता, औचित्य, अन्त:प्रकृति, चिरंतन मूल्य आदि को भी महत्व दिया है। कामायनी का शिल्प-पक्ष भी समृद्ध है। इसमें अनुस्यूत चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, उक्ति की वक्रता, अप्रस्तुत-योजना, अमूर्त-विधान, छंद योजना आदि नव्य कला की परिचायक है। कामायनी की अतिरिक्त विशेषता महाकाव्य जैसी विराट रचना में प्रगीत तत्वों का संगुम्फन है, जो आश्चर्यजनक ही नहीं प्रशंसनीय भी है।

प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण उपकरण भाषा है। दोनों कवियों ने अभिव्यक्ति के इस विशेष माध्यम के स्वरूप, सौष्ठव तथा अर्थव्यंजना को समृद्ध तथा सशक्त बनाने का गुरुतर कार्य संपन्न किया है। दोनों कवियों का शब्द-भण्डार अति व्यापक है। प्रसाद ने ब्रजभाषा में ही अपना काव्यारंभ किया था जिससे ब्रजभाषा की प्रचुर शब्दावली उनके काव्य में मिलती है। यत्र-तत्र ढूंढने पर निराला-काव्य में भी ब्रजभाषा के शब्द मिल जाते हैं किन्तु प्रसाद की तुलना में उन्हें नहीं के बराबर ही समझना चाहि आलोच्य कवियों ने समकालीन युग बोध और अभिनव भाव प्राकट्य में ब्रजभाषा को अनुपयुक्त समझ खड़ीबोली को काव्य का माध्यम बनाया दोनों कवियों ने अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी तथा देशज शब्दों को काव्यमेप्रयुक्त किया है। निराला की भाषा में तो बंगला शब्द भी मिलते हैं। जहां तक देशज शब्दों का प्रश्न है, प्रसाद के काव्य में बनारसी शब्दों का आधिक्य है और निराला के काव्य में बैसवाड़ी शब्दों का। दोनों कवियों की काव्यभाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली दृष्टव्य है। निराला-काव्य में तत्सम शब्दों का सामासिक तथा संयुक्त विधान हुआ है जो उन्हें संस्कृत के महान-कवियों की श्रेणी में खींच लाता है। प्रसाद और निराला की भाषा में उनके स्वनिर्मित शब्दों का कुशल विधान सराहनीय है। उनके मौलिक शब्दों को दो प्रमुख प्रकारों में रखा जा सकता है। एक, अंग्रेजी शब्दों के अर्थबोध के आधार पर निर्मित मौलिक शब्द और दूसरे, भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रत्यय तथा उपसर्ग आदि के जोड़कर निर्मित नूतन शब्द। इसके अतिरिक्त उर्दू और हिन्दी तथा संस्कृत और हिन्दी के मिश्रण से भी कुछ नूतन शब्दों की रचना आलोच्य कवियों ने की है।

प्रसाद और निराला ने भाषा सौष्ठव के विधान में व्याकरणिक नियमों पर विशेष ध्यान नहीं दिया । व्याकरण-सम्मत भाषा का विधान उन्होंने केवल वहीं तक किया है जहां तक वह उनके भावों की उन्मुक्त उड़ान तथा अर्थगाम्भीर्य में बाधक नहीं हुई । इन कवियों ने लिंग, क्रिया, विशेषण, कारक आदि के विधान में पूर्ण स्वतंत्रता बरती है । दोनों कवियों ने भाषा के विशिष्ट तत्त्व नाद-संगीत, अनुप्रासगत वर्ण तथा शब्द मैत्री, ध्वनि-चित्र , शब्द तथा लय संगीत का सुरुचिपूर्ण कलात्मक विधान किया है । भाषा के अलंकरण में सहायक इन विशिष्ट तत्वों की योजना में दोनों कवियों को अभूतपूर्व सफलता मिली है । प्रसाद और निराला ने ऐसे ध्वननकारी शब्दों की भी रचना की है जिससे अभिव्यक्त भाव एवं विचार चित्रवत् प्रतीत होते हैं । इस कला में प्रसाद की अपेक्षा निराला अधिक सफल रहे हैं । कारण उन्हें वर्ण चमत्कार तथा ध्वनिबोध की अन्तर्प्रकृति का अपूर्व ज्ञान था । दोनों कवियों का लक्ष्य भाषा सारल्य तथा विषय की सहजग्राह्यता था ।

आलोच्य कवियों ने काव्यभाषा की अर्थव्यंजकता के हेतु शब्दशक्ति, प्रतीक, गुण, रीति और वृत्ति तथा मुहावरे एवं लोकोक्तियों की कलात्मक सृष्टि की है । शब्द शक्ति के त्रिविध रूपों में से लक्षणा तथा व्यंजना शब्द शक्तियों का अभिधा की अपेक्षाकृत अधिक आश्रय लिया है । यह उनकी काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता है । दोनों कवियोंनेअर्थगौरव एवं भावाभिव्यक्ति के लिए अभिधा लक्षणा और व्यंजना के विविध भेदों की भी रचना की है ।

प्रसाद और निराला ने अपनी भाषा के निगूढ़ अर्थ को व्यंजित करने के लिए प्रतीक शैली का भी आश्रय लिया है । इनकी प्रतीक योजना सादृश्य, साधर्म्य तथा प्रभावाश्रित है । जिनमें प्रभाव साम्य पर निर्मित प्रतीकों का अधिक विन्यास हुआ है । इस प्रकार के प्रतीक उनकी वैयक्तिकता और बौद्धिकता से संकुल है । इनके प्रतीकों की महती विशेषता है एक ही प्रतीक में विभिन्न धर्मावलम्बी प्रतीकों का समावेश । इससे प्राय: उस प्रतीक की अर्थाभिव्यक्ति की क्षमता द्विगुणित हो उठती है ।

प्रसाद और निराला की भाषा में गुण, रीति और वृत्ति का भी अन्तर्भाव हुआ है । विशिष्ट पद-रचना के विन्यास में दोनों कवियों की आत्मा रमी है । अपनी वैयक्तिक रचना प्रणाली के अनुसार प्रसाद सुकुमार मार्ग (वैदर्भी रीति) के

कवि हैं और निराला विचित्र मार्ग (गौड़ी रीति) के है । भाव व्यंजकता तथा अर्थ निष्पत्ति के लिए प्रसाद और निराला ने अपनी भाषा में प्रसाद, माधुर्य तथा ओज गुण के शब्दगत तथा अर्थगत समस्त प्रकारों की रचना की है ।

आलोच्य कवियों ने अर्थ व्यंजकता के हेतु भाषा में मुहावरों तथा लोकोक्तियों को भी प्रश्रय दिया । अपनी मौलिक प्रतिभा से दोनों कवियों ने मुहावरों का नवीनीकरण भी किया है । प्रसाद की अपेक्षा निराला ने लोकोक्तियों तथा मुहावरों का अधिक प्रयोग किया है । कारण, उनकी काव्यभाषा का जनभाषा से अधिक करीब होना है । मुहावरों के प्रयोग में दोनों कवियों की मूल भावना विषय को सहजग्राह्य बनाना तथा पाठक को आनन्दाभिभूत करना मात्र थी, चमत्कारोत्पादन नहीं । वैसे मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रति दोनों कवियों का विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता ।

प्रसाद और निराला का शिल्प विन्यास साहित्य को नूतन दिशा प्रदान करने में पूर्णतः समर्थ रहा है। इसमें शिल्प के प्रमुख उपकरण - भाषा का विशेष योगदान है। प्रसाद और निराला की भाषा में जहाँ एक ओर समानता है वहीं दूसरी ओर असमानता भी है । प्रसाद की भाषा की अपेक्षा निराला की भाषा में विविधता है। उनकी शैली सामरस्य नहीं है । कहीं वह प्रसादगुण युक्त सीधी-सादी प्रतीत होती है, तो कहीं समास बहुला होकर क्लिष्ट बन गई है । किंतु प्रसाद की भाषा में सामरस्य है वह न अधिक क्लिष्ट है और न अधिक सरल । उनकी भाषा में यदि कहीं पर दुरूहता तथा जटिलता आ भी गई है तो उसका कारण भावबोझिलता तथा संस्कृतप्रियता है । प्रसाद की भाषा में निराला की अपेक्षा बन्धगाढ़त्व तथा समासबहुलता कम है। प्रसाद में सांकेतिकता तथा भावव्यंजकता के कारण अर्थ विस्तार अधिक है निराला में शब्दों के विचित्र प्रयोग तथा अर्थप्रौढ़ि के कारण अर्थगरिमा अधिक है । प्रसाद की भाषा सुसंस्कृत, भावाभिव्यंजक तथा माधुर्यगुण प्रधान है और निराला की भाषा गाढ़बंधत्व तथा अर्थस्य प्रौढ़ि जैसी विशिष्टताओं से उद्भूत ओजगुण प्रधान है । प्रसाद का परवर्ती काव्य भाषा-काठिन्य की ओर मुड़ा है और निराला का भाषा-सारल्य की ओर ।

प्रसाद और निराला की अप्रस्तुत-योजना सुसम्पन्न है। दोनों

कवियों ने शास्त्रसम्मत एवं परम्परित अलंकारों के अतिरिक्त कुछ नूतन अलंकारों की सृष्टि भी की है। आलोच्य कवियों ने काव्य में शब्द तथा वर्ण संगीत एवं ध्वनि संयोजन के हेतु शब्दालंकारों का कुशल विधान किया है। प्रसाद की अपेक्षा निराला को शब्दालंकारों के प्रयोग में अधिक सफलता मिली है। फिर भी दोनों के काव्य में प्रधानता अर्थालंकारों की ही है। प्रसाद और निराला से पूर्व साहित्य में रूप, आकार तथा धर्म पर आधृत अप्रस्तुतों की रचना अधिक होती थी किन्तु सूक्ष्म तत्वान्वेषण में संलग्न इन कवियों ने प्रभाव साम्य के आधार पर उपमानों को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया जो समग्र परवर्ती कवियों के लिए आदर्श बना। दोनों कवियों का काव्य-उपमा प्रधान है अपनी शिल्प कुशलता से कहीं-कहीं पर एक ही उपमेय में दो तीन उपमान एक साथ पिरो दिये हैं। मालोपमा के विशिष्ट उदाहरण इनके काव्य में मिलते हैं। अनेक स्थल पर तो कुछ अन्य अलंकारों का ऐसा कलात्मक विधान किया है कि उसमें उपमा का भ्रम हो जाता है। दोनों कवियों के अप्रस्तुतों की विशेषता प्रस्तुत-अप्रस्तुत का परस्पर परिपूरक होना है, एक पार्श्व से देखने पर वे प्रस्तुत प्रतीत होते हैं और दूसरे पार्श्व से देखने पर वही अप्रस्तुत लगते हैं। प्रस्तुत अप्रस्तुत का ऐसा धूप छाँही प्रयोग प्रसाद और निराला से पूर्व नहीं मिलता। आलोच्य कवियों ने साम्यमूलक अलंकारों के साथ ही वैषम्यमूलक अलंकारों की भी सृष्टि की है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकारों की योजना भी इनके काव्य में मिलती है विशेषण विपर्यय, मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजना आदि में दोनों कवियों को अभूतपूर्व सफलता मिली है।

प्रसाद और निराला के काव्य-शिल्प के संदर्भ में बिम्ब विधान की कलात्मक सृष्टि अत्यधिक महत्वपूर्ण है। दोनों कवियों ने अपने गहन एवं सूक्ष्माति-सूक्ष्म भावों को समानवस्तु के आधार पर मूर्तिमन्त तथा चित्रबद्ध किया है। दोनों कवियों ने ऐन्द्रियजन्यस्थूल तथा मानस जन्य सूक्ष्म बिम्बों की रचना की है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कोटि के बिम्बों को भी प्रस्तुत किया है। किन्तु इन सब में सर्वाधिक विधान मानसी बिम्बों का ही हुआ है। प्रसाद और निराला के बिम्बों की महत्वपूर्ण विशेषता उनका संश्लिष्टत्व है। प्रसाद के काव्य में तो विश्लिष्ट बिम्ब मिल भी जाते हैं किन्तु निराला का काव्य इनसे रिक्त है। प्रसाद की अपेक्षा

निराला के बिम्बों में ऐन्द्रियस्पर्शता अधिक है निराला के बिम्ब मांसल हैं और प्रसाद के भावोद्बोधक। प्रसाद के बिम्बों में वर्णबोध तथा रंगों का उभार मिलता है। उनकी अन्तिम कृति कामायनी में मनिष बिम्बों का निर्माण हुआ है। प्रसाद के काव्य में छायापरक धुंधले बिम्बों की प्रधानता है तो निराला-काव्य में उदात्त तथा विराट बिम्बों की। निराला में गति है, आवेग है, प्रवाह है जिससे उनके बिम्ब गत्यात्मक हैं। प्रसाद में गम्भीरता है, शालीनता है, समरसता है जिसके कारण उनके बिम्ब स्थिरगामी हैं। काव्य में ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान, उपचार की वक्रता तथा स्वानुभूति की विवृत्ति के समर्थक कवि प्रसाद ने सज्जात्मक बिम्बों की अधिक रचना की है जबकि निराला-काव्य में इनका अभाव है। अतएव प्रसाद ने जहाँ प्रतीकात्मक, लाक्षणिक, छायात्मक आदि बिम्बों का सुरुचिपूर्ण कलात्मक विधान किया है वहीं निराला ने नाद व्यंजना, स्वराघातपूर्ण क्रियापदों तथा शब्दावृत्ति आदि के माध्यम से भावाभिव्यक्ति को मूर्तिमन्त किया है। प्रसाद और निराला के बिम्ब सार्वभौमिक हैं फिर भी प्रसाद की अपेक्षा निराला में समसामयिकता का आग्रह अधिक है। व्यापकता की दृष्टि से वो पूरे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं एक ओर जहाँ वो हरे-भरे लुभावने कानन का चित्रण करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रकृति के अन्य रूप-सूखे हुए खड़े ठूंठ की अवहेलना भी नहीं कर पाए। इस प्रकार बिम्बों के विधान में अनेक स्थलों पर समानता रखनेवाले दोनों कवि अपनी वैयक्तिक प्रवृत्ति के प्रतिफलन स्वरूप भिन्न हो गए हैं।

वर्ण्य विषय को ऐसे कुशल ढंग से प्रस्तुत किया जाना जो सरस तथा वक्रगामी हो अर्थात् शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता से युक्त हो, आलोच्य-कवियों के शिल्प विन्यास की अतिरिक्त विशेषता है। प्रसाद जी ने तद्युगीन काव्य कला का सर्वस्व स्वानुभूति की विवृत्ति को माना है यद्यपि यह कवि के लिए साध्य न होकर साधन मात्र ही रहा है फिर भी उनके प्रयास से कुन्तक की वक्रोक्ति का पुन: एक बार प्रभुत्व स्थापित हुआ। दोनों कवियों ने वर्ण, पद, वाक्य, विषय, प्रकरण व प्रबंधगत काव्य-सृष्टि में उक्ति की वक्रता का सुरुचिपूर्ण विन्यास किया है। वर्ण-विन्यास वक्रता का कलापरक विधान निराला के शिल्प विधान की चरम उपलब्धि है। पद पूर्वार्द्ध वक्रता के समस्त भेदों में से पर्याय वक्रता, उपचारवक्रता तथा विशेषण

वक्रता को दोनों कवियों ने अधिक महत्व दिया है । इसके साथ ही पदपरार्द्ध वक्रता के भी समस्त उपभेदों की रचना की है। वक्रता के अन्य प्रमुख रूप वाक्य, प्रकरण तथा प्रबन्ध है जिनकी भी रोचक पुष्टि आलोच्य कवियों द्वारा हुई है। विषय को सरस और वक्रगामी ढंग से प्रस्तुत करने में निराला की अपेक्षा प्रसाद अधिक सफल हुए हैं । यह कहना असंगत न होगा कि प्रसाद के प्रयत्न से ही कुन्तक की वक्रोक्ति पुन: जीवित हो सकी है ।

प्रसाद और निराला ने काव्य-शिल्प के अनिवार्य उपकरण छंद-विधान में पूर्व प्रचलित छन्दों की रचना के साथ ही कुछ नूतन छंदों की उद्भावना कर साहित्य में एक युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित किया । दोनों कवियों ने परम्परित छन्दों को यथावत् रूप में प्रस्तुत करने के साथ ही अपने भावानुकूल उनके यति-गति विराम तथा अन्त्यक्रम में स्वच्छंदता से कार्य करके उसका नवरूपान्तरण भी किया । छंदों के नवरूपान्तरण में निराला का अधिक योगदान रहा है। प्रसाद में जहां शास्त्रानुमोदन है वहीं निराला में नवरूपान्तरण की प्रबलता है। कहीं-कहीं पर दोनों कवियों ने दो प्रमुख छंदों का मिश्र प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त इनके काव्य में अंग्रेजी, उर्दू तथा बंगला आदि के छंदों का भी कलापरक विधान हुआ है । जिनमें से बंगला तथा अंग्रेजी साहित्य के छन्दों से प्रभावित अतुकांत तथा मुक्त छंदों की उद्भावना महत्वपूर्ण है । 'आर्ट आफ़ रीडिंग' पर आधृत मुक्त छंद, साहित्य को निराला की अभूतपूर्व देन है । प्रसाद और निराला के शिल्प-विन्यास में जो विशेष अंतर मिलता है वह छंद रचना को लेकर ही है । काव्य-शिल्प के सुरुचिपूर्ण कलात्मक विधान के पोषक आलोच्य कवि प्रसाद और निराला का छंद विन्यास उनकी वैयक्तिकता से उद्भूत होने के कारण सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। प्रसाद का काव्य अतुकांत छंद तक ही सीमित रह गया जबकि निराला का काव्य मुक्त छंद का पोषक बना.।

प्रसाद और निराला ने भावाभिव्यक्ति को रूपाकार प्रदान करने के लिए जिन नवोन्मेषशाली शिल्प उपकरणों को प्रस्तुत किया उनसे साहित्य के आदर्श मानदण्ड निर्धारित हुए । काव्य-कला को अर्थव्यंजक, सुरुचिपूर्ण, प्रभविष्णु तथा सवेध

बनाने में दोनों कवियों का योगदान प्रायः एक जैसा है । यह बात और है कि शिल्प के किसी उपकरण के विधान में प्रसाद को अधिक सफलता हस्तगत हुई है तो किसी में निराला को । अतः तुलनात्मक विवेचन के निष्कर्षस्वरूप यह कहना असंगत न होगा कि एक ही युग के उक्त दो शीर्षस्थ कवि एक दूसरे से कम नहीं हैं ।

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथ सूची

हिन्दी

श्री जयशंकर प्रसाद

काव्य-साहित्य

१- प्रेमपथिक, लक्ष्मी नारायण प्रेस जतनबर, वाराणसी, प्रथम संस्करण १६१३ ई०

२- कानन कुसुम, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, पंचम संस्करण

३- करुणालय, भारती भण्डार, बनारस सिटी, द्वितीय संस्करण

४- महाराणा का महत्व, भारती भण्डार, बनारस सिटी, प्रथम संस्करण

५- चित्राधार, साहित्य सरोज कार्यालय, वाराणसी, द्वितीय बार सं० १६८५

६- झरना, भारती भण्डार, लीडर प्रेस प्रयाग, सप्तम संस्करण

७- आंसू, भारती भण्डार, रामघाट बनारस सिटी, द्वितीय संस्करण

८- लहर, भारती भण्डार, लीडर प्रेस प्रयाग, प्रथम बार

९- कामायनी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस,प्रयाग, चतुर्दश आवृत्ति

१०- प्रसाद संगीत, सं० रत्नशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण ।

नाट्य साहित्य

१- स्कन्दगुप्त, भारती भण्डार, बनारस सिटी, द्वितीय संस्करण

२- चन्द्रगुप्त, भारती भण्डार, लीडर प्रेस,प्रयाग ।

३- ध्रुवस्वामिनी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चौबीसवां संस्करण ।

४- अजातशत्रु, भारती भण्डार, लीडर प्रेस,प्रयाग,ग्यारहवां संस्करण ।

निबन्ध साहित्य

१- काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध , भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस,इलाहाबाद

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

काव्य-साहित्य

१- परिमल, गंगा फाइन आर्ट, लखनऊ, छठा संस्करण, १९५४
२- गीतिका, भारती भण्डार, इलाहाबाद, पंचम संस्करण
३- अनामिका (द्वितीय भाग) भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
४- तुलसीदास, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
५- कुकुरमुत्ता, युग मन्दिर, उन्नाव, प्रथम संस्करण
६- अणिमा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण १९७५ ई०
७- बेला, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, १९४६
८- नये पत्ते, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन, इलाहाबाद प्रथमावृत्ति
९- अपरा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, ग्यारहवां संस्करण ।
१०- अर्चना, कला मन्दिर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
११- आराधना, साहित्य संसद, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण २०११ वि०
१२- गीतगुंज, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्रथम संस्करण
१३- कविश्री, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, २०३१ वि० ।

निबन्ध-साहित्य

१- रवीन्द्र कविता कानन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस सिटी, दिसंबर, १९५४
२- प्रबन्ध पद्म, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, चतुर्थावृत्ति
३- प्रबन्ध प्रतिमा, भारती भण्डार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण
४- पंत और पल्लव, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, १९४९
५- चाबुक, कला मन्दिर, दारागंज, इलाहाबाद, १९५१
६- चयन, कल्याण ब्रदर्स, वाराणसी, १९५७

अनूदित

१- भारत में विवेकानन्द, रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, १९४८ ।

अन्य ग्रंथ

१- आधुनिक साहित्य, श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।

२- आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय , हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, तृतीय संस्करण ।

३- आधुनिक साहित्य का विकास, डा० सावित्री सिन्हा, हिन्दी निकेतन, होशियारपुर, प्रथम संस्करण

४- आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, डा० केसरी नारायण शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, काशी, प्रथम संस्करण ।

५- आधुनिक हिन्दी काव्य, डा० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, ग्रंथम, रामबाग, कानपुर,१९६६

६- आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, डा० पुत्तूलाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति ।

७- आधुनिक हिन्दी नाटक, डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण

८- कवि प्रसाद की काव्यसाधना, पं० रामानन्द जोशी, प्रथम संस्करण ।

९- कवि निराला, श्री नन्द दुलारे बाजपेयी, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण ।

१०- कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, डा० नगेन्द्र, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६२

११- कामायनी एक परिचय , श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय, राम नारायणलाल पब्लिशर,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९४२ ।

१२- काव्य में अभिव्यंजनावाद, श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु, जनवाणी प्रकाशन, कलकत्ता, प्रथम संस्करण ।

१३- काव्य बिम्ब, डा० नगेन्द्र, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,प्रथम संस्करण

१४- काव्य शिल्प के आयाम, पुष्पेशशर्मा , आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।

१५- काव्य दर्पण, श्री रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना,प्रथम संस्करण ।

१६- काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, आत्माराम एण्ड संस,दिल्ली,द्वितीय बार ।

१७- काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, डा० शकुन्तला दुबे, नवचेतन प्रेस, वाराणसी, १९६४ ।

१८- काव्य में अप्रस्तुत योजना , श्री रामदहिन मिश्र , प्रथम संस्करण

१९- गीति काव्य, श्री राम खिलावन पाण्डे, ज्ञान मण्डल, वाराणसी,२००४ ई०

२०- चिंतामणि (भाग १) पंडित रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस लि०,प्रयाग,१९३९

२१- चिंतामणि(भाग २) पंडित रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, काशी, तृतीय आवृत्ति ।

२२- छायावाद पुनर्मूल्यांकन , श्री सुमित्रानन्दन पन्त, १९६५, लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग ।

२३- छायावाद युग , डा० शंभूनाथ सिंह, द्वितीय संस्करण, सरस्वती मंदिर, वाराणसी ।

२४- छायावाद, श्री नामवर सिंह, प्रथम संस्करण, सरस्वती प्रेस, वाराणसी

२५- छायावाद का काव्यशिल्प, डा० प्रतिभा कृष्ण बल, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

२६- छायावादी काव्य और निराला : डा० शान्ति श्रीवास्तव, १९६६, ग्रंथम, कानपुर ।

२७- जयशंकर प्रसाद : श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रयाग, तृतीय संस्करण

२८- जायसी ग्रंथावली, सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, तृतीय संस्करण ।

२९- नया साहित्य , नये प्रश्न : श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, द्वितीय संस्करण

३०- निराला काव्य और व्यक्तित्व, डा० धनंजय वर्मा, प्रथम संस्करण, विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली ।

३१- निराला, सं० श्री पद्मसिंह शर्मा कमलेश, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

३२- पथ के साथी, श्रीमती महादेवी वर्मा, २०१३ वि०, भारती भण्डार,प्रयाग

३३- पल्लव, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, सप्तम संस्करण,१९६३, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली

३४- प्रसाद का काव्य , डा० प्रेमशंकर, प्रथम संस्करण, भारती भण्डार, लीडर प्रेस,इलाहाबाद

३५- प्रसाद प्रतिभा , सं० इन्द्रनाथ मदान, प्रथम संस्करण, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

३६- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास (द्वितीय भाग) डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रथम संस्करण, सरस्वती सदन, मसूरी

३७- भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह "दिनकर", प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

३८- भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डा० नगेन्द्र, ओरियण्टल बुक डिपो, दिल्ली, १९५५

३९- भारतेन्दु नाटकावली, सं० डा० श्याम सुन्दर दास, प्रथम संस्करण, इंडियन प्रेस, प्रयाग

४०- भारत-भारती, श्री मैथिली शरण गुप्त, चतुर्दश संस्करण, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी

४१- भ्रमरगीत, सूरदास, अष्टम संस्करण, साहित्य से०सं०, वाराणसी

४२- महाप्राण निराला , श्री गंगा प्रसाद पाण्डे, प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

४३- महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, सं० श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय

४४- मेरी कहानी, जवाहर लाल नेहरू, अनु० हरिभाऊ उपाध्याय, तीसरी बार, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ।

४५- मीरा पदावली, सं० श्री परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

४६- रसज्ञ रंजन, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, चतुर्थ सं० साहित्य रत्न भण्डार, आगरा

४७- रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी । द्वितीय संस्करण, सं० २०११

४८- रस सिद्धान्त, डा० नगेन्द्र, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६४

४९- विश्वकोश, भाग १४, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

५०- विवेकानन्द चरित, डे० सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, १९४८।

संस्कृत

१- अग्निपुराण, सं० रामलाल शर्मा, ज्ञानपीठ, वाराणसी

२- अभिज्ञान शाकुन्तल : कालिदास, रामनारायण लाल बुकसेलर, इलाहाबाद

३- काव्यालंकार, भामह, सं० देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना

४- काव्यादर्श, दण्डी, श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी

५- काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, वामन, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, १९५४ ई०

६- काव्यालंकार, रुद्रट, डा० सत्यदेव चौधरी, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं० १९६५

७- काव्य मीमांसा, राजशेखर, अनु० गंगासागर राय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण

८- काव्य प्रकाश, मम्मट, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञान मण्डल लि०, वाराणसी, तृतीय सं० १९६० ।

९- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सं० पंडित शिवदत्त पाण्डुरंग, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३४ ई०

१०- छन्द: प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद भानु, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, नवां संस्करण

११- दशरूपक, धनंजय, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

१२- ध्वन्यालोक : आनन्दवर्द्धनाचार्य, संस्कृत सिरीज आफिस, चौखम्भा, वाराणसी

१३- ध्वन्यालोक-लोचन, अभिनव गुप्त, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी

१४- निरुक्त, यास्क (संस्कृत हिंदी टीका) संस्कृत पुस्तकालय, कूचा चेलान, दरियागंज, दिल्ली-६

१५- परमार्थसारम्, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज, अनन्तशयन ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम, सन् १९११

१६- पिंगलछन्द: सूत्र, संस्कृत विद्यालय, निवेदिता लेन, कलकत्ता

१७- मेदिनीकोश, द ओरियण्टल बुक कंपनी, पूना

१८- रस गंगाधर : पंडित राज जगन्नाथ, [illegible] विद्या मंदिर, [illegible], २०१९

१९- साहित्य दर्पण : विश्वनाथ, [illegible], [illegible], लखनऊ, द्वितीया वृत्ति

२०- हिन्दी [illegible], [illegible] विश्वेश्वर, [illegible], लखनऊ, १९५२

२१- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, [illegible] विश्वेश्वर, [illegible] संघ, दिल्ली

ENGLISH

1. A Midsummer Night's Dream : Shakespeare, Blackie, London, 1954.

2. An Introduction to the Study of Literature : W.H. Hudson, George G. Harrop and Co. Ltd., London, 1962.

3. Aristotle Poetics, T.A. Moxan, Everyman's Library, 1949.

4. AESTHETIC , B. Croce, Vision Press, London, 1960.

5. A Reader's Guide to Literary terms : Karl Beckson and Arthur Ganze.

6, A History of English Versification : Jacob Schipper, London

7. Biographia Literaria, S.T. Coleridge. Metheun, London, 1917.

8. Chamber's Dictionary , Allied Publishers, 1972.

9. Coleridge on Imagination, I.A. Rechard. Oxford University Press, London

10. Encyclopaedia Britanica : I.M.C. William Benton Publisher, London.

11. Essays In Criticism : Mathew Arnold, Macmillan Co. London, 1951